संत रैदास

जीवनी एवं पदावली

ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल

संत रैदास

जीवनी एवं पदावली

ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल

प्रधान सम्पादक
वन्दना पाण्डेय

सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल-462002
फोन – 0755-2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com
mptribalmuseum13@gmail.com
web. : www.mptribalmuseum.com

प्रकाशन वर्ष – वर्ष 2017 प्रथम संस्करण

स्वत्वाधिकार – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

मुद्रण – मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

मूल्य – 300/- रुपये (तीन सौ केवल)

■ पुस्तक से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्य क्षेत्र भोपाल होगा।

■ पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखक की है, आवश्यक नहीं कि प्रकाशक इससे सहमत हों।

ISBN - 978-93-83899-27-2

भारतीय ज्ञान परम्परा और उसकी संस्कृति के निर्माण में संतों का केन्द्रीय योगदान रहा है। संत के वाणी की भाषा और उसकी क्षेत्रीयता से भारतीय जन मानस में कोई बाधा कभी नहीं रही। उसके केन्द्र में हमेशा से अपने आत्म को जानने–समझने की दिशा में संतों के विचार और वाणियाँ प्रेरणा का स्त्रोत रहीं हैं। महान संत रैदास की वाणियों ने भारतीय सांस्कृतिक धारा को बहुत गहरे तक समृद्ध किया है। सम्पूर्ण भारत में उनके प्रति गहरी सम्वेदना और समादर है। हमारी ज्ञान धाराओं को समृद्ध और अक्षुण्य रखने में ऐसे संतों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

अकादमी संतों की वाणियों के संग्रह–अनुवाद और उनके प्रकाशन पिछले अनेक वर्षो से कर रही है। संत परम्परा की निर्गुण और सगुण धाराओं के लोक पदों, वाणियों और परचुरियों का संकलन एवं अनुवाद कर प्रकाशित किये गये हैं, जिनको पाठकों का गहरा समर्थन प्राप्त हुआ है। इसी परम्परा के विस्तार स्वरूप संत रैदास की जीवनी और उनकी पदावली का यह संग्रह आपके हाथों में है।

संत साहित्य के विद्वान अध्येता और अपने समय के सबसे खोजी संकलनकर्त्ता श्री ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल के इस संग्रह को प्रकाशित करने का गौरव अकादमी को प्राप्त हुआ। आपने उदारता पूर्वक अकादमी के अनुरोध को स्वीकार कर प्रकाशन की सहमति दी। उनके प्रति आभार। आशा है संत साहित्य में उत्सुक शोधार्थियों। पाठकों को यह कृति उपयोगी लगेगी और वे अपनी राय से अवगत भी करायेंगे।

– अशोक मिश्र

अभिमत

हमारे प्राचीन साहित्य की विपुल सामग्री अभी भी जहाँ–तहाँ या तो बिखरी हुई या बेठनों में लिपटी पड़ी है। उस तक सामान्य जनों की प्रायः पहुँच नहीं है। जो प्राप्य अथवा साध्य है, उसका उपयोग करने वाले विशेषज्ञ शोधकों का हिन्दी में लगभग अभाव है। जो सामग्री पूर्व विद्वानों के उद्योग से इतिहास बन चुकी है, वह कई अर्थों में अधूरी या विवादास्पद है। पुरातन रचनाकारों ने अपने विषय में भूले–भटके ही कोई जानकारी दी है। सामाजिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक इतिहास के साक्ष्यों का उपयोग भी अन्यान्य भाषाओं के ज्ञान के अभाव में कई बार सही–सही नहीं हो पाता। परिणामतः अनेक रचनाकारों का जन्मकाल, जन्मस्थान, परिवार, गुरु या शिष्य विषयक प्रामाणिक इतिहास और उनकी प्रामाणिक रचनाओं के विषय में नित नई–नई उलझनें पैदा होती रहती हैं। अध्यवसायी, लगनशील और सार्वमुखीन विचारक जब–जब प्रमाण–पुरस्सर नये तथ्यों और विचारों को सामने ले आता है तो प्रचलित बृहद्, मध्यम और लघु साहित्येतिहासों की उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है और नये सिरे से संशोधित इतिहास लिखने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक श्री सिंहल उन्हीं अत्यल्पसंख्यक शोधकों में से हैं, जिन्होंने आधुनिकपूर्व काल के हिन्दी रचनाकारों, विशेषतया सन्तों और लोकसाहित्य के रचयिताओं के इतिहास और उनके रचना–कर्म की अद्यतन ज्ञात–अज्ञात सामग्री की खोज और नये सिरे से विश्लेषण–विवेचन करते हुए इतिहास के पुनर्लेखन के लिए प्रभूत विश्वसनीय सामग्री एकत्रा कर दी है, और अभी आगे करते जा रहे हैं। प्रस्तुत कृति में उन्होंने संत रैदास के जीवन और कर्तृत्व पर नया प्रकाश डाला है। उन्होंने हिन्दीतर क्षेत्रों और भाषाओं में प्राप्त जानकारी का भी नोटिस लिया है, जबकि उनके पूर्व विद्वानों ने उस ओर वैसा ध्यान नहीं दिया। हमारा इशारा मराठी भाषा की ओर है।

मराठी में सन् 1968 में **'संत रोहीदास'** पुस्तक प्रकाशित कर इस दिशा में मराठी में ही नहीं, हिन्दी में भी प्रा. (बाद में डॉ. और पुणे विद्यापीठ में नामदेव अध्यासन के प्रोफेसर) अशोक कामत ने रैदास विषयक चिन्तन को सूत्राबद्ध रूप में प्रस्तुत करके इस दिशा में पहल की।

उन्होंने न केवल जीवनादि–विषयक तथ्यों की छानबीन की अपितु पुणे विद्यापीठ

के **'जयकर ग्रंथालय'** में संगृहीत पाण्डुलिपि से रैदास के सात (7) दोहों और सौ (100) पदों को भी सार्थ रूप में प्रस्तुत किया। साथ ही उन्होंने **'राजवाड़े संशोधन मंदिर'**, धुळे (महाराष्ट्र) की पाण्डुलिपियों से सेना नाई कृत **'कबीर–रोहीदास संवाद'** और **'प्रह्लाद–लीला'** (जिसे डॉ. वेणीप्रसाद शर्मा ने अपनी पुस्तक **'संत गुरु रविदास–वाणी'** में **'प्रह्लाद–चरित'** कहा है) का पाठ भी दिया। पुस्तक के तीसरे अर्थात् परिशिष्ट भाग में उन्होंने चार बड़े–छोटे परिशिष्टों में क्रमशः रोहीदास का चर्मकार–समाज, पुणे विद्यापीठ में रोहीदास–पदावली, श्री लॉरेन्स बिन्यॉन द्वारा संपादित **'दि कोर्ट पेंटर्स ऑफ दि ग्रैंड मुगल्स'** नामक दुर्लभ पुस्तक से अन्य छह संतों के साथ रोहीदास (रैदास) का चित्रा और उस पूरे चित्रा का विवरण तथा अन्तिम (चौथे) परिशिष्ट में मराठी–हिन्दी के प्राचीन एवं आधुनिक बारह (12) विद्वानों के रोहीदास–विषयक पद्य–गद्यात्मक भावोद्गार दिये हैं। उल्लेखनीय यह भी है कि पुस्तक के प्रथम विवेचनात्मक खण्ड में उन्होंने संत सेना (सैन) नाई के संबंध में विचार करते हुए यह स्थापना भी की है कि वे महाराष्ट्र के थे और मराठी में उनके हिन्दी की अपेक्षा अधिक पद प्राप्त होते हैं। खेद है कि श्री कामत की इस मराठी पुस्तक तक केवल हिन्दी पढ़ने–जानने वाले विद्वानों की पहुँच नहीं हुई और प्रो. कामत अब तक अपने प्राप्तव्य श्रेय से वंचित रहते आये। अन्य बातों के अतिरिक्त मुख्यतः इस बात की आवश्यकता है कि उनके द्वारा प्रकाश में लाये गये पाठ से अन्य पाठों में पाठ–भेद क्या है और 'प्रह्लाद–लीला' तथा 'कबीर–रोहीदास संवाद' के पाठ दूसरों के द्वारा गृहीत पाठों की तुलना में आंशिक रूप से छूट गये पाठ वाले क्यों हैं। विचारणीय यह भी है कि 'रविदास–कबीर–गोष्ठी' को डॉ. वेणीप्रसाद शर्मा, अनन्तदास वैष्णव–रचित मानते हैं, उसका सत्य क्या है? अस्तु,

यह अत्यंत सुखद है कि संत–साहित्य के पारखी, गहन अध्येता और प्राप्त समस्त स्रोतों की यथासंभव सूक्ष्म पड़ताल करने वाले हमारे मित्र श्री ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल ने संत श्री रैदास विषयक अद्यतन प्राप्त सामग्री को बटोरकर सविवेक अन्यान्य प्रमाणों का उपयोग करते हुए सतर्क और प्रामाणिक चिन्तन का नया पथ प्रशस्त कर दिया है। संत–साहित्य के समान ही भारतीय मध्यकालीन सामाजिक– सांस्कृतिक–राजनीतिक इतिहास में भी चूँकि उनकी समान गति है, अतएव ऐतिहासिक सत्य के निकष पर खरा और प्रामाणिक उतरने वाला तार्किक विवेचन उनके लेखन का प्रकृत सद्गुण बन गया है। प्रस्तुत कृति भी इस सत्य को ही वहन करती है। उसी के आधार पर उन्होंने, कदाचित् अन्तिम रूप से ही, संत रैदास के जीवन से संबंधित उनके जन्म–संवत्, संत कबीर से वयोज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ होने, झाली राणी और मीरां, दोनों के अथवा इनमें से किसी एक के गुरु होने आदि के प्रचलित विवाद को समाप्ति तक पहुँचा दिया है। पाठक–सामान्य की दृष्टि से यह अलक्षित नहीं रहेगा

कि विद्वान् लेखक ने संत रैदास के समकालीन अथच परवर्ती मध्यकालीन पैंतीस (35) रचनाकारों की रैदास–विषयक समस्त उक्तियों को एकत्रा करके उनके विषय में प्रचलित धारणाओं की तथ्यपरक जाँच की है और उन्हें यथातथ्य संगत रूप दिया है। संत रैदास के जीवन और कर्तृत्व के विवेचन के इतिहास में यह पहली बार हुआ है।

श्री सिंहल के विवेचन के माध्यम से न केवल रैदास विषयक इतिहास और आलोचना में नया मोड़ आया है और पूर्वप्रचलित भ्रान्तियों के निराकरण में सहायता मिली है, बल्कि उनके बहाने अनन्तदास वैष्णव, संत सैन (सेना नाई), संत पीपाजी सम्बन्धी प्रचलित धारणाओं के परिष्कार एवं संशोधन का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है। लेखक ने अनन्तदास की परचई की प्राचीनतम प्रतियाँ खोजने के साथ ही उनके जीवनकाल, रचनाकाल, पीपाजी आदि से पारिवारिक सम्बन्धी, दीक्षा–गुरु तथा मूल रचनाएँ आदि प्रश्नांकित समस्याओं का विस्तारपूर्वक समाधान प्रस्तुत किया है। रैदास की परचई का पाठांतरों सहित सानुवाद संपादन किया है। रैदास के 113 पदों और प्राप्त साखियों का अनुवाद दिया है और पदों को राग–रागिनी के नामांकन सहित प्रस्तुत किया है। स्वाभाविक है कि इस प्रसंग में प्राचीन (मध्यकालीन) इतिहास की छानबीन के साथ–साथ लेखक को रैदास विषयक लेखन के आधुनिक चिन्तकों के विचारों से भी सहमति–असहमति व्यक्त करनी पड़ी है, जिसे उसने सप्रमाण निबाहा है। इसी क्रम में उसने श्री पृथिवीसिंह आजाद के विचारों के पुष्टीकरण में पुस्तक में एक अलग अध्याय का नियोजन किया है।

ये कुछेक मुख्य बातें हैं जिनका उल्लेख हमें आवश्यक प्रतीत हुआ। सजग पाठक जब इस पुस्तक को स्वयं पढ़ेंगे तो, हमें विश्वास है, उन्हें और भी बहुत कुछ सोचने–समझने को मिलेगा। हमारी दृष्टि में पुस्तक को अन्यान्य विद्वानों की रैदास विषयक रचनाओं के साथ तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ना विशेष हितकर होगा। उसी से श्री सिंहल के अथक श्रम, इतिहास–बोध, तर्कबुद्धि एवं प्रामाणिकता की पुष्टि भी होगी और स्वयं पाठक के चिन्तन को भी धार मिलेगी। हमारी शुभकामनाएँ लेखक के साथ हैं और हम उनकी प्रज्ञा का आदर करते हैं।

– डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर
तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग
पुणे विश्वविद्यालय, गणेशखण्ड,
पुणे–411 007 (महाराष्ट्र)

'कलापी' बंगला, 162/5ब–1स, डी.पी.रोड,
औंध पुणे–411 067 (महाराष्ट्र)
मंगलवार, 04–07–2017 ई.
ई–मेल : apdikshit162@gmail-com

मुखबन्ध

भक्ति स्वरूपा मेड़तणी मीरांबाई की जीवनी पर लिखते समय प्रसिद्ध निर्गुणी संत श्री रैदास की चर्चा बार–बार सामने आती रही। इसी–प्रकार जब मीरांबाई की रचनाओं का निर्णय करने का प्रश्न सामने आया, तब गुजरात के प्रसिद्ध भक्त नृसिंह मेहता की चर्चाएँ होना स्वाभाविक हो गया।

मीरांबाई पर मेरी पुस्तक **'मेरे तो गिरधर गोपाल'**, जो अपने विषय की सर्वाधिक प्रामाणिक व प्रसिद्ध सिद्ध हुई है और जिसका दूसरा संस्करण **'मीरांबाई : प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली'** के नाम से प्रकाशित हो चुका है, के नाम से लिखी। इसके तत्काल पश्चात् मैंने गुजराती–भाषा के आदिकवि भक्तप्रवर नृसिंह मेहता पर पुस्तक **'नरसीजी रो माहेरो'** लिखी, जिसका प्रकाशन सन् 2010 में हुआ जिसमें अनेक साक्ष्यों व प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया गया कि **'नरसीजी रो मोहरो'** मेड़तणी मीरां की कृति न होकर हाड़ौती–अंचल–निवासी **निरंजनी–संप्रदाय** के किसी **मीरांदास** नामक साधु की कृति है।

'मीरांबाई : प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली' में अनेक ऐतिहासिक व तत्कालीन प्रमाणों के आधार पर यह स्थापित किया गया है कि मेड़तणी मीरां और निर्गुणी संत रैदास का तथाकथित गुरु शिष्य जैसा कोई सम्बंध नहीं था। इस निर्णय की पृष्ठभूमि तैयार करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रंथ संत अनंतदास वैष्णव कृत **'रैदास की परचई'** है, जिसमें रैदास की शिष्या का नाम **झाली रानी** बताया गया है, न कि मेड़तणी मीरां। वस्तुतः मीरांबाई अपने जीवनकाल में कभी भी रानी नहीं बन सकी। वह मात्रा कुँवरानी थी। कुँवरानी से ही वह भक्तिमती बनी।

वस्तुतः **झाली** का तात्पर्य झाला राजपूतों की पुत्राी से होता है, जबकि मीरां राठौड़ राजपूतों की पुत्री थी, जिसके पीहर वाले **'मेड़तिया'** अथवा **'मेड़तिया–राठौड़'** कहलाते हैं। मेड़तियाओं की पुत्रियाँ या तो **मेड़ती** या **मेड़तनी** ही कहला सकती हैं, झाली कथमपि नहीं। **झाला, मकवाना क्षत्रिय** होते हैं; दोनों पृथक्–पृथक् राजवंश हैं।

भक्तमाल, परचई, विगत, मीरां, बारामासी आदि–आदि जितने भी प्राचीन व मध्यकालीन ग्रंथ हैं, उनमें से अधिकांश में रैदास की शिष्या का नाम झाली रानी लिखा मिलता है, मेड़तणी मीरां नहीं; अतः इन सभी साक्ष्यों को सुसंपादित कर प्रकाशित कराना अत्यावश्यक समझकर मैंने लगभग 5 वर्ष पूर्व इस काम को करना प्रारंभ किया।

सर्वप्रथम अनंतदास की परचई की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों की खोज की और रैदास की परचई का पाठांतरों सहित सानुवाद पाठ तैयार किया।

तत्पश्चात् अनेक कवियों की रैदास सम्बंधी रचनाओं का संकलन–सम्पादन करता रहा। यह संकलन–सम्पादन लगभग तीन वर्ष पूर्व ही तैयार हो गया, किन्तु इसको प्रकाशित नहीं कराया। विचार था कि रैदास के पाठांतरों सहित सानुवाद प्राचीनतम पदों के साथ इस सामग्री को प्रकाशित कराया जाए। पाठांतरों सहित सानुवाद 113 प्राचीनतम पदों की प्रेसकॉपी तैयार हो चुकने पर इनको प्रकाशित कराने का संकल्प जागृत हुआ।

'रैदास की परचई' के नाम से पूर्व में भी एक दो पुस्तकें अन्य लेखकों की प्रकाशित हुई हैं, किन्तु न उनका पाठ ही प्राचीनतम प्रतियों के आधार पर सम्पादित है और न उनमें विस्तृत समालोचनात्मक भूमिकाएँ ही हैं। मैंने पाठांतरों सहित परचई को, उपलब्ध प्राचीनतम प्रतियों सम्वत् 1719, 1722, 1733 एवं 1744 के आधार पर सानुवाद तैयार की है और पूर्व–प्रकाशित पुस्तकों की कमियों को इंगित करते हुए उनका सप्रमाण सही समाधान प्रस्तुत किया है।

रैदास–शिष्या झाली रानी पर भी प्रामाणिक व गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया है। संत–सम्राट कबीर और संतप्रवर रैदास की गोष्ठी को संतप्रवर सैन ने निर्मित किया; अतः इस गोष्ठी को संत सैन के प्रामाणिक विवरण के साथ इस पुस्तक में स्थान दिया गया है।

बीसवीं शती के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पृथिवीसिंह आजाद के विचारों से संबंधित एक अध्याय जोड़ा गया है, जिसके द्वारा संतप्रवर रैदास के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है तथा अनंतदास की परचई की घटनाएँ प्रमाणीकृत होती हैं।

एक सौ तेरह पदों का पाठ प्राचीनतम हस्तलिखित ग्रंथों यथा सम्वत् 1639, 1660, 1684, 1700, 1710, 1715 आदि व गुरु–ग्रंथ–साहब के आधार पर सम्पादित कर उनकी टीका भी प्रस्तुत की गई है।

हिन्दी में इतनी प्राचीन प्रतियों पर आधारित पाठ पहली बार तैयार हुआ है। मुझे आशा है, रैदास पर यह पुस्तक सर्वथा प्रामाणिक, प्राचीनतम सामग्री प्रस्तुत कर विद्वत्–समाज में आदर–सत्कार–पूर्ण स्थान बनाने में सक्षम हो सकेगी।

60/60 रजतपथ, मानसरोवर, जयपुर–302020

फोन : 0141–2782609, 09351503555

E-mail : bks@mactool.com, bksinghal57@gmail.com

–ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

अनुक्रम

1. रैदास की परचई : पूर्वपीठिका 15
2. रैदास, झाली रानी और मेड़तनी मीरां 45
3. सन्त सैन, उनकी रचनाएँ और संत रैदास 63
4. संत रैदास के पदों में अन्तर्साक्ष्य 84
5. पद–प्रसंग–माला के साक्ष्यानुसार रैदास 88
6. पदावली–परिचय 90
7. रैदास की परचई : मूल–पाठ, अनुवाद व पाठांतर 111
8. श्रीनारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल की भक्तिरसबोधनी टीका में रैदास 165
9. श्रीनारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल की भक्तिरसबोधनी टीका में रैदास 168
10. श्रीदयालदास, खेड़ापा के भक्तमाल में रैदास 180
11. श्रीध्रुवदास कृत भक्तनामावली में रैदास 181
12. श्रीकिशनदास, टाँकला के भक्तमाल में रैदास व मीराँ 182
13. संत श्रीसुखसारण, टालनपुर के भक्तमाल में रैदास 183
14. दादूपंथी श्रीराघवदास कृत भक्तमाल पर चत्रादासी टीका में रैदास 184
15. चारण श्रीब्रह्मदास दादूपंथी संत कृत भक्तमाल में रैदास 186
16. श्रीसुखरामदास, मेड़ता के भक्तमाल में रैदास 187
17. रींवानरेश रघुराजसिंहजुदेव के रामरसिकावली नामक भक्तमाल में रैदास 188
18. संत श्रीहरिदास 'उतराधा' दादूपंथी के ग्रंथ भक्तविरदावली में रैदास 194
19. कुचेरा निवासी सन्त श्रीसाँवतराम कृत भक्तमाल में सन्त रैदास 195

20. श्रीनारायणदास नाभा कृत भक्तमाल की श्रीबालकराम कृत
भक्तदामगुणचित्राणी टीका में झाली रानी 197
21. चरणदासी–सम्प्रदाय के संत श्रीजसराम 'उपकारी'
कृत भक्तबावनी में सन्त रैदास 199
22. मराठी भक्तमाल 'भक्तविजय' में रैदास 205
23. रसिकभक्त श्रीहरिरामजी 'व्यास',
वृन्दावन की वाणी में रैदास 209
24. संतप्रवर दादूदयाल के शिष्य संत रज्जब की
वाणी में रैदास 211
25. हरदासी–पंथ–प्रवर्तक संत हरदास की वाणी में रैदास 212
26. राजर्षि पीपा की वाणी में संत रैदास 213
27. संतप्रवर दादूयाल की वाणी में रैदास 214
28. दादू–शिष्य श्रीजग्गा के भक्तमाल में रैदास 215
29. श्रीदादूदयाल के प्रशिष्य व श्रीजनगोपाल के
शिष्य चैनजी के भक्तमाल में रैदास 216
30. चौथे सिख–गुरु श्रीरामदास के पदों में संत रैदास 217
31. पाँचवे सिख–गुरु श्रीअर्जुनदेवजी के पदों में संत रैदास 219
32. संत श्रीधन्ना जाट के पद में रैदास 220
33. भक्तिमती मीरां के पदों में रैदास 221
34. अन्तर्राष्ट्रीय–रामस्नेही–सम्प्रदाय प्रवर्तक स्वामी
रामचरण के प्रशिष्य संत ब्रह्मदास की वाणी में रैदास 223
35. सखी किम्वा टट्टी–सम्प्रदाय के श्रीभगवतरसिक द्वारा रचित
भक्तनामावली मे रैदास 224
36. निम्बार्क–सम्प्रदाय के 36वें आचार्य श्री परशुरामदेवाचार्य
की वाणी में संत रैदास 225
37. पंजाबी परंपरा की परचई 227
38. प्रसिद्ध भक्तमाली श्रीनारायणदास 'मामाजी'
बक्सर–निवासी और रैदास 238
39. रैदास : पदावली (सटीक) 250

1. रैदास की परचई : पूर्वपीठिका

उपोद्घात

हिन्दी–भाषी क्षेत्रों में जिनको रैदास[1], पंजाबी–भाषी क्षेत्रों में रविदास[2] तथा मराठी–भाषी क्षेत्रों में रोहीदास[3] कहा जाता है, वे भले ही अपने दलित–जाति[4] वालों के श्रद्धाभाजन वर्तमानकाल में बने हों, किन्तु वे तो प्रारम्भ से ही चातुर्वर्ण के श्रद्धा के केन्द्र बने रहे हैं। चाहे निर्गुणी–भक्त समाज रहा हो, चाहे सगुणी–भक्त समाज, सभी ने रैदास की प्रगल्भता से प्रशंसा की है। उनका गुणगान किया है। भक्तों में अग्रगण्य माना है। उनके उपदेशों को सुना है। पदों और साखियों का गान किया है। यद्यपि कबीर की भाँति इनके शिष्यादि विरक्त वेश धारण करके यत्रा–तत्रा रैदास का गुणगान करते हुए घूमे–फिरे नहीं, तथापि इनका यश–सौरभ दिग्दिगंत में फैला हुआ है। इसके कारण हैं, इनका कबीर, पीपा, धन्ना, सैन आदि का गुरुभाई व स्वामी रामानंद का शिष्य होना।[5] निम्नकुलोभव होने के उपरान्त भी भगवभक्ति द्वारा भगवद्–प्राप्ति कर जनसामान्य को अपने निष्कपट, निस्पृही उपदेशों से भगवद्–उन्मुख बनाना। अपनी चर्मकार–वृत्ति को आजीवन करते हुए उसी से अपना जीवन–निर्वाह करना। कभी भी अपनी हीन जाति व वृत्ति को छिपाने का प्रयत्न न करना, प्रत्युत् बार–बार इस बात पर बल देना कि परमात्म–प्राप्ति आचार–विचार, जाति–पाँति, ऊँच–नीच, स्पर्शास्पर्श–विचार से न होकर निश्छल–भक्ति से होती है। उन्होंने कभी भी अपनी बातें उस कड़े लहजे में नहीं कही, जिसमें कबीर ने कही। कबीर न अवधू को छोड़ते हैं और न ब्राह्मण को बक्सते हैं। उनके पद इसके साक्षी हैं, किन्तु रैदास अवधू, ब्राह्मण, शाक्त किसी की भी भर्त्सना नहीं करते। वे न मुसलमानों से उलझते हैं न हिन्दुओं का तिरस्कार करते हैं। वे सभी से प्रेम–प्यार से, मान–मनुवार से, आदर–सत्कार से मिलते, बात करते हैं। उन्हें उपदेश देते हैं। उन्हें अपने यहाँ आने की दावत देते हैं। उनका स्वर हमेशा मिलनसारिता का रहा है। ऐसे महान् सन्त को यदि दलित–समाज अपना आदर्श मानता है तो वह रैदास का नहीं, अपना ही कद ऊँचा करता है। अस्तु!

सन्त रैदास के जीवनसूत्र **भक्तमालकार नारायणदास 'नाभा'** ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **भक्तमाल** में लिखे। ये जीवनसूत्र[6] वास्तव में सांकेतिक हैं, जिनके आधार पर रैदास का पूरा जीवन–चित्र बनना तो दूर, पूरा रेखाचित्र भी नहीं बनता। इस कमी को अनुभूत कर इन्हीं के समकालीन व भतीज–शिष्य **'अग्रावत' अनंतदास** वैष्णव ने **'रैदास की परचई'**[7] लिखी जिसमें आधुनिक–पद्धति से लिखी जीवनी तो नहीं मिलती, किन्तु जीवन की उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं का लेखा–जोखा अवश्य मिलता है, जिनके आधार पर रैदास का जीवन–रेखाचित्र बनाया जा सकता है।

ये नारायणदास नाभा व अनन्तदास कौन थे; इनका समय क्या था; इनकी कृतियों की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियाँ कहाँ–कहाँ व किस–किस सम्वत् की उपलब्ध हैं; इनकी सामग्री की विश्वसनीयता कितनी है; इनकी सामग्री का अनुवर्तन करते हुए किस–किसने रैदास की जीवनी लिखी है; उनके तथ्यों और इनके तथ्यों में कितनी समानता और कितनी विषमताएँ हैं; उन विषमताओं में से रैदास के जीवन से कौनसी घटनाओं को सम्बन्धित किया जा सकता है, कौनसी को नहीं; ऐसा करने के क्या आधार हैं; आदि–आदि प्रश्नों के उत्तर पाना ही इस पूर्वपीठिका को लिखने का उद्देश्य है।

सर्वप्रथम हम यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि श्रीनारायणदास 'नाभा' का भक्तमाल संत–भक्त–विद्वत्–जनसामान्य में जितना अधिक प्रचलित व मान्य रहा है, उतनी अनंतदास की परचइयाँ नहीं रही हैं तथापि अनुवर्तन करने वाले सभी परवर्ती लेखकों ने अनंतदास कृत परचइयों का भी अध्ययन किया है, ऐसा दृढ़ विश्वास उन–उनकी रचनाओं को पढ़ने से होता है। हमने आगे के पृष्ठों में उन 35 लेखकों की कृतियों में उपलब्ध रैदास की जीवनी सम्बन्धी अंशों को सम्पादित कर प्रस्तुत किया है। स्थान–स्थान पर वर्तमानकालिक शोधकर्ताओं के मंतव्यों को भी उद्धृत किया है, जिससे कि हमारे निर्णय पूर्णतः अद्यतन और प्रामाणिक बन सके हैं। अनेक स्थानों पर उन ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है, जिनके बिना न रैदास का सही समय निश्चित् हो सकता था और न जीवन की उन अहम् घटनाओं का सही स्वरूप मालूम हो सकता था। वर्तमानकालीन अनुसंधित्सुओं ने या तो इन ऐतिहासिक ग्रंथों का उपयोग ही नहीं किया है और यदि एक दो विद्वानों ने इन्हें काम में लेने का प्रयत्न भी किया है तो वे इनका सही विश्लेषण कर सही निर्णय नहीं का पाये हैं। पाठक आगे के पृष्ठों में इन समस्त आधारभूत सामग्रियों को मूल स्रोतों की सामग्री के रूप में पढ़ सकेंगे। हम इन लेखकों की कृतियों का रसास्वादन करें, उससे पूर्व इन रचनाकारों के बारे में यत्किचित् जान लेना चाहिए।

(2). 1 परचईकार अनन्तदास

अनन्तदास के समय का निर्धारण उनकी गुरु–परम्परा और उनकी कृतियों में उपलब्ध सम्वत् के आधार पर किया जा सकता है। उन्होंने अपनी गुरु–परम्परा अपनी कृति पीपा की परचई में अग्रांकित प्रकार से दी है **(1)** स्वामी रामानन्द **(2)** अनन्तानन्द **(3)** कृष्णदास पयाहारी **(4)** अग्रदास **(5)** विनोदीजी **(6)** अनन्तदास।[8] अनन्तदास के गुरु विनोदीजी विक्रमसम्वत् 1590 में दीक्षित होकर 1660 में साकेतवासी हुए थे।[9] विनोदीजी के गुरु अग्रदास का जन्म विक्रम संवत् 1553, फाल्गुन शुक्ला द्वितीया और दीक्षाकाल विक्रम सम्वत् 1570 माना जाता है।[10] इनका साकेत–गमन का समय निश्चित नहीं है, तथापि आगे हम उसको वि.सं. 1650 के लगभग निश्चित करेंगे। अतः इनका निधन–समय 1650 के आस–पास होने का अनुमान है। अनंतदास ने अपनी कृति नामदेव की परचई में इसको बनाने का समय विक्रम सम्वत् 1645 लिखा है।[11] अतः इतना तो पूर्णरूपेण निश्चित् होता है कि अनंतदास की गुरु–परम्परा के गुरुओं के उपलब्ध उक्त सम्वत् सही हैं। अनंतदास के गुरुभाई ध्यानदासजी, विनोदीजी के साकेतवासी होने के उपरान्त उनकी गद्दी पर बैठे थे और विक्रम सम्वत् 1690 में साकेतवासी हुए थे।[12]

डॉ. वी. पी. शर्मा ने अपनी कृति **'भक्त–रत्नावली'** में अनंतदास का जन्म विक्रम सम्वत् 1582 में होना माना है।[13] यह सम्वत् उनको कहाँ से मिला, इसका कोई खुलासा उन्होंने नहीं किया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि अनंतदास ने भक्तों की परचई अपनी 50 वर्ष की उम्र में लिखना शुरू की और 58 वर्ष की उम्र तक उन्होंने पूरी 9 परचइयाँ लिखकर पूर्ण कर दीं।[14] किन्तु ये सूचनाएँ तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। अनंतदास ने नामदेव की परचई का निर्माण काल स्पष्टतः 1645 विक्रम सम्वत् लिखा है। यदि हम नामदेव की परचई को अनन्तदास की पहली कृति न मानकर अन्तिम कृति भी मानें, तब भी 58 वर्ष की उम्र में सभी परचइयों को लिखकर पूर्ण करना संभव नहीं लगता। वि.सं. 1582 में 58 जोड़ने पर 1640 आता है। ऐसी स्थिति मे या तो जन्म सम्वत् गलत सिद्ध होता है या 58 वर्ष की उम्र गलत सिद्ध होती है। डॉ. शर्मा ने अनन्तदास को रामानन्द–शिष्य राजर्षि पीपा का सांसारिक–पक्ष का पौत्र लिखा है।[15] वस्तुतः राजर्षि पीपा गागरोन (गागरोन वर्तमान समय में जनपद झालावाड़, राजस्थान में है।) के राजा थे। इतिहास–ग्रन्थों के अनुसार उनका समय निश्चित है। चौहान–कुल कल्पद्रुम[16] व अन्यान्य प्रामाणिक ऐतिहासिक[17] ग्रन्थों के अनुसार राजर्षि पीपा का जन्म सम्वत् अज्ञात, राज्यारोहण सम्वत् 1416 व राज–पाट छोड़कर संन्यासी बनने का सम्वत् 1441 है।[18] राजर्षि पीपा के 12 रानियाँ होने के उपरान्त भी उनका कोई और पुत्र नहीं

था।[19] उनकी गद्दी पर उनका काका–जात भाई कल्याणदास बैठा जो मात्र एक वर्ष राज्य करके सम्वत् 1442 में मर गया।[20] इसके पश्चात् इसका पुत्र भोजराव गद्दी पर बैठा, जो विक्रम सम्वत् 1466 तक राज्य करके मरा।[21] इसके पश्चात् इसका पुत्र इतिहास–प्रसिद्ध अचलदास खीची गद्दी पर बैठा, जिसका विक्रम सम्वत् 1480 में होसंगशाह से 15 दिनों तक भंयकर युद्ध हुआ और जो 27 सितम्बर 1423 ई. को वीरगति को प्राप्त हुआ।[22] अचलदास व होसंगशाह के युद्ध सम्बन्धी उल्लेख मात्र राजस्थानी ऐतिहासिक ग्रन्थों में ही नहीं मिलते, फारसी–तवारीखों मे भी मिलते हैं।[23] स्वयं अचलदास खीची का राज्याश्रित कवि शिवदास गाडण (चारण–कवि) जो उस युद्ध का प्रत्यक्षदर्शी था ने एक वचनिका नामक ग्रंथ लिखा जिसका विषय यही युद्ध है और जिसका नाम **'अचलदास खीची री वचनिका शिवदास गाडण री कही'** है, से भी इस युद्ध का विक्रम सम्वत् 1480 में ही होना सिद्ध होता है। गाडण ने उक्त वचनिका विक्रम सम्वत् 1492 में बनाई, ऐसा वचनिका के अध्येता विद्वानों का अभिमत है।[24]

उक्त ऐतिहासिक विवरणों को पढ़ने के पश्चात् यह निर्णय करने में तनिक भी विलम्ब नहीं होता कि वि.सं. 1645 में रचनाएँ लिखने वाला अनन्तदास, 1441 विक्रम सम्वत् में राजपाट छोड़ने वाले राजर्षि पीपा का कभी भी पौत्र नहीं रहा होगा। दोनों के समयों मे लगभग 200 वर्षों का अन्तराल है।

अनंतदास ने जितने विस्तार से पीपा की परचई लिखी है, उतने से अन्यों की नहीं। इस आधार पर विद्वानों ने दो अनुमान कर लिये। एक का उल्लेख डॉ. वी. पी. शर्मा के हवाले से ऊपर आ चुका है। दूसरा अनुमान अन्यान्य विद्वानों का है, जिसके अनुसार अनंतदास, राजर्षि पीपा की परम्परा का सन्त था।[25] इन दोनों ही अनुमानों में कोई दम नहीं है। पहले अनुमान को 200 वर्षों का अन्तराल व दूसरे अनुमान को स्वयं अनंतदास द्वारा उपलब्ध करवाई गई गुरु–परम्परा धराशायी करते हैं। वैसे, इन अनुमानों से अनंतदास के समय–निर्धारण करने में कोई सहायता नहीं मिलती।

ऐतिहासिक–ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि गागरोन में दो बार शाके हुए। पहला[26] अचलदास के मरने पर व दूसरा[27] पाल्हणसी के मरने पर। इन शाकों के पश्चात् गागरोन के खीची अन्यान्य जगहों पर जा–जाकर बस गये और वहीं उन्होंने अपने–अपने राज्य स्थापित किये। ऐसी स्थिति में अनन्तदास यदि पीपा के वंश का खीची राजपूत रहा भी होगा तो वह गागरोन का खीची न होकर अन्यत्र कहीं और का खीची रहा होगा। चौहान–कुल–कल्पद्रुम व खिलचीपुर–रियासत की ख्यात में अनंतदास

का नाम कहीं नहीं मिलता।[28] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अनंतदास कहीं का राजा न होकर कोई छुट–भइया रहा होगा, जिस–कारण उसका नाम उक्त पुस्तकों में नहीं मिलता। इसका छुट–भइया होने का एक सबल कारण और है 'अग्र–ग्रंथावली' में अनंतदास के 14 गुरुभाइयों के नाम तो मिलते हैं[29] किन्तु उस नामावली में इसका नाम नहीं मिलता। पीपा के वंश में अनंतदास का नाम न मिलने का संभावित कारण है, अनंतदास दीक्षित हुआ विनोदीजी से जो रसिक–सम्प्रदायानुसार भक्ति करने वाले थे, जबकि अनंतदास ने अपना इष्ट स्पष्टतः निरंजन–निराकार बताया है।[30] राजर्षि पीपा भी पहले सगुणमार्गी थे[31] किन्तु बाद में कबीर के सत्संग से उनकी निष्ठा बदल गई और वे पूर्णतः निर्गुण–निराकार को मानने वाले हो गये।[32] उनकी रचनाएँ इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं। निर्गुण–निराकार की ओर अनंतदास का झुकाव राजर्षि पीपा के कारण ही हुआ होगा। अतः लगता यही है कि अनंतदास राजर्षि पीपा की कई पीढ़ियों बाद का खीची राजपूत रहा होगा, जिसने दीक्षा तो विनोदीजी से ली, किन्तु साधना राजर्षि पीपा के सिद्धान्तानुसार की। आजीवन यह निर्गुण–निराकार–परमात्मा का उपासक बना रहा। इसी–कारण इसका नाम विनोदीजी की शिष्य–नामावली में नहीं जुड़ सका। वास्तव में, यह विरक्त संत ही था, क्योंकि गृहस्थ व्यक्ति कभी भी इतना पर्यटन नहीं कर सकता जितना अनंतदास ने किया; जबही उसने एक–एक तथ्य को 20–20 व्यक्तियों से पुष्ट करके लिखा है।[33] अनंतदास ने बहुत ही दृढ़ता से कहा है कि उसने उन्हीं बातों को इन परचइयों में लिखा है जिनकी साक्षी 20–20 जगहों से मिली है। अस्तु! फिर उक्त 14 शिष्यों की नामावली पूर्ण भी नहीं है; यह विनोदीजी के प्रमुख–प्रमुख शिष्यों की सूची मात्र है।[34] अतः निष्कर्षतः यही कहना ठीक है कि अनंतदास, विनोदीजी का विरक्त वैष्णव शिष्य तथा अग्रदास का पौत्र शिष्य था।

अनंतदास का समय निर्धारित किया जाये, इससे पूर्व इसके दादा–गुरु अग्रदास का समय निश्चित् करना आवश्यक है। जैसा पूर्व में लिखा गया है, अग्रदास का जन्मसम्वत् 1553 व दीक्षासम्वत् 1570 है।[35] अग्रदास के उत्तराधिकारी विनोदीजी संवत् 1660 में साकेतवासी हुए।[36] इसका फलितार्थ यह हुआ कि अग्रदास का निधन–समय 1660 से पहले का होना चाहिए। यदि विनोदीजी अपने गुरु की गद्दी पर 20 वर्ष न भी रहकर 10 वर्ष ही रहे हों तो अग्रदास का निधन–वर्ष 1650 विक्रम सम्वत् आता है। यह समय एक अन्य घटना से भी पुष्ट होता हुआ मालूम देता है।

दादूपंथ का प्रामाणिक ग्रन्थ **'दादूजन्मलीला–परची'**[37] जनगोपाल रचित वर्णित करता है कि जब दादूदयाल साँभर में निवास कर रहे थे, तब अग्रदास ने अपने 4 विश्वस्त साधु[38] दादूदयाल के पास साँभर में इसलिये भेजे कि या–तो दादूदयाल

निर्गुणी–भक्ति का प्रचार–प्रसार छोड़कर रामावत–सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त हो जायें अथवा ढूँढ़ाड़ को छोड़कर अन्यत्र रम जायें।[39] भेजे गये संतों के नाम रामघटा, गैबीराम, जंगीदास व छीतरदास थे। दादूदयाल, जनगोपाल के अनुसार साँभर में वि.सं. 1630 में आये[40] और 1637 तक रहे। आधुनिक शोधों व सम्प्रदाय के परवर्ती ग्रंथों से यह अवधि वि.सं. 1625 से 1637 तक की सिद्ध होती है।[41] ऐसी स्थिति में यदि हम यह मान लें कि जब दादूदयाल द्वारा प्रचारित निर्गुणी–भक्ति अपने शिखर पर थी, तब ही अग्रदास ने उक्त संत भेजे थे तो यह समय वि.सं. 1635 के आसपास का ही हो सकता है। ऊपर हमने अग्रदास का निधन वर्ष वि.सं. 1650 अनुमानित किया है जो इसके बाद का है। इस सम्बन्ध में दादूपंथी इतिहास एक बात और कहता है।

दादूदयाल ने जब उक्त चारों संतों की सलाह को सिरे से खारिज कर दिया, तब इन्होंने कहा कि साँभर में हमारे सेवकों का राज्य नहीं है। हम राज्य–बल का प्रयोग नहीं कर सकते। यदि आप आमेर में होते तो हम आपको जबरदस्ती रामावत–वैरागी–साधु बनाकर हमारी कंठी पहना देते।[42] दादूदयाल ने उक्त संतों की चुनौती को स्वीकार कर लिया और संवत् 1637 के प्रारम्भ में ही वे आमेर पहुँच गये।[43] आमेर पहुँचने पर अग्रदास ने विक्रम–सम्वत् 1645 के आस–पास पुनः संतों को भेजा, किन्तु दादूदयाल अपनी बात से टस से मस नहीं हुए। अन्ततः खीजकर अग्रदास ने एक कुंडलिया[44] कहा, जिसका भावार्थ है कि बिना वेश व गुरु के दादू ने सारी दुनिया को बिगाड़ डाला। वस्तुतः उक्त दोनों घटनाओं ने अग्रदास को बहुत दूर तक झकझोरा और कुछ वर्षों के उपरान्त उनका साकेत–गमन हो गया। अग्रदास, दादूदयाल का कुछ नहीं बिगाड़ सके, उल्टे उन्होंने अपने एक संत छीतरदास[45] को खो और दिया। छीतरदास साँभर गये थे। वे दादूदयाल की कथनी और करनी से इतना अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने साँभर में ही दादूदयाल का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। अतः पूर्वापर प्रमाणों, घटनाओं और सूचनाओं से यही निर्णीत होता है कि अग्रदास अधिक से अधिक 1650 वि.सं. तक ही जीवित रहे होंगे।

इस सम्बन्ध में एक तथ्य पर विचार कर लेना और आवश्यक है। श्रीनारायणदास 'नाभा' ने अपने गुरु अग्रदास की प्रत्यक्ष आज्ञानुसार ही भक्तमाल का निर्माण किया था।[46] जिस–समय भक्तमाल बनाया गया, उस–समय अग्रदास मौजूद थे। ऊपर विवेचित समयावधि के अनुसार भक्तमाल का निर्माण–प्रारंभकाल वि.सं. 1650 के पश्चात् का किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता, क्योंकि नाभा के स्वात्मकथनानुसार उन्होंने अपना ग्रंथ भक्तमाल गुरु अग्रदास की मौजूदगी में बनाना प्रारंभ कर दिया था। अग्रदास वि.सं. 1650 तक जीवित रहे। अतः भक्तमाल इस–समय के आस–पास बनाना प्रारंभ हुआ और लगभग 1660 में पूर्ण हो गया। मैंने मेरी पुस्तक **'श्रीनारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल एवं उसकी परम्परा में निर्मित अन्य साहित्य'** में अनेक प्रमाणों के

आधार पर सिद्ध किया है। यहाँ कई–एक प्रश्न खड़े होते हैं। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और गंभीर प्रश्न है कि भक्तमाल में कुछ ऐसे भक्तों का विवरण भी मिलता है, जिनका समय वि.सं. 1650 के बाद का है, किन्तु उनके वर्णनों में वर्तमानकालिक क्रियाओं का प्रयोग है। ऐसी स्थिति में भक्तमाल का रचना–समाप्ति–काल कथमपि 1650 वि.सं. सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि आज मिति तक नारायणदास 'नाभा' कृत मूल भक्तमाल की प्रति उनके समय की नहीं मिली है।[47] ऐसी स्थिति में यह कहना सर्वथा असंभव है कि श्रीनारायणदास 'नाभा' ने कितने छंदों का भक्तमाल बनाया और उसमें आगे चलकर कौन–कौन से छंद और जुड़ गये। हमारा दृढ़ विश्वास ही नहीं, पूर्ण निश्चय भी है कि प्रियादास द्वारा टीका होने के पूर्व तक नारायणदास 'नाभा' के मूल भक्तमाल में कुछ ऐसे भक्तों के चरित्र सम्बन्धी छप्पय भी जुड़ गये जो मूल रचना के परवर्ती थे।[48] इस संबंध में मेरी पुस्तक **'निबन्ध–सप्त–सागर'** पढ़ी जा–सकती है, जिसमें मैंने भक्तमाल के सम्बन्ध में गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है और भक्तमाल का कुल ग्रंथाग्र, रचना–काल आदि को सुनिश्चित किया है। अतः हमारा पक्का निश्चय है कि भक्तमाल वि.सं. 1650 से 1660 के बीच की रचना है। कुछ भक्तमालियों का कहना है कि मूल भक्तमाल, माला के मणकों की भाँति 108 छंदों की रचना थी। कालांतर में नारायणदास 'नाभा' ने इसमें और छंद बढ़ा दिये, जिससे परवर्ती भक्त भी इसमें वर्णित हो–गए। इस सम्बन्ध में एक दलील देना और आवश्यक है। नारायणदास 'नाभा' ने जब अपना सूत्रात्मक भक्तमाल[49] लिखा, तब उसकी अन्तर्कथाओं को जानने की जिज्ञासा संतों व भक्तों के मनों मे जागने लगी। कइयों ने नारायणदास से भक्तमाल की कथाएँ सुनना व उसका अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ ने टीकाएँ या विवरण लिखने प्रारंभ कर दिये, किन्तु आज वे टीकाएँ व विवरण अपलब्ध नहीं हैं।[50] प्रियादास की टीका के सामने वे टीकाएँ नहीं टिक सकीं। जैसे आदि शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्र–भाष्य के सामने उनके पूर्ववर्ती भाष्यों की स्थिति हुई। आज उनके नाम मात्र मिलते हैं।[51] वे भाष्य नहीं मिलते। अस्तु!

नारायणदास 'नाभा' के भतीज–शिष्य अनंतदास ने चुने हुए नौ[52] निर्गुणी–संतों की परचइयाँ वि.सं. 1645 में लिखीं जिन्हें दादूपंथी संतों ने तत्काल अपना लिया और उनकी अपने ग्रंथों में प्रतियाँ करने लगे। दादूपंथ के कारण अनंतदास की ये परचइयाँ सुरक्षित रह गईं। अभी तक की खोजों में कबीर की परचई की प्राचीनतम प्रतिलिपि वि. सं. 1693 की मिली है जो दादूपंथी संत द्वारा लिखी गई है।[53]

उक्त सभी मंतव्यों का तात्पर्य इतना ही है कि अनंतदास, नाभादास के पूर्ववर्ती रचनाकार हैं। चूँकि अनंतदास का रचनाकाल वि.सं. 1645 निश्चित है। अतः नारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल का रचनाकाल इससे परवर्ती है।

अनंतदास की गुरु–परम्परा के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने बिना उसकी कृतियों को पढ़े, कुछ का कुछ लिख दिया है। स्व. पुरोहित हरिनारायण शर्मा, विद्याभूषण, डॉ. शुकदेवसिंह[54] व कई अन्यों ने अनंतदास को पीपा का शिष्य या उनकी परम्परा का संत लिखा है जो निरा झूँठ है। दादूपंथ के प्रसिद्ध इतिहासकार व वाणियों के अन्यतम व्याख्याता स्व. सन्त नारायणदासजी ने अनंतदास को दादूपंथी संत[55] लिखा है जो सत्य से कोसों दूर है। डॉ. केदारनाथ द्विवेदी ने कबीर की परचई का रचनाकाल 1657 वि. सं. लिखा है।[56] यह तथ्य अशुद्ध है। वस्तुतः आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्तमाल का रचना–काल 1657 लिखा है।[57] जिसको ही डॉ. द्विवेदी ने कबीर की परचई का रचनाकाल लिख दिया है। अनंतदास ने 9 में से मात्र एक नामदेव की परचई मे ही उसका रचनाकाल वि.सं. 1645 लिखा है।

ऊपर के विवेचन का सारांश अग्रांकित प्रकार से समझ सकते हैं।

अनंतदास रामावत–वैरागी–सम्प्रदाय का सन्त था, जिसकी गुरु–परम्परा रामानन्द→अनंतानंद कृष्णदास 'पयाहारी' अग्रदास विनोदीजी अनंतदास थी। उसका रचना–काल वि.सं. 1645 निश्चित है। अनुमानतः उसका जीवन–काल वि.सं. 1590 से 1690 के मध्य का रहा होगा। इसकी शरीरेण जाति खीची चौहान राजपूत व आश्रम संन्यास था। इसका इष्ट निरंजन–निराकार परमात्मा था। इसने कुल नौ परचइयों की रचना की, जिनको बनाने की प्रेरणा इसको निरंजन–निराकार परमात्मा से मिली। इसने अपनी रचनाएँ लिखने के पूर्व उनमें लिखित सूचनाओं को अनेक लोगों से सुना व सुनकर जाँचा–परखा था। उनको अपनी कृति में तब ही स्थान दिया था, जब वे अनेक स्रोतों से समान रूप में प्रमाणित हो गई थीं। उसने एक भी बात झूठी अथवा मन–घडंत नहीं लिखी है। उसने अनेक संतों, भक्तों, विद्वानों का सत्संग किया था। वह पर्यटन–प्रिय था। अतः घूम–घूमकर उसने तथ्यों का संकलन किया और उनको सही पाने पर ही अपने ग्रन्थों में लिखा। वह कुशल लेखक ही नहीं, कुशल वक्ता भी था तब ही उसने अपनी कृतियों में आवश्यकतानुसार उदाहरणों, कथाओं, प्रसंगों का जगह–जगह हवाला दिया है। उसने प्रबन्धकाव्य न लिखकर यथार्थ तथ्यों को अपनी सीधी–साधी भाषा में खण्डकाव्य–बद्ध कर दिया है। उसका लक्ष्य प्रबन्धकार बनना न होकर यथार्थ चरित्र–चित्रणकर्त्ता बनना था, क्योंकि वह धन कमाने वाला कवि न होकर स्वान्तः सुखाय जनहितार्थ कविता लिखने वाला भक्त हृदय विरक्त संत था।

(2). 2 रचनाएँ

अनंतदास ने कुल नौ परचइयाँ लिखीं, जिनके नाम हैं **(1)** नामदेव **(2)** पीपा **(3)**

कबीर (4) रैदास (5) धन्ना जाट (6) सेऊ–सम्मन (7) अंगद (8) राँका–बाँका और (9) त्रिलोचन। नामदेव की परचई की शुरुआत देखकर ऐसा दृढ़ विश्वास होता है कि अनंतदास ने सर्वप्रथम इसी परचई को लिखा होगा। पंजाबी–भाषा के आदि–कवि बाबा शेख फरीदुद्दीन गंज–ए–शकर की परचई में भी अनंतदास की ही छाप[58] (भणिता) मिलती है, किन्तु वह अनंतदास की कृति नहीं है, क्योंकि इस परचई का प्रारम्भ रामचरितमानस के बालकांड के मंगलाचरण के सोरठे से होता है। अनंतदास स्वयं समर्थ रचनाकार था। वह क्यों रामचरितमानस के सोरठे को चुराकर अपनी कृति में स्थान देता। वैसे भी, इस परचई में राजस्थानी–भाषा का प्रभाव अपेक्षाकृत ज्यादा है। स्थान–स्थान पर विषय की अस्पष्टता इसे किसी अन्य की कृति सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। इसके विपरीत अनंतदास की अन्य सभी परचइयाँ इस दोष से ग्रसित नहीं हैं। परिणामस्वरूप हम कह सकते हैं कि अनंतदास ने कुल 9 परचइयाँ ही लिखीं। ये सभी निर्गुणी–धारा के संत हैं। अनंतदास का उपास्य भी निर्गुण–निराकार परमात्मा ही था। अतः उसने अपने सिद्धांतानुकूल भक्ति करने वाले संतों की परचइयाँ लिखकर अपने कर्त्तव्य का सफल निर्वहन किया है। कहने को सूफी भी मूर्तिपूजक नहीं होते, किन्तु मज़ारों पर फूल चढ़ाना, अगरबत्ती, धूप आदि लगाना मूर्तिपूजा के समान ही कहा जा सकता है। समाधियाँ बनाने व उनको पूजने की परम्पराएँ भारत को सूफियों की ही देन है। भारत में अनेक ऋषि–महर्षि, मुनि–महात्मा हुए, किन्तु उनकी समाधियाँ नहीं मिलतीं। जिनकी मिलती हैं वे सभी सूफियों के भारत–आगमन–काल की परवर्ती हैं। इसी–प्रकार वैदिककाल में मूर्तिपूजा का प्रचलन भारत में नहीं था। सन्त रज्जब के अनुसार मूर्तिपूजा का प्रारम्भ जैनों के द्वारा हुआ। अस्तु; कहने का तात्पर्य इतना ही है कि सेऊ–सम्मन पाटन (गुजरात) और शेख फरीद पंजाब–प्रदेश के थे, किन्तु अनंतदास ने परचई लिखी केवल सेऊ–सम्मन की ही, शेख फरीद की नहीं। वैसे, सेऊ–सम्मन की परचई का सूक्ष्मतः अध्ययन करने पर इसकी भाषा भी राजस्थानी–भाषा की उपभाषा मेवाड़ी के अधिक नज़दीक लगती है, जिससे इसकी रचना, अनंतदास ने ही की होगी, संदेहास्पद लगता है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी उतनी प्राचीन नहीं मिलतीं, जितनी कबीर, रैदास, पीपा, नामदेव व त्रिलोचन आदि की मिलती हैं।

हमने अनंतदास की आलोच्य परचई का चार प्रतियों के पाठों से सम्पादन किया है, जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है। इन चार के अतिरिक्त मेरे निजी संग्रह में और भी कई हस्तलेख इस परचई के हैं, जिनका आगे विवरण मात्र दिया जा रहा है। उनसे पाठान्तरों का संग्रह नहीं किया गया है। एक तो ये प्रतियाँ अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। दूसरे, इनके पाठों मे फर्क तो है ही, छंद संख्याओं मे भी पर्याप्त भिन्नता है। अतः मुझे ऐसा लगा कि इनके लिपिकारों ने अपनी मेधानुसार पाठों में हेर–फेर किया है।

जयपुर राजघराने के सिटी पैलेस में सुरक्षित चार हस्तलिखित ग्रन्थों में अनंतदास की परचइयाँ हैं। मैंने उनमें से तीन ग्रंथों को काम में लिया है। उक्त तीन तथा एक दादू महाविद्यालय की प्रति इस–प्रकार मेरे द्वारा उपयोग में ली गई चारों प्रतियों का विवरण निम्नप्रकार है।

(2). 3 आधार–हस्तप्रति

इसका क्रमांक **1843** है। इसमें कबीर, नामदेव, रैदास, त्रिलोचन व पीपा नामक पाँच भक्तों की परचइयाँ हैं। इसके अन्तिम 89वें पृष्ठ पर पुष्पिका इस प्रकार मिलती है लीखितं जगजीवनिदासेन वैष्णु :।। आंबावती मधे।। वाचै ताकौ जै श्रीसीताराम सहाई ।। संवत 1722 चेत मासे सुकल पछे तीथ द्वादस्यं ।। श्री राधेकृष्ण जयति ।। श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री ।। पृष्ठ 1 से 15 तक कबीर, 15 से 17 तक नामदेव, 17 से 32 तक रैदास, 32 से 34 तक त्रिलोचन व 34 से 89 तक पीपा की परचइयाँ हैं। हस्तलेख अच्छा है। काली स्याही व लाल हींगलू का प्रयोग यथास्थान किया गया है। लिपिकार जगजीवनदास नामक वैष्णव साधु है। हमने इसको आधार–प्रति मानकर इसका पाठ मूल में दिया है।

सिटी पैलेस, जयपुर का **ग्रंथांक 3321**, इसमें कबीर, रैदास, नामदेव, त्रिलोचन और पीपा 5 की परचइयों का संकलन है। इसमें दो जगहों पर पुष्पिकाएँ हैं। पृष्ठ 22 पर जहाँ कबीर की परचई समाप्त हुई है, लिखा हुआ है।। 'श्री सम्वत् 1744 वर्षे फागुण सुदि 15 भौमे लिखतं ।। श्रीः।। ग्रंथ श्लोक 2006।। श्री सारणेश्वर प्रसादात् ।।' इसके पश्चात् रैदास की परचई पुनः पृष्ठ संख्या 1 से प्रारंभ होकर 19 पर पूर्ण होती है। वहाँ लिखा है– 'इतिश्री रैदासजी की परचई संपूरण समाप्तं।। छ।। चैत्र वदि 8 गुरौ।।' पृष्ठ 57 पर पीपा की परचई समाप्त होती है, जहाँ लिखा है 'संवत 1744 वर्षे शाके 1610 प्रवर्तमाने फाल्गुन मासे शुक्ल पक्षे षष्टी तिथौ शनिवासरे।। श्री सीरोही नगर मध्ये।। महाराजाधिराज महाराज श्रीविरीसालजी विजयं राज्ये। भटारिक श्रीनेताजी चिरंजीवी जयोस्तु। तत्शिष्य भगवान लिखंत।। श्रीसारणेश्वर प्रसादात। श्रीरस्तु। शुभंभवतु 'या दृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखिता मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ।।1।। श्री जयोस्तु ।। श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री।। ग्रंथ श्लोक 740 श्री श्री श्री श्री।।

लिपि अच्छी है। इस प्रति में अनेक स्थानों पर पाठ अधिक भी मिला है तो पाठान्तर भी इसमें ही अधिक मिले हैं। परचइयाँ समाप्त होने पर कुछ पद भी इस गुटके में हैं। मीरां का एक प्रसिद्ध पद 'गोविन्दा सूँ प्रीत करत तब ते काहे न अटकी' भी इसमें मिला है। जिस पृष्ठ पर यह लिखा हुआ है उस पर पृष्ठ संख्या नहीं है।

सिटी पैलेस जयपुर का **ग्रंथांक 957**; इसमें केवल रैदास की परचई है। इसका पाठ पृष्ठ 1 से प्रारम्भ होकर 13 तक जाता है। यहीं लिपिकार की पुष्पिका है। 'संवत 1719 मीती अषाढ़मासे लीखतु मयाराम राम राम राम राम रा' यहाँ पृष्ठ पूरा हो जाता है। इसके पृष्ठभाग पर अग्रदास द्वारा रचित ध्रुवचरित्र है। हस्तलेख अच्छा नहीं है, किन्तु पृष्ठ 14 से हस्तलेख अच्छा मिलने लगता है। यद्यपि रैदास की परचइयों की ज्ञात प्रतियों में यह प्रचीनतम है, किन्तु इसमें लेखन सम्बन्धी अशुद्धियाँ ज्यादा हैं। लिखावट अच्छी नहीं है। इसी कारण मैंने 1722 की प्रति को आधार प्रति बनाया है।

दादू महाविद्यालय की हस्तलिखित प्रति जिसका लेखन–काल वैशाख शुक्ला द्वितीया, बुधवार **वि.सं. 1733** है। इसका लेखक नरहरिदास दादूपंथी संत है, जिसने पनावणा में इस पंच–वाणी संज्ञक ग्रन्थ को लिखा है। इसमें कुल 32 संतों की रचनाएँ हैं। आकार 18" 8" है। प्रति पृष्ठ 37 पंक्तियाँ हैं। अक्षर स्पष्ट, सुंदर व पर्याप्त बड़े हैं। इसमें नामदेव, त्रिलोचन, अंगद, रैदास, कबीर व पीपा छः संतों की परचइयाँ हैं।

हमारा आलोच्य पाठ–सम्पादन व पाठान्तर–सम्पादन उक्त चारों प्रतियों के आधार पर ही है। इनके अतिरिक्त जिन प्रतियों को मैंने देखा, पढ़ा और जिनकी असल या फोटोकॉपी मेरे पास हैं, उनका विवरण निम्नप्रकार है।

(2). 4 अन्य हस्तलेख सिटी पैलेस जयपुर का **ग्रंथांक 2987**; इसमें तीन जगह पुष्पिकाएँ हैं। गुटके के अंत में लिखा है 'संमत 1781 का वैशाख वदि पाचै वार विस्पतिवार लिखतं साध चेतनरामजी को सिख केसौदास।' केटलॉग में इसे 1781 में लिपिकृत प्रति ही लिख रखा है। रैदास की परची पृष्ठ 1 से प्रारम्भ होकर 12 पर पूरी हुई है; लिखा है 'संवत 1767 वरषे काती वदि 10 सुकरवार ने संपूरण समाप्ता ।।' पीपा की परचई पृष्ठ 1 से प्रारम्भ होकर 43 पर पूरी होती है; वहाँ लिखा है 'इतिश्री पीपाजी की परचई सम्पूर्ण समापता। लिखतं गंगाराम निरंजनी श्रीस्वामीजी को दास जीकौ सिख लिखायतं सहजरामजी नागा श्री स्वामीजी हाथीरामजी को सिष संवत 1773 का वरषे आसोज सुदि दोइज 2 वृहसपतिवार ने संपूरण समापता करि राखी जो कोई या ग्रंथ कूँ वाचै सुणै सीखै ताको राम राम छै जी'।

मेरे निजी संग्रह की पुस्तक, जो सन्त मानदास रामस्नेही द्वारा धार (म.प्र.) रामद्वारा में माघ सुदि पंचमी, शुक्रवार वि.सं. 1869 को लिखकर पूर्ण की गई है। इसमें पृष्ठ 290 से धंना, पृष्ठ 291 (आ) से त्रिलोचन, पृष्ठ 292 (आ) से कबीर, पृष्ठ 299 से नामदेव, पृष्ठ 305 से रैदास, पृष्ठ 312 (आ) से अंगद, पृष्ठ 315 (आ) से पीपा की परचई प्रारम्भ होती हैं। पृष्ठ 338 (आ) पर दत–गोरख–सम्वाद, पृष्ठ 340 (आ) से

गोरख–कबीर–गोष्ठी, पृष्ठ 342 (आ) से कबीर– रैदास–गोष्ठी प्रारम्भ होती हैं। इस पुस्तक की रैदास की परचई में 12 अध्यायों के स्थान पर 15 अध्याय व 255 छंद हैं। विश्रामानुसार छंद संख्या अग्रांकित प्रकार हैं (1)15; (2)17; (3)15; (4)16; (5)18; (6)19; (7)17; (8)18; (9)16; (10)19; (11)12; (12)12; (13)21; (14)11; (15) 29; कुल 255 छंद। छंदों व अध्यायों की संख्या में काफी बड़ा अन्तर होने के उपरान्त भी कथानकों में कोई अन्तर नहीं है। मात्र विषय को स्पष्टतर बनाने के लिए कुछ सामग्री यत्र–तत्र बढ़ी है, जिससे हमारी आधार प्रति के छंदों और इसके छंदों में 38 का अंतर आ–गया है।

मेरे निजी संग्रह का छोटा गुटका जिसको सन्त दुर्लभराम रामस्नेही ने गोविन्दगढ़ में माघ सुदि 8, विक्रम सम्वत् 1903 को लिखा है। इसमें फूलीबाई की परचई 228 (आ) से, कबीर की परचई पृष्ठ 235 से, रैदास की परचई पृष्ठ 261 से, अंगद की परचई पृष्ठ 285 से प्रारंभ होकर 298 तक है। इसमें 836 पदों व अनेक छोटे–छोटे ग्रंथों का संकलन भी है। मीरां के 98 पदों का संकलन इसमें है। रैदास की परचई में 12 अध्याय व 220 छंद हैं। विश्रामानुसार विवरण अग्रांकित प्रकार से है (1)16; (2)17; (3)16; (4)17; (5)18; (6)21; (7)19; (8)17; (9)30; (10)12; (11)21; (12)16;। ऊपर उल्लिखित फूलीबाई की परचई टालनपुर (मारवाड़) के सन्त सुखसारण की कृति है। संत सुखसारण का समय 1843 से 1919 वि.सं. तक का है।

निरंजनी–सम्प्रदाय की परम्परा में लिखी बड़ी पुस्तक। इसके लिपिकार निरंजनी संत रामपरतापदास हैं। इनके गुरु का नाम कुस्यालीदासजी, इनके गुरु का नाम रामचन्द्रदास और इनके गुरु का नाम निर्भयराम है। यह पुस्तक आसोप नामक गाँव में आश्विन मास, शुक्ल पक्ष, चतुर्दशी तिथि, गुरुवार को सन्त रामपरतापदास द्वारा लिखित है। इसमें नामदेव, कबीर, रैदास और सेऊ–संमन की परचई हैं। पुस्तक का वेष्टन टूट गया है। शुरु तथा अन्त के 20–25 पृष्ठ फट रहे हैं। सिलाई भी टूट गई है। अन्तिम लगभग 75 पृष्ठों के दाहिने कोने चूहों द्वारा कुतरे हुए हैं, जिसके कारण पृष्ठ संख्या नहीं है। किसी–किसी कोने का पाठ भी खंडित हो गया है। यह पुस्तक मुझे चरणदासी–सम्प्रदाय के विरक्त वैष्णव सन्त श्री नवलमाधुरीशरणजी की कृपा से देखने, पढ़ने को मिली है। इस पुस्तक में प्राप्त रैदास–परचई का विवरण इस–प्रकार है– विश्राम (1)16; (2)16; (3)16; (4)17; (5)18; (6)20; (7)18; (8)17; (9)16; (10)14; (11)12; (12)21; (13)16; कुल विश्राम 13, कुल छंद 217 लिपिकार ने कुल जोड़ 216 लिखा है। अक्षर पर्याप्त बड़े, सुपाठ्य और सुंदर हैं। पुस्तक में कुल 670x2=1340 पृष्ठ रहे होंगे, ऐसा मध्य की पृष्ठ संख्या से अनुमान होता है।

डॉ. शुकदेवसिंह, बनारस की 'रैदास–वानी', प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नामक पुस्तक के पृष्ठ 256 से 279 तक रैदास की परचई प्रकाशित है। उन्होंने किस प्रति से पाठ सम्पादित किया है, भूमिका में कुछ भी उल्लिखित नहीं है, किन्तु उन्होंने भूमिका में परचई की प्रथम पंक्ति का तुलनात्मक पाठ 4 प्रतियों के आधार पर दिया है। पहली प्रति उन्होंने दादू महाविद्यालय की सन् 1645 में लिखित बताई है। दूसरी प्रति भण्डारकर ओरियंटल–रिसर्च–इंस्टीट्यूट की 536 / 1895–98 बताई है। तीसरी दादू महाविद्यालय की ही सन् 1843 की प्रति बताई है और चौथी इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन की MSS हिन्दी A–12 बतायी है। जिस प्रति को डॉ. शुकदेवसिंह ने सन् 1645 की प्रति लिखी है, वह वि.सं. 1733 की प्रति है। इसका ईस्वी सन् 1676 बनता है। लुवेण, बेल्जियम के डॉ. विनान्त एम. कलेवर्ट ने अपनी पुस्तक 'दि हेजियोग्राफीज ऑफ अनंतदास, दि भक्ति प्रोयट्स ऑफ इण्डिया', कर्जन प्रेस, सर्रे, सन् 2000 ईस्वी में इसी पुस्तक से मूल पाठ प्रस्तुत किया है। दादू महाविद्यालय में अनंतदास की परचइयों की इस पुस्तक से और कोई प्राचीन पुस्तक नहीं है। अतः डॉ. शुकदेवसिंह द्वारा लिखा गया सन् सर्वथा गलत है। यही नहीं, डॉ. सिंह ने अनेक हस्तलिखित पुस्तकों के अपनी पुस्तक में गलत विवरण दिये हैं। डॉ. सिंह ने सन् 1582 में लिखित फतेहपुर की पुस्तक और सिटी–पैलेस, जयपुर की सन् 1582 की पुस्तक को पृथक्–पृथक् उक्त पुस्तक के पृष्ठ 21 पर लिखा है, किन्तु दोनों पुस्तकें एक हैं 'सूरदासजी का पद' नामक शीर्षक से सिटी–पैलेस से प्रकाशित है। यह पुस्तक सन् 1582, सं. 1639 में कछावा नरसिंहदास के पुत्र कुँवर छीतरजी के लिए लिखी गई थी। इसमें कुल 441 पद हैं। डॉ. सिंह ने संभवतः इस प्रकाशित पुस्तक को देखा तक नहीं, मात्र अपने विदेशी मित्रों व शिष्यों से सुनकर उक्त पुस्तक के बारे में लिख मारा, जिसके कारण उक्त और उक्त जैसी अनेक भूलें हो गईं।

हाँ, जिस प्रथम पंक्ति की तुलना उन्होंने उक्त 4 प्रतियों में उपलब्ध पाठ के आधार पर की है, उसके आधार पर यह अनुमान होता है कि उन्होंने परचई का पाठ इण्डिया–ऑफिस–लाइब्रेरी, लंदन के MSS हिन्दी A–12 के आधार पर गृहीत किया है। उन्होंने पाठान्तर नहीं दिये हैं। अतः पक्का विश्वास होता है कि उन्होंने मात्र इस एक प्रति के आधार पर ही पाठ प्रस्तुत किया है। इसमें कुल 13 विश्राम और 220 दोहा–चौपाई हैं। इस पुस्तक के सम्बन्ध में एक बात और लिखना जरूरी है। ऊपर जिस भण्डारकर–ओरियन्टल–रिसर्च–इंस्टीट्यूट की पुस्तक की चर्चा हुई है, उसके आधार पर श्रीमती पद्मावती शबनम ने अपनी पुस्तक 'सन्त रैदास' में पाठ प्रस्तुत किया है। अतः ऐसा लगता है, डॉ. शुकदेवसिंह ने मात्र एक इण्डिया–ऑफिस–लाइब्रेरी की

उस एक प्रति से पाठ प्रस्तुत कर दिया है जिसको उनके विदेशी मित्रों और शिष्यों ने उनको लाकर दिया। अन्यथा उन्होंने अन्य तीनों प्रतियों के मूलों को देखा तक नहीं। मात्र प्रकाशित पाठों को ही देखा था। इसीलिये उन्होंने पाठान्तर नहीं दिये। भूलें भी उनसे इसीलिये हुई हैं।

श्रीमती पद्मावती 'शबनम' झुनझुनवाला की एक पुस्तक **'सन्त रैदास'** के नाम से विश्वविद्यालय प्रकाशन, बनारस से प्रकाशित हुई है, उसके अन्त में 'रैदास की परचई' भण्डारकर–ओरियण्टल–रिसर्च–इंस्टीट्यूट, पुणे की हस्तलिखित पुस्तक 536/1895–98 के आधार पर प्रस्तुत की गई है। इसमें 12 विश्राम व 202 छंद हैं। 8 विश्रामों में दो–दो चरणों वाली 8 चौपाइयाँ और हैं, जिनको संख्याएँ लगाते समय गिना नहीं गया है। इनको जोड़ लेने पर कुल छंद संख्या 210 हो जाती है। पाठ प्रस्तुत करते समय अनेक स्थानों पर पाठ गलत लिखा गया है। यथा छंदांक 45 पंक्ति दूसरी 'सुख सागर हरि सरण है, गा रैदास अनंत।।' जबकि सही पाठ है 'सुख सागर हरि सरण है, गावै दास अनन्त।।' ऐसी कितनी ही भूलें मात्र परचई के पाठ में ही नहीं, पदों के मूल पाठों में भी भारी पड़ी हैं। डॉ. शुकदेव सिंहजी की उक्त पुस्तक भी इसी–प्रकार की अनेक अशुद्धियों का पिटारा है। पद–पाठ–प्रस्तुतिकरण के समय इनकी समीक्षा विशेष रूप से प्रस्तुत की जायेगी।

दादू–आचार्य–संस्कृत–महाविद्यालय, मोतीडूंगरी रोड़ जयपुर की पंचवाणी पुस्तक जो आश्विन मास **विक्रमसम्वत् 1844** में लिखित है। इसमें कुल 5 परचइयों का संकलन है। पृष्ठ 403 से नामदेव की, 405 से कबीर की, पृष्ठ 414 (ब) से रैदास की, पृष्ठ 423 (ब) से त्रिलोचन की व पृष्ठ 425 (ब) से पीपा की परचई प्रारम्भ होकर पृष्ठ 453 पर समाप्त होती है। आलोच्य रैदास–परचई में कुल 12 विश्राम व 216 छंद हैं। लिपिकार ने पहले विश्राम तक संख्याएँ 1 से 16 तक लगाई हैं। दूसरे विश्राम से सख्याएँ पुनः एक से प्रारम्भ होकर अंत में 200 पर जाकर खत्म होती हैं। यहीं एक साथ कुल संख्या 216 व कुल विश्राम संख्या 12 लिखी मिलती है। लिपि स्पष्ट, सुंदर व पठनीय है। इसकी श्याम–श्वेत छायाप्रति मेरे पास उपलब्ध है।

राजस्थान–प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जयपुर का **ग्रंथांक 3**, इसको संतोषदास नामक दादूपंथी संत ने दिल्ली के अकबरगंज में आश्विन कृष्ण 12, रविवार, विक्रम सम्वत् 1858 को लिखकर पूर्ण किया है। यह भी दादूवाणी की पुस्तक है, जिसमें दादूवाणी, दादू–जन्मलीला–परचई व अनंतदास की 5 परचइयाँ हैं। संतोषदास के रामकृष्ण, रामकृष्ण के मगनीराम व मगनीराम के कल्याणदास गुरु थे। इसमें दादूजी

की परचई पृष्ठ 453 पर, त्रिलोचन की परचई 456 पर, पीपा की परचई 528 पर, नामदेव की परचई 532 पर, कबीर की परचई 553 पर व रैदास की 573 पर समाप्त होती है। रैदास की परचई में 12 विश्राम व 216 छंद हैं। इसकी श्याम–श्वेत छाया–प्रति मेरे पास है।

रैण, रामस्नेही–सम्प्रदायान्तर्गत मेड़ता देवल की बडी पुस्तक में अनन्तदास कृत पूरी परचियाँ हैं। भागवत का एकादशस्कंध, प्रहलादचरित्र, शुक–रम्भा– सम्वाद, नासकेत–पुराण व अन्यान्य वाणियों का संकलन भी इसमें है। न इसका लेखनकाल, न लेखक का ही इसमें उल्लेख मिलता है। पुस्तक के कागज, लिखावट आदि से ज्ञात होता है कि यह विक्रम की 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में लिखी गई होगी। इसमें रैदास की परचई पृष्ठ 149 से प्रारम्भ होकर 159 तक में लिखित है। धार रामद्वारे में मानदास द्वारा लिखित पुस्तक के अनुसार इसमें भी 15 अध्याय किन्तु छंद 250 हैं। धार की पुस्तक में 255 छंद हैं।

मुझे ऐसा लगता है कि दादूपंथ व वैष्णव–सम्प्रदायों की पुस्तकों में मिलीं रैदास की परचइयों में लिपिकारीय पाठान्तर तो हैं, किन्तु घटत–बढ़त ज्यादा नहीं है, जबकि रैण रामस्नेही–सम्प्रदाय की पुस्तकों में छंद व अध्याय दोनों ही ज्यादा मिलते हैं। वैष्णव व दादूपंथी पुस्तकों में विश्रामों की संख्या 12 व छंदों की संख्या 216 से लेकर 220 तक है। हो सकता है, किसी से कोई पंक्ति छूट गई हो, किसी से न छूटी हो। इस–कारण कुल संख्याएँ 216 से 220 के बीच मिल रही हैं। ऐसा भी हो सकता है कि कहीं–कहीं संख्याएँ लगाने में भूल हो–गई हो। अस्तु!

इस पुस्तक में विश्रामानुसार छन्द संख्याएँ इस–प्रकार हैं (1)15; (2)17; (3)15; (4)16; (5)19; (6)19; (7)16; (8)18; (9)16; (10)18; (11)13; (12)11; (13)17; (14) 11; (15)29;। कुल संख्या 15–250।

जैसा ऊपर कहा गया है, छंदों की बढ़त रैण, रामस्नेही–सम्प्रदाय की पुस्तकों में ही मिली है। रैण का रामस्नेही–सम्प्रदाय 19 वीं शताब्दी में अस्तित्व में आया जो काफी परवर्ती है। ये बढ़े हुए छंद विषय को स्पष्ट ही करते है, न कोई इनसे नई घटना जुड़ती है और न इनसे कोई घटती है। इनसे किसी महत्त्वपूर्ण घटना में कोई परिवर्तन भी नहीं हुआ है। वर्तमान में यह मूल पुस्तक मेरे पास उपलब्ध है।

डॉ. गोविन्द रजनीश की **'रैदास–रचनावली'** नामक पुस्तक का सन् 2008 में प्रकाशन हुआ है, जिसके चौथे परिशिष्ट में 'रैदास–परचई' का प्रकाशन हुआ है। डॉ.

रजनीश ने लिखा है कि उन्होंने 'विक्रम सम्वत् 1726 आसौज सुदि सुकल पक्षि 2 गुरवार' को लिखी पुस्तक से इसका पाठ सम्पादित किया है। सम्पादक ने पाठ का प्रस्तुतिकरण मूलानुसार नहीं किया है। वस्तुतः अनंतदास ने प्रत्येक विश्राम का प्रारम्भ चौपाइयों से करके अन्त दोहों से किया है। रामचरितमानस में भी यही रीति व्यवहृत हुई है, किन्तु डॉ. रजनीश ने दोहों की संख्या पृथक् लगाकर, न उनको समाप्त होने वाले विश्राम में परिगणित किया है और न प्रारम्भ होने वाले विश्राम में शामिल किया है। अन्यान्य सभी प्रतियों में दोहों को समाप्त होने वाले विश्राम में सम्मिलित किया गया है। डॉ. रजनीश की मैंने 2–3 सम्पादित पुस्तकें देखी हैं। वे कभी भी पाठ को मूलानुसार प्रस्तुत नहीं करते। उनका ऐसा करना पाठालोचन के मान्य सिद्धान्तों का खुलमखुल्ला उलंघन है। इसी का परिणाम लगता है कि डॉ. रजनीश ने प्रस्तुत सम्पादन में 9 विश्राम व कुल 1469=155 छंद प्रस्तुत किये हैं। 9वें विश्राम के छंदांक 15 तक का पाठ व छंद संख्या अन्यान्य प्रतियों के करीब–करीब समान है। आगे की 3 चौपाइयाँ अन्यान्य प्रतियों के अन्तिम 12वें विश्राम की 3 चौपाइयों से सामान्य हेरफेरों के साथ समान हैं। इस–प्रकार इनसे 3 विश्रामों का पाठ छूट गया है। पदच्छेद व पदान्वय की अनेक भूलें हैं। उदाहरणार्थ ''ऊँचे बस्तर सुंदर गीता। मुख तैं निकसै सुन्दर बाता ।।'' 7/17 ।। यहाँ 'गीता' पाठ से अर्थ निकलता ही नहीं। प्रसंगानुसार 'गीता' के स्थान पर 'गाता' पाठ होना चाहिये। अन्त्यानुप्रासानुसार भी पाठ 'गाता' ही होना चाहिये। अन्यान्य प्रतियों में 'गाता' पाठ ही है। बस्तर की जगह बसतर पाठ होने से ही छंद में नाद सौंदर्य उत्पन्न होता है। शब्दों का तत्समीकरण करके कविता के नाद सौंदर्य को बिगाड़ना नहीं चाहिये। ऐसे एक नहीं, अनेक उदाहरण हैं। जोधपुर के **डॉ. विक्रमसिंह राठौड़** ने सन् 2005 में **'संतों एवं भक्तों का जीवन–चरित्र'** नामक पुस्तक प्रकाशित करवायी है, जिसमें कुल 15 परचइयों का प्रकाशन हुआ है, जिनमें से 9 अनंतदास–रचित व 6 सुखसारण–रचित हैं। 9 में से एक शेख फरीद का परचई भी है, जिसमें भणिता तो अनंतदास की है, किन्तु यह कृति कभी भी अनंतदास कृत नहीं हो सकती, क्योंकि इसका पहला छंद रामचरितमानस के बालकाण्ड के मंगलाचरण का सोरठा है

वंदू गुर पद कंज, क्रिपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तुम पुंज, जासू वचन रवि कर निकरि ।।

अनंतदास स्वयं सफल रचनाकार हैं। वे क्योंकर रामचरितमानस के सोरठे को उठाकर अपने ग्रंथ में रखते। इसका रचनाशिल्प भी अनंतदास की अन्य परचइयों से मेल नहीं खाता। अनंतदास ने अपनी सारी परचइयाँ चौपाइयों से प्रारम्भ की हैं, किन्तु यह परचई तीन सोरठों से प्रारम्भ होती है। इसकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव बहुत

अधिक है। विषय की अस्पष्टता मूल कथ्य को स्पष्ट ही होने नहीं देती, जबकि अन्य परचइयों में ऐसा नहीं है। डॉ. राठौड़ ने सुखसारण की छओं परचइयों का ग्रंथांक 7146 व अनंतदास की परचइयों का ग्रंथांक 95, 154, 7146 व 4471 के आधार पर सम्पादन किया है। पाठान्तर किसी में भी नहीं है, क्योंकि डॉ. राठौड़ ने हर एक परचई का एक–एक हस्तलिखित ग्रंथ के आधार पर ही सम्पादन किया है। इन प्रतियों का कोई विवरण भी पुस्तक में नहीं है। वैसे, ये सभी ग्रंथ राजस्थानी–शोध–संस्थान, चौपासनी के हैं। आलोच्य रैदास–परचई पृष्ठ 165 से प्रारम्भ होकर पृष्ठ 187 पर समाप्त होती है। विश्रामों की संख्या 14 व कुल छंदों की संख्या 235 है। लगता है, यह हस्तलिखित ग्रंथ रैण के रामस्नेही–सम्प्रदाय के संतों द्वारा लिखा गया होगा। इस कारण इसमें 14 अध्याय व 235 छंद हैं। अन्य दो ग्रंथ जिनका विवेचन ऊपर आया है, में 15 विश्राम व 250 व 255 छंद हैं। पाठ के सम्पादन में डॉ. राठौड़ से भी भूलें हुई हैं, किन्तु उतनी नहीं जितनी भूलें डॉ. शुकदेवसिंह, पद्मावती झुनझुनवाला व डॉ. गोविन्द रजनीश से हुई हैं। उदाहरणार्थ 'भगत कहै धिन धिन यो भाऊ। जो तुम कहौ समेलै आऊँ ।।10/3।। डॉ. राठौड़ ने 'समेलै' का अर्थ 'साथ सहित' किया है, जो सर्वथा गलत है। यदि यह अर्थ किसी राजस्थानेतर प्रांत के विद्वान् ने किया होता तो बात समझ में आ सकती थी, क्योंकि 'सामेला' शब्द राजस्थानी का है, किन्तु डॉ. राठौड़ जो राजस्थान के हैं के द्वारा उक्त अर्थ प्रस्तुत किया जाना सर्वथा चिंतनीय है। सामेला का अर्थ होता है, मेजमान द्वारा मेहमान को, गाँव में घुसने के पूर्व ही उसके सामने जाकर उसको आदर–सत्कार सहित, ढोल–बाजे बजाते हुए लाना। इसको 'साम्हेला करना' कहा जाता है। ऐसी अनेक भूलें हैं।

परचइयों पर सर्वप्रथम **डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित** ने लिखा था। उनका प्रबन्ध **'परिचयी–साहित्य'** के नाम से सन् 1957 में लखनऊ विश्वविद्यालय के विश्वविद्यालय–हिन्दी–प्रकाशन–विभाग द्वारा प्रकाशित किया गया था। इसमें मूल परचइयों का तो प्रकाशन नहीं हुआ है, किन्तु उनके व उनके रचनाकारों के बारे में जानकारी दी गई है। डॉ. दीक्षित ने कुल 15 परचइयों का अध्ययन प्रस्तुत किया है, जिनमें से 7 अनंतदास कृत व शेष अन्यों की कृतियाँ हैं। अनंतदास की परचइयों में से सेऊ–संमन व अंगद की परचई का अध्ययन इस पुस्तक में नहीं है। रैदास की परचई का अध्ययन डॉ. दीक्षित ने तीन हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर प्रस्तुत किया है, किन्तु इनमें से एक में भी लिपिकार का नाम, लिपिस्थान व लिपिकाल का उल्लेख नहीं है। उन्होंने अपने कथनों की पुष्टि में कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं जिनको पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनको मिली प्रतियाँ काफी परवर्तीकालीन हैं, जिनमें काफी प्रक्षिप्तांश जुड़ गया

है। उदाहरणार्थ **'सदगुरु मोही आग्या कीनी। तासो मैं यह गरंथ करि दीनी ।।'** पृष्ठ 40, यह पंक्ति मुझे रैदास–परचई की किसी भी हस्तप्रति में नहीं मिली। वस्तुतः अनंतदास ने इन परचइयों की रचना निरंजन–निराकार परमात्मा की प्रेरणा से की जैसाकि उसका स्वयं का लेख है 'अन्तरजामी आग्या दीन्ही। दास अनंत कथा कहि लीन्ही।।' नामदेव परची, विश्राम एक, छंदांक दो। डॉ. दीक्षित ने परचइयों के छन्दात्मक, विश्रामात्मक कलेवर के बारे में कोई चर्चा नहीं की है। अतः यहाँ इससे अधिक इस पुस्तक के बारे में लिखना अपेक्षित नहीं है।

'भक्तरत्नावली' के नाम से अनंतदास की 6 परचइयों का प्रकाशन **डॉ. वेणीप्रसाद शर्मा** ने करवाया था। डॉ. शर्मा पाठालोचन के अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने डॉ. माताप्रसाद गुप्त जैसे तत्कालीन पाठालोचन–मर्मज्ञ के निर्देशन में लघु पृथ्वीराजरासौ का सम्पादन किया था, किन्तु अनंतदास की परचइयों का सम्पादन करते समय वे अपनी उक्त निष्ठा को बरकरार नहीं रख सके। उन्होंने रैदास–परचई का सम्पादन करते समय मूल–पाठ में कई छंद ऐसे प्रक्षिप्त किये हैं जो न ऊपर विवेचित एक भी हस्तलिखित प्रति में मिले हैं और न प्रकाशित ग्रन्थों में ही मिले हैं। इस विषय की विवेचना करने से पूर्व हम उनके सम्पादन की सामान्य बातें जान–लें। उन्होंने दादू महाविद्यालय के उस ग्रंथ को आधार बनाया है, जिसको पनावणा में नरहरिदास दादूपंथी ने वैशाख शुक्ला द्वितीया, बुधवार, विक्रम सम्वत् 1733 में लिखकर पूर्ण किया है। इसमें कुल 960 पेज (480x2) हैं। इसमें कुल 32 सन्तों की रचनाओं का संग्रह है। उन्होंने पाठान्तर वि.सं. 1852 के पोष कृष्णा एकम्, मंगलवार को कालाडहरा गाँव में जगरामदास दादूपंथी द्वारा लिखी पुस्तक व इण्डिया–आफिस–लाइब्रेरी, लण्डन के ग्रंथांक ए 12/2 के आधार पर प्रस्तुत किये हैं। डॉ. शुकदेवसिंह द्वारा मूल पाठ उक्त लण्डन की प्रति के आधार पर ही प्रस्तुत किया गया है। प्रो. विनान्त एम. कलेवर्ट, लुवेण, बेल्जियम ने भी उक्त वि.सं. 1733 की प्रति से ही मूल पाठ प्रस्तुत किया है। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट है कि डॉ. शर्मा द्वारा प्रस्तुत नरहरिदास के हस्तलेखानुसार व पाठांतर लण्डन प्रति के अनुसार होने चाहिए, किन्तु हैं नहीं, क्योंकि उन्होंने जिन छन्दों को प्रक्षिप्त किया है वे उनके द्वारा आलोचित एक भी प्रति में नहीं हैं। वे छंद या तो उन स्वयं द्वारा बनाकर या किसी अन्य ग्रंथ से उठाकर अनंतदास कृत रैदास की परचई में प्रक्षिप्त कर दिये गये हैं। इन अतिरिक्त अंशों के प्रक्षेप से रैदास की सारी जीवनी ही बदल गई है। अतः इन प्रक्षिप्त अंशों का कोई भी मूल्य नहीं है। प्रक्षिप्त अंशों का विवरण निम्नप्रकार है।

(2). 5 कुछ विशेष तथ्य प्रसंग उस–समय का है जब रैदास झाली रानी के

निमंत्रण पर चित्तौड़[60] (मेवाड़) में आये। रानी ने उनको भोज दिया। उस भोज में ब्राह्मणों को भी निमंत्रित किया गया। ब्राह्मणों ने आपत्ति की कि चर्मकार के भोज में हमको क्यों सम्मिलित किया। हम पवित्र व रैदास अपवित्र है। उसकी छाया मात्र से भी भोजन अपवित्र हो जाता है। फिर उसके साथ बैठकर भोजन कैसे किया जा सकता है? गंभीर विचार–विमर्श के उपरान्त ब्राह्मणों को कच्ची–सामग्री दे दी गई। वे स्वयं ही भोजन बनाने लगे। यहीं अचानक डॉ. शर्मा ने दो छंद जोड़ दिये, जिनकी पूर्वापर संगति यहाँ बैठती ही नहीं

पंदरा सै तिहोतरै बैसाखी। जन दूदा भये चितोरे साखी।
बालि मीरां साथि करि लीन्हा। कुंभ दिवालै महोछा कीन्हा ।।191।।
मीरां भोज परणय भयो, रहै महोछा रंग।
मनि भरि रैदास आसिष दयौ, भये विस्न जन इकरंग ।।192।।

वस्तुतः मेड़ताधीश दूदा वि.सं. 1572 में ही देवलोकवासी[61] हो गये थे। ऐसी स्थिति में दूदा का चित्तौड़ में वि.सं. 1573 में सम्पन्न हुए महोत्सव में सम्मिलित होना कैसे भी संभव नहीं है। दूसरे, इस दोहे के प्रथम चरण से यह साफ स्पष्ट होता है कि मीरां का विवाह मेड़ता में न होकर चित्तौड़ में हुआ। यह तथ्य भी इतिहास–विरुद्ध है। वस्तुतः मीरां का विवाह मेड़ता में ही हुआ था।[62] राजस्थान के राजपूत अपनी बेटी का विवाह बेटे वाले के यहाँ जाकर तबही करते थे, जब उनकी आपसी हैसियत में अत्यधिक अंतर होता था और वे वर–पक्ष की सेवा–सुश्रुषा उनके स्तर के अनुसार कर पाने में असमर्थ होते थे। मेड़ता इतना छोटा राज्य नहीं था कि वह मेवाड़ के राणा की सेवा–सुश्रुषा करने में असमर्थ था। फिर, मीरां के ताऊ राजा बीरमदेव की ससुराल मेवाड़ में (चित्तौड़) महाराणा के यहीं थी।[63] दोनों राज्यों में आपसी वैवाहिक–सम्बन्ध पहले से ही थे।[64] तीसरे, इस दोहे से यह भी संज्ञान में आता है कि भगवान् और जन=भक्त=रैदास इसी समय इकरंग=एकमेक हो गये थे। ऐसी स्थिति में डॉ. शर्मा द्वारा आगे 220 वें छंद के रूप में प्रक्षिप्त दोहा अप्रासंगिक हो जाता है, जिसमें रैदास को 1584 वि.सं. में ब्रह्मलीन होते हुए बताया गया है।[65] वस्तुतः उक्त दोनों छंद और आगे उद्धृत दोहा क्रमांक 220 अनंतदास की रचना ही नहीं हैं। डॉ. शर्मा द्वारा इनको या तो स्वयं बनाकर अनंतदास की परचई में प्रक्षिप्त कर दिये गये हैं या ये किसी अन्य की रचनाएँ हैं, जिन्हें परचई में अनावश्यक पैबंद की भाँति प्रक्षिप्त किया गया है।

पंद्रह सै चउ असी, चीतौरे भई भीर।
जर जर देह कंचन भई, रवि रवि मिल्यौ शरीर ।। 220।।

उन्होंने अपने सम्पादन में कुल 224 छंद प्रस्तुत किये हैं। तीन अधिक छंद ऊपर लिख दिये गये हैं। 4–5 छंद और भी हैं जो अन्यान्य प्रतियों से अधिक हैं, किन्तु उनसे तथ्यात्मक बातों में कोई अंतर नहीं पड़ता। लिखने का आशय इतना ही है कि पाठालोचन के प्रतिष्ठित विद्वान् द्वारा इस–प्रकार का गड़बड़झाला करना किसी भी स्थिति में स्वीकार्य नहीं हो सकता। डॉ. शर्मा, आचार्य पृथिवीसिंह 'आजाद' की संस्तुति पर पंजाबी–विश्वविद्यालय, चंडीगढ़स्थ 'रविदास–चेयर' के चेयरमेन भी बने थे। आचार्य सिंह के आग्रह और वित्तीय सहकार से ही डॉ. वी.पी. शर्मा ने रैदास पर पुस्तकें लिखी थीं। अतः संभवतः डॉ. शर्मा आचार्य आजाद के मंतव्यों से प्रभावित हो गये और उन्होंने मीरांबाई से संबंधित उक्त छंदों को रैदास की परचई में प्रक्षिप्त कर दिया। जिन बातों को, रैदासी–समाज मुँह दर मुँह अपने पर्वजों से सौ–सवा सौ वर्षों से सुनता आ रहा है। अभी हाल ही में डॉ. पृथिवीसिंह 'आजाद' का एक 50 पृष्ठों का शोधालेख छपा है जो लगभग 30 वर्ष पूर्व किसी सेमीनार में पढ़ा गया था। इस आलेख में उक्त तीनों छंदों को कर्मसिंह नामक रैदासी संत की रचनाएँ बता रखी हैं। कर्मसिंह गुरु गोविन्दसिंह के समकालीन व उनके पंज–प्यारों मे से एक धर्मसिंह रैदासी के भाई बताये गये हैं। उक्त लेखानुसार ये दोनों रैदास की पाँचवीं पीढ़ी के उन्हीं के वंशज थे।[67]

उक्त स्थिति में डॉ. शर्मा द्वारा प्रस्तुत पाठ स्वतः ही प्रक्षिप्त सिद्ध हो जाता है।

संदर्भ व टिप्पणियाँ

1. राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, दिल्ली, हरियाणा आदि हिन्दी–भाषी क्षेत्रों में रैदास को रैदास ही लिखा व बोला जाता रहा है। श्रीनारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल व उसकी 'भक्तिरसबोधनी टीका' में सर्वत्र रैदास शब्द ही मिलता है। हाँ, भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी टीका, जो संत बालकरामजी कृत है, में 'रयदास' शब्द का प्रयोग हुआ है। रैदास शब्द रैदासकालीन–भाषा के अनुकूल है, जबकि रयदास अपभ्रंश–भाषा के निकट है। राजस्थान के ही संत साँवतराम ने 'रयदास', संत किशनदास ने 'रविदास' व संत सुखसारण ने 'रविदास' लिखा है, किन्तु बोलचाल में रैदास ही प्रचलित है। अनेक संतों की परचई लिखने वाले राजस्थान निवासी संत अनंतदास ने परचई में 'रैदास' शब्द का ही प्रयोग किया है। दादूपंथी, निरंजनपंथी, रामस्नेही, चरणदासी, जसनाथी, विश्नोई आदि जितने भी राजस्थान के संत–सम्प्रदायों का हस्तलिखित साहित्य है, उसमें सर्वत्र 'रैदास' शब्द ही मिलता है। दादूपंथ की पंचवाणी पुस्तकें, राघवदासजी का भक्तमाल, ब्रह्मदास का भक्तमाल, चैनजी का भक्तमाल, जग्गाजी का भक्तमाल, जैमल चौहान की भक्त–विरदावली जैसे अनेक ग्रंथों में रैदास शब्द ही मिलता है। ब्रजभाषायी भक्तवाणियों में भी रैदास शब्द ही मिलता है। देखें हरिराम व्यास का प्रसिद्ध पद; ध्रुवदास कृत भक्तनामावली आदि–आदि।

2. पंजाब–प्रान्त के मध्यकालीन–भक्तिसाहित्य के सिरमौर व सिखधर्म के परम श्रद्धास्पद गुरु रूप

ग्रन्थसाहिब में 'रैदास' के स्थान पर 'रविदास' शब्द लिखा मिलता है। पंजाब के विद्वानों ने 'रैदास' पर गुरुग्रंथ के संदर्भ से काफी कुछ लिखा है। उन्होंने गुरुग्रंथ का अनुसरण करते हुए 'रैदास' न लिखकर सर्वत्र 'रविदास' ही लिखा है। पंजाब में जिन नामचीन लेखको ने 'रैदास' के ऊपर विपुल मात्रा में लिखा है, उनके नाम हैं– डॉ. वेणीप्रसाद शर्मा, चंडीगढ़; आचार्य पृथिवीसिंह 'आजाद'; डॉ. धर्मपाल सिंहल; काशीनाथ उपाध्याय; डॉ. पदम गुरुचरणसिंह; डॉ. दर्शनसिंह आदि–आदि।

3. मराठी–भाषी–जनता 'रैदास' को 'रोहीदास' के रूप में जानती–पहचानती है। महाराष्ट्र में 'रैदास' 'रोहीदास' कब बने, पता नहीं, किन्तु मराठी–भाषा का प्रथम भक्तमालकार महीपति जिसने अपनी रचनाओं के नाम 'भक्तविजय' व 'भक्त–लीलामृत' आदि अभिधानित किये हैं ने 'रैदास' को 'रोहीदास' ही लिखा है। महीपति का समय सन् 1715 से 1790 तक का है जो नारायणदास 'नाभा' से काफी परिवर्ती है। इसने 'संत–लीलामृत' 1757 में, 'भक्त–विजय' 1762 में, 'कथासारामृत' 1765 में, 'भक्तलीलामृत' 1774 में व अंत में 'संत–विजय' लिखा। ऐसा लगता है, वर्तमानकालीन मराठी–भाषी–संशोधक, लेखक, चिन्तक महीपति का अनुगमन करते हुए 'रैदास' को 'रोहीदास' लिखना ही उचित समझ रहे हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. अशोक प्रभाकर कामत का 'श्रीसन्त रोहीदास' प्रबन्ध देखा जा सकता है। महीपति के ग्रंथों के लिए पढ़ें 'Stories of Indian Saints' by Justin E. Abbott & Pandit N.R. Godbole.

4. भारतीय–प्राचीन–आचार–संहिता मनुस्मृत्यादि में 'दलित–जाति' 'पद–दलित–जाति' जैसे शब्द नहीं मिलते। ये शब्द पश्चिमीय–विद्वानों ने अपने ग्रंथों में प्रयुक्त किये हैं। जिस भगवद्गीता में **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।'** कहा गया है उसी में यह भी कहा गया है **'स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिं।'** कि चार–वर्णों का गुण व कर्मानुसार विभाग भगवान् स्वयं ने किया है किन्तु भगवद्भक्ति के क्षेत्र में ऐसा कोई भी विभाजन मान्य नहीं है। स्त्री, वैश्य, शूद्र कोई भी भगवद्भक्ति करने को स्वतंत्र है और ऐसा भगवद्भक्त मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, इसमें लेशमात्र का भी संदेह नहीं है। काशी और चित्तौड़ के ब्राह्मणों ने सन्त रैदास का उग्र विरोध किया था, किन्तु जब उन्होंने रैदास को पूर्ण भगवद्भक्त जान लिया तब उन्होंने रैदास का विरोध करना छोड़कर उनकी अभ्यर्थना करनी प्रारंभ कर दी थी, जिसका साक्षी रैदास स्वयं का पद है।

जाति–प्रथा का विरोध अँग्रेजों के द्वारा लाई गई जागृति का परिणाम है, ऐसा कहना निरा भ्रम हैं। तमिल–प्रदेश में आलवार और नायन्मार भक्तों ने जाति–प्रथा का उग्र विरोध किया था। उनका यह विरोध 5–6वीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हो गया था। 11वीं शताब्दी में कर्नाटक के बसवेश्वर ने तो जाति–प्रथा का ऐसा घोर विरोध किया कि वहाँ अन्तर्जातीय विवाह हुए। बसवेश्वर के अनुयायियों ने जाति को सिरे से नकारा और अपने आपको शिवशरण कहने लगे। आज कर्नाटक की लगभग 20 प्रतिशत आबादी ऐसे ही शिवशरणों की है जो जाति–भेद, लिंग–भेद, वर्ग–भेद, मंदिर–पूजा, ज्योतिष, यंत्र–मंत्र–तंत्र, यात्रा–तीर्थाटन आदि सभी विधि–निषेधों को नहीं मानती। उत्तरभारत में गोरखनाथ ऐसे प्रबल और प्रतापी संत हुए जिन्होंने जाति–भेदादि की कठोर भर्त्सना की। इसे जड़मूल से उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया, किन्तु वे वैसा चमत्कार समाज के सामने नहीं कर सके जैसा बसवेश्वर ने कर दिखाया। गोरखनाथ, नामदेव, कबीर, दादू, नानक, रैदास आदि सभी संत आध्यात्मिक–साधक थे, सामाजिक क्रांतिकर्त्ता नहीं थे। अतः इनका आन्दोलन जाति–प्रथा का उस रूप में उन्मूलन नहीं कर पाया, जिस रूप में बसवेश्वर का कर पाया, क्योंकि

उनका आन्दोलन टिका ही सामाजिक–दर्शन पर था। इस दर्शन के दो पहिए हैं, जिनसे यह दर्शन रूपी रथ चलता है (1) कायक और (2) दासोह। ये दोनों अवधारणाएँ सामाजिक हैं।

आचार्य रामानन्द ने तो वैष्णवमताब्जभास्कर में खुलेआम कहा–

'सर्वेप्रपत्तेरधिकारिणो मताः शक्ताः विशक्ताः पदयोर्जगत्प्रभोः।
नापेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न हि शुद्धतापि वा ।।'

इसको किसी ने हिन्दी में इस प्रकार रूपान्तरित किया है **'जाति पाँति पूछै नहिं कोई। हरि कूँ भजै सो हरि का होई।।'** आचार्य रामानुज ने कहा कि यदि भगवन्नाम का उपदेश शूद्रों को देने से मुझे नरकों में जाना पड़ेगा तो मैं नरक में भी जाने को सहर्ष तैयार हूँ, क्योंकि भगवन्नामोपदेश से सुनने वाले हजारों–लाखों आत्माओं का उद्धार होगा। उन्होंने भगवद्भक्ति के लिए अपने द्वार सभी के लिए खोल दिये। उनके गुरुजनों द्वारा, ब्राह्मणों द्वारा उनका उग्र विरोध हुआ, किन्तु वे अपने पथ से विचलित नहीं हुए। परिणामस्वरूप उनके वैष्णव–सम्प्रदाय ने ही नहीं, उनके पश्चात्वर्ती सभी वैष्णव संप्रदायों ने वर्णावर्ण, छुआछूत, वर्ण–वर्ग भेद को सिरे से नकार कर अपने द्वार सभी को आने के लिए खोल दिये। वृन्दावनीय हरिराम व्यास, वृन्दावन से वापिस ओरछा जाने को तैयार नहीं थे, जबकि उनके परिवारीयजन व राजा मधुकरशाह उन्हें वापिस ले जाने पर आमादा थे। अंततः व्यासजी ने एक अन्त्यज की टोकरी से जूठा भोजन खाकर परिजनों की दृष्टि में अपने आपको भ्रष्ट ब्राह्मण सिद्ध किया और उनसे पीछा छुड़वाया। हरिरामजी व्यास महान् भगवद्भक्त के रूप में आज भी आदृत हैं, पूज्य हैं। वैष्णव समाज की अमूल्य धरोहर हैं।

5. *श्री रामानँद रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेतु जग तरन कियौ।*
अनतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पर्विती नरहरि।
पीपा भावानन्द रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि ।।
औरों सिष्य प्रसिष्य एक तें एक उजागर।
विश्वमँगल आधार सर्वानन्द दसधा के आगर ।।
बहुत काल बपु धारिकैं प्रणत जनन कौं पार दियौ।
श्री रामानँद रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेतु जग तरन कियौ ।।

–नारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल, मूल छंदांक 36.

6. *संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि बिमल रैदास की ।।*
सदाचार श्रुति सास्र बचन अविरुद्ध बिचार्‌यौ।
खीर नीर विवरंनि परमहंसनि उर धार्‌यौ ।।
भगवत कृपा प्रसाद परमगति यहि तन पाई।
राज सिंहासन बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई ।।
वर्णाश्रम अभिमान तजि पद रज बंदहि जास की।
संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि बिमल रैदास की ।।

–नारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल, मूल छंदांक 59.

7. ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक अपरोक्ष व दूसरा परोक्ष। इन्हें विशेष–ज्ञान और सामान्य–ज्ञान भी कह सकते हैं। सामने कोई खड़ा है। उसका नाम राम है। इतना अंश सामान्य है। उसने कौन से रंग के कपड़े पहन रखे हैं। उसके शरीर का रंग कौन सा है? वह लंगड़ा–लूला–काना–खोड़ा–अंधा

है अथवा नहीं है? उसकी चरित्रगत विशेषताएँ क्या हैं? उसका वर्ण, कुल, परिवार, व्यवहार कैसा है? कहाँ रहता है? आदि–आदि ज्ञान विशेष है। परब्रह्म–परमात्मा है, इस–प्रकार का अस्ति रूपी ज्ञान सामान्य अथवा परोक्ष है और इसका बोध जिज्ञासु को शास्त्र, सत्संग, गुरु आदि से प्राप्त हो जाता है, किन्तु वह परमात्मा कैसा है? क्या करता है? करता है अथवा अकर्ता है? विकारी है अथवा अविकारी है? उसका रूप, रंग, वर्ण, आकार कैसा है, है या नहीं भी है? वह निर्गुण, निराकार, सगुण, साकार, निर्गुण, निरपेक्ष आदि क्या है? वह नाद रूप है अथवा प्रकाश रूप है? आदि विशेष ज्ञान है। जब ऐसा विशेष–ज्ञान हृदयंगम हो जाता है, आँखों के सामने प्रत्यक्षगोचर होने लगता है, तब वह अपरोक्ष अर्थात् साक्षात् ज्ञान कहा जाता है। इस अपरोक्ष–ज्ञान को ही सन्तों ने परमात्मा का परिचय कहा है। संतों की वाणियों में परिचय का अंग ब्रह्म–साक्षात्कार से ही सम्बद्ध है। परिचई 'परिचय' से ही बना शब्द है, जिसका तात्पर्य हैं जिसमें वर्णनीय व्यक्ति व उसके द्वारा परमात्म–साक्षात्कारजन्य अचिन्त्य सामर्थ्य से सम्पन्न विशेष घटनाओं को घटित करने सम्बन्धी विवरण हो। संभवतः अनंतदास पहला व्यक्ति था जिसने नौ संत–भक्तों की परचई लिखीं। इनमें वर्णनीय संत–भक्तों के चरित्र वर्णित हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि उनको परमात्मा का साक्षात्कार हुआ था और साक्षात्कार हो जाने पर ब्रह्मवेद्–ब्रह्मैवभवति (मुण्डकोपनिषद्) न्यायानुसार इनमें भी परमात्मा के समान अपने सामर्थ्य के प्रदर्शन की शक्ति उत्पन्न हो गई थी और आवश्यकता पड़ने पर होनी को अनहोनी और अनहोनी को होनी कर दिखाया था। वस्तुतः परचा का सामान्य अर्थ चमत्कार प्रचलित हो गया है और जिन ग्रंथों में चमत्कारों का वर्णन हो, उसे परचई कहा जाने लगा है। यह जरूरी नहीं है कि इन ग्रंथों मे चमत्कारों का ही वर्णन हो व अन्य सम्बद्ध पूर्वापर जानकारी न हो। इस सम्बन्ध में जनगोपाल कृत 'दादूजन्मलीला–परची' उदाहरण है, जिसमें चमत्कारों का वर्णन कम व दादू की जीवनी अधिक है। आलोच्य परचई में भी चमत्कारों के वर्णन तो है हीं, अन्यान्य विवरण भी कम नहीं हैं।

अनंतदास का समय ही ऐसा था जिसमें चमत्कारों का वर्णन करना अपरिहार्य था। विदेशी शोधक और विद्वान् भक्त न होकर बुद्धिवादी लेखक रहे हैं। उनकी ऐसे वर्णनों में श्रद्धा नहीं होती। इसीलिए उन्होंने ऐसे वर्णनों पर तीखे प्रहार किये हैं। इससे वे दो तरह से भारतीय–जनमानस को प्रभावित करने में सफल रहे। एक तो भारतीय महान–संतों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करने में व दूसरे भारतीय सभ्यता व संस्कृति को विध्वंस करके भौतिकवाद को पनपाने में समर्थ हो सके। भौतिकवाद पनपाने से भारत उनके लिए बहुत बड़ा बाजार मिल गया, जहाँ वे अपना माल, सभ्यता और संस्कृति को पनपाने में सफल रहे। आज का नवपठितवर्ग भारतीयता को सिरे से नकारने लगा है। उसे भारतीयता सड़ी–गली चीज़ लगने लगी है। यह हम भारतीयों का दुर्भाग्य ही है!

8. *रामानँद को अनंतानंदू। सदा प्रगट ज्यों पूरण चन्दू ।।*
ताकौ कृष्णदास अधिकारी। सबु कोउ जानैं दूधाधारी ।।
ताकौ अग्र आगरौ प्रेमू। ले निवह्यौ सुमिरन को नेमू ।।
अग्र को सीष विनोदी पाई। ताकी दास अनंत हि आई ।।

35वाँ अध्याय, पीपा परचई

9. विनोदीजी, अग्रदास के 1590 विक्रमसम्वत् में शिष्य बने व इस धराधाम पर 1660 तक विराजित रहे। इनके 14 विरक्त शिष्य थे जिनमें से ध्यानदास टीकाई थे। देखें: अग्र–ग्रन्थावली, भाग 3, पृष्ठ 43–44। प्रकाशक : जानकीनाथ बड़ा मंदिर ट्रस्ट, रैवासा।

10. अग्र–ग्रन्थावली, भाग 1, पृष्ठ 4 व पृष्ठ 16 से 18 तक। प्रकाशक : जा. बड़ा मंदिर ट्रस्ट, रैवासा।

11. *अलख निरंजन बिनऊँ सोई। मांगौं साध सँगति दे मोही ।।*
संबत सोलासै पैंताला। बाणी बोलै बचन रसाला ।।

नामदेव की परचई, छंदांक 1

12. अग्र–ग्रन्थावली, भाग 3, पृष्ठ 44–45

13. भक्तरत्नावली। यह नाम डॉ. वी. पी. शर्मा का दिया हुआ है। अनंतदास ने अपनी समस्त परिचइयों को एक जिल्द में लिखकर एक नाम नहीं दिया था। उसने तो अपने ग्रन्थों के नाम 'रैदास की परचई' 'कबीर की परचई' आदि–आदि ही दिये थे। डॉ. वी. पी. शर्मा ने प्रचारित करने का प्रयत्न किया कि यह नाम अनन्तदास द्वारा दिया गया है जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है। अस्तु! देखें : ग्रन्थ भक्तरत्नावली, भूमिका–भाग, पृष्ठ 18।

14. भक्त–रत्नावली, भूमिका भाग, पृष्ठ 18, सम्पादक डॉ. वी. पी. शर्मा, चंडीगढ।

15. भक्तरत्नावली, भूमिका भाग, पृष्ठ 17, सम्पादक डॉ. वी. पी. शर्मा, चंडीगढ।

16. चौहान–कुल–कल्पद्रुम, प्रसिद्ध इतिहासकार देसाई लल्लुभाई भीमभाई द्वारा विक्रम सम्वत् 1983, अक्षय तृतीया, ता. 4 मई, सन् 1927 ईस्वी को आबूरोड़, राजस्थान में लिखित ग्रंथ है। चौहान–राजपूत इतिहास को जानने समझने के लिए यह ग्रंथ अतीव उपयोगी है।

17. Survey of Kheechi Chauhan History by Prof. Akhtar Hussain Nizami & Raghunath Singh Kheechi. Published in 1990 AD by Kheechi Chauhan Shodh sansthan, Indroka (Jodhpur),

संत श्रीपीपाजी एवं साध्वी सीतादेवी स्मृति ग्रंथ, लेखक व संकलनकर्त्ता साँवरलाल तँवर व रघुनाथसिंह खीची। सम्पादक डॉ. जहूरखाँ मेहर व भँवरलाल सुथार। और भी अनेक ऐतिहासिक पुस्तकें।

18. चौहान–कुल–कल्पद्रुम : राज्यारोहण वि.सं. 1416, राज्यत्याग 1441 वि.। पृष्ठ 103 भाग 1, प्रकाशक राजस्थानी–ग्रंथागार, सन् 2009 तृतीयावृत्ति।

सन्त श्रीपीपाजी एवं साध्वी सीतादेवी स्मृति–ग्रंथ में अनेक लेखकों के लेखों के उद्धरण हैं। श्रीवेदप्रकाश गर्ग जो बहुत ही छानबीन करके लिखते हैं ने राज्यारोहण–काल वि.सं. 1417 व मरण–काल 1441 माना है। पूर्वापर घटनाओं का विवेचन कर वे जन्म–समय 1380 मानते हैं (पृष्ठ 30 से 34 तक) पीपावंशी दर्जी समाज भी यही समय मानता है, किन्तु पूर्वापर विचार करने पर मुझे जन्म–सम्वत 1390, राज्यारोहण 1416 व राज्य–त्याग 1441 ही उचित प्रतीत होते हैं। पीपा ने लम्बा संन्यासी–जीवन व्यतीत किया। अतः वे 1441 वि.सं. में ही रामशरण हो गये, कहते नहीं बनता किन्तु इतना अवश्य निश्चित् होता है कि पीपा अपने प्रपौत्र अचलदास खींची के वि.सं. 1480 में मरने के पूर्व अवश्य ही रामशरण हो गये थे। यदि रामशरण होने के समय पीपा की उम्र 80 वर्ष मानें तो 1390 से 1470 तक का समय निर्धारित होता है जो हर तरह से संभव है। कबीर, रैदास, सैन, धन्ना आदि गुरुभाई और गुरु रामानंद के काल से भी संगति बैठाने में कोई परेशानी नहीं आती। राघवदासजी दादूपंथी के भक्तमाल के विवरणानुसार वि॰सं॰ 1520 में पीपा द्वारा की गई अकाल पीड़ितों की सेवा का संवत्: अनुमानाधारित होने से गलत जान पड़ता है।

Survey of Kheechi Chauhan History के अनुसार जोधपुर नरेश सूरसिंह ने सं. 1661 में सोलंकी धरमदास दर्जी को एक ताम्रपत्र दिया था, जिसमें पूर्व में दिये गये वि.सं. 1416 के ताम्रपत्र का उल्लेख है। 1416 का ताम्रपत्र पीपावंशी राजपूत दर्जियों को बादशाह द्वारा दिया गया। सं. 1661 का ताम्रपत्र जोधपुर के शिवदानसिंह सोलंकी दर्जी के पास है (देखें पृष्ठ 108–109)। मुझे लगता है, बादशाह द्वारा प्रदत्त ताम्रपत्र 1416 का न होकर 1456 अथवा 1466 का रहा होगा। पढ़ने की भूल से 1416 पढ़ने में आ गया होगा, क्योंकि 1416 वि.सं. मानने से यह भी मानना होगा कि पीपा का देहांत 1416 के आस–पास हो गया और उनके अनुयायी पीपावंशी कहलाने लगे या पीपा 1416 में मौजूद तो होंगे किन्तु बड़ी उम्र वाले संन्यासी के रूप में जिनके अनुयायी पीपा–वंशी कहलाने लगे होंगे। ऐसी स्थिमि में पीपा का रामानंद के साथ तो सम्बन्ध जोड़ने में दिक्कत नहीं आयेगी, किन्तु कबीर, रैदास, सैन आदि से जोड़ने में आयेगी। अचलदास खीची का मरणकाल 1480 वि. सं. हर तरह से प्रामाणिक होने के कारण पीपा का समय 1390 से 1470 का ही अधिक उचित लगता है।

19. राघवदास के भक्तमालानुसार पीपा के 12 पत्नियाँ थीं। टीका छंद 129। पृष्ठ 198। नारायणदास कृत टीका सहित भक्तमाल। प्रथमावृत्ति ।। नारायणदास नाभा कृत भक्तमाल की भक्तिरसबोधनी टीका में 'दस दोय' लिखा है जिसका अर्थ रूपकला ने 12 (देखें पृष्ठ 496) लिखा है, जबकि गणेशदास भक्तमाली ने 20 लिखा है, देखें पृष्ठ 599, भाग 2, छंदांक 286 की टीका। भक्तदामगुणचित्रणी टीकाकार बालकराम ने भी 12 रानियाँ होने का उल्लेख किया है, देखें पृष्ठ 265, सम्पादक नारायणदास भक्तमाली, 'मामाजी'। 'इसके पुत्र न होने के कारण इसका भतीजा कल्याणराव गोद आया' पृष्ठ 103, चौहान–कुलकल्पद्रुम, भाग 1।

20. चौहान–कुल–कल्पद्रुम, भाग 1, पृष्ठ 104

21. चौहान–कुल–कल्पद्रुम, भाग 1, पृष्ठ 104, इसने 24 वर्ष राज्य किया।

22. चौहान–कुल–कल्पद्रुम में अचलदास का होशंगशाह से युद्ध करते हुए 1482 वि. में मरना लिखा है जो खिलचीपुर रिसायत की हस्तलिखित ख्यात के अनुसार लिखा गया है, किन्तु यह गलत है, पृष्ठ 104, सही समय वि.सं. 1480 है।

    अचलदास खीची री वचनिका सम्पादक डॉ. शंभुसिंह मनोहर, भूमिका भाग, पृष्ठ 36, मूल पाठ–भाग, पृष्ठ 219।

    अचलदास खीची री वचनिका, सम्पादक डॉ. भूपतिराम साकरिया, मूल पाठ भाग, पृष्ठ 55।

23. तबकाते–अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद) ब्रिग्स, भाग 3, पृष्ठ 207–208
    तारीखे–फिरिश्ता (अंग्रेजी अनुवाद) भाग 4, पृष्ठ 23–25, 282–83.

24. Rajasthan through the ages, Page 441 Dr. Dashrath Sharma, सन् 2014 का संशोधित संस्करण। अचलदास खीची री वचनिका, सम्पादक डॉ. शंभुसिंह मनोहर। इन्होंने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं को ध्यान में रखकर गंभीर ऊहापोह की है और अपना मत स्थिर किया है, देखें, पृष्ठ 26

25. विद्याभूषण हरिनारायण शर्मा पुरोहित ग्रंथ–सूची, सम्पादक पं. गोपालनारायण बहुरा। यह सूची स्वयं पुरोहितजी ने बनाई थी; अतः यह भूल उनसे ही हुई थी।

26. वि.सं. 1480 में अचलदास के मरने पर; देखें अचलदास खीची री वचनिका, पृष्ठ 36।

27. वि.सं. 1501 अर्थात् ईस्वी सन् 1444 में सुल्तान महमूद खल्जी ने गागरोनगढ़ पर आक्रमण किया। पाल्हणसी मारा गया। जौहर हुआ। मआसिर महमूदशाही, लेखक शिहाब हकीम। स्रोत अचलदास खीची री वचनिका, सम्पादक डॉ. शंभुसिंह मनोहर।

28. देखें चौहानकुल–कल्पद्रुमादि ग्रंथ।

29. ध्यानदास, भगवानदास, गाडा निराणदास, मोहनदास, दोदास, ऊधौदास, निर्मलदास भगवानदास, निर्भयरामदास, हरभगतराम, कृपाराम, लखमीदास, रामप्रसाददास, लखमीरामदास, अग्र ग्रंथावली भाग 3, पृष्ठ 43–44। ये नाम प्रमुख–प्रमुख शिष्यों के हैं। सभी शिष्यों के नाम नहीं हैं। पृष्ठ 43। अग्रग्रंथावली भाग 3। राजस्थान के अनेक राजपूत क्षत्रिय अपने नामों के अंत में 'सिंह' के स्थान पर 'दास' भी लगाते रहे थे। इस संबंध में देखें 'राजस्थान के मेड़तिया राठौड़' लेखक डॉ॰ हुकमसिंह भाटी। विशेषकर पृष्ठ 254 से 272 तक। प्रसिद्ध इतिहासकार जगदीशसिंह गहलोत ने लिखा है कि राजपूतों ने जब मुसलमानों को 'खाँ', 'खान' आदि शब्द लगाते देखा तब उन्होंने अपने नामों के साथ 'सिंह' शब्द अनिवार्यतः लगाना प्रारम्भ किया। इसके पहले राजपूतों में 'सिंह' शब्द का प्रयोग अनिवार्य रूप से नहीं होता था। वैसे इस शब्द का प्रयोग तीसरी शताब्दी से ही होना पाया जाता है। विशेष विवरण के लिए देखें 'राजपूताने का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 107 की टिप्पणी। लेखक जगदीशसिंह गहलोत।

30. *अलख निरंजन विनउँ सोई। मांगौं साध सँगति दे मोही ।।*
संबत सोला सै पैंताला। वाणी बोलै वचन रसाला ।।

—अनंतदास कृत नामदेव की परची, प्रथम विश्राम, छंदांक 1,
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान का ग्रंथांक 34

31. राजर्षि पीपा, स्वामी रामानंद से दीक्षित होकर द्वारका गए। भगवत्प्राप्ति की तीव्रतम इच्छा के वशीभूत होकर पति–पत्नी दोनों समुद्र में कूद गए। भगवान उन्हें बेट (भेंट, जहाँ पीपा और भगवान की भेंट हुई) द्वारका में ले गये। वे वहाँ सात दिन रहे। भेंट की निशानी के रूप में भगवान् ने पीपा को छाप प्रदान की। आज भी द्वारका में वह छाप लगती है। देखें : भक्तमाल की प्रियादासी टीका, छंद क्रमांक 288–289, रूपकला संस्करण, पृष्ठ 498–499।

32. राजर्षि पीपा का जितना भी पद व साखी साहित्य उपलब्ध हुआ है, उससे पीपा निर्गुणी–संत सिद्ध होते हैं। इन्होंने कबीर, नामदेव व रैदास का अपने एक पूरे पद में बहुत ही श्रद्धा–भक्ति से वर्णन किया है। इन्होंने यहाँ तक कहा है कि यदि कलियुग में कबीर न होते तो भक्ति रसातल में पहुँच जाती। विशेष विवरण के लिए मेरी पुस्तक **'संत–सप्तक'** में 'राजर्षि पीपा' अध्याय पढें।

33. *बीस बार जब बोले साखी। तब मैं भगत परचई भाखी ।।*
आखिर ऐकौ झूठौ नाहीं। जानै साध असाध रिसाहीं ।।13।।

अनंतदास कृत रैदास की परचई, अध्याय 12, छंदाक 13

34. देखें अग्र–ग्रंथावली भाग–3, पृष्ठ 43–44

35. अग्र–ग्रंथावली भाग 3, पृष्ठ 26–27, प्रकाशक जानकीनाथ बड़ा मंदिर ट्रस्ट, रैवासा।

36. अग्र–ग्रंथावली भाग 3, पृष्ठ 43, प्रकाशक जानकीनाथ बड़ा मंदिर ट्रस्ट, रैवासा।

37. दादू–जन्मलीला–परची, दादू के शिष्य जनगोपाल द्वारा रचित है। जनगोपाल आशुकवि थे। जन्म से वैश्य थे। दादूदयाल जब अकबर को सत्संग सुनाने फतेहपुर सीकरी पधारे तब जनगोपाल दादू के शिष्य बने। यह घटना वि.सं. 1642 की है। इसके पश्चात् ये प्रायः दादू के ही सान्निध्य में रहे। इन्होंने सर्वप्रथम 296 छंद व 12 अध्यायों की जन्मलीला–परची दादूदयाल के जीवन काल में ही लिख दी थी। दादू के ब्रह्मलीन होने पर 425 छंद व 16 अध्याय कर दिये। कालान्तर में 16 अध्यायों में 626 छंद हो गए। दादू के जीवनकाल की रचना होने से यह ग्रंथ दादू की जीवन–घटनाओं को जानने के लिए सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत है।

38. *रामघटा अरु जंगी आये। छीतर गैबी दरसन पाये ।।*
तब बानें की बात चलाई। स्वामी दादू कौं नहिं भाई ।।35।।
काह करैं इत है तुरकानौं। हिंदवानै पहरावैं बानौं ।।
तब स्वामी आमेर विचारी। सुमिरन कौं ठाहर तहाँ भारी ।।36।।

–दादू जन्मलीला परची, विश्राम 3, प्रकाशक लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर।

39. संदर्भ 38 का पदांक 35। विशेष विवरण पढ़ें : दादूचरितामृत, भाग 1, पृष्ठ 238 से 240 तक, प्रकाशक लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर 3

40. *बारह बरस बालापन गये। गुर भेटे तैं सनमुख भये ।।*
सांभरि आये समये तीसा। गरीबदास जनमे बत्तीसा ।।26।।

–दादू जन्मलीला परची, विश्राम 16. Editor : Winand M. Callevaert, Belgium

41. दादूचरितामृत भाग 1, लेखक : सन्त नारायणदास स्वामी।
दादू–जन्मलीला–परची की भ्रमविध्वंसनी टीका। टीकाकार संत आत्मबिहारी।

देखें : रज्जब की सरबंगी : सम्पादक ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल, पृष्ठ 41

42. उक्त 38 में आई चौपाइयों का भाव। विस्तार के लिए दादूचरितामृत भाग 1 देखें।

43. *गरीबदास बत्तीसे जाया। सैंतीसै आमेर सिधाया ।।*

–भ्रमविध्वंसनी टीका, 29वां अध्याय, पदांक 166
का पूर्वार्द्ध, स्रोत रज्जब की सरबंगी

44. *अपने माँ डायन कहै ऐसौ कौन कपूत।*
ऐसौ कौन कपूत कहै डायन महतारी ।।
दादू पकड़ी टेक भेष बिन देह बिगारी।
कहनी गहनी एक रस मन दियौ न चालन ।।
एक नौंन के स्वाद बिना बिगरे सब सालन।
अग्र स्वामि के स्वांग बिन देखत ही के पूत।
अपने माँ डायन कहै ऐसौ कौन कपूत ।।70।।

–अग्र–ग्रंथावली, भाग 1, पृष्ठ 158 जानकी. ट्रष्ट, रैवासा।

45. साँभर में 4 संत गये थे। उनमें से एक छीतरदास भी थे। ये बहुत अच्छे वाणीकार संत हुए हैं। दादूदयाल व गरीबदास के भेंट के छंद इनके द्वारा निर्मित मिलते हैं। इनकी कविता बहुत अच्छे स्तर की है। इन्होंने दादूजी से प्रभावित होकर वैरागी–संप्रदाय छोड़कर दादूपंथ स्वीकार कर लिया था।

46. *अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तन को यश गाउ।*
भवसागर के तरन कौ, नाहिन और उपाउ ।।4।।

नारायणदास नाभा कृत भक्तमाल, रूपकला संस्करण, पृष्ठ 40। यहाँ एक बात लक्ष्य करने की और है। अग्रदासजी, दादूदयाल की दृढ़ टेक को डिगा नहीं सके। उन्हें अपने सम्प्रदाय में मिला नहीं सके। इस खीझ को उन्होंने अपने शिष्य नाभा कृत भक्तमाल में दादूदयाल व उनके शिष्यादि को शामिल न करवाकर निकाली। नाभा, दादू से परिचित थे; इसमें शंका के लिए बिल्कुल स्थान नहीं है। दादू अपने समय के महान् संत थे। फिर भी उनका विवरण नाभा ने अपने गुरु अग्रदास के राग–द्वेष पूर्ण विचारों के कारण भक्तमाल में नहीं लिखा।

47. अभी–तक की खोजों के अनुसार मूल भक्तमाल की प्राचीनतम प्रतियाँ राजस्थान–प्राच्यविद्या–प्रतिष्ठान, जोधपुर में सम्वत् 1699, 1724 व 1762 की हैं। इसी संस्थान के उदयपुर कार्यालय में भी सम्वत् 1724 की एक और प्रति है। इन सभी की छाया–प्रतियाँ मेरे संग्रह में उपलब्ध हैं। प्रियादासी टीका की प्राचीनतम प्रति कासगंज (एटा) निवासी डॉ. नरेशचन्द्र बंसल के पास है जिसका लिपिकाल सं. 1782 है। मेरे पास उपलब्ध भक्तमाल की प्रियादासी टीका के हस्तलेख का लिपिकाल 1792 वि.सं. है।

48. भक्तमाल में नाभा के शिष्य गोविन्ददास भक्तमाली का विवरण छंदांक 192 मे आया है। प्रश्न होता है, क्या स्वयं नारायणदास नाभा ने अपने शिष्य गोविन्ददास को भक्तमाली की संज्ञा दी? क्या उन स्वयं ने ही गोविन्ददास की महिमा का वर्णन किया? वस्तुतः इस छंद में प्रयुक्त क्रिया 'भक्त रत्न माला सुधन गोविंद कंठ विकास किय।।' भूतकालिक है। यदि 1650 में ही गोविन्ददास ने भक्तमाल को कंठाग्र कर लिया तो इनका 1769 में भक्तमाल की टीका लिखने वाले व लगभग वि.सं. 1800 तक जीवित रहने वाले प्रियादास का भक्तमाल–शिक्षक होना संदिग्ध सा हो जाता है। फिर नाभाजी के समय में भक्तमाली जैसी कोई परम्परा भी स्थापित नहीं हुई थी। देखें 'श्रीहित हरिवंश गोस्वामी : सम्प्रदाय और साहित्य', लेखक ललिताचरण गोस्वामी, पृष्ठ 3। छंदांक 198 में भगवतमुदित का चरित्र वर्णित है। भगवतमुदित का समय काफी परवर्ती है। अतः गोस्वामीजी के अनुसार यह छंद भी बाद में किसी ने प्रक्षिप्त कर दिया होगा। श्रीगोविन्ददास भक्तमाली, भगवतमुदितजी आदि से संबंधित छंद प्रक्षिप्त हैं। इस संबंध में विशेष तथ्य जानने के लिये मेरी पुस्तक **निबंध–सप्त–सागर** पृष्ठ 127 से 240 तक पढ़ी जा सकती हैं।

49. हमें ऐसा लगता है, नारायणदास नाभा ने अपने ग्रंथ का नाम 'भक्तरत्नमाला' रखा था। धीरे–धीरे 'रत्न' का लोप हो गया और मात्र भक्तमाला रह गया। प्रयत्न–लाघव व मुख–सुख के लिए 'भक्तमाला' 'भक्तमाल' बन गया।

50. *भक्तदाम जिन जिन कथी, तिनकी जूँठनि पाय।*
मों मति सारू अक्षर द्वै, कीनौं सिलौ बनाय ।।213।।

–भक्तमाल, रूपकला संस्करण, पृष्ठ 931.

इसका तात्पर्य यह है कि भक्तमाल नाभाजी के पूर्ववर्ती काल के रचनाकारों ने भी बनाए किन्तु वे प्रसिद्धि न पा सके और काल के प्रवाह में अप्रसिद्ध हो गए।

51. औडुलोमी, भास्कराचार्य आदि के भाष्यों का जिक्र शंकराचार्य के भाष्य में हुआ है, किन्तु ये भाष्य अब नहीं मिलते हैं।

52. नामदेव, पीपा, कबीर, रैदास, अंगद, राँका–बाँका, त्रिलोचन, धंना जाट व सेऊ–सम्मन। इन नौ की परचियाँ अग्रावत वैष्णव अनन्तदास ने लिखी हैं।

53. राजस्थान–प्राच्यविद्या–प्रतिष्ठान, जोधपुर का ग्रंथांक 11583, इसका लिपिकाल सम्वत् 1693 है।

54. डॉ. शुकदेवसिंह ने अनन्तदास को पौत्र लिखा है, रैदास बानी, पृष्ठ 246, राधा कृष्ण प्रकाशन, 2007। अनंतदास की गुरु–परंपरा रामानन्द–शिष्य अनंतानंद की परम्परा से जुड़ती है, राजर्षि पीपा गागरोनी से नहीं जुड़ती।

55. राजस्थानी–संतसाहित्य–परिचय, पृष्ठ 113–114, लेखक नारायणदासजी स्वामी।

56. कबीर और कबीर–पंथ, ले॰ केदारनाथ द्विवेदी, पृष्ठ 14 व 80। प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। अनंतदास ने मात्र नामदेव की परचई में रचनाकाल दिया है, अन्यों में नहीं। अपनी गुरु–परम्परा पीपा–परचई में दी है।

57. हिन्दी–साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 147, नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण।

58. शेख फरीदुद्दीन मसऊद गंज–ए–शकर सूफियों के चिश्तिया–सिलसिले के तीसरे आध्यात्मिक गुरु माने जाते हैं। इनका समय फारसी–ग्रथों में प्रायः निश्चित है, किन्तु फारसी–तारीखों को विक्रम–सम्वतीय या ईसवी–सनीय तारीखों में परिवर्तित करते समय अनेक लेखकों ने भूलें की हैं। मैंने इस्लामिक कलेण्डरों के आधार पर शेख फरीद का प्रामाणिक समय मेरी पुस्तक **शेख फरीद 'गंज–ए–शकर' : जीवनी और वाणी,** में जन्म–समय 4 अप्रेल, गुरुवार सन् 1174 व मृत्यु–समय 16 अक्टुबर, शुक्रवार, सन् 1265 सिद्ध किया है। अनंतदास ने शेख फरीद की परचई नहीं बनाई। यह किसी अन्य ने बनाकर उस पर अनंतदास की छाप लगा दी। यह परची **'संतों एवं भक्तों का जीवन चरित्र'** सम्पादक डॉ॰ विक्रमसिंह गूँदोज के पृष्ठ 134 से 140 तक छपी है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ मेरे देखने में भी आई हैं। कोई भी वि.सं. 1850 के पहले की नहीं है।

59. देखें 'मानस–पीयूष' का प्रथम भाग। सम्पादक : अंजनानन्दनशरण शीतलासहाय, अयोध्या। प्रकाशक, गीताप्रेस गोरखपुर, बालकाण्ड के प्रारंभ में इस पर सम्पादक ने अच्छी ऊहापोह की है।

'मीरांबाईः प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली' नामक मेरी पुस्तक में मैंने अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि झाली ने रैदास को चित्तौड़ में नहीं, कुंभलगढ़ में निमंत्रित किया था। वहीं रैदास व ब्राह्मणों का उक्त सम्वाद–विवाद हुआ था।

60. जयमल–वंशप्रकाश, भाग 1, पृष्ठ 70, लेखक ठाकुर गोपालसिंह मेड़तिया, बदनौर।

जांभोजी : विष्णोई–सम्प्रदाय और साहित्य, डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, भाग 1, पृष्ठ 236।

मीराँ का जीवन चरित्र, मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ, राज मारवाड़, पृष्ठ 8

मीरांबाई– डॉ. श्रीकृष्णलाल, पृष्ठ 48–49

61. मीरांबाई : प्रामाणिक जीवनी एवम् मूल पदावली, पृष्ठ 29 से 35 तक, ले. ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल।

62. कुंभावत राणा रायमल की पुत्री गोरज्याकुँवरी बीरमदेव की पत्नी थी। दृष्टव्य : मीरांबाई : प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली, लेखक– ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल, पृष्ठ 40–41

63. यदि इस दोहे को सत्य मान लिया जाये तो अनेक उलझन उत्पन्न होती हैं। वि.सं. 1584 में राणा सांगा का देहांत हुआ। 1584 में ही रैदास का निधन चित्तौड़ में हुआ। रैदास के ऊपर उसकी झाली शिष्या छत्री बनवाती है, किन्तु संपूर्ण हिन्दुओं के सूर्य, परम–पराक्रमी मेवाड़ाधिपति पर न उसकी पत्नी और न उसका पुत्र ही छत्री बनवाता है? यह कितनी बड़ी विसंगति और मनगढंत बात है। वस्तुतः इस काल तक चित्तौड़ में मृतकों पर छत्रियाँ बनाने का प्रचलन ही नहीं हुआ था। फिर कैसे झाली रानी या मेड़तणी मीरां रैदास पर छत्री बनवा सकती थी। दूसरे, तथाकथित रैदास की छत्री तथाकथित मीरां–मंदिर के दक्षिण–पूर्वी कोण मे बनी हुई है, जिसकी मंदिर से दूरी 100 फिट से ज्यादा नहीं है। क्या राजपरिवार, जो मीरां का इस समय तक काफी हद तक विरोधी बन चुका था, रैदास की छत्री मंदिर के सामने बनाने देता! यदि राजपरिवार विरोध न भी करता तो ब्राह्मण–समाज यह कभी भी स्वीकार न करता कि ठाकुरजी के मंदिर के आसन्न सामने दाह–संस्कार हो सके। समाज में प्रायः ऐसी घटनाएँ देखने को नहीं मिलती कि मंदिर के अहाते में ही ठाकुरजी के सामने किसी की अन्त्येष्टि हुई हो और उसे ब्राह्मण–समाज ने स्वीकार की हो।

वैसे भी रैदास का शरीरान्त न चितौड़ में और न कुंभलगढ़ में हुआ। उनका शरीरांत काशी के उसी क्षेत्र में हुआ, जहाँ के वे निवासी थे। वे कुंभलगढ़ आये थे, इसमें दो राय नहीं है, किन्तु वे झाली का आतिथ्य स्वीकार करके वापिस चल गये थे। अतः ये दोहे सर्वथा अप्रामाणिक और अनंतदास की रचना नहीं हैं। ये किसी अन्य की रचनाएँ हैं, जिनको डॉ. वी. पी. शर्मा ने रैदासियों को उपकृत करने के लिये इस परचई में प्रक्षिप्त किया है। वस्तुतः डॉ. वी. पी. शर्मा, आचार्य पृथिवीसिंहजी आजाद, कुलपति, गुरुकुल कॉंगड़ी जो रैदास–भक्त थे उनकी कृपा से ही गुरु रविदास चेयर, पंजाबी विश्वविद्यालय, चंड़ीगढ के चेयरपर्सन बने थे। अतः हो सकता है, उनके ऋण से उऋण होने के लिए उन्होंने आधुनिक रैदासियों की मान्यता को अनंतदास की परचई में प्रक्षिप्त कर प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न किया हो।

64. मीरांबाई : प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली, पृष्ठ 40–41, ले. ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल।

65. आचार्य पृथिवीसिंह आजाद द्वारा लिखित **'संत गुरु रविदास : एक परिचय'** नाम का आलेख, जो डॉ. धर्मपाल सिंहल द्वारा सम्पादित पुस्तक **'गुरु रविदासः साहित्यिक मूल्यांकन'** में प्रकाशित हुआ है। यह आलेख काफी शोध पूर्वक लिखा गया है। पृष्ठ 183 से 233 पृष्ठ तक 51 पृष्ठों में प्रकाशित है।

आचार्य पृथिवीसिंह 'आजाद' ने अपना उक्त आलेख स्वयं द्वारा सम्पादित पुस्तक **'युग प्रवर्तक संत गुरु रविदास'** के पृष्ठ 30 से 87 पर भी सन् 1983 में प्रकाशित कराया था।

2. रैदास, झाली रानी और मेड़तनी मीरां

मीरांबाई के पद में प्रसिद्ध निर्गुणी संत श्री रैदास का उल्लेख गुरु के रूप में हुआ मिलता है–

पीहर जाऊँ न सासरै, नहीं पिया के पास।
मीरां सरणैं राम के, म्हांनै गुरु मिलिया रैदास ।।1।। [1]

इस उल्लेख को आधार बनाकर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, चंद्रबली पाण्डेय प्रभृति विद्वानों ने माना है कि कालक्रम से मीरां द्वारा रैदास को गुरु बनाना तो संभव नहीं है, किन्तु यह पूर्णतः संभव है कि मीरां किसी रैदासपंथी साधु से दीक्षित हुई हो। इन उक्त विद्वानों के अतिरिक्त कुछ अन्य लेखकों ने बिना गंभीर शोध किये रैदास को ही मीरां का गुरु लिखा है।[2]

इस विषय में हम गहराई में जाने से पूर्व उन कारणों और जानकारियों को जानने का प्रयत्न करें, जिनके कारण रैदास को मीरां का गुरु मानने का विचार प्रचलन में आया। स्वामी रामानंद के शिष्य अनंतानंद, अनंतानंद के शिष्य कृष्णदास 'पयाहारी', पयाहारी के शिष्य अग्रदास, अग्रदास के शिष्य विनोदीजी और विनोदीजी के शिष्य अनंतदास ने विक्रम–संवत् 1645 के[3] आस–पास संतप्रवर रैदास की परचई को लिखी है। अनंतदास की परचई को अधिकांशतः सभी ने प्रामाणिक जानकारी का स्रोत माना है। अतः सर्वप्रथम हमें इस परचई के आधार पर उन सूचनाओं को जानना चाहिये जो रैदास, मेड़तणी मीरां और झाली रानी से सम्बन्धित हैं।[4]

1.1 : चित्तौड़ के राणा की एक पत्नी झाली[5] थी। पूर्व–जन्म के पुण्योदय के प्रभाव से इस झाली के मन में विचार आया कि मोक्ष की प्राप्ति, बिना गुरु धारण किये नहीं होती। अतः मोक्ष–प्राप्त्यर्थ गुरु–धारण करना चाहिये। उन्हीं दिनों काशी का एक

भक्त मेवाड़ में आया हुआ था। उसने झाली को परामर्श दिया कि वह काशी जाकर कबीर और रैदास में से किसी एक को गुरु धारण करे।

1.2 : वह कबीर को गुरु बनाने कबीर के स्थल पर उपस्थित हुई, किन्तु कबीर के यहाँ सगुण–साकार की सेवा–पूजा का खंडन सुनकर वह कबीर के प्रति अपने मन में श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर सकी।

1.3 : अनेक लोगों से पुनः चर्चाकर वह रैदास का नाम सुनकर उनके स्थल पर पहुँची। इनके यहाँ कबीर जैसा खंडन–मंडन नहीं था। अतः झाली की श्रद्धा रैदास के प्रति स्थिर हो गई और उसने रैदास को मन–वचन–कर्म से गुरु धारण कर लिया।

1.4 : काशी में कुछ दिन रहकर झाली ने रैदास का सत्संग किया। चलते समय वह रैदास को अपने देश में पधारने का निमंत्रण देना भी नहीं भूली। रैदास ने गुरु सदृश कबीर से आज्ञा पाकर मेवाड़ की यात्रा की।

1.5 : जिस–समय रैदास मेवाड़ में पधारे, उस–समय झाली ने उन्हें सर्वप्रथम एक बाग में ठहराया। गुरु के सम्मान में झाली ने ब्राह्मणों को भी भोजन हेतु आमंत्रित किया। विप्रों ने निमंत्रण स्वीकार कर भोजन हेतु उक्त बाग में पर्दापण किया, किन्तु रैदास की जाति का मामला उठाकर रैदास के साथ एक पंक्ति में भोजन करने से इंकार कर दिया।

1.6 : रैदास ने ब्राह्मणों से कहा– मैं भी पूर्वजन्म में ब्राह्मण ही था, किन्तु मांसादि सेवन कर लेने के कारण पतित होकर मुझे चर्मकार के घर में जन्म लेना पड़ा। रैदास ने अपने चर्म को चीरकर तत्काल सोने जैसी चमकती हुई यज्ञोपवीत सारे ब्राह्मणों को दिखा दी।

1.7 : उक्त चमत्कार को देखकर सभी ब्राह्मण रैदास के चरणों में झुक गये। सभी ने रैदास की जय–जयकार की तथा कहा, धन्य है झाली रानी को जिसने हमको ऐसे तपः पूत महात्मा के दर्शन कराये।

1.8 : रैदास कुछ दिन मेवाड़ में रहे। फिर उन्होंने झाली से काशी–प्रस्थान की आज्ञा ली और एक महीने में काशी पहुँच गये। रास्ते में उन्होंने अनेक लोगों को उपदेश देकर कृतार्थ किया।

1.9 : काशी आकर वे गुरु सदृश कबीर के दर्शन करने गये। संतों ने मेवाड़ के अनुभव पूछे। संत रैदास ने ब्राह्मणों द्वारा किये गये विरोध की घटना को ब्यौरेवार सुनाया।

परचई की उक्त जानकारी से पूर्णतः स्पष्ट है कि रैदास की शिष्या झाली रानी थी, न कि मेड़तणी मीरां। भक्तमाल में भी रैदास सम्बन्धी विवरण में झाली रानी का ही उल्लेख मिलता है, मेड़तणी मीरां का नहीं।[6] अस्तु!

1.10 : रैदास के गुरु रामानंदजी महाराज का समय विक्रम–संवत् 1356 से 1467 तक निश्चित है।[7] अतः रैदास विक्रम–संवत् 1467 के पूर्व ही रामानंदजी से दीक्षित हो गये होंगे।

1.11 : संताग्रगण्य कबीर का समय विक्रम–संवत् 1456 से 1575 तक लगभग निश्चित सा माना जाने लगा है।[8] कबीर की उक्त जीवनावधि श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. माताप्रसाद गुप्त आदि द्वारा बताई गई को स्वीकार करने पर मानना पड़ेगा कि कबीर, रामानंदजी से अपनी 12 वर्ष की उम्र होने के पूर्व ही दीक्षित हो गये थे। आचार्य परशुरामजी चतुर्वेदी ने कबीर का समय विक्रम–संवत् 1425 से 1505 तक का माना है।[9] उनका कहना है कि बिजलीखाँ ने कबीर का रोजा विक्रम–संवत् 1507 में बनवाया। जब रोज़ा ही वि.सं. 1507 में बनवा दिया गया, तब उनका विक्रम–संवत् 1505 में दिवगंत होना उचित ही है। मुझे आचार्य परशुरामजी का मत समीचीन जान पड़ता है। गुरु नानकदेव अपनी पहली उदासी (यात्रा) पर विक्रम–संवत् 1554 से 1566 के दरमियान काशी गये थे।[10] किन्तु उनकी जीवनी की किसी भी प्रामाणिक पुस्तक में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिलता, जिससे प्रमाणित होता हो कि नानकदेव व कबीरसाहब का मिलन काशी में हुआ। यह तथ्य सुस्थापित है कि नानकदेव की कबीरसाहब के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा, श्रद्धा थी। यदि कबीरसाहब इस समय काशी में होते तो सुनिश्चित तौर पर नानकदेव उनसे मिलते, सत्संग करते। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीर उतने परवर्ती नहीं हैं, जितने कि डॉ. द्विवेदी, डॉ. गुप्त आदि ने माना है। कबीर साहब का जन्म सम्वत् 1425 में मानने से रैदास, कबीर से छोटे सिद्ध होते हैं जो समीचीन तो है ही, अनंतदास की परचई की घटनाओं से तारतम्य भी बैठता है। संत–समाज में जनश्रुति है कि रैदास, कबीर से उम्र में छोटे थे और प्रारंभिक अवस्था में रैदास का झुकाव गुरु–आम्नायानुसार सगुण–भक्ति की ओर ही था। वे शालग्राम की प्रतिदिन पूजा करते थे। परचई व भक्तमाल के अनुसार ब्राह्मणों ने शालग्राम–पूजन पर आपत्ति की, जिसका परिहार स्वयं शालग्राम भगवान् ने रैदास की गोदी में आकर किया। परवर्तीकाल में रामानंद के शिष्यों में कबीर परम प्रभावशाली संत के रूप में उभरे और उन्होंने सगुणोपासना का खंडन कर निर्गुणोपासना का पुरजोर प्रचार–प्रसार किया, जिससे प्रभावित होकर रैदास भी सगुण से निर्गुण की ओर झुक गये। वे कबीर को गुरु तुल्य मानने लगे। संत सैन द्वारा निर्मित 'कबीर–रैदास–गोष्ठी' व अनन्तदास कृत 'रैदास की

परचई' भी इसी तथ्य को प्रमाणित करती हैं। वस्तुतः रैदास एवं कबीर सहित रामानंदादि के समय, सम्वतादि पर पुनर्विचार की आवश्यकता है, क्योंकि 12 वर्ष के कबीर से रैदास द्वारा आज्ञा लेना आदि संभव नहीं है। इन तथ्यों पर मैंने अन्यत्र गंभीर चर्चाएँ की हैं।

1.12 : रैदास–पंथियों के अनुसार रैदास का जन्म माघ सुदी पूनम, विक्रम–संवत् 1433 को हुआ–

चौदह से तैंतीस की, माघ सुदी पँदरास।
दुखियों के कल्याण हित, प्रगटे श्रीरविदास ।। [11]

और निधन 130 वर्ष की उम्र में हुआ।[12] रैदास–सम्प्रदाय वालों की उक्त तिथियाँ स्वीकार करने पर स्वामी रामानंद के निधन के समय रैदास की उम्र 44 वर्ष तथा स्वयं रैदास का निधन–वर्ष विक्रम–संवत् 1563 आता है। कबीर और रैदास की तिथियों का अवलोकन करने पर उम्र में रैदास छोटे सिद्ध होते हैं, जैसाकि हमने पूर्व में लिखा है। साथ ही प्रभाव में भी कबीर बड़े थे। यही कारण था कि रैदास कबीर को गुरु तुल्य मानते थे।[13]

1.13 : उक्तानुसार रैदास का निधन–समय विक्रम–संवत् 1563 आता है, जबकि मीरां का जन्म–संवत् ही 1561 विक्रम संवत् है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठते हैं, क्या दो वर्ष की उम्र में ही मीरां विवाहित होकर मेवाड़ चली गई। वहाँ से गुरु करने काशी चली गई और उसके मेवाड़ में लौट आने के पश्चात् रैदास मेवाड़ में आये। इन सभी प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक होने से रैदास–पंथियों ने अनंतदास की परचई में एक दोहा प्रक्षिप्त[14] किया, जिसके अनुसार विक्रम–संवत् 1584 में चित्तौड़ में बड़ा भारी दुःखपूर्ण हादसा हुआ, जिसमें रैदास की जर्जरित देह मृत हो गई। कंचन स्वरूप आत्मा कंचन हो गई। शरीर अग्नि में भस्मीभूत हो गया–

पन्द्रहसौ चउ असी में, भइ चित्तौड़ मंह भीर।
जर जर देह कंचन भई, रवि रवि मिल्यौ सरीर ।।

'इससे स्पष्ट है कि संवत् 1584 में रैदास ने चित्तौड़ में देह त्याग किया था। आधुनिक शोध पर आधारित यह मत अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है।[15] इस दोहे के आधार पर रैदास का शरीरांत चित्तौड़ में हुआ, किन्तु अनंतदास की परचई के अनुसार रैदास मेवाड़ में कुछ दिन निवास करके काशी लौट गये, जहाँ उन्होंने कबीर से भी भेंट की और अंत में वहीं वे ब्रह्मलीन हुए।[16] एक ओर अनंतदास अपनी परचई में रैदास को काशी में, मेवाड़–यात्रा करने के उपरान्त निवास करता हुआ लिखे, जबकि दूसरी ओर

चित्तौड़ में ही मरता हुआ बताए, वदतोव्याघात दोष है। रैदास–पंथियों ने मेड़तणी मीरां को रैदास से सम्बन्धित बताने मात्र के लिये ही उक्त दोहे की सृष्टि कर ली है और उसे परचई में प्रक्षिप्त करा दिया है, जो मूल परचई में मिलता ही नहीं है।

रैदास–पंथियों ने एक भ्रम और उत्पन्न किया। कुंभस्याम मंदिर के आग्नेय–कोणस्थ पंचदेवों की छत्री को रैदास की छत्री प्रचारित कर देना कि रैदास वि.सं. 1584 में मेड़तणी मीरां के बुलावे पर चित्तौड़ आये। वहाँ उनका शरीरांत हुआ। गुरु की स्मृति को चिरस्थाई करने के लिए मेड़तणी मीरां ने रैदास की छत्री बनवाई। अतः रैदास मीरां के गुरु थे। रैदासी इस छत्री को मेड़तणी मीरां व रैदास के बीच शिष्य–गुरु–सम्बन्ध होने के सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण साक्ष्य मानते हैं, किन्तु यह सारा कथन ही कल्पना–प्रसूत है।

महाराणा सांगा विक्रम–संवत् 1583 के मध्य से ही चित्तौड़ के बाहर विजय–अभियान पर निकल गया और 1584 में मरने तक चित्तौड़ नहीं आया। वह लगभग डेढ़ वर्ष तक मेवाड़ से बाहर रहा। इसी मध्य उसने खण्डार, बयाना आदि के किले जीते। खानवा के युद्ध में हारा व चंदेरी जाकर, वहाँ से आते समय कालपी में माघ सुदी 9, विक्रम–संवत् 1584 को स्वर्गवासी हुआ। खानवा में हारने के पश्चात् राणा सांगा लगभग एक वर्ष रणथम्भौर में रहता रहा, किन्तु चित्तौड़ नहीं आया। ऐसी स्थिति में यह हास्यास्पद सा लगता है कि महाराणा सांगा तो देश की रक्षार्थ यत्र–तत्र युद्ध करता फिरे और मीरांबाई रैदास को बुलाकर चित्तौड़ में वृहद्–सत्संग का आयोजन करे। गुरु के मरने पर छत्री बनवाए। वैसे भी इस समय तक चित्तौड़ में मृतकों पर छत्री निर्माण कराने की परम्परा ही नहीं थी। चित्तौड़ के महाराणा कुंभा व महाराणा सांगा इतने प्रभावशाली राणा थे, किन्तु इनकी छत्री नहीं मिलतीं। मीरां के पति भोजराज की छत्री नहीं मिलती। इतना ही नहीं, महाराणा सांगा के समय का कोई निर्माण कार्य जो उसने या उसके परिजनों द्वारा कराया गया हो, नहीं मिलता। हाँ, राणा रतनसिंह के महल अवश्य मिलते हैं। ऐसी स्थिति में तथाकथित रैदास की छत्री कभी भी, कैसे भी रैदास की छत्री नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में आगामी पृष्ठों में शिलालेखीय ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध कराये जा–रहे हैं। विशेष जानने के लिये उक्त विवरण के सम्बन्ध में उदयपुर राज्य का इतिहास पढ़ा जा सकता है।[17]

अब हमें झाली कौन थी? उनकी जाँच–पड़ताल करनी चाहिये। कुछ विद्वानों का मत है, राणा रायमल की एक पत्नी झाली थी। वीरविनोद को पढ़ने पर ज्ञात होता है, 'हलवद' गुजरात के निवासी झाला राजपूत मेवाड़ में सर्वप्रथम विक्रम–संवत् 1563 में

राणा रायमल कुंभावत के शासनकाल में आये।[18] स्वाभाविक है, झालाओं का अपनी पुत्री को रायमल से विवाहित करना। इतिहास इस बात का साक्षी है कि राणा रायमल की एक पत्नी झाली थी। राणा रायमल का शासनकाल 1530 से 1566 विक्रम–संवत् है। इसके पश्चात् इसका पुत्र सांगा चित्तौड़ का स्वामी हुआ, जो 1584 में मरा। राणा कुंभा 1525 में ही अपने पुत्र उदयसिंह द्वारा कत्ल कर दिया गया। अतः विक्रम–संवत् 1525 से 1530 तक चित्तौड़ का स्वामी यही पितृघाती उदयसिंह रहा। राणा कुंभा मोकलोत विक्रम–संवत् 1515 से 1525 के मध्य अधिकांशतः कुंभलगढ़ में रहा।[19] इसकी मृत्यु भी यहीं हुई। राणा कुंभा ने ही कुंभलगढ़ का विशाल गढ़ बनवाया। म.म. ओझा ने लिखा है, इस गाँव में एक साथ 700 झालरें बजती थीं जिसका तात्पर्य है, कुंभा के समय इसमें 700 ब्राह्मण व 700 मंदिर थे। इसीने 'कुंभमेरू' नामक किला, एक विशाल बाग तथा कई मंदिर बनवाये थे। 'नीचे वाली भूमि में झाली बाव (बावड़ी) और मामदेव का कुंड है। इसी कुंड पर बैठे हुए महाराणा कुंभा अपने ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह (ऊदा) के हाथ से मारे गये थे।'[20] राणा कुंभा मोकलोत के कई राणियाँ थी, किन्तु म.म. ओझा को दो के ही नाम ज्ञात हो सके। दो का विवरण देते हुए म.म. ओझा लिखते हैं 'राणा कुंभा के बहुत सी स्त्रियाँ थीं, जिनमें से मात्र दो के नाम ज्ञात होते हैं– **1.** कुंभलदेवी **2.** अपूर्वदेवी।'[21] किन्तु अब 'चित्तौड़–उदयपुर का पाटनामा' नामक ग्रंथ प्रकाश में आ गया है, जिसमें महाराणा कुंभा की पत्नियों के 32 नाम मिले हैं, जिनमें 3 रानियाँ झाली थीं।[22] झाला–राजवंश नामक ग्रंथ के अनुसार इन 3 में से एक का नाम मीरांकुँवरी था।[23]

ऊपर के ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकलते हैं। यद्यपि झालाओं का मेवाड़ में आगमन विक्रम–संवत् 1563 में हुआ तथापि ये अपनी बहिन–बेटियाँ मेवाड़ के राणाओं तथा अन्य सरदारों को अपने पैतृक–स्थान पाटण, हलवद आदि से ही देते आ रहे थे।[24] राणा कुंभा मोकलोत की अनेक राणियों में से कम से कम तीन राणी झाली थीं।[25] रैदास–पंथियों के अनुसार रैदास का जन्म 1433 विक्रम–संवत् में हुआ। वे 130 वर्ष तक जीवित रहे तथा 1563 में ब्रह्मलीन हो गये। चूँकि झाली रानी ने रैदास को मेवाड़ में पधारने पर सर्वप्रथम राजबाग में ठहराया। अतः वह राजबाग कुंभलगढ़ का ही राजबाग है, जिसको राणा कुंभा ने तैयार कराया (देखेंः ओझा) क्योंकि चित्तौड़ में तो कोई राजबाग था ही नहीं। राणा कुंभा ही कुंभलगढ़ में स्थाई रूप से रहा। यद्यपि उसकी राजधानी चित्तौड़ थी तथा वह चित्तौड़ का ही स्वामी कहलाता था। कुंभलगढ़ का वातावरण पूर्णतः भक्ति–भाव–युक्त था, क्योंकि इस गाँव में उस–समय 700 ब्राह्मण व उनके 700 मंदिर थे। अनंतदास ने भी मेवाड़ में हुए विवाद के समय ब्राह्मणों की संख्या 700 ही बताई है। फिर राणा कुंभा स्वयं भगवद्भक्त, श्रेष्ठ कवि तथा

कलाविद् था। ऐसे राणा की संगति में रहकर झाली राणी के मन में भी भक्तिभाव उपज आया और उसने काशी पहुँचकर रैदास से दीक्षा ली। रायमल कभी भी कुंभलगढ़ में नहीं रहा। उसकी भक्तिभाव की कोई चर्चा इतिहास ग्रंथों में नहीं मिलती। फिर इसकी राणी झाली को रैदास की शिष्या मानने में सबसे बड़ी बाधा कालिक प्रमाण की आती है। रायमल गद्दी पर 1530 में बैठा। बैठते ही उसकी राणी काशी में दीक्षा लेने चली जाये, संभव नहीं है। वह कम से कम 5–10 वर्ष बाद गई होगी। तब–तक रैदास की उम्र 107 वर्ष की हो जाती है। 107 वर्ष के वृद्ध महात्मा से हजारों मील की पैदल यात्रा करवाना न झाली को अभीष्ट रहा होगा और न कोई बुद्धिमान इसकी कल्पना करेगा। निश्चय ही रैदास अपनी 80–90 वर्ष की उम्र में मेवाड़ आये होंगे। इस उम्र में आना मानने से यह काल रायमल का न होकर कुंभा का इतिहास सम्मत ठहरता है। कुंभा 1515 से 1525 के मध्य कुंभलगढ़ में ही रहा। अतः हमारा दृढ़ निश्चय है 'झालीबाव' बनवाने वाली झाली रानी के आग्रह पर ही संत रैदास विक्रम–संवत् 1515 से 1520 के मध्य किसी समय कुंभलगढ़ पधारे। इस समय रैदास की उम्र 85 वर्ष के आस–पास ठहरती है जो 130 वर्ष की उम्र पाने वाले व्यक्ति के लिये घूमने–फिरने, यात्रा–प्रवास करने के लिये सर्वथा उपयुक्त है। अतः रैदास को राजबाग में ठहराना तथा कुंभलगढ़ में झाली–बाव का होना दो ऐसे ठोस ऐतिहासिक प्रमाण हैं जो झाली को कुंभा की पत्नी सिद्ध करने के लिये पर्याप्त से कहीं ज्यादा सुदृढ़ आधार हैं। हमारा सुदृढ़ मन्तव्य है कि झाली कुंभा की पत्नी थी और वही रैदास की शिष्या थी। मेड़तणी मीरां का रैदास से दूर–दूर का भी सम्बन्ध नहीं था। रायमल कुंभावत की रानी झाली का रैदास से कोई सम्बन्ध नहीं था, ऐसा हमारा पक्का निर्णय कालिक–प्रमाण के आधार पर है।

अब प्रश्न उठाया जा सकता है कि आखिरकार रैदास–पंथियों ने किस आधार पर यह मान लिया कि रैदास का मेड़तणी मीरां से सम्बन्ध रहा था। इस विषय में चिंतन–मनन करने पर ज्ञात होता है कि राजस्थानेतर उत्तरभारतीय यदि मेवाड़ को जानते हैं तो वे या तो मेड़तणी मीरांबाई या महाराणा प्रताप और या रानी पद्मिनी के कारण जानते हैं। झाली अपने समय की रानी अवश्य थी, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में उसने मेड़तणी मीरां की भाँति कोई विशिष्ट मुकाम हासिल नहीं किया था कि जिसके कारण वह जगत् प्रसिद्ध होती। उसके बारे में चर्चाएँ रैदास के कारण ही होती हैं, उस स्वयं की किसी साहित्यिक विशिष्टता के कारण नहीं। रैदास–पंथियों को झाली मीरां और मेड़तणी मीरां में भेद ज्ञात न हो सका। उन्होंने मेड़तणी मीरां को ही झाली मीरां मान ली और प्रचारित कर दिया कि रैदास की शिष्या का नाम मेड़तणी मीरां था। वे तो मेड़तणी मीरां को ही जानते थे। झाली मीरां को भूल गये। हमारा पक्का विश्वास

है, यही सबसे अधिक विश्वसनीय कारण है जिसके कारण रैदास–पंथी लेखक मेड़तणी मीरां को ही झाली मीरां समझ गये। आगे के लोगों ने बिना अधिक छान–बीन किये इसको यथारूप स्वीकार कर लिया। वास्तव में, यदि मेड़तणी मीरां का रैदास से थोड़ा भी सम्बन्ध होता तो अनंतदास इस तथ्य को लिखने में तनिक भी संकोच न करता। इतना ही नहीं, नारायणदास 'नाभा' या उनके भक्तमाल की 'भक्तिरसबोधनी' तथा 'भक्तदामगुणचित्रणी' टीकाओं के टीकाकर प्रियादास व बालकराम मीरां सम्बन्धी छप्पय की टीका लिखते समय मीरां–रैदास–सम्बन्ध को अवश्य रेखांकित करते–लिखते, किन्तु किसी ने भी भक्तमाल की टीका में यह सम्बन्ध उल्लिखित नहीं किया।

एक प्रश्न और उठाया जा सकता है। यदि मेड़तणी मीरां और रैदास का परचई, भक्तमाल तथा उक्त ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर सम्बन्ध सिद्ध करना अशक्य है तो फिर पदों में आये रैदास के उल्लेख का क्या होगा? इस पर हमारा कहना है कि एक हस्तलिखित गुटके के जिस पद में रैदास का नाम आया है, वही पद जब अन्य गुटके में लिखा मिला है तब उसमें नाम हरीदास का आया है। इसका सीधा सा तात्पर्य है, मेड़तणी मीरां का सम्बन्ध न रैदास से था और न हरीदास से। जो गायक या लेखक जिस संप्रदाय का होता था, वह उसी के अनुसार पद में नाम की पंक्ति जोड़ कर गाता या लिखता था। इसी कारण हमें अलग–अलग गुटकों में एक ही पद में अलग–अलग नाम मिल रहे है।[26] हमारा पक्का विचार है, जिन पदों में ये दोनों नाम मिल रहे हैं, उन पदों की वे पंक्तियाँ निश्चय ही प्रक्षिप्त हैं।

अब आचार्य परशुराम प्रभृति विद्वानों के उस मत की समीक्षा करनी चाहिये, जिसके अनुसार स्वयं रैदास नहीं, कोई रैदास–पंथी संत मीरां के गुरु थे। चतुर्वेदीजी ने संभावना व्यक्त की है कि मीरां रैदास–पंथी बिट्ठलदास से दीक्षित हुई होगी, जिनके बारे में भक्तमालकार ने लिखा है–

बिठलदास हरि भक्ति के दुहू हाथ लाडू लिया ।।
आदि अंत निर्वाह भक्त पद रज सिर धारी।
रह्यौ जगत से ऐंड तुच्छ जानैं संसारी ।।
प्रभुता पति की पधति प्रगट कुल दीप प्रकासी ।।
महंत सभा में मान जगत जानैं रैदासी।
पद पढत भई परलोक गति गुरु गोविन्द जुग फल दिया।
बिठलदास हरि भक्ति के दुहू हाथ लाडू लिया ।। [27]

इस छप्पय से बिट्ठलदास की निम्न विशेषताएँ ज्ञात होती हैं (क) वे साधु संतों की चरणधूलि को अपने मस्तक पर रखते थे, अर्थात् वे संत मात्र को पूज्य और वंदनीय मानकर उनकी तन–मन से अभ्यर्थना करते थे। (ख) वे भगवद्विग्रह के समक्ष पद गाते हुए नृत्य करते थे। (ग) वे रैदासी–रैदास की जाति में उत्पन्न हुए थे, जिसके कारण वे रैदासी कहलाते थे। (घ) वे संसार से सर्वथा और सर्वदा उदासीन ही रहे क्योंकि उन्होंने संसार को असत्य जान लिया था। (ङ) वे साधुओं की बड़ी–बड़ी सभाओं में भी सम्मान पाते थे। (च) प्रभुता (लक्ष्मी) के पति विष्णु अर्थात् लक्ष्मीनारायण की पद्धति वाले संप्रदाय रूपी कुल को प्रकाशित करने वाले कुलदीपक थे। (छ) भगवद्विग्रह के समक्ष पद गाते समय भगवद्भावापन्न होकर वहीं निज इष्ट में लीन हो गये।

नाभाजी द्वारा बताई गई बिट्ठलदासजी की उक्त विशेषताओं में से कुछ मीरांबाई से मेल खाती हैं, किन्तु इनका विशेष परिचय उक्तातिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता है। यदि ये मीरां के गुरु होते तो निश्चय ही इनके बारे में कुछ न कुछ विशिष्ट जानकारियाँ ज्ञात होतीं, जो हैं नहीं। फिर ये रैदास की भाँति लक्ष्मीनारायण पद्धति वाले श्रीसंप्रदाय के अंग थे, जिसमें सीताराम की उपासना प्रचलित थी और है, जबकि मीरां प्रारंभ से अंत तक श्रीकृष्ण की ही उपासिका बनी रही। रैदास ने अपनी वाणी में भगवन्नाम–जप पर बल दिया है। रैदास निर्गुणी संत थे। अतः उनके यहाँ नाम के अलावा रूप, लीला व धाम की कोई प्रतिष्ठा नहीं थी, जबकि मीरां की नाम, रूप, लीला व धाम चारों के प्रति अन्नयनिष्ठा थी। वस्तुतः मीरां रैदास या रैदासी संत से दीक्षित होती तो निश्चय ही वह गुरु–आम्नाय का ही अनुसरण कर नाम–जप का ही आश्रय लेती। इसके अतिरिक्त मीरां के पदों में रैदास का नाम मिलता है, किसी रैदासपंथी संत या बिट्ठलदास का नहीं। अतः इस बात की कतई संभावना नहीं है कि मीरां का रैदास या रैदासी–पंथी किसी संत–महंत से सम्बन्ध था।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात, मीरां को मेवाड़ में अनेक कष्ट दिये गये। प्रारंभ में वह उन कष्टों से विचलित नहीं हुई, किन्तु जब राणा कष्ट दर कष्ट देता ही चला गया, तब उसका धैर्य टूट गया और उसने मेवाड़ को छोड़ने का निर्णय कर लिया। यदि रैदास या रैदास–पंथी कोई संत–महंत मीरां के गुरु होते तो वह ब्रजक्षेत्र और ब्रजक्षेत्र से द्वारका न जाकर सीधे काशी जाती जहाँ रैदासियों का मठ, गद्दी तथा महंताई की परंपरा होती, किन्तु मीरां तो पूरे जीवन–भर कभी काशी गई ही नहीं। इस तर्क से भी यही सिद्ध होता है कि मीरां का रैदास या रैदास–पंथी किसी भी संत से कोई सम्बन्ध नहीं था।

चित्तौड़–दुर्ग मे कुंभस्याम–मंदिर के दक्षिणस्थ छोटे मंदिर को आजकल मीरां–मंदिर के नाम से प्रचारित कर रखा है और इसी के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है कि प्रसिद्ध मेड़तणी मीरां के गुरु प्रसिद्ध निर्गुणी संत रैदास थे। इस सम्बन्ध में उस चार स्तंभों वाली छत्री को रैदास की छत्री बताने का दुस्साहस किया जा रहा है जो इस मंदिर के आग्नेय कोण में स्थित है। वस्तुतः न तो तथाकथित यह मंदिर मीरां का मंदिर है और न यह तथाकथित छत्री रैदास की छत्री है।

इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार जगदीशसिंह गहलोत का कथन है– 'जयमल और कल्ला की छत्रियाँ, रावत पता का चबूतरा, कुंभश्याम का मंदिर 1, तुलजा भवानी2, अन्नपूर्ण, चत्रंगकुंड, कालिकादेवी, अदबदजी (अदभुतजी) सतबीस देवला आदि के मंदिर, सूर्यकुंड, भीमगोडी, गौमुख आदि तालाब और पद्मिनी, जयमल, पत्ता, गोरा–बादल और हिंगलू आहाड़ा के महल और महाराणा फतहसिंह का बनाया नया महल देखने योग्य हैं।' इस उद्धरण की दो पाद टिप्पणियाँ हैं। पहली का पाठ है– 'इसे भ्रम से लोग भक्त शिरोमणि मीरांबाई का मंदिर कहते हैं।' दूसरी टिप्पणी का पाठ– 'विक्रम की 16वीं शताब्दी में इसे बणवीर ने बनवाया था।'[28]

राजस्थान के 20वीं शताब्दी के अबुलफजल मुंशी देवीप्रसाद 'मीरांबाई का जीवन चरित्र' के पृष्ठ 31 पर लिखते हैं– 'चीतोड़ के किले पर कुंभशामजी का मंदिर कुंभा राणा का बनाया हुआ है। उसके पास एक और मंदिर है जिसको मीरांबाई का बनाया बताते हैं। यह मंदिर मैंने भी देखा है और एक मंदिर एकलिंग महादेवजी के पास भी उदेपुर से 10 मील की दूरी पर मीरांबाई के नाम से मशहूर है, उसको भी मैं देख चुका हूँ। मगर–दोनों में कोई लेख नहीं है कि जिससे असल हाल मालूम हो।'[29]

मुंशीजी की बात ठीक है कि दोनों ही मंदिरों व उक्त छत्री में कोई शिलालेख नहीं है, किन्तु सत्य यह भी है कि कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में चित्तौड़ के उक्त दोनों मंदिर तथा एकलिंगजी से पूर्वस्थ मीरांबाई का मंदिर राणा कुंभा द्वारा निर्मित उल्लिखित हैं। अतः लिखित प्रमाण उपलब्ध हो जाने के उपरान्त संदेह के लिये लेशमात्र भी अवकाश नहीं रहता कि ये तीनों ही मंदिर मीरांबाई के द्वारा निर्मित नहीं हैं। सम्बन्धित उद्धरण पढ़ें।

उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग एक, लेखक महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ 390 का पाठ– "कुंभस्वामी2 और आदिवराह3 के मंदिर, रामकुंड, जलयंत्र (अरहट, रहँट) सहित कई बावड़ियाँ4 और कई तालाब एवं विक्रम संवत् 1507 कार्तिक वदि 8 को चित्तौड़ पर विशिखा (पोल) बनवाई।"

टिप्पणी सं. 2 का पाठ–**'सर्वोर्वीतिलकोपमं मुकुटवच्छ्रीचित्रकूटाचले।**
कुंभस्वामिन आलयं व्यरचयच्छ्रीकुंभकर्णो नृपः ।।28।'
टिप्पणी 3 का पाठ–**'अकारयच्चादिवराहगेहमनेकधा श्रीरमणस्य मूर्तिः ।।31।।'**

'कुंभस्वामी और आदिवाराह के दोनों विष्णुमंदिर चित्तौड़ में एक ही ऊँची कुर्सी पर पास–पास बने हुए हैं। एक बहुत ही बडा और दूसरा छोटा है। बड़े मंदिर की प्राचीन मूर्ति मुसलमानों के समय तोड़ डाली गई, जिससे नई मूर्ति पीछे से स्थापित की गई है। इस मंदिर की भीतरी परिक्रमा के पिछले ताक में वाराह की मूर्ति विद्यमान है। अब इसी को कुंभस्वामी (कुंभस्याम) का मंदिर कहते हैं। लोगों में यह प्रसिद्धि हो गई है कि बड़ा मंदिर महाराणा कुंभा ने और छोटा उसकी राणी मीरांबाई ने बनवाया था; इसी जनश्रुति के आधार पर कर्नड टॉड ने मीराँबाई को महाराणा कुंभा की राणी लिख दिया है; जो मानने के योग्य नहीं है। मीरांबाई महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की स्त्री थी, जिसका विशेष परिचय इस महाराणा सांगा के प्रसंग में देंगे। उक्त बड़े मंदिर के सभा–मंडप के ताकों में कुछ मूर्तियाँ स्थापित हैं, जिनके आसनों पर विक्रम–संवत् 1505 के कुंभकर्ण के लेख हैं जिनसे पाया जाता है कि वह मंदिर उक्त सम्वत् में बना होगा।'[30]

उक्त उल्लेख से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि बड़ा मंदिर आदि वाराह का तथा छोटा मंदिर कुंभस्वामी का था। इनको कुंभा ने बनवाया 'व्यरचयच्छ्रीकुंभकर्णौ नृपः'। दोनों का निर्माण एक साथ हुआ, जिसमें से आदि वाराह के मंदिर की कुछ मूर्तियों के आसनों पर विक्रम–संवत् 1505 उत्कीर्ण है। दोनों विष्णुमंदिर हैं। 'श्रीरमणस्यमूर्ति' दोनों मंदिरों के पिछवाड़े में वाराह व विष्णु की मूर्तियाँ हैं। मंदिर शिल्प का यह नियम है कि जिस मंदिर में जिस देव की मूर्ति स्थापित की जाती है उसी की मूर्ति उसके पीछे की दीवार पर उत्कीर्ण की जाती है। एक में भी गिरिधरगोपाल की मूर्ति नहीं है। फिर मंदिर बनवाने वाले का नाम स्पष्टतः राणा कुंभा का 'कुंभकर्ण' नाम उक्त कीर्तिस्तंभ–प्रशस्ति–श्लोकों में आया है। ऐसी स्थिति मे इनमें से एक भी मंदिर को मीरां का मंदिर नहीं कहा जा सकता।

अब एकलिंगजी के मंदिर के सामने वाले मीरां मंदिर के सम्बन्ध में ओझाजी की टिप्पणी पढ़िये। पृष्ठ 323–324 उक्त ग्रंथ– 'चित्तौड़ के कुंभस्वामी के विशाल मंदिर के बाहरी ताकों में अधिक ऊँचाई पर भिन्न–भिन्न हाथों वाली कई प्रकार की विष्णु की मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जो कुंभा की कल्पना से तैयार की गई हों, ऐसा अनुमान होता है। अनुमान 30 वर्ष पूर्व मैं अपने एक मित्र के साथ आबू पर अचलेश्वर

के मंदिर के पास वाला विष्णुमंदिर (कुंभस्वामी का मंदिर) देख रहा था; उसमें न कोई मूर्ति थी और न शिलालेख। उसके मंडप के ऊँचे ताकों में विभिन्न प्रकार की विष्णु मूर्तियाँ देखकर मैंने उस मित्र से कहा कि यह मंदिर तो महाराणा कुंभा का बनवाया हुआ प्रतीत होता है। इस–पर उसने पूछा कि ऐसा मानने के लिये क्या कारण है। मैंने उत्तर दिया कि ऊँचे–ऊँचे ताकों में जो मूर्तियाँ हैं, वे ठीक चित्तौड़ के कुंभस्वामी के मंदिर के ताकों की मूर्तियों जैसी हैं। एकलिंगजी से पूर्व का मीरांबाई का मंदिर (कुंभमंडप) देखते हुए भी ठीक ऐसा ही प्रसंग उपस्थित हुआ था। पीछे से जब मुझे कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति की विक्रम–संवत् 1735 की हस्तलिखित प्रति मिली, तब उसमें उक्त दोनों मंदिरों का कुंभा द्वारा निर्माण होना पढ़कर मुझे अपना अनुमान ठीक होने की बड़ी प्रसन्नता हुई।'[31]

ऊपर उद्धृत उद्धरणों से यह पूर्णतः प्रमाणित हो जाता है कि चित्तौड़गढ़ में बना कुंभस्याम–मंदिर व उसके उत्तर में बना वाराह–मंदिर राणा कुंभा द्वारा बनवाये गये थे। इन मंदिरों के निर्माण में मीरांबाई का कोई योगदान नहीं था। चूँकि उसके पीहर मेड़ता में भी विष्णु के चारभुजानाथ का ही मंदिर था, जिसमें वह प्रतिदिन दर्शन करने जाया करती थी। जब वह विवाहित होकर चित्तौड़ आई, तब वह इन दोनों मंदिरों में दर्शन आदि करने आती रही होगी। चूँकि उसके इष्ट गिरिधरगोपाल थे। अतः उसने अपने पति भोजराज की स्मृति में मुरलीधर श्रीकृष्ण का मंदिर बनवाया था। मुरलीधर का मंदिर बन जाने पर उसका दर्शनीय मुख्य मंदिर यही हो गया होगा। कुंभस्याम व वाराह मंदिर उससे छूट से गये होंगे। मुगलों ने मुरलीधर के मंदिर को सर्वथा ध्वस्त कर दिया। मूर्ति भग्न कर दी। अतः उस मंदिर का कोई अवशेष शेष नहीं रहा। मीरां के साथ जनता को किसी न किसी मंदिर से सम्बद्ध करना था और उसने भ्रमवश कुंभस्याम मंदिर को मीरां मंदिर बना डाला व वाराह मंदिर को कुंभस्याम मंदिर में तब्दील कर दिया। इसीलिए कर्नल टॉड जैसा इतिहासकार गच्चा खा गया और उसने मेड़तणी मीरांबाई को कुंभा की पत्नी लिख डाला। मुंशी देवीप्रसादजी ने बड़ा ही सटीक लिखा है–'कर्नल टाड ने अपनी तवारीख टाड राजस्थान में मीरांबाई को राणा कुंभा की राणी लिखा है और इसी पर से बाबू कार्तिकप्रसाद ने भी जीवन चरित में मीरांबाई का ब्याह राणा कुंभा से रचाया है। सो यह बिल्कुल गलत है, क्योंकि राणा कुंभा तो मीरांबाई के पति कुँवर भोजराज के परदादे थे और मीरांबाई के पैदा होने से 25 या 30 बरस पहिले मर चुके थे। मालूम नहीं कि यह भूल राजपूताने के ऐसे बड़े तवारीख लिखने वाले से क्योंकर हो गई है।'[32] अतः सत्य यही है कि इन दोनों मंदिरों से ही नहीं, एकलिंगजी के सामने तथाकथित मीरां मंदिर से भी मीरांबाई का कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि सम्बन्ध कल्पित

करना ही है तो इतना माना जा सकता है कि मीरां इन मंदिरों में भगवान् का दर्शन करने आती होगी। इनमें उसने एकतारे पर भजन गाये होंगे। संतों का सत्संग किया होगा। नाची भी इन्हीं मंदिरों में होगी। यदि इस आधार पर इन्हें मीरां मंदिर कहें तो मैं समझता हूँ किसी को भी आपत्ति नहीं होगी, किन्तु हाँ, मीरांबाई और रैदास का शिष्य–गुरु का सम्बन्ध इन मंदिरों के कारण कैसे भी सिद्ध कर पाना मुश्किल ही नहीं, असंभव, सर्वथा असंभव है।

अब प्रश्न रह जाता है, कुंभस्याम मंदिर के आग्नेय कोणस्थ चतुस्तंभीय छत्री का कि आखिर यह छत्री किसकी है। कुंभा संगीत, शिल्प, साहित्य का अप्रतिम ज्ञाता था। इतना ही नहीं, उसे अपने पूर्वजों व उनके बल–शौर्य और इतिहास पर भी अपूर्व गर्व था। उसने कीर्तिस्तंभ बनवाया। कई शिलाओं पर उसने अपने पूर्वजों का इतिहास, स्वयं की विजयों का इतिहास व निर्माण कार्यों का उल्लेख करवाया। इनमें से अब मात्र 2 शिलाएँ मिलती हैं। किसी पंडित ने इन शिलाओं के श्लोकों को विक्रम–संवत् 1735 में 22 पन्नों पर उतार लिया, किन्तु उस समय तक भी कई शिलाएँ टूट चुकी थीं। कुंभा का वर्णन कुल 187 श्लोकों में था, जिनमें से उक्त पुस्तक में 43 से 124 तक श्लोक नहीं हैं।[33] हो सकता है, इन नष्ट श्लोकों में इस छत्री का विवरण रहा हो। वैसे छत्री की भीतरी छत में एक पाँच धड़ किन्तु एक मस्तक युक्त आकृति उत्कीर्ण है। मस्तक पर तिंगल तिलक उत्कीर्ण है जो मेरे अनुसार सूर्य की आकृति है। भारत में पंच–देवोपासना का प्रचलन है। अतः पाँच धड़ पाँच देवों के प्रतीक हैं। बीच में जो मस्तक है, वह सूर्य का है, क्योंकि चित्तौड़ के महाराणा अपने आपको सूर्यवंशी मानते हैं। सूर्य प्रत्यक्ष देव हैं। अतः सारा ब्रह्मांड सूर्य के इर्दगिर्द ही है। इसीलिए अन्य चारों देवों को सूर्यदेव में अन्तर्भुक्त बताकर सूर्य को प्रधान बताते हुए उक्त छत्री का निर्माण राणा कुंभा ने कराया। इसका प्रसिद्ध निर्गुणी संत रैदास से कोई लेना–देना नहीं है। यह छत्री पंचदेवों की सम्मिलित छत्री है, जिसमें सूर्य को प्रधानता दी गई है। जैसे जनता ने भ्रमवश इतिहास प्रसिद्ध कुंभस्याम मंदिर को मीरां–मंदिर बना डाला, वैसे ही अज्ञानवश सूर्य की छत्री को रैदास की छत्री बना डाला।

मैं यहाँ प्रबुद्ध पाठकों से कुछ प्रश्न करना चाहूँगा। क्या किसी भी काल के विष्णु–मंदिर–परिसर में किसी का दाह–संस्कार होने के प्रमाण मौजद हैं? यदि नहीं हैं तो फिर उक्त मंदिर परिसर में संत रैदास का दाह–संस्कार कैसे हो सकता है। जब दाह–संस्कार ही नहीं हो सकता, तब यह छत्री रैदास की कैसे हो सकती है? मेवाड़ में आने पर जिन 700 ब्राह्मणों ने रैदास का विरोध व बहिष्कार किया, पंक्ति में साथ बैठकर भोजन नहीं किया, उन्होंने ही संत रैदास का अग्निसंस्कार मंदिर परिसर में कैसे होने दिया। यदि नहीं होने दिया तो यह छत्री रैदास की कैसे हो सकती है?

यदि यह छत्री रैदास की है तो इसका उल्लेख इसमें उत्कीर्ण क्यों नहीं है, जबकि वाराह मंदिर के निर्माणकाल का उत्कीर्णन मंदिर में ही है। इतना ही नहीं, मंदिर का निर्माण जिन–जिन सिलावटों ने किया, उन–उन ने अपने–अपने नाम मंदिर की बाहरी दीवारों पर उत्कीर्ण कर रखे हैं, किन्तु इस छत्री में एक अक्षर तक उत्कीर्ण नहीं है।

इसका शिल्प मंदिरों के शिल्प से बिल्कुल मेल नहीं खाता। यह छत्री बिल्कुल साधारण रूप में बनी हुई है। इसका तात्पर्य इतना ही है कि यह कोई बहुत महत्त्वपूर्ण निर्माण नहीं था। अतः इसे खुले रूप में सादा स्वरूप में बनवाई गई। चूँकि सूर्य पूर्व में उदित होकर आग्नेय, दक्षिण, पश्चिम इस प्रकार भ्रमण करते हैं। अतः शिल्पज्ञ राणा कुंभा ने इसे मंदिर के आग्नेयकोण में बनवाया।

इसका उल्लेख मेवाड़ के किसी भी प्रामाणिक इतिहास ग्रंथ में नहीं है कि यह संत रैदास की छत्री है। यदि इसका रैदास से जरा सा भी सम्बन्ध होता तो निश्चय ही इसका वर्णन मिलता। चित्तौड़ के इतने बड़े गढ़ में किसी भी मृतक की छत्री मीरांकालीन नहीं है। जैमल, कल्ला आदि की छत्रियाँ परवर्तीकालीन हैं। वस्तुतः मीरां के समय तक मृतकों पर छत्रियाँ बनाने का प्रचलन चित्तौड़ में नहीं था। यह मुगलों के संसर्ग से राजपूतों में प्रचलित हुआ। यदि यह प्रचलन पहले से होता तो निश्चय ही अनेक छत्रियाँ चित्तौड़गढ़ में मिलतीं। अतः यह कैसे भी मानने योग्य नहीं है कि आलोच्य छत्री रैदास की है।

संदर्भ व टिप्पणियाँ

1. मीरां वृहत्पदावली, सम्पादक पुरोहित हरिनारायण शर्मा, विद्याभूषण पदांक 423 की अंतिम पंक्तियाँ। मीरांबाई : प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली, लेखक ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल के पदांक 243 में जिसका संकलन दो गुटकों के आधार पर हुआ है। उसकी पंक्तियों में 'रैदास' के स्थान पर 'हरिदास' पाठ आया है। अर्थात् पद एक ही है, जबकि भिन्न–भिन्न हस्तलेखों में गुरु का नाम भिन्न–भिन्न लिखा मिला है। प्रश्न होता है, क्या एक ही कवि अपने एक ही पद में गुरु का नाम भिन्न–भिन्न लिख सकता है? उत्तर होगा, नहीं। प्रति प्रश्न होगा, फिर इस नाम भिन्नता का कारण क्या है? उत्तर होगा, यह घालमेल गायकों द्वारा की गई है जो धीरे–धीरे लिखित रूप में आकर प्रमाण स्वरूप बन गई है। जिसको 'हरीदास' नाम वाली पंक्ति मिली उसने मीरां के गुरु का नाम हरीदास लिख दिया तथा जिसको रैदास नाम वाली पंक्ति मिली उसने 'रैदास' को मीरां का गुरु लिख दिया। वस्तुतः मीरां के गुरु न रैदास थे और न हरीदास ही। मीरां ने कोई गुरु बनाया ही नहीं। हाँ, उसके विद्यागुरु अवश्य थे जिनका नाम गजाधर तिवारी काँटिया था। आध्यात्मिक गुरु यदि हम किसी को कह सकते हैं तो वह है, मीरां की माँ जिसने उसे अध्यात्म मार्ग पर अनजाने ही आरूढ़ कर दिया। मीरां के पदों में जितनी सशक्त अभिव्यज्जना नाम, रूप, लीला,

धाम चतुष्टय में से रूप की हुई है, उतनी नाम की नहीं हुई है। यदि नामजापी रैदास या हरीदास से मीरां दीक्षित हुई होती तो उसके पदों में नाम की महिमा का बखान इन संतों की वाणियों में आये नाम–माहात्म्य की तरह ही होता, जो है नहीं। अतः पूर्णतः निश्चित है कि मीरां ने किसी को गुरु बनाया ही नहीं।

2. *रयदास जास परसाद गुरु, संत महँत परचे सबन।*
वाम काम तज राम भज, प्रेम भगत मीरां निपुन ।।

–संत दयालदासजी, खेड़ापा निवासी कृत भक्तमाल, मूल पदांक 309 का अंश

3. *अलख निरंजन विनऊँ तोही। साध संगत्त सदा दे मोही ।।*
रामानँद को अनंतानंदा। सदा प्रगट ज्यूं पूरण चंदा ।।
जाको क्रिसनदास अधिकारी। सब कोइ जाणैं दूधाधारी ।।
अग्र के सिष्य बिनोदी पाई। ताके दास अनंत कहाई ।।

–नामदेव की परची ।। विक्रम–संवत् 1869 की हस्तलिखित प्रति का पाठ।

4. अनंतदास ने नामदेव की परचई का निर्माण–काल 1645 विक्रम–संवत् लिखा है। अतः हमारा विश्वास है, अनंतदास ने रैदास की परचई भी इसी संवत् के आस–पास लिखी होगी।

संमत सोलासौ पैताला। बाणी बोलै वचन रसाला ।।

–नामदेव की परचई छंदांक।

5. इस परचई की कई प्रतियाँ हमारे निजी संग्रह में उपलब्ध हैं। दादू महाविद्यालय व दादूधाम, नरायना के हस्तलिखित ग्रंथागारों में भी कई पुस्तकें व गुटके ऐसे हैं, जिनमें अनंतदास की समस्त परचइयों, किसी–किसी में कुछ परचइयों का संकलन है। हमने करीब–करीब सभी प्रतियों की परचइयों को पढ़ा है। सभी से इस ही विवरण की पुष्टि होती है। अनंतदास कृत रैदास की परचई की सर्वाधिक प्राचीन हस्तलिखित प्रति पोथीखाना, सिटी पैलेस, जयपुर की है, जिसका लिपिकाल 1719, विक्रम–संवत् है। मैंने विक्रम–संवत् 1719, 1722, 1733, 1744, 1771, 1844, 1858, 1869, 1903 व दो बिना संवत् सहित तथा 7 प्रकाशित रैदास की परचियों के आधार पर (कुल 19 परचई) पाठ–भेद–युक्त सटीक संस्करण इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। यहाँ प्रायः समस्त उदाहरण इसी सम्पादित प्रति से उद्धृत किये गये हैं।

6. जो अध्येता राजपूती परंपराओं तथा इतिहास से परिचित नहीं है, उनके लाभार्थ यह बता देना परमावश्यक है कि राजपूतों की पत्नियाँ हमेशा अपने पीहर के गोत्र अथवा प्रसिद्ध अटक (उपमान) से ही बोली और पहचानी जाती थीं। जैसे शिशोदियों की लड़की राठौड़ों में विवाहित होने पर भी आजीवन शिशोदनी ही कहलाती रहती थी। जब उसकी संतानों की चर्चा होती थी तब भी 'शिशोदनी रानी से जन्मा अमुक नाम का कुँवर.........' आदि ही से उनकी पहचान होती थी। **(देखें मीरांबाई का जीवनचरित्र, मुंशी देवीप्रसाद, पृष्ठ 12 की टिप्पणी)** यहाँ झाली का तात्पर्य झाला राजपूतों के घर जन्मी लड़की से है जो शिशोदिये राणा को विवाहित हुई थी। अनंतदास ने अपनी परचई में सर्वत्र रैदास–शिष्या रानी का नाम झाली ही लिखा है। कहीं भी मीरां का नामोल्लेख नहीं है। यही नहीं, भक्तमाल व उसकी प्रियादासी, भक्तदामगुणचित्रणी आदि टीकाओं में भी सर्वत्र रानी का नाम झाली ही लिखा मिलता है। उक्त 19 हस्तलिखित व प्रकाशित प्रतियों में ही नहीं, अन्य समस्त प्रतियों में भी झाली शब्द ही है। किसी में भी मीरां शब्द नहीं है। प्रसिद्ध

भक्ता मीरां, झाली न होकर राठौड़ी मेड़तणी थी। अतः दोनों का ऐक्य होना सर्वथा असम्भव है।

7. हिन्दी–साहित्य–कोश, पृष्ठ 705, लेखकः बद्रीनारायण श्रीवास्तव।

8. कबीर, पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ 31, लेखकः आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।

9. उत्तरी भारत की संत–परंपरा, प्रथम–संस्करण, पृष्ठ 139।

10. गुरु नानकदेव, पृष्ठ 27, ले. डॉ. मनमोहन सहगल; गुरु नानक तथा सिक्ख धर्म का उभव, ले. हरवंशसिंह, पृष्ठ 104–105।

11. रैदास, पृष्ठ 14, धर्मपाल मैनी, साहित्य–अकादमी, दिल्ली।

12. वही, पृष्ठ 24,

13. *तब रैदास बिचारी बाता। गुरु समान कबीर बड़ भ्राता ।।26।।*

–अनंतदास कृत रैदास की परचई, विश्राम 9।। सम्पादकः ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

14. हमने रैदास की कम से कम 12 हस्तलिखित व 7 प्रकाशित परचियों, जो भिन्न–भिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न परंपराओं के व्यक्तियों ने लिखी हैं उसको पढ़ा है, किन्तु किसी में भी आलोच्य दोहा नहीं मिला है। अतः हमारा दृढ़ निश्चय है, रैदास–पंथियों ने रैदास को मेड़तणी मीरां से सम्बद्ध करने के लिये इस दोहे की सृष्टि कर अनंतदास की परचई मे प्रक्षिप्त कर दिया है। वस्तुतः यह दोहा आ. पृथिवीसिंह आजाद के अनुसार कर्मदास नामक रैदासी संत की रचना है। कर्मदास, रैदास की वंश–परम्परा में बताए गये हैं। कहते हैं, कर्मदास ने रैदास की छंदबद्ध जीवनी लिखी थी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ आ. पृथिवीसिंह आजाद ने अपने एक 51 पृष्ठीय लेख में उद्धृत की हैं।

15. रैदास, धर्मपाल मैनी, पृष्ठ 24

16. *देवो आग्या घर ही जावां। गुरु गोंविद को दरसण पावां ।।*
सेवग सकल मिले उर लागी। सतगुर चरणां सुरतहि जागी ।।40।।
सकल संत सूं मिलै रैदासा। सबही को मन भयो उदासा ।।
हरि सुमरन हिरदयै निवासा। हम हां सदा तुमरे पासा ।।41।।
चले रैदास घरै की बाटै। द्रसण करण कूं बोत अघाटै ।।
रामत करता चाल्या जावै। सकल संत मिल हरि जस गावै ।।42।।
गाम गाम थीं निकस न पावै। करत महोछा बोत उछाह्वै ।।
सब नर नारी दरसण करहीं। बहुत प्रसाद आण के धरहीं ।।43।।
ऐसी रामत बो दिन भाई। एक मास में पहुंचे जाई ।।
सबै साध दरसण कूं आई। अपना जन की करत बडाई ।।44।।
तहां रैदास की लागी जात्रा। सकल संत मिल बूझै बात्रा ।।
तब रैदास कहै इक बाता। ब्रामण हम सूं करि बहु घाता ।।45।।
तीहां हरी प्रसादी आसू। तितने विप्र तितने रैदासू ।।
सो सब संग जीमने बैठा। देख देख सब ब्रामण नेठा ।।46।।
हर सुमरण ते सबही तूठा। सकल विप्र पड़ गया झूठा ।।

त्राह त्राह कर भागण लागा। तब सब आय पगेता लागा ।।47।।
भगत पुरातम हिरदो जागा। सुमरण भजन सूं चित लागा ।।
सबै ब्राह्मण होया सिष्या। हर भगतन की मानी सिख्या ।।48।। ।।..... ।।
कासी नग्र सुथान सुवासा। तहां रैदास दास का दासा ।।..... ।।51।।

–रैदास की परचई, पंद्रहवाँ विश्राम; वि.सं. 1869 की प्रति का पाठ।

17. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृष्ठ 365 से 384 तक।

18. वीरविनोद, पृष्ठ 353

19. उदयपुर–राज्य का इतिहास, पृष्ठ 321–22, म. म. गौ. ही. ओझा।

20. वही, पृष्ठ 38 पर कुंभलगढ़ के परिचय मे आया विवरण।

21. वही, पृष्ठ 322

22. चित्तौड़ उदयपुर का पाटनामा, सम्पादक डॉ. मनोहरसिंह राणावत, पृष्ठ 118–119

23. झाला राजवंश, लेखक देवीलाल पालीवाल, पृष्ठ 50

    'इसी–प्रकार राजधर की अन्य कन्याओं मीरां कवर और सरूपकंवर का विवाह मेवाड़ के महाराणा कुंभा (1433–1468) के साथ होना तथा एक अन्य कन्या रतनकंवर का विवाह मेवाड़ के महाराणा रायमल (1473–1509) के साथ होना लिखा मिलता है।'

24. मुंहता नैणसी री ख्यात, उदयपुर राज्य का इतिहास और वीरविनोद।

25. यह हमारा पूर्वापर ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर निर्णय है। 'झाली–बाव' या तो स्वयं झाली राणी ने बनवाई थी या उसके नाम पर उसके पति कुंभा मोकलोत ने बनवाई थी। 'झालीबाव' का कुंभा के समय में कुंभलगढ़ में होना सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है कि कुंभा की पत्नियों में एक झाली भी थी, जो प्रभाव में कम न थी। इसी ने रैदास को कुंभलमेर में बुलाया। चूँकि राणा कुंभा चित्तौड़ का स्वामी था, इसलिये अनंतदास ने चित्तौड़ में आना लिख दिया। अन्यथा रैदास आये कुंभलमेर ही थे। **'चित्तौड़–उदयपुर का पाटनामा'** ग्रंथानुसार राणा कुंभा के एक नहीं, तीन झाली रानियाँ थी। **देखें पृष्ठ 118–119 तथा झाला–राजवंश : लेखक देवीलाल पालीवाल** के पृष्ठांक 50 पर उद्धृत मदनसिंह बड़वा की ख्यातानुसार कुंभा की झाली रानी का नाम भी मीरांकुँवरि ही था। उक्त ख्यात व पाटनामे के मिल जाने से अब संदेह की कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई है कि राणा कुंभा की मीरां नामक झाली रानी ने ही रैदास की शिष्यता ग्रहण की थी। मेड़तणी मीरां ने नहीं की थी। इस विषय में मैंने मेरे एक अन्य आलेख 'मीरां सम्बन्धी कुछ भ्रान्तियाँ और सत्य तथ्य' में सप्रमाण, सतर्क विस्तृत विवेचन किया है। भक्तदामगुणचित्रणी टीका में झाली रानी का विवरण भी सिद्ध करता है कि झाली रानी महाराणा कुंभा की ही पत्नी थी।

26. देखें टिप्पणी क्रमांक 1

27. नाभा कृत भक्तमाल का छप्पय क्रमांक 177

28. राजपूताने का इतिहास, भाग–1, पृष्ठ 40–41, प्रथम संस्करण, लेखक– श्री जगदीश सिंह गहलोत, जोधपुर।

29. मीराबांई का जीवन–चरित्र, पृष्ठ 31, द्वितीय–संस्करण, लेखक– मुंशी देवीप्रसाद, मुंसिफ मजिस्ट्रेट, राज जोधपुर।

30. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, लेखक म.म. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृष्ठ 390

31. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, ले. म.म. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, पृष्ठ 323–324

32. मीरांबाई का जीवन चरित्र, पृष्ठ 30–31, द्वितीय–संस्करण, लेखक मुंशी देवीप्रसाद, मुंसिफ मजिस्ट्रेट, राज जोधपुर।

33. उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ 318–319, लेखक म.म. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।

3. सन्त सैन, उनकी रचनाएँ और संत रैदास

सिखों के परम–पवित्र गुरु–ग्रंथ में सन्त सैन का एक पद[1] उपलब्ध है। वस्तुतः गुरु–ग्रंथ का यह पद, पद न होकर आरती है, किन्तु आरती[2] भी पदों में ही वर्गीकृत होती है; अतः इसको पद कहना सर्वथा समीचीन है। गुरु–ग्रन्थ में इस आरती के उपलब्ध होने से आधुनिक शोधकों का ध्यान सन्त सैन की ओर भी आकृष्ट हुआ है, किन्तु इस महान् सन्त के बारे में अभी–तक यथेष्ट जानकारी प्रकाश में नहीं आई है। यद्यपि नारायणदास 'नाभा' ने सन्त सैन के बारे में एक पूरा छप्पय'[3] छंद लिखा है और टीकाकारों ने विपुल छन्दों में टीका[4] की है, तथापि आधुनिक शोधक इन लेखकों के उल्लेखों को भक्तिभावना–प्रसूत मानकर विशेष वज़न नहीं देते। शोधकर्ताओं के साथ संभवतः यह विडम्बना ही है कि वे इन तथ्यों को सिरे से नकारते हुए इधर–उधर भटकते हैं और कभी–कभी बेसिर–पैर की बातें लिख मारते हैं, जिनका न कोई लिखित और न कोई मौखिक आधार ही होता है। आगे के लेखक[5] पीछे वालों की बातों को दुहराते रहते हैं और धीरे–धीरे वही सत्य–तथ्य स्थापित हो जाता है। वस्तुतः शोधकर्ता का दायित्व होता है कि वह उपलब्ध समस्त सामग्री का गंभीर अनुशीलन कर उसमें छिपे अंतःसूत्रों को ढूँढ निकाले। फिर उनको तत्कालीन अन्य स्थापित तथ्यों के संदर्भ में जाँचे–परखे। जब प्रमाण व तर्क की कसौटी पर वे सूत्र स्थापित हो जाएँ, तब उनको लिखकर प्रकाशित करे।

सन्त सैन के बारे में भी आचार्य परशुरामजी चतुर्वेदी ने एक ऐसा ही प्रवाद लिखा, जिसको आज भी सन्त सैन पर लिखने वाले प्रायः दोहराते देखे जाते हैं।

आचार्य चतुर्वेदी ने लिखा कि सन्त सैन महाराष्ट्रीय–महान् संत ज्ञानदेव (समय वि.सं. 1332 जन्म व समाधि वि.सं. 1353) के समकालीन व उनकी मंडली के महत्त्वपूर्ण सदस्य थे। इन्होंने मराठी–भाषा में अभंग लिखे, जिनमें से 150 के करीब आज भी

उपलब्ध होते हैं। इन अभंगों में प्रतिपादित विषय के अनुसार ये वारकरी भक्त भी सिद्ध होते हैं। साथ ही साथ आचार्य चतुर्वेदी ने लिखा है कि बीदर के राजा की सेवा में ये नियुक्त थे और तैल–मर्दन की घटना बांधवगढ़ के बघेले राजा से सम्बद्ध न होकर इसी बीदर के राजा से सबन्धित है।[6] उन्होंने न बीदर के राजा का नाम बताया और न उसका समय ही बताया।

जब हम उक्त मत पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं तब ज्ञात होता है कि बीदर–राज्य की भाषा मराठी न होकर कन्नड़ है। कन्नड़–भाषी सैन ने मराठी–भाषा में अभंगों की रचना की होगी, संभव नहीं है। ये बीदर छोड़कर पण्ढरपुर आ गए हों और ज्ञानदेवादि के संसर्ग से इन्होंने मराठी–अभंगों की रचना की होगी, लिखना भी सर्वथा असंगत है, क्योंकि गुरु–ग्रंथ में संग्रहित आरती जिसकी भाषा न कन्नड़ और न मराठी ही है बल्कि निर्गुणी–संतों द्वारा प्रयुक्त तत्कालीन हिन्दी भाषा है उसमें इन्होंने प्रसिद्ध भक्तिभानु रामानन्दाचार्य का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है, जिसका तात्पर्य है कि राम की भक्ति का रहस्य रामानंद पूर्णरूपेण जानते हैं और पूर्ण परमानंद में निमग्न स्वामी रामानंद उस भक्ति का प्रामाणिकता के साथ वर्णन करते हैं।[7] इस पंक्ति का सीधा–सीधा तात्पर्य इतना ही है कि सन्त सैन या तो स्वामी रामानंद के समकालीन होने चाहिए अथवा आसन्न परवर्ती। उन्होंने स्वामी रामानंद की भक्ति–व्याख्या को या तो उनके श्रीमुख से सुना होगा अथवा उनके शिष्यादि के द्वारा सघनता के साथ प्रचारित–प्रसारित होते हुए देखा होगा। अंतःप्रमाण से बड़ा प्रमाण और कोई प्रमाण नहीं होता। अतः यह मानने में तनिक भी शंका नहीं होनी चाहिए कि संत सैन का न बीदर के राजा से कोई सम्बन्ध था और न उनका ज्ञानदेव व वारकरी सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध था। सन्त सैन जाति के नाई[8] थे और अपना पैतृक–धंधा बाल काटने, तैल–मर्दनादि का किया करते थे। इस तथ्य को सभी मानते हैं। मराठी–परम्परा के साथ–साथ हिन्दी–परम्परा भी इस तथ्य को यथारूप मानती है।

समय

जैसा ऊपर कहा गया है, सन्त सैन, रामानंद स्वामी के समकालीन थे। स्वामी रामानंद का समय वि॰सं॰ 1356 से 1467 तक[9] का सुनिश्चित् है। सन्त रैदास ने अपने एक पद[10] में नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, सधना और सैन को स्वात्मस्थ होना लिखा है। साथ ही जाट–जात्युत्पन्न सन्त धन्ना ने भी अपने राग आसा के पद[11] में सन्त सैन का स्मरण अपने पूर्ववर्ती के रूप मे किया है। इस पद में नामदेव, कबीर, रैदास व सैन नामक भक्तों के भक्ति करने के कारण संसार में प्रकट होना–प्रकाश में आना लिखा है।

भक्तमालकार के अनुसार रैदास, कबीर, धन्ना और सैन—सभी स्वामी रामानंद के शिष्य ठहरते हैं।[12] अतः इन सभी का समय वि. की 15वीं शती के प्रारंभिक दशकों से लगाकर 16वीं शती के अधिकतम मध्य तक होना चाहिए।

जिन विद्वानों ने सैन के समय के सम्बन्ध में अपने मंतव्य व्यक्त किये हैं, उनके विचार नीचे लिखे अनुसार हैं।

1. प्रो. रानाडे ने सन्त सैन का निधन—समय वि.सं. 1505 बताया है।[13]

2. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने सैन को रामानंद का समकालीन मानते हुए इनकी स्थिति विक्रम की 14वीं शती के उत्तरार्द्ध से पंद्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध तक मानी है।[14]

3. द सिख रिलीजन, लेखक एम.ए. मैकालिफ ने सैन का समय, क्रिश्चियन—युग की चौदहवीं शती के अंत तथा पंद्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध तक माना है।[15]

4. डॉ. महीपसिंह ने इनका समय 1448 ई0 माना है। यह समय जन्म अथवा मृत्यु का है, कुछ भी स्पष्ट नहीं किया है।[16]

5. भक्तमाल के टीकाकार सीता रामशरण भगवान प्रसाद रूपकला ने सैन का समय विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी माना है।[17]

6. आदि—ग्रंथ के हिन्दी टीकाकर डॉ. मनमोहन सहगल ने सैन का समय ईस्वी 15वीं शती का पूर्वार्द्ध माना है।[18]

7. रींवा—नरेश रघुराजसिंहदेव ने सैन का समय अपने पूर्वज राजा रामसिंहदेव के समय का बताया है।[19] राजा रामसिंहदेव बघेले का राजत्व—समय वि.सं. 1612 से 1648 तक इतिहासकारों ने निर्धारित किया है।[20]

8. महाराजा रघुराजसिंहदेव ने रामरसिकावली नामक भक्तमाल की टीका के अंत में अपने कुल का इतिहास लिखा है, जिससे ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम वीरसिंहदेव बघेले ने कबीर का शिष्यत्व ग्रहण किया। वीरसिंह देव अतीव पराक्रमी राजा था और इसी ने बाँधौगढ़ को जीतकर अपनी राजधानी बनाई थी। सन्त कबीर ने वीरसिंहदेव के पौत्र राजा रामसिंह को वरदान दिया था कि तेरी 42 पीढ़ियों तक बघेलों का राज्य अविच्छिन्न चलता रहेगा[21] तथा तेरी 10वीं पीढ़ी का राजा मेरे ग्रन्थ बीजक की टीका लिखेगा। उक्त राजा रामसिंहदेव इस वीरसिंह देव की तीसरी पीढ़ी का राजा है (1) वीरसिंह देव (2) वीरभानुसिंह देव (3) राजा रामसिंहदेव। राजा रामसिंह देव भी कबीर

का ही शिष्य था, जिसको कबीर ने आशीर्वाद आदि दिये। राजा रामसिंहदेव के ही भगवान ने नापित बनकर तैलमर्दन किया था।[22] राजा रामसिंहदेव के पुत्र का नाम वीरभद्र देव और इसके पुत्र का नाम विक्रमादित्य देव था। विक्रमादित्य देव का पुत्र अमरसिंहदेव हुआ, जिसने रींवा को बघेलों की राजधानी बनाई।[23]

9. ऊपर बिंदु क्रमांक (7) में इतिहासकारों द्वारा उपलब्ध कराया गया राजा रामसिंहदेव का समय बिल्कुल सही है। ऐसी स्थिति में संतप्रवर सैन व राजा रामसिंह देव बघेले का समकालीन होना सर्वथा असंभव है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का भी मंतव्य ऐसा ही है।[24]

10. अनेक संतों व भक्तों की 'परचई'[25] के रूप में जीवनी लिखने वाले संत अनन्तदास ने सैन की परचई तो नहीं लिखी, किन्तु रैदास की परचई में सैन की उपस्थिति उस समय बताई है, जब चित्तौड़ की झाली रानी रैदास से दीक्षा लेकर चित्तौड़ की ओर चल पड़ी। काशी से 5 कोस चित्तौड़ की ओर पहुँचने पर पुरोहितों को मालूम हुआ कि झाली रैदास से दीक्षित होकर आई है। ब्राह्मणों, पुरोहितों ने झाली से कंठी–माला छीन ली और कहा, या तो रैदास का मंत्र रैदास को लौटा दो अन्यथा हम मर जाएंगे। झाली डरकर वापिस काशी आ गई। रैदास से आप–बीती कही। रैदास कुछ भी निर्णय नहीं कर सके। अंततः वे और सैन परामर्श प्राप्त करने को कबीर के पास गए। उस–समय कबीर के यहाँ बघेला राजा–रानी आये हुए थे। कबीर ने कहा, जिस–प्रकार तुमने पहले ब्राह्मणों द्वारा विवाद करने पर निर्णय शालग्राम पर छोड़ दिया था; अबकी बार भी निर्णय शालग्राम पर छोड़ दो। रात्रि में सैन, रैदास व कबीर तीनों कबीर के यहाँ ही रहे। रात्रि में सगुण भगवान् ने चतुर्भुज रूप में प्रत्यक्ष दर्शन दिये। कबीर ने सगुण भगवान् का खंडन तथा रैदास ने मंडन किया। इस गोष्ठी के साक्षी सैन भक्त थे। आगे चलकर सैन ने इस वाद–प्रतिवादात्मक चर्चा को **'कबीर–रैदास–गोष्ठी'** के नाम से छंदबद्ध करके लिखित रूप दिया। अनन्तदास ने इस प्रसंग में बघेला राजा का नाम तो नहीं दिया, किन्तु उसकी रानी का नाम 'मकनादे' लिखा है। यह मकनादे रानी, बघेला वीरमदेव (1460 से 1485 वि.), नरहरिदेव (1485 से 1527 वि.), भेदचंद्रदेव (1527 से 1552 वि.), शालिवाहनदेव (1552 से 1557) अथवा वीरसिंहदेव (जन्म 1524 गद्दी 1557 मृत्यु 1597 वि.) की पत्नी थी अथवा रामसिंहदेव (वि. 1612 से 1648 तक) की थी, निर्णायक बिन्दु है– रैदास, कबीर, सैन आदि के समय का निर्धारण करने का।[26] रघुराजसिंहदेव ने वीरसिंहदेव की पत्नी का नाम मणिदे[27] व रामसिंह की पत्नी का नाम सुवचनकुंवरि[28] लिखा है। मणिदे व मकनादे दोनों नाम एक ही रानी के हैं, कहना सर्वथा मुश्किल है। भेदचन्द्रदेव (1527–1552) की एक पत्नी चित्तौड़ के राणा लाखा की पुत्री

थी। यही पटरानी थी। इसका नाम रींवा राज्य के इतिहास में लिखा नहीं मिला है, किन्तु संभावना पूरी–पूरी है कि यही रानी मकनादे होगी, क्योंकि झाली रानी के प्रसंग में जहाँ मकनादे का नाम आया है, वहाँ मकनादे ही झाली रानी की सहायतार्थ अपने पति के साथ गई थी। चूँकि झाली रानी व उक्त मकनादे का सम्बन्ध चित्तौड़ से था; अतः मकनादे ने झाली की सहायता की। राणा लाखा का समय गद्दी नशीनी 1439 व मृत्यु 1485 से 1487 के मध्य तक म.म. गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा ने उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग एक, पृष्ठ 259 से 270 तक में लिखा है। अतः इतिहास के साक्ष्य से प्रसंगस्थ बघेला राजा भेदचंद्रदेव व उसकी रानी मकनादे ही होने चाहिये।

11. कबीर की परचई से ज्ञात होता है कि काशी नगर में जब कबीर की प्रतिष्ठा अत्यधिक बढ़ गई, तब कबीर के भजन में जनता के अत्यधिक आवागमन के कारण बाधा पड़ने लगी। इस बाधा को हटाने के लिये कबीर ने एक वेश्या को अपने साथ लेकर पूरे बाजार में फेरी लगा डाली। उस समय बघेला राजा वीरसिंहदेव अपनी रानी के साथ काशी में आया हुआ था। वह कबीर का शिष्य था, फिर भी कबीर के इस व्यवहार ने उसके मन में उथल–पुथल मचा दी। उसने कबीर को बैठने के लिए आसन तक नहीं दिया। इतनी ही देर में पुरी के जगन्नाथ–मंदिर का पंडा जल गया। कबीर ने काशी में ही जल का घड़ा जमीन पर फैलाया। देखकर जनता से पूछा, यह क्या माज़रा है। तब कबीर ने कहा, मेरे कहने से तुम्हें विश्वास नहीं होगा। जगन्नाथ–मंदिर के पंडे से जाकर पूछो। राजा ने दूत भेजा। पंडे ने जल से आग बुझाने की घटना को सत्य बताया और कहा, काशी का कबीर भगवान् का सच्चा भक्त है। उसने ही मुझ जलते हुए के ऊपर जल डाला था, जिससे मैं बच गया। दूत ने आकर राजा को सारे समाचार कहे। सुनकर राजा अवाक् रह गया। उसे अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने सोचा, मैंने नाहक ही गुरु–महाराज पर शक किया। मुझे उनसे अपराध क्षमा कराना चाहिए। राजा–रानी ने लकड़ी के गठ्ठर माथे पर रखे व दोनों दीन–हीन रूप में कबीर के आश्रम पर पहुँचे। कबीर ने कहा, मेरे मन में कोई राग–द्वेष नहीं है। तुम मेरे ही हो। यह घटना बघेला राजा वीरसिंहदेव से सम्बद्ध है। अनन्तदास ने वीरसिंहदेव का नाम स्पष्ट रूप में उल्लिखित किया हैं।[29]

वस्तुतः वीरसिंहदेव बहुत ही पराक्रमी व प्रतापी राजा था। इसने वि.सं. 1552 में अपने दादा भेदचंद्रदेव के समय में ही सिकन्दर के आक्रमण का कठौली घाटी में सामना किया। भेदचंद्रदेव के समय बघेलों की राजधानी बांधवगढ़ में ही थी, जिसको पुनः वीरसिंहदेव ने व्यवस्थित करके अपनी राजधानी बनाया था। चूँकि इसके दादा (भेदचन्द्रदेव) व दादी संत कबीर के शिष्य रहे थे; अतः यह भी उनके प्रति गुरु–भाव

रखता था। साथ ही भेदचंद्रदेव की अपेक्षा यह अत्यंत प्रतापी राजा हुआ है। अतः संभव है, अनंतदास गच्चा खा गया और उसने भूल से भेदचन्द्रदेव के स्थान पर वीरसिंहदेव का नाम लिख दिया। अनंतदास संत था। उसके पास संतों से सुने हुए विवरण थे। इसके विपरीत रघुराजसिंहदेव पठित, विद्वान् बघेला राजा थे, जिनको अपने यहाँ के सारे अभिलेख व ग्रंथादि सुलभ थे, फिर भी उन्होंने सैन का सम्बन्ध राजा रामचंद्रदेव से लिख दिया जो कैसे भी ऐतिहासिक समसामयिक घटनाओं से पुष्ट नहीं होता। अतः हमको लगता है कि अनंतदास की नाम सम्बंधी यह सूचना पूर्णतः विश्वास योग्य नहीं है।

12. उक्त परचइयों की दोनों घटनाओं को एक ही समय की व एक ही राजा से सम्बद्ध मान लेने पर, सैन का सम्बन्ध रामसिंहदेव बघेले से हटकर उसके किसी पूर्वज से जुड़ जाता है, जिससे सैन का अंतिम समय विक्रम की 16वीं शती के प्रथम दशक तक जाकर ठहर जाता है और यही समय सैन का उचित भी लगता है। प्रो. रानाडे, आचार्य चतुर्वेदी आदि का मंतव्य लगभग इसी कालखंड के समर्थन में है। अतः हमारा उक्त ठोस प्रमाणों के आधार पर पक्का मत है कि सैन अधिक से अधिक 1515 या 1520 विक्रम–सम्वत् तक जीवित थे, इसके पश्चात् नहीं। यदि उन्होंने 90 वर्ष की भी उम्र पाई हो तो उनका जन्म–सम्वत् 1425 से 1430 तक जाता है। इस कालखंड को मान लेने से सैन और रामानंद के समय ठीक–ठीक हो जाते हैं और सैन के उस कथन की संगति भी बैठ जाती है, जिसमें उसने रामानंद को भगवद्भक्ति का असली रहस्य प्रकाशित करने वाला कहा है। रामानंद और सैन गुरु–शिष्य थे, यह गुत्थी भी स्वतः ही सुलझ जाती है। राजर्षि पीपा ने अपने एक पद[30] में कबीर, रैदास आदि का स्मरण अत्यधिक श्रद्धा–भक्ति के साथ किया है। पीपा की चौथी पीढ़ी[31] का खीची राजा अचलदास वि.सं. 1480[32] में होसंगशाह से युद्ध करता हुआ मारा गया। यह तथ्य इतिहास–पुष्ट है। अचलदास के समकालीन[33] व दरबारी चारण कवि शिवदास गाडण ने अचलदास खीची री वचनिका ग्रंथ वि.सं. 1492 में बनाया[34] जिसमें उक्त युद्ध का पूर्ण व प्रामाणिक विवरण उपलब्ध है। ऐसी दशा में कबीर, रैदास, पीपा, सैन, धन्ना आदि के समयों को वि.सं. की 16वीं शताब्दी के अन्त तक खींचकर ले जाना सत्य तथ्यों से मुँह चुराना किंवा सत्य को ढँककर असत्य का झण्डा फहराना है। हमारा दृढ़ मन्तव्य है कि आचार्य रामानंद का समय वि.सं. 1356 से 1467 तक ही सत्य है। इसे आगे खिसकाने की कोई जरूरत नहीं है। कुछ अनैतिहासिक लेखकों ने निरंजनी पीपा व गागरोन के राजर्षि पीपा को एक मान कर राजर्षि पीपा के समय को काफी पीछे धकेलने का दुष्प्रयत्न किया है, जो ऐसे लेखकों के अज्ञान अथवा भ्रमित–ज्ञान का परिचायक है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संत सैन का समय वि.सं. 1425 से 1515 के बीच का है, जो प्रमाणों व ऐतिहासिक–सत्यों पर आधारित है।

जीवन की विशिष्ट घटनाएँ

जैसा कि पूर्व में उल्लिखित किया गया है, संत सैन जाति के नाई और बघेलों की राजधानी के निवासी व वहीं के बघेले राजा के खवास[35] थे। ये उनके बाल काटने का काम तो करते ही थे[36], आवश्यकता पड़ने पर तैल–मर्दन भी करते थे। बघेला राजा वायुरोग से पीड़ित था।[37] अतः सैन को प्रतिदिन राजा की तैल–मालिश भी करनी पड़ती थी। सैन भगवद्भक्त थे, रामानन्दाचार्य के शिष्य थे।[38] अतः प्रातःकाल जल्दी ही उठकर भगवान का भजन–ध्यान भी किया करते थे। एक दिन जब वे नित्यनियम से निवृत्त होकर राजा के महल की ओर जा रहे थे, तब रास्ते में उन्हें कुछ संत, भगवभक्त मिल गए। सैन उन्हें घर ले आये। उनके बाल काटे। उनको स्नानादि कराया और उनको भोजन कराने के उपरान्त राजा की सेवा में उपस्थित हुए। जब सैन राज–महल में पहुँचे, तब–तक दोपहर बीत चुका था। राज–दण्ड के भय से सैन ने राजा के एक अन्य हजूरिये[39] से आपबीती कही। वह हजूरिया और सैन दोनों राजा की खिदमत में हाजिर हुए। सैन ने देरी से आने के लिए क्षमायाचना की तो बघेला राजा ने कहा– अभी–अभी तो तुम तैलमर्दन करके गये ही थे। क्या पुनः और पुरस्कार प्राप्त करने आये हो। वस्तुतः आज तुमने मेरी इतनी अच्छी तरह से तैलमालिश की कि मेरा वायुजनित रोग समाप्त हो गया और अब मुझे प्रतिदिन मालिश कराने की जरूरत भी नहीं रह गई है। तुम्हारी आज की विशिष्ट सेवा से मैं इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि मैंने तुम्हें अनेक उपहार बख्शीश किये।[40] लगता है, तुम्हारे मन में लोभ घुस आया, जिसके वशवर्ती होकर तुम यहाँ पुनः आये हो।

राजा की बातें सुनकर सैन हक्का–बक्का रह गया। वह अनुनय–विनय करने लगा कि भगवन् ! मैं तो आया ही अभी हूँ। मेरे घर में कुछ संत आ गए थे। उनके बाल काटने आदि में समय लग गया जिस–कारण मैं देरी से आया हूँ। चाहें तो आप मेरे घर से व आपके इस हजूरिये से मेरी बात की पुष्टि करा लें। राजा ने सैन की बात की पुष्टि कराई। सही पाने पर राजा ने सैन को मान–सम्मान प्रदान किया और आगे से तैल–लगाने, बाल काटने आदि की सेवा से मुक्त कर दिया। सैन की इस भक्ति, भगवत्कृपा व राजा द्वारा दिये गये सम्मान की चर्चा घर–घर में होने लगी। सैन भगवद्भक्त मे परिगणित होने लगा।[41] राजा सहित समस्त जनता उसे सम्मान की दृष्टि से देखने लगी। समय–समय पर सैन, राजा के साथ विशिष्ट हजूरये के रूप में भी जाने लगा।

रचनाएँ

भक्तप्रवर सैन की रचनाओं के नाम पर अभी तक विद्वानों का ध्यान मात्र उस पद की ओर गया है जो सिखों के आदि–गुरु–ग्रंथ–साहिब में दर्ज है तथा जिसकी चर्चा पूर्व पृष्ठों में आ चुकी है। वस्तुतः इस पद अभिधानात्मक आरती का संग्रह दादूपंथी–पंचवाणी–पुस्तकों में भी मिलता है। उक्त पंचवाणी–पुस्तकों में मात्र उक्त आरती ही नहीं मिलती, एक पद और मिलता है जो अभी–तक अप्रकाशित है और संभवतः इस आलेख के माध्यम से विद्वानों के समक्ष पहली बार प्रकाश में आयेगा। यद्यपि इस पद को अप्रकाशित भी नहीं कह सकते, क्योंकि इसका दादूशिष्य रज्जब की 'सरबंगी'[42] और दादू–पौत्र–शिष्य गोपालदास की 'सरबंगी–सरह–चिन्तामणि'[43] में प्रकाशन हो चुका है, किन्तु विद्वानों का ध्यान अभी–तक इस पद की ओर आकर्षित नहीं हुआ है। हम दादूधाम, नरायना के ग्रंथांक 496, 497, 561, 2 व 4 तथा राजस्थान–प्राच्यविद्या– प्रतिष्ठान, जयपुर के ग्रंथांक 12 व 74 के आधार पर इस पद का पाठ नीचे दे रहे हैं। आरती का पाठ ग्रंथांक 497 के आधार पर दिया जा रहा है। साथ ही जिस 'कबीर–रैदास–गोष्ठी' की पूर्व पृष्ठों में चर्चा आई है और जिसके रचयिता सन्त सैन हैं, उनका पाठ हमारे संग्रह की पुस्तक जो धार (म.प्र.) रामद्वारे में मानदास रामस्नेही द्वारा वि.सं. 1869 में लिखित है से दे रहे हैं। यह गोष्ठी उक्त रा.प्रा.वि.प्र. के ग्रंथांक 12 में भी उपलब्ध है, जिसका लेखनकाल वि.सं. 1741 व 1743 है।

1. राग गौड़ी, ग्रंथांक 496, पृष्ठ 243

दास नहीं छाडिये हो, तेरौ जन जे अपराधी होइ ।। टेक।।
अमृत अनूप सरोदिका, संतति भीतरि बास।
एक बूंद प्रापति नहीं, जन क्यूँ पावै बिसवास ।।
हूँ तुझ कारनि बीनऊँ, निसदिन खरौ उदास।
उदिक तीर पसु बांधियो, बिन खसमहि मरै पियास ।।
और नहीं अवलम्बना, जन सैन कहै समझाइ।
तुम्ह ठाकुर मैं सेवगा, क्रिपा करौ रामराइ ।।[44]

2. राग धनाश्री, ग्रंथांक 497, पृष्ठ 556–557

मंगला हरि मंगला। नित मंगल राजा रामराइ की ।। टेक।।
धूप दीप गृह साज आरती। वारणै जाऊँ कँवलापती ।।
उतिम दिवला निरमल बाती। तूँ हि निरंजन कँवलापती ।।

रामा भगति रामानँद जाणै। पूरण परमानंद बखाणै ।।
मंगल मूरति भौ तारि गोविंद। सैन भणै भजि परमानंद ।।[45]

अथ कबीर–रैदास की गोष्ठी लिख्यते

रैदास कहत है–

स्वामी कुमत तणा दल बादल फाटा, सुमत भई परकासा।
ग्यान ध्यान हिरदै धर देखौ, सत भाखै रैदासा ।। 1।।

कबीर कहत है–

ब्रह्म ग्यान बिन, ब्रह्म ध्यान बिन, हिरदौ सूध न होई।
ऐकहि ब्रह्म सकल में व्यापिक, और न दुतिया कोई ।। 2।।

रैदास कहत है–

एक एक क्या भाषै स्वामी, दूजि प्रकृति कहाँ जाई।
ता परक्रिति कौ तिरगुण रूपा, साधां सदा बताई ।। 3।।

कबीर कहत है–

किदर फूल है किदर बासना, किदर पवन और पानी।
उतपति परलै कून करत है, परक्रिती कहाँ समानी ।। 4।।

रैदास कहत है–

प्रकृति समाणी परम पुरस में, जो ब्रिंदावन आया।
गोपन के सँग ग्वालन के सँग, चुटकी देर नचाया ।। 5।।

कबीर कहत है–

नहिं वे नाचै नहिं वे गावै, नहिं वे ताल बजावै।
वे तो ब्रह्म सकल सूँ न्यारा, सो औतरि नहिं आवै ।। 6।।

रैदास कहत है–

जो लीला औतार न होते, तौ सबहि जीव नहिं तरते।
अंध–धुंध की खबरि न होती, तौ सब जीव नरक में परते ।। 7 ।।

कबीर कहत है–

कहा नरक है कहा सरग है, कहौ काहु किन देखा।
जा दिन हंसा करत पयानौ, चलत न काहू पेखा ।।8।।

रैदास कहत है–

देखे वाहि कदम की छँहिया, नैनकँवल भ्रू लीन्हा।
पीतांबर बैजंती माला, मोर मुगट सिर दीन्हा ।। 9।।

कबीर कहत है–

माटी का यो पिंड बनाया, नाद जु बिन्द समाना।
घट बिनसै को नाम धरेगा, पसवा भरम भुलाना ।। 10।।

रैदास कहत है–

नारद व्यासजी आदि भक्त है, जिन या राह बताई।
साधन की सेवा अधिकाई, चवद भवन सुखदाई ।। 11।।

कबीर कहत है–

कौन नंद है कौन जसोदा, कौन कहाँ सूँ आया।
पारब्रह्म सबही ते न्यारा, सो कोइ बिरले पाया ।। 12।।

रैदास कहत है–

चहुँ दिस नंद चहूँ दिस लाला, चहुँ दिसि नंद कहाया।
ज्याँ–ज्याँ पाप परगट्यौ जग में, जहाँ–जहाँ उठ धाया ।। 13।।

कबीर कहत है–

नहिं वाके पाप नहीं ताके पुंन, नहीं वेद नहीं वाणी।
नहिं वाके रूप नहीं वाके रेखा, जहाँ का तहाँ समानी ।। 14।।

रैदास कहत है–

भूले हो तुम ब्रह्म ग्यान में, हरि चरणा बिसराया।
जीवन छोड़ निरंतर ध्यावो, मिथ्या जगमग माया ।। 15।।

कबीर कहत है–

हम गावें सो गावौ भाई, हमरो ग्यान बिचारौ।
कहै कबीर सुनौ रैदासा, तौ भौ जल उतरौ पारौ ।। 16।।

रैदास कहत है–

निरगुण कथता को पच मरता, को गह उतरे पारा।
भली लूट है राम खजीना, राम क्रिसन अवतारा ।। 17।।

कबीर कहत है–

राम क्रिसन कूँ तुमही ध्यावौ, सबही काल झकोरा।
सत्त सबद चीने बिन सबही, त्रिगुण नदी में बोरा ।। 18।।

रैदास कहत है–

माय तुरकड़ी पिता जुलाहा, पुत्र बने ब्रह्म ग्यानी।
बेद कतेब की बात न मानै, बात आपनी ठानी ।। 19।।

कबीर कहत है–

माय चमारी बाप चमारा, पुत्र कह्वै रैदासा।
बेद कतेब की राह चलोगे, तौ पड़ोगे जम की पासा ।। 20।।

रैदास कहत है–

ऐसी अदभुत जनि कथिहौ स्वामी, कथौ तौ धरौ छिपाई।
वेद कतेबां में नहिं लिखिया, कैसे को पतिआई ।। 21।।

कबीर कहत है–

वेद कतेब दोउ हम देखे, इनकी झूठी आसा।
सकल जीवन के दंड पड़ेगा, बेदन के बिसवासा ।। 22।।

रैदास कहत है–

अैसी तौ मत भाखो स्वामी, बेद बड़ा अधिकारी।
जा दिन बेद प्रलै हो जासी, जा दिन जग अंधियारी ।। 23।।

कबीर कहत है–

बेद बेद तुम कहा पुकारो, ये सब ऊली तीरा।
बेद कथै जे सब्द निरंतर, जाकूँ जपै कबीरा ।। 24 ।।

रैदास कहत है–

कहो सबद कैसा है स्वामी, कहौ कौण है देखा।
ग्यान ध्यान में जो नहिं आवै, क्यूँकर करूँ विवेखा ।। 25 ।।

कबीर कहत है–

वाही सबद ब्रह्म कूँ पावै, सतगुरु देह बताई।
वाहि सब्द कौ ध्यान धरेगा, तौ आवागमण नसाई ।। 26 ।।

रैदास कहत है–

अकथ कथा कहा भाखौ स्वामी, जो मानन नहिं आवै।
है कोइ अैसा तीन लोक में, सो यो न्याव चुकावै ।। 27 ।।

कबीर कहत है–

एती गूष्ठ जहाँ भई, तीन भवन भए संसा।
तेतीस क्रोड़ देव चलि आये, जहाँ कबीर रैदासा ।। 28 ।।

देवता कहत है–

तेतीस करोड़ देव उठ बोल्या, हम यो न्याव चुकावैं।
सत्त भगति रैदास करत है, कबीर भगति न जानी ।। 29 ।।

कबीर कहत है–

सकल देव तुम भरम भुलाना, मानौ सबद हमारा।
परम पुरस कूँ चीनत नाहीं, जावौगे जम द्वारा ।। 30 ।।

सकल देवता कहत हैं–

तीन लोक में पूजा हमरी, जुलहा निंदा ठानै।
सकल देव मिलि मतौ विचारै, हम जुलहा कौं मारैं ।।31 ।।

कबीर कहत है–

कहै कबीर सुनौ तुम देवा, कहो कून तुम मारी।
हमरे आगे काल कर जोरै, गिनती कून तुमारी ।। 32।।

दुरघा उवाच–

सिंघ चढ़े जब दुरघा आई, बोलै मधुरी बानी।
सत्त भगत रैदास करै है, कबीर भगति न जानी ।। 33।।

कबीर कहत है–

आठम चवदस गला कटावै, घर घर खाती डोलै।
जा जा री जगत की चंडी घर आपनै, झूठ साष क्यूँ बोलै ।। 34।।

दुरघा उवाच–

सहस भुजा धर दुरगा कोपी, महादेव मुरताना।
मार हक्क परलै कर डारूँ, तौ कबीर तुम जाना ।। 35।।

कबीर कहत है–

को तुम मारे को तुम तारे, को तेरा तार्‌या तरहै।
जा जा री जगत की चंडी, तू हि नरक में परहै ।। 36।।

संकर उवाच–

बैल चढे सिव शंकर आये, बोले तमगुण वाणी।
सत्त भगत रैदास करत है, कबीर भगति न जानी ।। 37।।

कबीर कहत है–

भूत पिचासन के तुम राजा, तुम जोग भक्ति कहा पाई।
जगतगुरू सिवसंक्र कहावै, मिथ्या साख भराई ।। 38।।

संकर उवाच–

पलट महादेव जाहाँ गए, जहाँ बैठे गोविन्द राई।
कोपे संकर ऐसे बोले, हमरे नहीं सहाई ।।39।।

ब्रह्मा उवाच–

हंस वान चढ़ि ब्रह्मा आए, बोले इंम्रत बानी।
सत्त भगत रैदास करत है, कबीर भक्ति न जानी ।। 40।।

कबीर कहत है–

झूठा ब्रह्मा झूठा बोलै, झूठा बेद पुराणा।
झूठा ब्रह्मा भरम न जाना, झूठे भरम भुलाना ।। 41।।

ब्रह्मा कहत है–

अैसि बात कहा कैत हो जुलहा, और हि बात उठाई।
आदि विष्णु कूँ जानत नाहीं, कौन पुरस ठहराई ।। 42।।

कबीर कहत है–

चत्रामुखि तुम ब्रह्मा कहावौ, तेजो पार कहाँ पाया।
पारब्रह्म कूँ चीनत नाहीं, नाभकँवल भरमाया ।। 43।।

ब्रह्मा कहत है–

कौन तुमारा गुरवा कहिए, कून तुमारी बानी।
कहा लेत तुम आगे जूझौ, कौन भगति तुम ठानी ।। 44।।

कबीर कहत है–

सबद हमारा गुरवा कहिए, सुरत हमारी बानी।
राम नाम ले हम आगे झूझै, सत्त भगति हम ठानी ।। 45।।

ब्रह्मा कहत है–

अलख निरंजण जोत सरूपी, सोहि निरंजन स्वामी।
वाहि जोति की निंद करत हो, नरक परोगे प्रानी ।। 46।।

कबीर कहत है–

जोत निरंजन काल सरूपी, सोहि निरंजण राया।
पारब्रह्म तैं चीन्या नाहीं, नाभिकँवल भरमाया ।। 47।।

ब्रह्मा कहत है–

ऊठे ब्रह्मा बिनती कीन्हीं, तुम सतगुर हम देवा।
तूमारी गत तुमही जाणौ, हम नहिं जाणैं भेवा ।। 48 ।।
सिव ब्रह्मा और दुरगा चाली, जहाँ गरुड़ गोपाला।
जम कूँ भूत प्रेत कर थरपै, जुलहा कथै अपारा ।। 49 ।।
कह महादेव सुनौ बीसनजी, हमकूँ जोर तुमारा।
कछु जोरावर जुलहा जान्या, जासों तुम भारी डर मान्या ।। 50 ।।

विसनु उवाच–

जो तुम विसनुजी आदिपुरस हो, तो मार करौ पैमाला।
जब हम सुख पावैं हो स्वामी, जुलहा लागै चरण तुम्हारा ।।51 ।।

कबीर कहत है–

तीन लोक वैकुँठ कवलासा, ए सब जग की आसा।
आद अंत परलै होइ जासी, जब कहाँ करोगे बासा ।।52 ।।

किसनजी कहते है–

धंन कबीर धंन रैदासा, साध कहावै सोई।
गरुड़ चढे गोपाल कहत हैं, सत्त भगत मेरे दोई ।।53 ।।

कबीर कहत है–

उठ कबीरजी उत्तर दीना, सुन गोपाल बिवेकी।
छोटे मोटे जीव कहावै, सार वस्तु किन देखी ।।54 ।।

किसनजी कहत है–

सार वस्तु का ब्यौरा देहौं, आदि अंत का ग्यानी।
कहै क्रिष्ण सुणौ कबीरजी, सार वस्तु हम जानी ।।55 ।।

कबीर कहत है–

सार वस्तु तुम जानी नाहीं, धोखे जनम गँवाया।
तीन लोक इक्यासी ब्रह्मँड, स्रपनी नाच नचाया ।।56 ।।

किसनजी कहत है–

जो तत ले वप भई, आदर नाम प्रवाणी।
कहै कृष्ण सुनो कबीरजी, सार वस्तु हम जानी ।।57।।

कबीर कहत है–

सार वस्तु है अगम अगोचर, नहिं आवै नहिं जाई।
नेह तत ततपर कंवल विराजै, नेह तत तत है भाई ।।58।।

किसनजी कहत है–

अलख निंरजण जोत सरूपी, सोहि निरंजण स्वामी।
कहै कृष्ण सुनौ कबीरजी, सार वस्तु हम जानी ।।59।।

कबीर कहत है–

जोत निरंजण काल सरूपी, जाकी जगत करत है सेवा।
कहै कबीर सुनौ किसनजी, नहिं जान्या सार सब्द का भेवा ।।60।।
बह्म सरूपं ब्रह्म सरूपी, ब्रह्म ऊठि एक ठानी।
डालपात रैदास कथत है, मूल कबीरा ठानी ।।61।।
ऐती सुन कृष्णजी चलत भए, रैदास लाग्यौ पाय।
सार सबद कबीर है, संतौ लागौ धाय ।।62।।

इति कबीर–रैदासजी की गोष्ठी सम्पूर्ण[46]

संदर्भ व टिप्पणियाँ

1. आदि–गुरु–ग्रंथ–साहिब, सैंची–2, पृष्ठ 939, टीकाकर : डॉ. मनमोहन सहगल।

2. निर्गुण–निराकार–परमात्मा के भक्तों–संतों ने आरतियाँ बनाई तो चौपाई छंदों में हैं, किन्तु वे गाते उन्हें राग धनाश्री में हैं। अतः गुरुग्रंथ तथा दादूपंथी–वाणियों में आरतियाँ राग धनाश्री शीर्षक के अन्तर्गत ही मिलती हैं। रामस्नेही–सम्प्रदाय, शाहपुरा, मेवाड़ के संतों ने भी आरतियाँ तो चौपाई छंदों में ही बनाई हैं, किन्तु उनकी वाणियों में वे इन्हें राग धनाश्री में वर्गीकृत नहीं करते। गाते समय इन्हें वे राग धनाश्री में गाते भी नहीं।

3. *विदित बात जग जानिये हरि भये सहायक सैन के ।।*
प्रभू दास के काज रूप नापित कौ कीनौ।
छिप्र छुड़हरी गही पानि दरपन तहँ लीनौ।।
तादृस ह्वै तिहिं काल भूप के तेल लगायौ।

उलटि राव भयौ शिष्य प्रगट परचौ जब पायौ ।।
स्याम रहत सनमुख सदा ज्यौं बच्छा हित धेनु के।
विदित बात जग जानिये हरि भये सहायक सैन के ।।63।।

—रूपकला—संस्करण, आठवीं आवृत्ति, सन् 2001, पृष्ठ 525

4. प्रियादास ने 2 मनहर छन्दों में टीका लिखी है।

   बालकराम रामस्नेही ने 44 चौपाई व एक दोहा छंदों में टीका लिखी है। यह टीका प्रियादास की टीका से भी अधिक विस्तृत, प्रामाणिक व विद्वतापूर्ण है। इसका रचनाकाल वि॰सं॰ 1833 है। इसका प्रकाशन अभी हाल ही में भक्तमाली नारायणदासजी ने कराया है।

   रघुराजसिंहदेव ने रामरसिकावली में 17.1/2 चौपाई, 3 दोहा व एक सोरठा छंद लिखे हैं।

5. आदि—ग्रंथ में संग्रहित संत कवि; लेखक : डॉ॰ महीपसिंह, पृष्ठ 65—66।

6. उत्तरी—भारत की सन्त—परम्परा, पृष्ठ 230—231, प्रथम संस्करण
   हिन्दी—साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग 4, पृष्ठ 106, द्वितीय संस्करण।

   —संत—काव्य, पृष्ठ 90, चतुर्थ संस्करण।

7. **रामा भगति रामानंदु जानै। पूरन परमानंदु बखानै ।।** आदि श्रीगुरुग्रंथसाहिब, 3 सैंची, पृष्ठ 939।

8. नाभा कृत भक्तमाल, छप्पय क्रमांक 63, रूपकला—संस्करण, पृष्ठ 525 व इसकी टीकाएँ।
   राघवदास दादूपंथी कृत भक्तमाल, छंदांक 139—140, अगरचंद नाहटा संस्करण, पृष्ठ 64
   दयालदास रामस्नेही कृत भक्तमाल, छंदांक 229, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 162 टीकाकार भगवद्दासजी, सींथल
   किशनदास कृत भक्तमाल, छंदांक 111, किशनदासजी महाराज की अनुभववाणी, पृष्ठ 197, प्रथम संस्करण।

   'जन्मलो न्हावीय चें उदरी' तथाकथित भक्त सेन कृत मराठी अभंग, स्रोत : उत्तरी—भारत की सन्त—परम्परा, पृष्ठ 230।
   The Sikh Religion by M.A. Macauliffe, VI Volume, Pp 120.
   आदि—ग्रंथ में संग्रहित संत कवि, पृष्ठ 66, डॉ. महीपसिंह।
   सन्त—काव्य, पृष्ठ 90
   हिन्दी—साहित्य का वृहत् इतिहास, पृष्ठ 106, आ. परशुराम चतुर्वेदी।
   रैदास—रचनावली, पृष्ठ 59, डॉ. गोविन्द रजनीश, 2009 का संस्करण।
   आदि—गुरु—ग्रंथ, राग आसा, पद धन्ना भगत का, पृष्ठ 395, सैंची 2.

   सैनु नाई बुतकारीआ, ओहु घरि घरि सुनिआ।
   हिरदै बसिआ पारब्रह्म, भगता महि गनिआ ।।

   और भी पुस्तकों से इसकी पुष्टि होती है। अतः अधिक संदर्भ जुटाने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं रह जाता।

9. हिन्दी–साहित्य–कोश, भाग–2, पृष्ठ 527, द्वितीय संस्करण; धीरेन्द्र वर्मा व अन्य।

10. आदि–गुरु–ग्रंथ, राग मारु, पद रैदास का, पृष्ठ 978, सैंची 3

    नामदेव कबीर तिलोचनु, सधना सैनु तरे।
    कहि रविदास सुनहु रे संतहु, हरि जीउ ते सभै सरे ।।

11. आदि–गुरु–ग्रंथ, राग आसा, पद धन्ना भगत का, पृष्ठ 395, सैंची 2

12. *श्रीरामानँद रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेतु जग तरन किय ।।*
    अनतानंद कबीर सुखा सुरसरा पदमावति नरहरि।
    पीपा भावानंद रैदास धना सेन सुरसर की घरहरि।
    औरों शिष्य प्रशिष्य एक ते एक उजागर।
    विश्वमंगल आधार सर्वानंद दशधा के आगर।
    बहुत काल वपु धारिके प्रणत जनन को पार दियो।
    रामानँद रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेतु जग तरन कियो।

    भक्तमाल, रूपकला–संस्करण, पृष्ठ 282, छंदांक 36

13. हिन्दी–साहित्य का वृहत्–इतिहास, भाग 4, पृष्ठ 106, द्वितीयावृत्ति।

14. उत्तरी–भारत की सन्त–परम्परा, पृष्ठ 233

15. The Sikh religion, by M.A. Macauliffe Pp 120 Sixth volume

16. आदि–ग्रंथ में संग्रहित संतकवि, पृष्ठ 65 डॉ. महीपसिंह।

17. भक्तमाल, रूपकला–संस्करण, पृष्ठ 525।

18. आदि–ग्रंथ, पहली सैंची, पृष्ठ 13 भूमिका भाग, डॉ. मनमोहन सहगल।

19. रामरसिकावली, पृष्ठ 939, छंदांक 31, राजा रामसिंहदेव को कबीर का शिष्य भी बताया है।

    तहँ को राजा राम बघेला। वर्ण्यो जेहि कबीर को चेला ।।
    करै रोज तिनकी सेवकाई। मुकुर देखावै तेल लगाई ।।

20. रींवा राज्य का इतिहास : लेखक गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री

21. रामरसिकावली, पृष्ठ 1080 से 1102 तक, रघुराजसिंहदेव

22. रामरसिकावली, पृष्ठ 1102–1103, एवम् रींवा राज्य का इतिहास

23. रामरसिकावली, पृष्ठ 1102 से 1103 व वेवसाइट आन रींवा

24. उत्तरी–भारत की सन्त–परम्परा, पृष्ठ 232, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

25. अनन्तदास ने कुल नौ परचियाँ लिखी हैं : (1) नामदेव (2) त्रिलोचन (3) राँका–बाँका (4) धन्ना

(5) पीपा (6) रैदास (7) कबीर (8) अंगद (9) सेऊ–संमन। इन्होंने नामदेव के परची में इसको बनाने का समय वि.सं. 1645 बताया है। अनन्तदास विनोदीजी का शिष्य और विनोदीजी अग्रदासजी, रैवासा के शिष्य थे।

26. अनंतदास कृत रैदास की परचई, विश्राम 7 को लेकर 9 तक। सिटी पैलेस, जयपुर की वि.सं. 1719, 1722, व 1744 की हस्तलिखित पुस्तकें व लेखक के निजी संग्रह में उपलब्ध 1869, 1844, 1903 वि॰सं॰ की हस्तलिखित प्रतियाँ।

27. रामरसिकावली : बघेलवंशागमनिर्देश, महाराजा रघुराजसिंहदेव निर्मित, पृष्ठ 1099

28. उक्तानुसार, पृष्ठ 1100, 1101,

29. अनंतदास कृत कबीर की परचई, चौथे विश्राम के छंदांक 11 से लेकर छठे विश्राम के छंदांक 4 तक। बिन्दु 26 में उल्लिखित व अन्यान्य हस्तलिखित ग्रंथ।

30. *मनां भज रे हरि चरन।*
परम पुनीति आरति हरन, और जँजाल सब तजसि लोई।
वेद पुरान जे कोटि सासतर पढै, बिना भगवंत नहिं मुक्ति होई ।।टेक।।
भजि हरि चरन जीति च्यारयूँ वरन, जास की जाति अछोप छीपा।
व्यास में लेखिये सनक में पेषिये, नामा की नामना सप्त दीपा ।।1।।
जाकै ईद बकरीद गऊ रह बध करै, मानिये सेख सहीद पीरा।
बाप वैसी करी पूत अैसी धरी, प्रथमि प्रसिध नवखण्ड कबीरा ।।2।।
जासु के कुटुंब के ढोर ढोवत फिरैं, अजहूँ वाणारसी आस पासा।
षट क्रम सहित विप्र डंडवत करैं, प्रगट नीसाण रैदास दासा ।।3।।
जपत जे जना चरण कंवलापति, तास सम तुलि नहीं आन कोई।
आप एक अनेक ह्वै बिसतर्‌यौ, अंत ही एक ह्वै रह्यौ सोई ।।4।।
दसौं दिसि छाइ जस रह्यौ भरपूरि करि, कूण मारगि गयौ खोजौं न पाऊँ।
दास पीपौ कहै कठिण कलिकाल में, भगत भगवंत भजि पार पाऊँ ।।5।।

– दादूधाम नरायना के ग्रंथांक 496, 497, 561 व अन्य अनेक ग्रंथ, लिपि–काल क्रमशः 1660, 1785 व 1780 विक्रम–सम्वत्।
– रज्जब की सरबंगी, पृष्ठ 272–273; अंग 22, पदांक 22; सम्पादक– ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल
– संत–सप्तक, लेखक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल, पृठ 30–86

31. चौहान–कुल–कल्पद्रुम, पृष्ठ 99, इसके अनुसार कड़वाराय (क्रोधसिंह) के पुत्र थे। राजर्षि पीपा जिनका पूर्वाश्रमीय नाम बप्पाजी राजा था। ये निःसंतान थे। अतः इनका काकाजात भाई कल्याणराव इनकी गद्दी पर बैठा। इसका भोजराज और भोजराज का उत्तराधिकारी अचलदास खीची हुआ।

32. तबकाते अकबरी, जिल्द 3, पृष्ठ 207, 208 व 479

अचलदास खीची री वचनिका, शिवदास गाडण री कही, मूल–पाठ, 21 (1) व भूमिका पृष्ठ 85 व 138, सम्पादक डॉ. शंभुसिंह मनोहर

– राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम, पृष्ठ 12, लेखक सुखवीरसिंह गहलोत।
– तबकाते फरिश्ता (ब्रिग्स कृत अंग्रेजी अनुवाद), जिल्द 4, पृष्ठ 23–25, 282–283

33. वचनिका : ऐतिहासिक परीक्षण, पृष्ठ 3, सं. दीनानाथ खत्री, ले. डॉ. दशरथ शर्मा
A descriptive catalogue of Bardic and Historical MSS. section II Part I, page 41 by Dr. P.L Tessitori.

34. डॉ. शंभुसिंह मनोहर ने अनेक विद्वानों के मतों का पूर्व–पक्ष के रूप में उल्लेख कर उन्हें सप्रमाण निरस्त करते हुए निर्णय दिया है कि शिवदास गाडण जो अचलदास खीची का समकालीन तथा अचलदास खीची के पुत्र पाल्हणसी के साथ युद्ध के पूर्व ही गढ़ से निकलकर युद्ध से विरत हो गए थे, ने पाल्हणसी के राज्य–काल में हुए दूसरे शाके (सन् 1444) के पूर्व ही इस ग्रंथ का निर्माण कर दिया था, क्योंकि गागरोन के इस दूसरे शाके का इस ग्रंथ में कोई उल्लेख नहीं है। अतः उनका निर्णय है कि इस वचनिका का रचनाकाल ई. 1434 से 1444 के बीच कभी भी हो सकता है। पृष्ठ 26, भूमिका।

डॉ॰ दशरथ शर्मा ने भी इसका रचनाकाल ई॰ 1435 वि.सं. 1492 माना है। देखें Rajasthan through the ages, page 441 by Dr. Dashrath Sharma. सन् 2014 का संशोधित संस्करण।

35. खवास प्रायः नाई जाति के ही हुआ करते थे और वर्तमानकाल के 10–20 वर्ष पूर्व तक प्रायः नाइयों को खवासजी व नाइनों को खवासनजी कहा जाता था। 'खवास' शब्द खास से बना है, जिसका तात्पर्य है 'निजी'। राजा का निजी सेवक। खवास नाई ही होते थे, ऐसा अटल नियम नहीं था। जयपुर का रोडाराम खवास दर्जी था। इसने रोड़पुरा नामक गाँव बसाया, जिसको आजकल दुर्गापुरा (जयपुर) कहा जाता है।

36. भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी टीका, 39 वाँ रचनावृंद, छंदांक 29, पृष्ठ 298

37. उक्त, छंद 29

38. नाभा कृत भक्तमाल, छंदांक 36, रूपकला–संस्करण, पृष्ठ 282

39. भक्तदामगुणचित्रणी टीका, 39वाँ रचनावृंद, छंदांक 34, पृष्ठ 298

40. वही, छंदांक 39वाँ।

41. संत धन्ना जाट का पद, आदि–गुरु–ग्रंथ–साहिब, पृष्ठ 395, सैंची दूसरी

42. रज्जब ने सरबंगी नामक ग्रंथ को विक्रम–सम्वत् 1660 से 1670 के बीच कभी भी संकलित कर सम्पादित किया था। इसमें 149 अंग तथा 117 हिन्दी के रचनाकार हैं। उर्दू–फारसी व संस्कृत के रचनाकार इनसे अलग हैं। इसमें कुल 16 प्रकार के छंदों का प्रयोग होकर 4108 छंदों–पदों का संकलन है। देखें : रज्जब की सरबंगी, सम्पादकः ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल। सन्तप्रवर सैन का पद इसमें 39वें अंग के 46वें पद के रूप में आया है।

43. दादू–शिष्य संतदास मारु के शिष्य सन्त गोपालदास ने वि.सं. 1684 में, जब वे 37 वर्ष की उम्र के थे। साँभर में रहते हुए 'सरबंगी–सरह–चिंतामणि' नामक ग्रंथ का संकलन–सम्पादन किया। इसमें कुल 126 अंग हैं, जिनमें समाहित सामग्री का अनुष्टुप श्लोकांक 25000 परिमाण है। इस

ग्रंथ में संत सैन का 78वें अंग में 87वाँ पद है।

44. यह पाठ दादूधाम, नरायना के ग्रंथांक 496 के आधार पर है, जिसका लिपिकाल वि.सं. 1660 है। चूँकि यह प्राचीनतम पाठ है। साथ ही अर्थ की दृष्टि से इसका पाठ प्रामाणिक लगता है। अतः अन्यान्य प्रतियों से पाठान्तर नहीं दिये गये हैं। वैसे पाठांतर हैं भी सामान्य। ग्रंथांक 561 में बीनऊँ के स्थान पर केशव पाठांतर अवश्य महत्वपूर्ण है, जो अर्थ भिन्नता भी उत्पन्न करता है।

45. यह पाठ दादूधाम, नरायना के ग्रंथांक 497 के आधार पर है। इसका लिपिकाल वि.सं. 1785 है। इसमें कुल 69 आरतियों का संकलन है, जिसमें से इसका 19वाँ क्रमांक है। दादूधाम, नरायना की कई अन्य पंचवाणी–पुस्तकों में भी इस आरती का संकलन है। गुरु–ग्रंथीय–पाठ प्रकाशित है। अतः उसको पाठांतर में देना पृष्ठों को बढ़ाना मात्र है।

46. यह गोष्ठी वि॰सं॰ 1869 में लिखी पुस्तक के पृष्ठ 343 से प्रारंभ होकर 345 पर समाप्त होती है। इस गोष्ठी के सम्पन्न होने के अनंतर ही रैदास तथा सैन की निष्ठा साकार भगवान् की ओर से हटकर निर्गुण–निराकार की ओर हो गई। संतों से सुना गया है कि रैदास द्वारा पदों व साखियों की रचना भी इस गोष्ठी के उपरान्त ही की गई। इसी कारण पदों व साखियों में सगुण–साकार–निष्ठा का वर्णन न होकर निर्गुण–निराकार–निष्ठा का वर्णन है। इस गोष्ठी को पढ़ने पर उक्त तथ्य की पुष्टि भी होती है। यह रचना राजस्थान–प्राच्य–विद्या–प्रतिष्ठान, जयपुर के ग्रंथांक 12 के पृष्ठ 324–325 पर भी लिखित है।

4. रैदास के पदों में अन्तर्साक्ष्य

4. (1) बीसवीं शती के अनन्य–रैदास–भक्त, शिक्षाविद् आचार्य पृथिवीसिंह 'आजाद', भूतपूर्व उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ने सन्त रैदास पर कई पुस्तकों का प्रणयन किया व कई विद्वानों को प्रेरित कर पुस्तकें लिखवाईं। आचार्य आजाद की एक पुस्तक नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है, उसमें कुछ पदों के प्रसंगों का उल्लेख है। नागरीदास ने उस पद का प्रसंग लिपिबद्ध किया, जिसको रैदास ने उस समय बनाया, जब उनका ब्राह्मणों से काशी में प्रथम–बार विवाद हुआ। पद गाने से भगवान् रैदास की गोद में आये। गोद में आने के पश्चात् की घटित घटना और उस समय गाये गये पद का प्रसंग आचार्य आजाद ने इस प्रकार बताया है–

ब्राह्मणों और रैदास के बीच यह तय हुआ कि भगवान् का सिंहासन जिसकी गोद में आ जायेगा, उस विजेता की पालकी पराजित उठायेगा और पूरे बनारस शहर में उस पालकी को ढोयेगा। भगवत्कृपा से रैदास विजयी हुए। उन्होंने भगवान् के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए निम्न पद गाया–

ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै।
गरीबनिवाजु गुसँईआँ मेरो, माथै छत्र धरै ।। टेक ।।
जाकी छोत जगत कउ लागै, ता पर तुही ढरै।
नीचह ऊँच करै मेरा गोबिन्दु, काहू ते न डरै ।।
नामदेव कबीरू तिलोचनु, सधना सेनु तरै।
कहि रविदासु सुनहु रे सतंहु, हर जीउ ते सभै सरै ।।

– गुरु रविदास, पृष्ठ 21, नेशनल बुक ट्रष्ट, आ. पृथिवीसिंह आजाद।
– आदि–गुरु–ग्रन्थ, राग मारु, पृष्ठ 1106 टीकाकार डॉ. मनमोहन सहगल।

- दादूवाणी में यह पद संतप्रवर दादू की छाप से सामान्य पाठान्तरों के साथ मिलता है। दृष्टव्य पदांक 276, राग नटनारायण।
- रैदास : जीवनी एवं पदावली में पदांक 111 के रूप में उपलब्ध।

4. (2) कहते हैं, एक बार गंगा–किनारे उपदेश देते हुए रविदास ने कहा कि राम–नाम का जप करने से जापक भवसागर से पार हो जाता है। कुछ ईर्ष्यालु पंडित जो उस समय वहाँ थे, उन्होंने कहा कि व्यक्ति मरने के पश्चात् तिरता है या नहीं तिरता है, कौन जाने। आप तो गंगा में इस पत्थर को तिराकर दिखा दो, हम आपकी बात मान जाएंगे। रैदास ने तत्काल निम्न पद बनाया और धीरे–धीरे मधुर–स्वर में गाया। गंगा में पत्थर फेंका गया। वह उसी–प्रकार तैरने लगा जैसे नल–नील द्वारा फेंके गए पत्थर समुद्र में तैर गए थे।

बपुरा सत रविदास कहै रे।
ग्यान बिचारि चरन चित लावै, हरि की सरनि रहै रे ।।
पाती तोड़ै पूजि रचावै, तारन तरन कहै रे।
मूरति माहिं रहै परमेसुर, तो पानी माहिं तिरै रे ।।
झूठी माया जग डहकाया, तीनूँ ताप दहै रे।
कह रविदास राम जपि रसना, माया कैसे संग रहै रे ।।

- गुरु रविदास, पृष्ठ 22, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली।
- राजस्थान–प्राच्यविद्या–प्रतिष्ठान, जयपुर के ग्रंथांक 34 के पृष्ठ 242 पर रैदास–वाणी के अन्तर्गत पदांक 44, राग सोरठि। यह पद अन्यान्य पंचवाणियों में भी मिलता है।
- रैदास : जीवनी एवं पदावली में पदांक 54 के रूप में उपलब्ध।

4. (3) आचार्य पृथिवीसिंह आजाद ने लिखा है कि भगवभक्ति में लिंग, जाति, वर्ण, देश, काल, आयु आदि कुछ भी बाधक नहीं हैं। ब्राह्मणों ने जब रैदास की बात सुनी, तब उन्होंने राजा से शिकायत की कि रैदास वर्णव्यवस्था को तहस–नहस करने को उतारू है। वह सभी को भगवभक्त बनाने में लगा हुआ है। यदि सभी भगवभक्त हो जाएंगे तो सेवा–चाकरी का काम कौन करेगा। राजा भगवभक्ति का मर्म जानता था। उसने रैदास का पक्ष लिया। परिणामस्वरूप रैदास को ब्राह्मण भी दण्डवत करने लगे। कृतज्ञ रैदास ने भगवान् के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए निम्न दो पद बनाकर गाए।

मुझे ऐसा लगता है कि इन पदों को बनवाने वाली घटना भी वही है जो काशी में घटित हुई और जिसके अनुसार शालग्राम भगवान् रैदास की गोद में आकर विराजे। क्योंकि इस घटना में कोई न कोई राजा मध्यस्थ अवश्य था। वह राजा कौन था, उसका कोई नाम नहीं मिलता। अनंतदास की परचई से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों ने राजा से रैदास की शिकायत की, कि निम्न–जाति का होने पर भी वह शालग्राम की पूजा करता है। राजा ने रैदास की भगवद्भक्ति को जानकर रैदास की प्रशंसा की। शालग्राम को बीच में रखा गया। शालग्राम ने रैदास के पक्ष में निर्णय दिया। इस घटना से सम्बद्ध दो पद ऊपर आ गए हैं। निम्न पद भी इसी घटना से सम्बद्ध होंगे, ऐसा मानना अनुचित नहीं कहा जा सकता। इन पदों के भावों से ऐसा मानना भी समीचीन लगता है कि रैदास ने ये पद कुंभलगढ़ (चितौड़) में उस–समय बनाकर गाए, जब वे ब्राह्मणों के द्वारा उग्र विरोध और प्रतिरोध करने पर भी विजयी हुए और अनंतदास की परचई के अनुसार ब्राह्मणों ने रैदास से क्षमायाचना की। पदों के पाठ निम्न–प्रकार हैं–

नागरजनाँ मेरी जाति बिखियात चमारं, रिदै राम गोविन्द गुन सारं ।।
सुरसरी सलल क्रित वारुनी रे, संत जन करत नहीं पानं।
सुरा अपवित्र नत अवर जल रे, सुरसरी मिलत नहि होइ आनं ।।
तर तारि अपवित्र करि मानीऐ रे, जैसे कागरा करत बिचारं।
भगति भागउतु लिखिये तिह ऊपरे, पूजीऐ करि नमसकारं ।।
मेरी जाति कुटवाँढला ढोर ढुवंता, नित ही बानारसी आस पासा।
अब बिप्र परधान तिहि करहिं दंडउति, तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा ।।

– गुरु रविदास, पृष्ठ 19, आचार्य पृथिवीसिंह आजाद।
– आदि गुरुग्रंथसाहिब, राग मलार, पृष्ठ 1263।
– दादूपंथी पंचवाणियों मे यह पद मिलता तो है, किन्तु पाठांतर काफी हैं।
– पाठांतर रैदास : जीवनी एवं पदावली, पदांक 52 के आधार पर देखे जा सकते है–

हरि जपत तेऊ जनाँ पदम कवलासपति, तास सम तुलि नही आन कोऊ ।।
एक ही अनेक होइ बिसथरियो, आन रे आन भरपूरि सोऊ।। रहाऊ ।।
जाकै भागवतु लेखीऐ अवरु नहीं पेखीऐ, तास की जाति अछोप छीपा।
बिआस महि लेखीऐ सनक महि पेखीऐ, नाम की नामना सपत दीपा ।।
जाकै ईदि बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहि, मानीअहि सेख सहीद पीरा ।।
जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी, तिहू रे लोक परसीध कबीरा ।।

जाकै कुटुंब के ढेढ सभ ढोर ढुवंता फिरहिं, अजहु बानारसी आस पासा ।।
आचार सहित बिप्र करहिं डंडउति, तिन तनै रविदास दासानदासा ।।

– गुरु रविदास, पृष्ठ 19 आचार्य पृथिवीसिंह आजाद
– गुरु–ग्रंथ–साहिब, राग मलार, पृष्ठ 1293
– रज्जब की सरबंगी और गोपालदास की सरबंगी–सरह–चिंतामणि में यह पद काफी बड़ा है और इन ग्रंथों के आधार पर यह पद रैदास का न ठहरकर राजर्षि पीपा का ठहरता है। विस्तार के लिए रैदास : जीवनी एवं पदावली में पदांक 113 के पाठांतर व कर्तृत्व के सम्बंध में भूमिका देखें। मेरे **राजर्षि पीपा 'गागरोनी'** नामक निबंध में भी इसके सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया गया है।

5. पद–प्रसंग–माला के साक्ष्यानुसार रैदास

भूतपूर्व किशनगढ़ (रूपनगढ़) राज्य के राजा और ब्रजभाषा के सशक्त भक्त कवि नागरीदास (साँवतसिंह का कविता का समय विक्रम–सम्वत् 1756 से 1819 तक है) ने 70 ग्रंथों की रचना की है, जिनमें से एक 'पद–प्रसंग–माला' है। इसका निर्माण काल ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है फिर भी अनुमान है, इसका निर्माण वि.सं. 1800 के आस–पास हुआ होगा। इसमें अनेक संतों/भक्तों के पदादि व उनके बनाने के कारणों का गद्य ब्रजभाषा में उल्लेख है। ग्रंथकार ने उन कारणों को प्रसंग नाम दिया है। सन्त रैदास के जीवन की एक घटना जो काशी में घटित हुई से सम्बन्धित प्रसंग व पद नागरीदासजी ने उक्त पुस्तक में लिखा है। उसका अविकल पाठ नीचे दिया जा रहा है। रैदास को पारस पत्थर भगवान् देने आये थे। उस समय रैदास ने जो पद बनाकर गाया, वह भक्तमाल की रसबोधनी टीका के हाशिये में मुझको मिला है और उसका पाठ भक्तमाल की टीका के पश्चात् इसी पुस्तक में अन्यत्र लिखा है। यह पद उस समय बनाया, जब काशी के ब्राह्मणों और रैदास में सर्वप्रथम शालग्राम पूजा के सम्बन्ध में विवाद हुआ। ब्राह्मणों ने वेदमंत्र–घोष के द्वारा भगवान् का आह्वान किया। भगवान् नहीं आये। रैदास ने निम्न पद गाया। भगवान् आये। रैदास की विजय हुई। मूल पाठ पढ़ें–

"काहू समैं रैदासजू को उत्कर्ष बहुत लोकनि कौं करत देखि कितनेक ब्राह्मण आनधर्म अभिमानी है, तिनकै बहुत मत्सरता ऊपजी, तब बहुत सुबुधी सुहृद ब्राह्मण वैष्णवधर्म में सावधान है, तिन उनकौं मनैं कीनैं तथा भक्ति महातम कहि सुनायो। तऊ उनके मन में न आई। वैसी ही वैसी मंडली मिलि राजा पै जाय पुकार करीजु, यह हीन–जाति ठाकुर क्यों सेवै, धर्मशास्त्र में मनैं है, याको दोस तुम्हैं पहुचैं हैं, तब राजा ने यह कही। जो भक्ति महातम घटि नहीं अर शास्त्रहु खंडन न कियो जाव, यातैं ठाकुर बीच पधरावो, एक ओर तुम बैठो, एक ओर वे बैठैं; तुमहू आराधन करो, वे हू आराधन

करै। जासों ठाकुर प्रसन्न होहिंगे ताही की ओर सुतहैसिद्ध सिंघासन सहित पधारैंगे। तब ऐसैं ही कियो एक ओर ब्राह्मन अपरस होय वेदपाठ करत–करत द्वै पहर बिताये, कंठि रहि गये, बहुत श्रमत ह्वै चित में दुख मानि बैठि रहे। फिरि रैदासजू सों कह्यौ अब तुम प्रारम्भ करो, तब इनकौं और कछु तो आवत नहीं, द्वै मंजीरा फैंट में ते निकास एक नयो पद बनाय अकेले ही गद्‌गद् कंठ दीनता करुणा सहित गावन लागे, भोग की तुक आय चुकी, वाही छिन ठाकुर सेवा को सिंघासन सब देखत चल्यो सो रैदासजू की गोद में आय रह्यौ सो प्रसंग अरु पद जगत में बहुत प्रसिद्ध भयो सो वह यह पद –

आयो आयो हो देवादिदेव तुम सरन आयो।
परमसुख को मूल, जाकैं नहीं समतूल, सो चरन मूल पायो।।
लिया विविध जोनि, बास जम की अगम, त्रास तुम्हारे भजन बिन भ्रमता फिर्‌यो।।
माया मोह विषय रस लंपट यह दुख दुसतर तिर्‌यो।।
तिहारे नाव बिसवास, छाडी आज की आस, संसारी धरम मेरो मन न धीजे।।
रैदास दास की सेवा मानहो देवा, पतितपावन नाँव प्रगटि कीजे।।

– नागरीदास – ग्रन्थवली, पृष्ठ 577–578। सम्पादक : फैयाजअली खाँ। प्रकाशक : केन्द्रीय–हिन्दी–निदेशालय। प्रथम संस्करण। सम्वत् 2022। उक्त जानकारियाँ इसी ग्रंथावली की सूचनाओं पर आधारित हैं। यद्यपि उक्त ग्रंथावली में नागरीदासजी का जन्म–सम्वत् 1756 दे रखा है, किन्तु निकुंज–गमन नहीं दे रखा है। अन्य स्रोतों से यह समय सम्वत् 1821 ज्ञात हुआ है।

– राजस्थान–प्राच्य–विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर के ग्रंथांक 34 के पृष्ठ 236 ख पर पदांक 8 के रूप में राग रामगिरी के अंतर्गत भी उपलब्ध है, यह पद। अन्यान्य पंचवाणी पुस्तकों में भी यह पद उपलब्ध हैं।

– रैदास : जीवनी एवं पदावली, सम्पादक– ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल में पदांक 8 के रूप में उपलब्ध।

6. पदावली–परिचय

6.(1) आधरभूत–हस्तलिखित–ग्रंथ

मीरांबाई की जीवनी लिखते समय संतप्रवर रैदास की एवम् मीरांबाई की रचनाओं की चर्चा करते समय भक्तप्रवर नृसिंह मेहता की चर्चा करना परम अपरिहार्य है। 'मीरांबाई का रैदास के साथ कोई सम्बन्ध रहा था अथवा नहीं', यह जीवनी भाग पर विचार करते समय एवं 'नरसीजी रो माहेरो, क्या मीरांबाई द्वारा रचित है अथवा नहीं'; यह पदावली भाग पर विचार करते समय यक्ष प्रश्न बनकर उभरते हैं। **'मीरांबाई : प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली'** नामक मेरी प्रसिद्ध कृति के प्रणयन के समय इन बिन्दुओं पर मैंने गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किये हैं और मेरे निष्कर्ष विद्वत्–समाज द्वारा आदृत भी हुए हैं। सभी सुहृद्जनों का आग्रह था कि मैं भक्तप्रवर नृसिंह मेहता पर तो लिखूँ ही, संतप्रवर रैदास पर भी लिखूँ।

भक्तप्रवर नृसिंह मेहता पर **'नरसीजी रो माहेरो'** नाम से मेरी पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है और अब **'रैदास : जीवनी एवं पदावली'** पाठकों को समर्पित की जा रही है।

यद्यपि संत रैदास की मूल एवं सानुवाद कई पदावलियाँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु उनमें से अधिकांश का सम्पादन हस्तलिखित प्राचीनतम ग्रंथों पर आधारित नहीं है। कुछ तो पूर्व प्रकाशित पदावलियों की अनुकृति मात्र है और कुछ उन्नीसवीं अथवा बीसवीं शताब्दी में लिखित ग्रंथों पर आधारित हैं। दो–चार पदावलियों के नामचीन सम्पादकों ने तो मनमाना अर्थ करने के चक्र में मूल पाठ को ही बदल डाला है; जिनकी चर्चा आगे चलकर की जायेगी।

जिस–प्रकार मैंने पहली बार मीरांबाई की प्राचीनतम पदावली हस्तलिखित ग्रंथों में उपलब्ध पाठों के आधार पर सम्पादित की है, वैसे ही रैदास की पदावली भी प्रस्तुत करने की मन में अभिलाषा थी और इसी की पूर्ति हेतु मैंने अनेक हस्तलिखित ग्रंथों का

अध्ययन–अनुशीलन किया और निम्नलिखित 20 हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर कुल 113 पदों को पाठान्तरों सहित सानुवाद प्रस्तुत किया है।

6.(1) 1. आधारभूत पाठ के लिये चयनित ग्रंथांक 496 : यह दादूधाम, नरायणा का 'पंचवाणी' श्रेणी का बड़ा ग्रंथ है, जिसमें रैदास के कुल 79 पद पृष्ठ संख्या 220 'आ' से प्रारम्भ होकर पृष्ठ 229 'आ' पर समाप्त होते हैं। पृष्ठ 229 'आ' पर ही चार साखियाँ भी मिलती हैं। इसका लिपिकाल 'संवत 1660 बरषे मास फागुण बदि चौथि के दिन सम्पूर्ण भवेत' है जो इसके पृष्ठ 358 पर उपलब्ध है। लिपि अच्छी है; काली स्याही व लाल हींगलू के साथ–साथ पीली हरताल यथास्थान प्रयुक्त की गई है। अक्षर सुडौल व स्फीत हैं। लिपिकार ने यथासाध्य शुद्ध लिखने का प्रयत्न किया है, किन्तु लिपिकार के रूप में अपना नाम कहीं भी नहीं लिखा है। लिपिस्थान का उल्लेख भी नहीं है।

6.(1) 2. ग्रंथांक 2 : यह दादूधाम, नरायणा का 'पंचवाणी' श्रेणी का पुस्तकाकार ग्रंथ है, जिसके पृष्ठ 244 से रैदास की वाणी प्रारम्भ होकर पृष्ठ 258 आ पर समाप्त होती है। इसमें कुल 80 पद व 4 साखियाँ हैं। इसकी पुष्पिका इस–प्रकार है –"संवत सतरासै 1796 तिथि पोह वदि इकादसी 11 बार सुभवार ता दिन पोथी लिखी सुथान कान्हौर कै अस्थलि, बाबा हरीदासजी कै ठिकानै पोथी लिखतं बाबा स्यामदासजी का सिष नराइणदासजी उमरे वाला, बाबा नराइणदासजी का गुलाम नाम भगवान तिनि पोथी लिखि संपूर्ण करी" पृष्ठ 491; लिपि सुवाच्य, अक्षर सुन्दर और स्फीत हैं।

6.(1)3. ग्रंथांक 4 : दादूधाम, नरायणा की पंचवाणी पुस्तक है, जिसको मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया, सोमवार, विक्रम–सम्वत् 1824 के दिन संत विजयराम ने लिखकर पूर्ण की है। इसमें संत रैदास के 80 पद व 4 साखियाँ पृष्ठ 245 से प्रारम्भ होकर पृष्ठ 257 अ पर समाप्त होते हैं। लिपि स्पष्ट, सुडौल और सुपाठ्य है। स्याही, हींगलू व हरताल के प्रयोग यथास्थान हैं।

6.(1) 4. ग्रंथांक 561 : दादूधाम, नरायणा की पंच–वाणी पुस्तक है, जिसको दादूपंथाचार्य श्रीजयतरामजी के प्रशिष्य एवं संत श्री कल्याणदासजी के शिष्य संत श्री हीरानंद ने विक्रम–सम्वत् 1780, कार्तिक शुक्ला द्वितीया, गुरुवार को श्री साधुरामजी के अस्थल मांडोठी में लिखकर पूर्ण की है। इसमें कुल 103 संतों की वाणियाँ हैं, जिनका अनुष्टुप श्लोकांक 22000 लिखा मिलता है। हस्ताक्षर स्पष्ट, सुंदर व सुपाठ्य हैं। स्याही, हींगलू व हरताल का प्रयोग यथास्थान है। संत रैदास की वाणी पृष्ठ 279 से प्रारम्भ होकर पृष्ठ 296 अ पर समाप्त होती है। इसमें कुल 81 पद मिले हैं।

6.(1) 5. ग्रंथांक 497 : दादूधाम, नरायणा की पंचवाणी पुस्तक है, जिसमें रैदासजी की वाणी पृष्ठ 264 आ से प्रारभ होकर पृष्ठ 275 आ पर समाप्त होती है। इसमें कुल 69 पद हैं। साखियाँ नहीं हैं। यह पुस्तक भदूण ग्राम में श्रीविजयराम दादूपंथी के शिष्य श्रीकिशोरदास ने भाद्रपद कृष्णा नवमी, रविवार, सम्वत् 1785 को लिखकर पूर्ण की है। लेखक ने इस तिथि के दिन मृगशिरा नक्षत्र बताया है। लिपि बहुत सुंदर, सुपाठ्य और शुद्ध है।

6.(1) 6. ग्रंथांक 529 : दादूधाम, नरायणा की पुस्तक है, जिसमें रैदास की वाणी पृष्ठ 216 आ से प्रारम्भ होकर 227 पर पूर्ण होती है। इसमें कुल 71 पदों का संकलन है। लिपि सुन्दर, सुपाठ्य और शुद्ध है। यथास्थान स्याही, हींगलू व हरताल का प्रयोग किया गया है। यह किसने व कहाँ लिखी, इसका विवरण तो पुस्तक में नहीं है, किन्तु लेखन काल इस–प्रकार लिखा मिलता है ''अष्टादस संमत कहे, बावन ऊपर जानि। महा सुदी है पंचमी, बार सु सुरगुरु आनि।।'' इसमें कुल 63 ग्रंथ हैं, जिनका अनुष्टुप श्लोकांक 22105 है।

6.(1) 7. ग्रंथांक 501 : दादूधाम, नरायणा का पंचवाणी संग्रह का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें रैदास–वाणी पृष्ठ 235 से शुरू होकर पृष्ठ 247 पर समाप्त होती है। इसमें रैदास के 65 पद हैं। लिपि स्पष्ट, सुन्दर, सुडौल है। लिपिकार ने पुस्तकांत में लिखा है–

पुस्तक नाम सपूरण हूवौ। गुरु गोविन्द को पायौ हूवौ ।।
सब साधाँ घटि बाढ्यौ प्रेम। पुस्तक लिख्यौ नाम तस खेम ।।1।।
गुरु जोगेस्वर है चत्रदास। दादागुरु सो मोहनदास ।।
पड़दादा गुरु स्वामी दादू। जिनके भगति चली है आदू ।।2।।
मेरे उनको है नित नेम। पुस्तक लिख्यौ नाम तस खेम ।।

इस पृष्ठ के पृष्ठभाग पर लेखक ने पुष्पिका के चारों ओर सुंदर कलात्मक बार्डर बनाकर निम्न पुष्पिका और लिखी है

''रामजी सत्य।। श्रीनिरंजनायनमः श्रीरामायनमः श्रीस्वामी दादूदयालजी सत्य संवत् 1710 वर्षे मासे आषाढ़ सुदि 8 आठें कै दिन संध्या काले पुस्तक संपूर्ण समाप्तः लिखित श्रीगुसाँईजी चत्रदासजी का सिखि खेमदास परसवंसी गाँव छातड़ी तस्य मध्ये पातिसाही महल बिहारीदास झोधर्या तस्मिन् गृहे शास्त्र सुभाषितं तत्र तिष्ठते श्रीस्वामी चत्रदासजी का सिषि रामदासजी लिखितं खेमदास रामदासजी पठनार्थं।।''

इसी लिपिकार द्वारा विक्रम सम्वत् 1709 की लिखी एक अन्य पंचवाणी पुस्तक भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना में भी उपलब्ध है।

6.(1) 8. राजस्थान–प्राच्य–विद्या प्रतिष्ठान का 34वें क्रमांक का ग्रंथ : यह ग्रंथ जयपुर शाखा में उपलब्ध है और जिस संग्रह में यह ग्रंथ उपलब्ध है, उसको पुरोहित हरिनारायण शर्मा, विद्याभूषण–संग्रह कहा जाता है। यह ग्रंथ वि.सं. 1710 में लिखा गया है, किन्तु ग्रंथांत में एक दूसरी पुष्पिका और उपलब्ध है, जहाँ लिखा है– "संवत् 1715 वर्षे शाके 1580 महामांगलीक फाल्गुन मासे शुक्ल पक्षे त्रयोदस्यां तिथौ गुरुवासरे डिंडपुर मध्ये स्वामी पिरागदासजी शिष्य स्वामी माधौदासजी तत्शिष्य वृन्दावनेन लेखि आत्मर्थे। शुभंभवतु।। श्रीरामोजयति।।" पृष्ठ 617

दादूद्वारा, नरायणा का ग्रंथांक 501 व यह दोनों ही दादूजी की चौथी पीढ़ी के संतों द्वारा लिखित हैं। अतः प्राचीनता व प्रामाणिकता की दृष्टि से दोनों ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण हैं। लिपि अच्छी है। पाठ शुद्ध है। अक्षर अपेक्षाकृत छोटे हैं, किन्तु पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं होती। रैदास की वाणी इसमें पृष्ठ संख्या 264 से प्रारम्भ होकर पृष्ठ 276 पर खत्म होती है। कुल पदों की संख्या 70 व साखियों की संख्या दो है।

6.(1)9. यह बडी पुस्तक मेरे निजी संग्रह की है जिसको श्री प्रेमदास उतराधा के शिष्य श्रीचरणदास ने लिखी है। पुष्पिका इस प्रकार है– "वरषे पोह मासे सुकल पक्षे आदीतवारे तिथि 8, सम्वत् 1821 अठारासै 21, लेखक पाठकयो शुभमस्तु।" पृष्ठ 643 आ। इसमें रैदास की वाणी पृष्ठ 171 से प्रांरभ होकर पृष्ठ 179 आ पर समाप्त होती है। इसमें कुल 70 पद हैं। प्रतिकार श्रीचरणदास के गुरु श्री प्रेमदास उतराधा भी कुशल लिपिकार थे, जिनकी लिखी हुई एक पुस्तक कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी विद्यापीठ आगरा में है जिसका लिपिकाल वि.सं. 1762 है। श्रीप्रेमदास श्री गंगारामजी के शिष्य थे और श्री गंगाराम श्री बनवारीदासजी के शिष्य थे। श्रीबनवारीदास श्री दादूदयालजी के शिष्य थे। यह पुस्तक उस परम्परा के लिपिकार की लिखी हुई है, जो पुस्तकें लिख–लिखकर संतों और गृहस्थों को दिया करते थे और जिनके पास प्राचीन प्रतियाँ परम्परा से प्राप्त होती थीं। अतः इस प्रति का पाठ प्राचीन व प्रामाणिक है। अक्षर बहुत अच्छे, स्पष्ट और सुपाठ्य हैं।

6.(1)10. यह प्रति महाराज सवाई मानसिंह द्वितीय, संग्रहालय जयपुर का प्राचीनतम ग्रंथ है जो **'पद सूरदासजी का'** के नाम से प्रसिद्ध है। इसका लिपिकाल वि.सं. 1639 वर्षे ज्येष्ठ मासे शुक्ल पक्षे द्वादस्यां तिथौ रविवासरे घटी 9 विसाखा नक्षत्रे पातिसाह श्रीअकब्बर राज्ये फतेपुर मध्ये पोथी लिखी। राज श्री

नरहरिदासजी तस्य पुत्र कु श्री छीतरजी पठनार्थं शुभ भवतु।। लेखक पाठकयो शुभमस्तु।। लिखतं रामदास रतना ।।छ।।" इसमें कुल 411 पदों का संकलन है, जिनमें से 262 पद तो सूरदास के ही हैं, शेष अन्य कई संतों–भक्तों के हैं। लाहौर के लड़बावरा कान्हा के 52 पद हैं। कबीर के 15 व रैदास के 5 पद हैं। अन्य पद अन्यों के हैं। ग्रंथांत में दी गई सारणी में हमने पृष्ठ संख्याओं का उल्लेख किया है जो मूल हस्तलिखित ग्रंथानुसार है। वैसे यह ग्रंथ फेसीमील रूप में हूबहू प्रकाशित हो चुका है। संत–साहित्य की अभी तक ज्ञात हस्तलिखित पुस्तकों में यह प्राचीनतम लिखित पुस्तक है।

पाठकों को यहाँ यह बता देना आवश्य है कि इस गुटके का लेखक रामदास रतना उतना सावधान लेखक नहीं था जितने दादूपंथी, रामस्नेही, चरणदासी, निरंजनी साधु हुआ करते थे। इसमें अशुद्धियों की भरमार है। इसका केवल प्राचीनता की दृष्टि से ही महत्त्व है, पाठ की शुद्धि की दृष्टि से नहीं। मैंने इसके पाँचों पदों के पाठों को पाठान्तरों में सम्पादित किया है।

6.(1)11. 'गुरु–ग्रंथ–साहिब' : जिसको गुरु श्री गोविन्दसिंहजी से पूर्व **'पोथी–साहिब'** कहा जाता था, इसका संकलन व सम्पादन पंचम–गुरु श्री अर्जुनदेवजी की देखरेख व निर्देशन में भाई श्रीगुरुदास भल्ला ने 'सूचीपत्र पोथी का ततकारा रागां दा संमत् 1661 मिती भादों वदी एकम्। पोथी लिखि पहुंचे" लिखकर पूर्ण किया। इसमें 38 रचनाकारों की रचनाएँ हैं। रचनाकारों की संख्या पर काफी विवाद है। कोई 36 मानते हैं, कोई 38 मानते हैं। मैंने मेरी **'शेख़ फरीद 'गंज–ए–शकर' : जीवनी और रचनाएँ'** पुस्तक में 38 रचनाकार माने हैं।

रैदास के गुरु–ग्रंथ में कुल 41 पद हैं, जिनमें से एक पद दो बार लिखा मिलता है। पुस्तकांत में उपलब्ध कराई जा रही सारणी में, ये 40 पद गुरु–ग्रंथ में जहाँ–जहाँ उपलब्ध हैं, वहाँ–वहाँ की पृष्ठ संख्या उपलब्ध करा दी है। कुछ पद पंचवाणी के पदों से मिलते हैं। ऐसे स्थानों पर गुरुग्रंथीय पाठ को पाठांतर में यथारूप उपलब्ध करा दिया है। जहाँ मात्र गुरु–ग्रंथीय पाठ ही मिला है, वहाँ मूल में गुरु–ग्रंथ का पाठ दिया गया है। पृष्ठ संख्या भी साथ में ही उपलब्ध करा दी गई है।

6.(1)12. रज्जब की सरबंगी : यह गुरु–ग्रंथ जैसा संकलित व सम्पादित ग्रंथ है, जिसमें 117 रचनाकारों की रचनाएँ संग्रहित हैं। इसमें कुल 149 अंग व 4108 छंद, पदादि हैं। मैंने इसका सम्पादन 5 हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर किया है और **'रज्जब की सरबंगी'** के नाम से सन् 2010 में प्रकाशित कराया है। मैंने 200 पृष्ठों की विशालकाय भूमिका में सिद्ध किया है कि इसका संकलन व सम्पादन दादू–शिष्य संत

रज्जब द्वारा वि.सं. 1660 और 1670 के मध्य सम्पन्न हुआ । मेरी पुस्तक में मैंने वि.सं. 1764 की प्राचीनतम प्रति से मूल पाठ प्रस्तुत किया है। रैदास के इसमें कुल 22 पद व एक साखी है।

6.(1)13. दादूदयाल के एक अन्य शिष्य संतदास मारु के शिष्य श्री गोपालदास ने विक्रम–संवत् 1684 में एक संग्रह ग्रंथ तैयार किया जिसका नाम **'सरबंगी–सरह–चिंतामणि'** है। जिस–समय श्रीगोपालदास ने साँभर में रहते हुए इसको तैयार किया, उस–समय उनकी 37 वर्ष की उम्र थी। इसमें लगभग 200 रचनाकारों की रचनाएँ हैं व इसका श्लोकांक परिमाण 25000 अनुष्टुप श्लोकों के लगभग है। इसमें रैदास के कुल 68 पदों का संकलन–सम्पादन हुआ है। 67 पद तो वे ही हैं जो पंचवाणियों में मिलते हैं, किंतु **'भगति दुर्लभ सुनहुँ रे भाई'** पद इसी में मिला है। ग्रंथांत में उपलब्ध कराई जा रही सारणी में अंग का क्रमांक व छंदांक–क्रमांक दिया गया है, जिससे इसमें संग्रहित रैदास की रचनाओं का तत्काल ज्ञान हो जाता है। यहाँ एक बात बताने की और है, श्री रज्जब व श्री गोपालदास की सरबंगियों में संग्रहित रैदास की रचनाएँ उतनी ही प्राचीन एवं प्रामाणिक हैं, जितनी गुरु–ग्रंथ की हैं। हाँ, यह बात सत्य है कि इन दोनों ही ग्रंथों में उन्हीं पदों का संग्रह मिलता है, जिनका पंचवाणी पुस्तकों में मिलता है। रज्जब की सरबंगी की अनेक प्रतियाँ मिलती हैं जिनमें पाठान्तर भी मिलने स्वाभाविक हैं, किन्तु गोपालदास की सरबंगी की प्रतियाँ अभी तक मात्र दो ही मिली हैं। अतः इनमें पाठान्तरों का मिलना मुश्किल है और इनका पाठ मूल के अत्यधिक निकट होने की संभावना भी है।

हमारे द्वारा आलोचित प्रति में प्रतिकार की पुष्पिका इस–प्रकार मिलती है

"इतिश्री सरबंगी सरह च्यंतामणि संपूर्ण भवेत। संवत 1781 संवत सत्रासै इक्यास्या वरषे मासे भादुं सुदी शुभवारे छनिछर वारे सुभ तिथे एकमि सुकल पखे मध्यानकाले। पुस्तक संपूर्ण भवेत्।। लिखतं मोहन बाबा किसनदासजी को सिष्य। श्रीस्वामी जैतरामी कौ पोता सिष्य। खानाजाद गुलाम चरनरेन।

सर्व गहै अमृत सार। बांचै बिचारै उतरै पार ।।
भूलि चूकि कहुंके घटि बधि आई। सुत कौ हेत लखै सब माई ।।

सुभस्थानि हंसार बाबा रामचंदजी के अस्थलि। अमरसिंघ डूंगरमल सेवग। या पोथी नै और जागा दे तिसनौ स्वामीजी की दुहाई और जागा ले जाइ तिसनौ स्वामीजी की दुहाई ।।"

6.(1)14. श्री दादूदयाल के एक अन्य शिष्य जगन्नाथजी ने **'गुणगंजनामा'** नामक ग्रंथ का संकलन व सम्पादन किया। इसमें 179 अंग व 5591 छंद हैं। रैदास की केवल तीन साखियों का संकलन इसमें हुआ है, जिनमें से एक साखी पंचवाणियों की साखियों से मेल खाती है; शेष दो भिन्न हैं। इनका संग्रह हमने गुजगंजनामा के आधार पर ही किया है। दादूधाम, नरायणा में इसकी निम्न हस्तलिखित पुस्तकें मिलती हैं, जिनके आधार पर मैंने इसका सम्पादन प्रारम्भ कर दिया है। शीघ्र ही प्रकाशित होगा। ग्रंथांक 241, 347, 399, 419, 563, 614, 528, 535

6.(1)15. मेरे निजी संग्रह की **पत्राकार प्रति** जिसमें कुल 15 पत्र व 81 पद और 4 साखियाँ हैं। इसको बोहर दादूद्वारे के संत कान्हड़दास ने वैशाख शुक्ला नवमी, रविवार, विक्रम–सम्वत् 1880 को लिखकर पूर्ण किया है। प्रति का पाठ शुद्ध व स्फीत है। अक्षर सुडौल, सुन्दर हैं।

6.(1)16. मेरे निजी संग्रह की **पत्राकार प्रति** जिसमें रैदास, नामदेव व हरदास तीन संतों की वाणियाँ हैं। तीनों ही वाणियों के पृष्ठांक एक से प्रारम्भ हैं। अतः तीनों को पृथक्–पृथक् भी माना जा सकता है। लिपिकार एक ही है किन्तु उसका नाम नहीं है। हस्ताक्षर समान हैं। रैदास के तीन कठिन पदों के शब्दार्थ भी इसमें दे रखे हैं। उदाहरण के लिये देखें **रैदास : जीवनी एवं पदावली** का राग बिलावल का 86 वाँ पद। "सकिस्ता। दर्दवंद।। अवलि। आदि।। आखिर। अंत।। इलल आदम। सर्वआलम।। परेसतां। देवता ऊपरि तैं क्रिपा करी।। पनह। सरण।। इसक। जिसके विरह नहीं।। निमाज। पूजा उसकी लेखे में नहीं। नालीदोज कहिये। जूती सींवणवाला हौं मैं।। हनोज। अजौं मैं चमार हौं भजन बिना।। बेबखत। निभाग।। दरमादा कहिये। आज़िज़ ।। दूजा।। दर। दरबार तुम्हारे मैं पड़्या।। मादा। दरदबंद।।"

जब मैंने पंचवाणीकार पाँच महात्माओं में से अंतिम संत श्रीहरदासजी की वाणी का सटीक सम्पादन किया था, तब इसी प्रति में मुझे श्री हरिदासजी के कुल 102 पदों में से 46 पद सटीक उक्त रूप में ही मिले थे। अब यह ग्रंथावली प्रकाशित हो चुकी हैं और लेखक के पास से उपलब्ध होती है। इस पत्राकार प्रति में कुल 91=10 पृष्ठ हैं, जिनमें 81 पद व 4 साखियाँ हैं तथा 3 पद सटीक हैं। हस्ताक्षर सुन्दर, सुडौल व स्फीत हैं। यथास्थान स्याही, हींगलू व हरताल का प्रयोग है।

मेरे पास ऐसी ही तीन पत्राकार प्रतियाँ और हैं, जिनमें कुल 250 कूट पद उक्त टीका–शैली में लिखित हैं जिनमें से गोरखनाथ के भी 25 पद सटीक हैं, जिनका गोरखनाथजी की अन्य रचनाओं के साथ संपादन तैयार हो गया है। शीघ्र ही प्रकाशित कराने का प्रयत्न रहेगा।

6.(1)17. वृन्दावन–शोध–संस्थान, रमणरेती, वृंदावन का ग्रंथांक 9693 : इसके लेखक, लेखन–काल व लेखन–स्थान तीनों ही अज्ञात हैं। देखने से पुस्तक प्राचीन मालूम देती है। इसके पृष्ठ 171 से रैदास की रचना प्रारंभ होती है और 180 आ पर जाकर खत्म होती है। इसमें कुल 81 पद व चार साखियाँ हैं। औसतन प्रति पृष्ठ 37 पंक्ति व प्रति पंक्ति औसतन 20 अक्षर हैं। लेखन–शैली के अनुसार यह भी दादूपंथी संत की लिखी पुस्तक ही है, क्योंकि इसमें भी उन्हीं पाँच संतों की वाणियाँ प्रमुखता से लिखी हुई हैं, जिनकी अन्य पंचवाणी पुस्तकों में लिखी मिलती हैं। जब मैंने इस प्रति का वृंदावन जाकर अवलोकन किया, तब इसकी सिलाई निकली हुई थी। कुछ पत्र अस्त–व्यस्त भी थे। समय रहते यदि इसका उचित रखरखाव नहीं हुआ तो यह प्रति खत्म हो सकती है। इसमें कभी सम्वतादि सम्बन्धी पन्ना रहा होगा, किन्तु अब नहीं है। अंत का पत्र फट चुका है। प्रो. विनान्द एम. कलेवर्ट, बेल्जियम ने इसका लिपिकाल वि. सं. 1690 लिखा है। पता नहीं, ऐसा लिखने का आधार क्या है। अस्तु!

6.(1)18. महाराजा सवाई मानसिंह द्वितीय, संग्रहालय का ग्रंथांक 3322 : इसमें कुल 65 पद व 6 साखियाँ मिलती हैं। इसमें लेखन–काल तीन जगह लिखा मिला है। लेखक वैणीराम है। दो स्थानों पर हस्ताक्षर पुस्तक की अन्य समस्त लिखावट से मेल खाते हैं, तीसरे स्थान पर नहीं। पहला सम्वत् 1717 है, दूसरा 1727 है तथा तीसरा 1742 है। इसका आकार वैसा नहीं है जैसा दादूपंथी अन्य पंचवाणियों का मिलता है। इसमें श्रीदादूदयाल व श्री हरदास की वाणी भी नहीं हैं। नाथ–सिद्धों की वाणियों की इसमें अधिकता है। ऐसा देखकर एक–बार तो ऐसा लगने लगता है, जैसे यह दादूपंथी संत की लिखी न होकर किसी नाथ–सिद्ध की लिखी हुई है, किन्तु अक्षरों की बनावट, अंकों की आकृति व लिपिकार का वैणीराम नाम होना पक्का विश्वास कराता है कि यह पुस्तक भी किसी दादूपंथी साधु की ही लिखी हुई है। दादूपंथी पंचवाणियों की पचास प्रतिशत प्रतियों में नाथ–सिद्धों की वाणियाँ लिखी मिलती हैं। अतः मात्र नाथ–सिद्धों की वाणियों के मिलने से ही इसका लिपिकार नाथपंथी होना सिद्ध नहीं होता। वैणीराम नाथपंथी होता तो अपना नाम वैणीनाथ लिखता, वैणीराम नहीं। अतः मेरा पक्का विश्वास है, यह पुस्तक भी किसी दादूपंथी संत की लिखी हुई ही है। आलोच्य–ग्रंथावली का 90वाँ पद मात्र इसमें व गुरु–ग्रंथ में ही मिला है।

6.(1)19. महाराजा सवाई मानसिंह द्वितीय संग्रहालय का ग्रंथांक 1853 : इसमें भी 65 पद व 6 साखियाँ मिली हैं। इसका लिपिकाल वि.सं. 1738 है। इसका आकार भी उक्त पुस्तक जैसा है और लगभग इसमें भी वही सामग्री है जो उक्त क्रमांक 18 की पुस्तक में है। **'रैदास : जीवनी एवं पदावली'** में सम्पादित पदांक 102 मात्र इसी पुस्तक में मिला है।

साखी क्रामांक 6 व 7 ग्रंथांक 1853 व 3322 में मिली हैं। साखी क्रमांक 5 व 6 गुणगंजनामा में भी संग्रहित मिलती हैं। फलतः इन दोनों प्रतियों में एक पद 102वें क्रमांक का व साखी 6–7वें क्रमांक की ग्रंथांक 1853 में ही मिले हैं।

6.(1)20. भक्तमालकार श्रीनारायणदास 'नाभा' के भक्तमाल की भक्तिरस–बोधनी टीका की वि.सं. 1792 में वृन्दावन में **श्यामदास निरंजनी** द्वारा कृष्णदास वैष्णव की प्रति से प्रतिलिपित प्रति के हाशिये में लिखित एक पद। यह पद छंदांक 263 की घटनानुसार रैदास द्वारा उस समय गाया गया, जब उनका चित्तौड़–कुंभलगढ़ में ब्राह्मणों से विवाद हुआ। प्रति प्राचीन है। इसके पीछे भक्तमालियों की समृद्ध परम्परा रही है। अतः हमें विश्वास होता है कि यह पद रैदास कृत ही है। क्रमांक 101 पर इसको संकलित व सम्पादित किया गया है।

6.(2) प्रकाशित–ग्रंथ

वर्तमान समय में, हिन्दी–साहित्य जगत् में दो **'नारी–विमर्श'** व **'दलित–विमर्श'** का अपना महत्त्व है। नारी–विमर्श के क्षेत्र में मीरांबाई व दलित–विमर्श के क्षेत्र में रैदास सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्त्व हैं। यह तथ्य सर्वथा विचारणीय है कि क्या ये दोनों ही रचनाकार उक्त विमर्शों के आदर्श हो सकते हैं अथवा नहीं हो सकते हैं। लेखक इन दिनों इन दोनों ही भक्तों–संतों पर लिखने का प्रयत्न कर रहे हैं और अपनी–अपनी विचारधारा को इन पर लादकर अपनी पुस्तकें प्रकाशित करा रहे हैं। वस्तुतः ऐसे लेखकों की न पाठालोचन–शास्त्र में रुचि है और न साहित्य शास्त्रीय बिन्दुओं के साथ–साथ भक्तिसाहित्य–शास्त्रीय बिन्दुओं के गंभीर विवेचन की ओर प्रवृत्ति है। ऐसे लेखक प्रायः पुराने दो–चार ग्रंथों में उपलब्ध पाठों को अपने सामने रखकर अपना अध्ययन प्रस्तुत कर देते हैं और उनके समतीर्थ आलोचक उनकी अच्छी–अच्छी समीक्षाएँ प्रकाशित कराके उनको प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचा देते हैं।

मैं यहाँ उन पुस्तकों की ही चर्चा करना चाहूँगा, जिन्होंने पाठालोचन–विज्ञान के अनुसार पाठ–सम्पादन के लिये गंभीर प्रयत्न किये हैं, चाहे उनके प्रस्तुतिकरणों में खामियाँ ही क्यों न रहीं हों। प्रसंगवश मैं उन पुस्तकों की भी चर्चा करूँगा, जिनमें मूल–पाठ अथवा सटीक–पाठ प्रकाशित हुआ है, चाहे उन्होंने पूर्व प्रकाशित ग्रंथावलियों के पाठों को यथा–रूप या कुछ संशोधन के साथ ही स्वीकार क्यों न किया हो। दो–चार पुस्तकें ऐसी भी हो सकती हैं जिनमें समीक्षण अथवा आलोचना ही है, पाठ नहीं, ऐसी पुस्तकों का भी संक्षिप्त विवरण आगामी पृष्ठों में देने का प्रयत्न करूँगा

6.(2)1. चंडीगढ़ निवासी स्वर्गीय डॉ. वी.पी. शर्मा ने रैदासवाणी प्रस्तुत करने में सर्वाधिक परिश्रमपूर्ण प्रयत्न किये। उनकी पुस्तक **'संत गुरु रविदास–वाणी'** वैशाखी पूर्णिमा, सम्वत् 2035 को प्रकाशित हुई। इसमें रैदास के कुल 177 पद व 41 साखियाँ प्रकाशित हैं। इन्होंने पाठान्तर–पदों को भी स्वतंत्र क्रमांक दिये हैं, जिससे पदों की संख्या बढ़ गई है। यथार्थ में पदों की संख्या कम है। देखें पदांक 79 व 80; 86 व 87; 60 व 61; 63 व 64 आदि–आदि। पदों के नीचे पाठान्तर व शब्दार्थ भी दिये हैं। अनेक जगहों पर समानार्थक छंद, पद, श्लोकादि भी दिये हैं। ग्रंथांत में शब्दकोश दिया गया है। ग्रंथारम्भ में अच्छी भूमिका है। डॉ. शर्मा ने अपनी पुस्तक तैयार करने में बीकानेर के तीन; जोधपुर, उदयपुर एवं बनारस के छः; जयपुर की दो संस्थाओं के कुल 522=27 हस्तलिखित ग्रंथों को काम में लिया। इन्होंने अपने मूल पाठ को प्रायः दादू महाविद्यालय के वि.सं. 1733 में लिखित ग्रंथ के अनुसार प्रस्तुत किया है। उन्हें दादू–महाविद्यालय की वि.सं. 1693 की प्रति भी उपलब्ध थी, किन्तु उन्होंने उसका उपयोग प्रायः नहीं किया है। कुल 41 साखियाँ उन्हें कहाँ से मिलीं, इसका कोई विवरण उन्होंने नहीं दिया है, क्योंकि उक्त प्रतियों में 6–7 साखियों से अधिक उपलब्ध नहीं हैं। डॉ. शर्मा ने पाठान्तर देने में अधिक श्रम नहीं किया है। उनका उद्देश्य हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर ऐसा पाठ प्रस्तुत करना रहा जो अर्थ की दृष्टि से संगत हो; साथ ही हस्तलिखित प्रतियों के पाठ से उनका पाठ दूर भी न जाये। डॉ. शर्मा पाठालोचन–विज्ञान के विद्वान् थे, फिर भी पाठालोचन–विज्ञान के अनुसार उनके द्वारा प्रयुक्त उक्त प्रविधि अस्वीकार्य है। पाठालोचन–विज्ञानानुसार मूल–पाठ यथारूप प्रस्तुत करना चाहिए। अनेक लेखकों ने डॉ. शर्मा व आचार्य पृथिवीसिंह आजाद की पुस्तकों के आधार पर पाठ स्वीकार कर अपनी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। डॉ. एन. सिंह व डॉ. जगदीशशरण की पुस्तकों में डॉ. शर्मा की उक्त पुस्तक का ही पाठ ग्रहित है।

6.(2)2. लुवेण, बेल्जियम निवासी प्रो. विनान्द एम. कलेवर्ट ने 'The life & works of raidas' के नाम से सन् 1992 में एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित कराई है। इन्होंने पाठ–सम्पादन हेतु कुल 13 हस्तलिखित ग्रंथों को काम में लिया है, जिनमें गुरु–ग्रंथ के अलावा सर्वाधिक प्राचीन प्रति वि.सं. 1693 की व अर्वाचीन प्रति 1755 की है। इन्होंने उस प्रति का उपयोग भी किया है जो फतहपुर की प्रति के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसका लिपिकाल सम्वत् 1639 है। संभवतः प्रो. विनान्द पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने सर्वाधिक प्राचीन प्रतियों का पाठ पाठान्तरों सहित प्रकाशित कराया है। अंग्रेजी में इन्होंने टीका भी प्रस्तुत की है जो अधिकांशतः मूलानुसार है। कहीं–कहीं अनुवाद मूल के भावों को स्पष्ट नहीं कर पाया है। यद्यपि जीवनी भाग में ये कोई नवीन तथ्य स्थापित

नहीं कर पाये हैं तथापि स्रोतों का संकलन अवश्य कर दिया है। विचारों का समीक्षण करते समय भी कई स्थानों पर मत भिन्नता होने की गुंजाइश है। इनकी पुस्तक में कुल एक सौ ग्यारह पदों का संकलन व प्रकाशन है।

6.(2)3. डॉ. शुकदेवसिंह, काशी ने संत रैदास पर काफी समय तक काम किया था। उनकी एक पुस्तक **रैदास–वाणी** सन् 2003 में प्रकाशित हुई है, जिसके लिये उन्होंने लिखा है कि उनकी ओर से रैदास–वाणी पर यह उनका अन्तिम काम है जिसमें और कुछ घटाने–बढ़ाने की कोई गुंजाइश नहीं है। इसमें कुल 14 साखियाँ, 193 पद व प्रहलाद्चरित्र के नाम से 15 अंतरों का एक पद है। डॉ. शुकदेवसिंह के बारे में विद्वत् वर्ग में यह प्रवाद प्रचलित है कि उन्हें हस्तलेखों के बारे में बड़ी गंभीर जानकारी थी, किन्तु जिस–प्रकार की जानकारियाँ उन्होंने इस पुस्तक में उपलब्ध कराई हैं, उससे तो यही ज्ञात होता है कि वे हस्तलिखित–ग्रंथों के बारे में आधी–अधूरी जानकारी रखते थे। डॉ. सिंह ने फतहपुर की प्रति और सूरदास का पद नाम्नी पुस्तक को भिन्न–भिन्न लिखा है, जबकि एक ही प्रति, उक्त दोनों नामों से जानी जाती है। यह प्रति कु॰ छीतरजी के लिए रामदास रतना ने लिखी, किन्तु डॉ. सिंह ने छीतरजी को चित्राजी लिख मारा। ग्रंथ हिन्दी में प्रकाशित है। ग्रंथांत में नाम स्पष्ट रूप में लिखा हुआ है फिर भी डॉ. सिंह ने नाम गलत लिखा है। डॉ. सिंह ने रैदास के रज्जब की सरबंगी में 9 व गोपालदास की सरबंगी में 67 पद होने लिखे हैं जबकि रज्जब की सरबंगी में 22 व गोपालदास की सरबंगी में 68 पदों का संकलन है।

इस पुस्तक में उक्त जैसी भूलों की भरमार है। डॉ. सिंह ने उक्त पुस्तक में लिखे तो कई ग्रंथों के नाम व क्रमांक हैं, किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि उन्होंने आधे भी हस्तलेखों को देखा नहीं, मात्र कलेवर्ट की पुस्तक के कुछ विवरण अपने शिष्य जी. फ्रेडलेण्डर से सुनकर लिख मारे। वैसे प्रो. फ्रेडलेण्डर उक्त प्रो. कलेवर्ट के साथ उनकी उक्त पुस्तक के सहायक सम्पादक व लेखक हैं। डॉ. सिंह ने अपनी पुस्तक में ऐसी कोई सारणी उपलब्ध नहीं कराई है, जिससे जान पड़े कि उन्होंने किस हस्तलेख के पाठ को मूल में गृहित किया है, किस–किस प्रति से कौन–कौन से पदों को संकलित व सम्पादित किये हैं तथा किस–किस प्रति के कौन–कौन से पाठांतर हैं। बिना इस–प्रकार की पुख्ता सूचनाओं के पाठ की प्रामाणिकता प्रश्नचिह्नांकित ही बनी रह जाती है। कुल 193 पदों में से कई पद ऐसे हैं जो पाठांतर मात्र हैं, किन्तु उनको डाक्टर सिंह ने डॉ. वी.पी. शर्मा की भाँति भिन्न–भिन्न पदों के क्रमांकों के अधीन संकलित व सम्पादित किये हैं। उदाहरणार्थ देखें पदांक 192 व 191। चलते–चलते एक बात और। डॉ. विनांद एम. कलेवर्ट ने अपनी कई पुस्तकों में यह स्थापित करने का प्रयत्न किया

है कि संतों की वाणियाँ पहले मौखिक–परम्परा में चलती रहीं फिर लिखने वालों ने लिखीं। जिसको जैसा लिखना आया, उसने वैसा ही लिखा, जिससे प्रायः भिन्न–भिन्न परम्पराओं की पुस्तकों में भिन्न–भिन्न पाठ मिलता है। डॉ. शुकदेवसिंह ने इस मान्यता का प्रबलता से खण्डन किया है। मेरी मान्यता भी डॉ. सिंह की मान्यता से मेल खाती है– "इस पूरी प्रक्रिया को समझे बिना सरल ढंग से यह कह देना कि संतों की रचनाएँ पहले गाई जाती थीं, फिर सुन–सुनाकर जिसने जैसा सुना वैसा लिख लिया। यह वक्तव्य पंथों के दर्शन और पोथी–विज्ञान की पूरी क्षमता को न जानने के कारण ही दिया जा सकता है।" पृष्ठ 19, सन् 2006 की आवृत्ति।

6.(2) 4. डॉ. युगेश्वर ने **'रैदास–समग्र'** के नाम से रैदास के 120 सटीक पद प्रकाशित कराये हैं। इसमें साखियों का प्रकाशन नहीं है। प्रो. युगेश्वर ने इन 120 पदों के पाठ कहाँ से गृहित किये, इसका कोई विवरण अपनी पुस्तक में नहीं दिया है। अनेक स्थानों पर अर्थ की संगति न बैठने पर प्रो. युगेश्वर ने मूल पाठ में ऐसे–ऐसे भोण्डे परिवर्तन किये हैं कि बनारस जैसी जगह में रहने वाले वेदांत–दर्शन के प्रकाण्ड पंडित के द्वारा ऐसे परिवर्तन करना उचित नहीं जान पड़ता। उनके द्वारा किये गये अर्थ तो और भी अति–व्याप्ति अथवा अव्याप्ति–दोष से दूषित हैं। उदाहरण के लिये पदांक 95 देखा जा सकता है 'आसा वाणी श्री रविदासजीउ की। सतिगुरु प्रसादि। मृग मीन भृंग पतंग कुंजर, एक दोस बिनास ।।...।।"

अर्थ : रविदासजी की वाणी आशा की वाणी है। गुरु का प्रसाद ओम् है।...।।'' वस्तुतः यह पद गुरु–ग्रंथ–साहिब से लिया गया है। गुरु–ग्रंथ रागों में, रागबद्ध पद महलों में विभाजित हैं। वस्तुतः इस पद की राग 'आसा' है। वाणी 'रविदासजी' की है।' सतिगुरु प्रसादि' मंगलाचरणात्मक वाक्य है जैसे 'श्रीपरमात्मनेनमः आदि–आदि। गुरु–ग्रंथ में रागु आसा लिखा मिलता है, न कि आसा वाणी। यह पाठ परिवर्तन का उदाहरण है। इस पंक्ति का अर्थ यदि करना उद्दिष्ट हो भी, तो होना चाहिए, 'इस पद की राग आसा है। परमात्मा का नाम है। आगे सद्गुरु महाराज की कृपा से रैदास का पद लिखा जाता है।' वस्तुतः यह पंक्ति पद की आंतरिक पंक्ति नहीं है। यह मात्र शीर्षक है। ऐसी स्थिति में समझ में यही आता है कि प्रो. युगेश्वर पाठ की प्रामाणिकता की ओर एकदम निष्चेष्ट रहे हैं। उन्होंने वही लिखा जो उन्हें समझ में आया। पूरी पुस्तक ऐसे उदाहरणों से भरी पड़ी है। हाँ, पुस्तक के प्रारंभ में भूमिका अच्छी है, किन्तु जीवनी भाग भी भूलों व भ्रमों से भरा पड़ा है। रैदास की शिष्या झाली रानी को डॉ. युगेश्वर ने झाला बना डाला जो सर्वथा चिन्त्य है। राजस्थान के झाला क्षत्रियों की लड़कियाँ झाला न कहलाकर झाली कहलाती हैं। नरूकाओं की बेटी नरूकी। राठौड़ों की बेटी राठौड़ी व

शिशोदियाओं की बेटी शिशोदनी कहलाती हैं आदि–आदि। और भी अनेक असंगतियाँ–विसंगतियाँ हैं, इस पुस्तक में जिनकी चर्चा यथास्थान की जायेगी।

6.(2)5. डॉ. पद्मावती झुनझुनवाला ने **'संत रैदास'** के नाम से सन् 1995 में एक पुस्तक प्रकाशित कराई है, जिसके प्रारंभ में समीक्षा भाग और इसके पश्चात् मूल पदावली है। इन्होंने कई हस्तलिखित ग्रंथों में मिले पदों को प्रकाशित कराया है। इन्होंने काशी–नागरी–प्रचारिणी–सभा के ग्रंथांक 1409/2424 को आधार माना है। इसके आधार पर इन्होंने कुल 70 पद व 4 साखियाँ प्रस्तुत की हैं। यह ग्रंथ दादूजी की 6ठीं पीढ़ी के संत रामदास द्वारा वि.सं. 1771 में लिखा गया है। डॉ. पद्मावती ने इस प्रति में मिले पदों से भिन्न व अधिक पदों को सन्दिग्ध पदों के रूप में प्रकाशित कराया है जो इनका भ्रम ही मालूम देता है। डॉ. पद्मावती द्वारा मानी गई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति से 111 वर्ष प्राचीन वि.सं. 1660 की प्रति से मैंने मेरी पुस्तक में आधार पाठ प्रस्तुत किया है, जिसमें 79 पद मुझे मिले हैं। आगामी वर्षों की कुछ अन्य पुस्तकों में कम और कुछ में अधिक, दोनों ही संख्याओं में पद मिले हैं, किन्तु एक प्रति में अधिकतम 81 पद मिले हैं। ऐसी स्थिति में किसी को भी संदिग्ध नहीं कहा जा सकता। लेखिका ने गुरु–ग्रंथ के 38 पद प्रकाशित किये हैं, जबकि गुरु–ग्रंथ में हैं 40 पद। पुस्तक में अनेक स्थानों पर पदच्छेद व पदान्वय की भूलें भरी पड़ी हैं। न पाठान्तर और न शब्दार्थ ही दिये हैं। पदांक 28 का प्रस्तुतिकरण देखिए–

यार मायेक तू दाना मैं तेरा आइबै श्रौ ।।
तूँ सुलितानां तू सुलितानां, वंदा स किस तार जाना ।।टेक।।
मैं वैदि यानत वदन जोरे दै गौस गैर गुफतार।
वे अदब बद बखत मीरां, बे अकली बदकार ।।
.. ।।

इस पद के अधिकांश पदच्छेद व पदान्वय गलत हैं। जब पाठ ही सही नहीं है, तब अर्थ कैसे समझ में आयेगा। उक्त पद का सही पाठ, पदच्छेद व पदान्वय इसी पुस्तक 'रैदास : जीवनी एवं पदावली' में देखें।

6.(2) 6. प्रो. योगेन्द्रसिंह की पुस्तक **'संत रैदास'** के नाम से लोक–भारती–प्रकाशन से प्रकाशित हुई है। मेरे पास सन् 2008 का संस्करण है। इसमें कुल 112 पद, 8 साखियाँ व प्रह्लाद चरित्र के नाम से एक 18 अंतरों का पद है। यद्यपि डॉ. योगेन्द्र ने पाठ–भेद टिप्पणियों में दिये हैं तथापि न तो उन्होंने पुस्तक में कहीं भी यह लिखा है कि मूल–पाठ का आधार कौन सा हस्तलेख है और न यह कहीं लिखा है कि पाठान्तर

किस अथवा किस–किस हस्तलेख से दिये हैं। पादटिप्पणियों से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि डॉ. सिंह ने नाहटा–संग्रहालय–बीकानेर की किसी हस्तलिखित पोथी का उपयोग किया है। डॉ. सिंह की भूमिका का विषय–विवेचन अच्छा है, किन्तु जीवनी भाग उतना शोधपूर्ण नहीं है।

6.(2) 7. आचार्य पृथिवीसिंह आजाद, पूर्व उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ने रैदास पर काफी काम किया। आचार्यजी की रैदास के प्रति उच्चतम श्रद्धाभावना थी। चूँकि वे पठित विद्वान् थे; अतः उन्होंने संत रैदास पर काफी शोधात्मक कार्य किया व करवाया। आचार्यजी द्वारा लिखित एवं एन.बी.टी. नईदिल्ली से प्रकाशित **'रैदास'** मोनोग्राफ मेरे देखने में आया है। इसके अंत में आचार्यजी ने संत रैदास के 37 पद व 50 साखियाँ कठिन शब्दार्थों सहित प्रकाशित कराये हैं। पुस्तक के प्रांरभ में जीवनी और विचार भाग भी अच्छे हैं। मतभिन्नता की गुंजाइश रहती है, रहेगी भी। आचार्यजी ने इस पुस्तक में प्रकाशित पद व साखियाँ किस या किन–किन हस्तलेखों से सम्पादित की हैं, इसका कोई विस्तृत ब्यौरा नहीं है। आचार्यजी ने एक अन्य पुस्तक **'रविदास–दर्शन'** में 197 साखियाँ प्रकाशित कराई हैं। इन 197 साखियों का कोई लिखित आधार न होकर मौखिक है। 'रैदास' मोनोग्राफ में प्रकाशित साखियाँ उक्त रविदास दर्शन से ली गई हैं। अतः इनको मौखिक–परम्परा की रचनाएँ ही समझनी चाहिए। पद अधिकांशतः गुरुग्रंथानुसार हैं। आचार्यजी ने 51 पृष्ठों का एक लेख और लिखा है जो **'गुरु रविदास : साहित्यिक मूल्यांकन'** सम्पादक डॉ. धर्मपाल सिंहल में प्रकाशित हुआ है। यह लेख भी अच्छा है। वस्तुतः सन् 1983 में यह आलेख आचार्य पृथिवीसिंह 'आजाद' ने स्वयं द्वारा सम्पादित पुस्तक **'युग प्रवर्तक संत गुरु रविदास'** में भी प्रकाशित किया है जो उक्त पुस्तक में पृष्ठ 30 से 87 पर प्रकाशित है।

6.(2) 8. सन्त रैदास : वाणी और विचार नामक पुस्तक दिल्ली के डॉ. रमेश मिश्र ने संत–साहित्य–संस्थान, दिल्ली से सन् 2002 में प्रकाशित कराई है। डॉ. रमेश मिश्र संत–साहित्य के प्रतिष्ठित लेखक हैं, जिन्होंने 15 भागों में सन्त–साहित्य–कोश लिखा है। इनकी उक्त पुस्तक में कुल 55 पद व 48 साखियाँ सटीक प्रकाशित हैं। इन्होंने प्रकाशित ग्रंथावलियों से ही पदादि का पाठ गृहित किया है और पूरी सत्यनिष्ठा के साथ पुस्तकांत में एक सारणी भी दी है, जिसमें यह लिख दिया गया है कि कौन–कौन सी रचना किस–किस ग्रंथ से ली गई है। इनका व्याख्या भाग बड़ा ही विशद् है फिर भी इनके द्वारा प्रस्तुत टीका से अनेक स्थानों पर सहमत होना मुश्किल है। जीवनी भाग में ऐसा कोई उल्लेखनीय नवीन तथ्य नहीं है, जिसको इस पुस्तक में दृढ़ प्रमाणों से पुष्ट करके प्रस्तुत किया गया हो।

6.(2) 9. 'रैदास–रचनावली' के नाम से डॉ॰ गोविन्द 'रजनीश', आगरा निवासी ने पुस्तक प्रकाशित कराई है। डॉ. रजनीश ने लिखा है कि उन्होंने पदावली तैयार करने के लिये कुल 42 पाण्डुलिपियाँ एकत्रित कीं, किन्तु उनमें से मात्र सात प्रतियों के आधार पर उक्त रचनावली प्रस्तुत की है। उन्होंने तीन पाण्डुलिपियाँ क.मा. मुंशी विद्यापीठ की, एक वृंदावन–शोध–संस्थान, वृंदावन की व तीन प्रतियाँ दादूद्वारा नरायना की काम लेना लिखा है। एक बार जब मैं आगरा गया, तब डॉ. रजनीश से मिला था। उस समय क.मा. मुंशी विद्यापीठ की तीनों पाण्डुलिपियाँ उनके पास घर में थीं। अन्य पाण्डुलिपियों की न फोटोकॉपी और न उनके आधार पर उन स्वयं द्वारा लिखित पाठ ही उनके पास था। नरायना की जिन प्रतियों का हवाला डॉ. रजनीश ने दिया है, उनके वे क्रमांक नरायना की प्रतियों पर नहीं हैं। वहाँ की 637 पुस्तकों का विस्तृत विवरण युक्त सूचीपत्र मेरे स्वयं द्वारा बनाया हुआ है और सभी पुस्तकें मेरे द्वारा देखी हुई हैं। उनमें से कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रयोग मैंने इस सम्पादन में किया है। डॉ. रजनीश ने कुल 116 पद व 30 साखियाँ उक्त पुस्तक में संकलित व सम्पादित की हैं। उन्होंने पुस्तक में ऐसी कोई सारणी अथवा सूचना नहीं दी है, जिससे जान पड़े कि कौन सा पद किस प्रति से लिया गया है और कौन–सा पाठांतर किस प्रति से दिया गया है। ऐसी स्थिति में पाठ के स्रोतों की विश्वसनीयता पूर्णरूपेण स्थापित नहीं हो पाती। पुस्तकांत में शब्दकोश व अनंतदास वैष्णव द्वारा रचित **'रैदास की परचई'** का प्रकाशन भी हुआ है। कई शब्दार्थ अशुद्ध हैं। परचई का पाठ भी अधूरा ही है। प्रारंभ में दी गई भूमिका व जीवनी भाग सामान्य व अन्य विद्वानों के विचारों का पिष्ठपेषण मात्र ही है; कोई नवीनता नहीं है।

6.(2) 10. इन्द्रराजसिंह कृत **'सन्त रविदास'** नामक पुस्तक का प्रकाशन सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार से हुआ है। मेरे पास इसका दूसरा संस्करण सन् 1999 ई. का है, जिसमें सात साखियों व 59 पदों का मूल रूप प्रकाशित हुआ है। लेखक ने इन रचनाओं का संकलन किन स्रोतों से किया है, इसका कोई भी उल्लेख पुस्तक में नहीं है। लगता यही है कि इन्होंने किन्हीं पूर्ववर्ती पुस्तकों से इनका संकलन किया होगा। वैसे भी साहित्य–अकादेमी, नेशनल–बुक–ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग आदि के प्रकाशन शोधात्मक ग्रंथ नहीं होते। ये सामान्य पाठकों के हितार्थ विषय–विशेषज्ञों द्वारा लिखित होते हैं।

6.(2) 11. 'रैदास की बानी' का प्रकाशन एडवोकेट श्री बालेश्वरप्रसादजी अग्रवाल ने स्वकीय प्रेस 'बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स', इलाहाबाद से कराया। शुरु–शुरु में संत वाणियों को प्रसिद्ध करने का श्रेय इनको ही जाता है। इन्होंने वाणियों को इतने सस्ते दामों पर उपलब्ध कराया कि हर व्यक्ति ने इनके प्रेस से छपी संत–वाणियों को खरीद कर पढ़ा है। रैदास की वाणी में 6 साखियाँ व 87 पद हैं। छः साखियाँ वे ही

हैं जो पंचवाणियों में मिलती हैं। पद भी वे ही हैं, जो प्रायः दादूपंथी पंचवाणी–पोथियों में मिलते हैं। इन्होंने इनको छंदशास्त्र व अर्थ की संगति के अनुसार सुधार कर टकसाली रचना बनाने का प्रयत्न किया है। चूँकि इनका पाठक भक्त समाज रहा है; अतः इन्होंने पाठालोचन–विज्ञान के अनुसार यथा–प्राप्त पाठ को यथा–रूप प्रस्तुत नहीं किया है। इसलिये शोध के क्षेत्र में इनके पाठ का मूल्य अब नहीं रह गया है। पुस्तक के प्रारम्भ में 3 पन्नों की सामान्य भूमिका है। पदों के नीचे पादटिप्पणियों में शब्दार्थ भी दे रखे हैं।

6.(2) 12. 'जगत्गुरु रविदास अमृतवाणी (सटीक) एवं संक्षिप्त जीवन' श्रीगुरु रविदास जन्मस्थान पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट, सचखंड, बल्लां (जालन्धर) से प्रकाशित पुस्तक, जिसके सम्पादक व टीकाकार बाबा सुरिन्दरदासजी हैं। इसमें कुल 140 पद सटीक हैं। चूँकि टीकाकार संत हैं। अतः उन्होंने टीका को विस्तारपूर्वक लिखी है। कहीं–कहीं टीकाकार मूल अर्थ से भटके भी हैं। खंड दो में 40 श्लोक, पैंतीस अक्षरी, हफतावार, पंदरातिथि, बारहमासा, सांद–वाणी, लावों की विधि, सुहाग उसतत, मंगलाचार आदि का मूल रूप में संकलन है। भाग 3 में 230 सटीक साखियाँ हैं। भाग 4 में जीवनी है। बाबाजी महाराज ने ये रचनाएँ कहाँ से संग्रहित करके प्रस्तुत की हैं, इसका कोई भी विवरण पुस्तक में नहीं दिया है। पाठ भी कई स्थानों पर बदला हुआ है। हो सकता है, पंजाबी–भाषाई मूल पुस्तक को हिन्दी में रूपान्तरित करते समय कुछ भूलें हुई हों। शोध की दृष्टि से चाहे इस पुस्तक का कुछ मूल्य हो न हो, पंथाई दृष्टि से इस पुस्तक का गंभीर मूल्य है। साथ ही इससे रैदास–पंथ की अनेक मान्यताओं का पता चलता है, जिनकी यथास्थान चर्चा की जायेगी। बाबा सुरिन्दरदास का मानना है कि उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक काफी छान–बीन करके लिखी है। अतः अब संत रैदास पर और काम करने की जरूरत नहीं है, किन्तु जैसा ऊपर लिखा है, बाबाजी ने टीका तो विस्तारपूर्वक की है, किन्तु यह अनेक जगहों पर मूल–पाठ के अनुसार नहीं है। साथ ही पाठ के भी अनेक परिवर्तित रूप संकलित हैं। इसीलिये अन्य पुस्तकों के प्रकाशन की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है।

6.(2) 13. 'संत रैदास का निर्वर्ण सम्प्रदाय' लेखक डॉ. धर्मवीर, रिटायर्ड केरल कैडर के आई.ए.एस. ऑफीसर। मेरे पास इसका पुनर्मुद्रित संस्करण 2008 है। इनका समीक्षण भाग कई नयी बहसों को जन्म देता है, जिनकी समीक्षा मैं यथा–स्थान करूँगा। इन्होंने कई व्याख्याएँ व निर्णय ऐसे निकाले हैं, जिनसे साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि रुकती नहीं, भभकती है। इनकी पुस्तक में 58 पद व 6 साखियाँ हैं, जो क्रमांक 10 पर वर्णित पुस्तक से यथा–रूप उद्धृत किये गये हैं।

6.(2) 14. 'संत रविदास (रैदास)' पं. मधुसूदन शर्मा द्वारा लिखित एवं नई सदी बुक हाउस द्वारा प्रकाशित पुस्तक है। इसमें मूल 50 साखियों व 73 सटीक पदों का प्रकाशन हुआ है। प्रारंभ में रैदास की जीवनी से सम्बद्ध कुछ सामग्री है। यह पुस्तक भी सामान्य अध्येताओं को ध्यान में रखकर लिखी गई है। अतः शोध–जगत् में इसका मूल्य उतना नहीं है।

6.(2) 15. 'गुरु रविदास' लेखक काशीनाथ उपाध्याय, प्रकाशक राधास्वामी सत्संग, ब्यास। इसका प्रथम संस्करण सन् 1983 में प्रकाशित हुआ, 2001 में ग्यारहवाँ संस्करण। ग्यारहवें संस्करण तक इसकी 104000 प्रतियाँ छप चुकी हैं। डॉ. काशीनाथ उपाध्याय दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृतादि भाषा के विद्वान् हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक में 4 प्रकाशित पुस्तकों से पाठ का चयन किया है। प्रारंभ में जीवनी है इसके पश्चात् समीक्षण भाग है। समीक्षण भाग में 94 पद स्थान–स्थान पर उद्धृत हुए हैं। डाक्टर साहब ने अधिकांश स्थानों पर पदों व साखियों को सटीक प्रस्तुत किया है। टीका लिखते समय इन्होंने राधास्वामी–सम्प्रदाय की विचारधारा का पूरा–पूरा ध्यान रखा है। इस कारण इनकी टीका को तटस्थ नहीं कहा जा सकता। वैसे इनका उद्देश्य अपनी संगत को पुस्तकें उपलब्ध कराना है न कि शोध–जगत को। फिर भी इनकी पुस्तक का अपना महत्त्व है।

6.(2) 16. 'रैदास–ग्रंथावली' (मूलपाठ एवं टीका) टीकाकार डॉ. जगदीशशरण। डॉ. शरण ने डॉ. एन. सिंह की पुस्तक में उपलब्ध पाठ को गृहित कर टीका प्रस्तुत की है। इस ग्रंथावली में कुल 177 पद व 226 साखियाँ प्रस्तुत की गई हैं। डॉ. शरण ने टीका अच्छी प्रस्तुत की है। उन्हें जो भी कुछ लिखना था, वह उन्होंने टीका में ही लिखा है, क्योंकि पुस्तक में भूमिका जैसी कोई सामग्री नहीं है। डॉ. एन. सिंह ने उक्त सामग्री कहाँ–कहाँ से ली, इसका कोई जिक्र इस पुस्तक में नहीं है, किन्तु जैसा पूर्व में संकेत किया गया है कि डॉ. एन. सिंह व डॉ, एन. सिंह की पुस्तक के आधार पर डॉ. जगदीशशरन ने डॉ. वी.पी. शर्मा की पुस्तक से पदों को यथा–रूप गृहित किया है। इस पुस्तक में साखियाँ आचार्य पृथिवीसिंह आजाद की पुस्तक से ली गई हैं। अतः पाठ की दृष्टि से इस पुस्तक का उतना ही व वैसा ही महत्त्व है जैसा डॉ. वी. पी. शर्मा व आचार्य आजाद की पुस्तक का है।

यद्यपि डॉ. शरण ने अपनी ओर से अच्छी से अच्छी टीका प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है तथापि कई स्थानों पर अर्थ चिन्त्य हैं, जिनकी चर्चा हम आगे यथा–स्थान करेंगे।

6.(2) 17. 'The sikh religion, its gurus , sacred writings and authors' लेखक M.A. Macauliffe के छठे भाग में गुरु–ग्रंथ में संग्रहित भक्तों, संतों की जीवनियाँ व उनकी रचनाओं का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद है। संत रैदास के बारे में पृष्ठ 316 से 342 तक जीवनी और पदानुवाद है। मैकालिफ ने रैदास को रविदास लिखा है।

6.(2) 18. उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ से प्रकाशित **'संत रविदास'** श्रीवीरेन्द्र पाण्डेय की पुस्तक है। इनमें मूल रचनाएँ नहीं हैं। पाण्डेयजी ने रामानन्दजी शास्त्री के साथ सन् 1956 में **'सन्त रैदास और उनका काव्य'** पुस्तक प्रस्तुत की थी। उसमें 97 पद व 6 साखियाँ प्रकाशित हुई थीं, किन्तु इस पुस्तक में भी उन हस्तलेखों का कोई जिक्र नहीं है, जिनके आधार पर उक्त पुस्तक प्रस्तुत की गई है।

6.(2) 19. **'गुरु रविदास : साहित्यिक मूल्यांकन'** डॉ. धर्मपाल सिंहल द्वारा सम्पादित पुस्तक है, जिसमें 37 विद्वानों के 37 आलेख हैं। मुझे इन समस्त लेखों में से मात्र 3–4 लेख ही ऐसे मिले हैं, जिनके लेखक रैदास के सम्बन्ध में या तो गंभीर लेखन कर चुके हैं अथवा करने की प्रक्रिया में हैं। उनके आलेख सामान्य अध्येताओं को ही नहीं, विद्वानों को भी आकर्षित करते हैं। आचार्य पृथिवीसिंह आजाद का 51 पृष्ठों का लेख इसी कोटि का है। प्रकाशन–वर्ष 2010 है।

6.(2) 20. **'गुरु रविदास : तुलनात्मक अध्ययन'** भी डॉ. धर्मपाल सिंहल द्वारा सम्पादित पुस्तक है, जिसमें 16 विद्वानों के 16 लेख हैं। इसका भी प्रकाशन–वर्ष 2010 है।

6.(2) 21. **'रैदास'** शीर्षक से साहित्य–अकादेमी का प्रकाशन है, जिसके लेखक डॉ. धर्मपाल मैनी हैं। इसमें रचनाएँ संकलित न होकर समीक्षण भाग है। इसकी चर्चा यथास्थान की जायेगी।

6.(2) 22. 'A Study of Bhakta Ravidasa' By Dr. Darshan singh' की लिखी शोधात्मक पुस्तक है जिसका प्रकाशन पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के प्रकाशन ब्यूरो से हुआ है। यद्यपि डॉ. सिंह की मान्यताओं को यथारूप स्वीकार करना संभव नहीं है, किन्तु उन्होंने उपलब्ध सामग्री की अच्छी छानबीन करके पुस्तक लिखी है।

6.(2) 23. **'युगपुरुष संत गुरु रविदास'** के लेखक संत प्रेमदास जस्सल हैं, जिसका प्रकाशन 2011 में हुआ है। अनेक शीर्षकों में संत जस्सल ने रैदास की विचारधारा को समझाने का प्रयत्न किया है।

6.(2) 24. 'ब्रह्मर्षि रविदास' डॉ. धर्मपाल सिंहल की कृति है, जिसका प्रकाशन सन् 2011 में हुआ है। इसमें डॉ. धर्मपाल सिंहल ने रैदास से सम्बद्ध पंजाबी–भाषा की स्रोत–सामग्री के साथ–साथ कुछ हिन्दी–स्रोत–सामग्री को भी प्रकाशित कराया है। कुल 16 शीर्षकों में पुस्तक विभाजित है।

6.(2) 25. 'संत नामदेव तथा संत रविदासः तुलनात्मक अध्ययन' डॉ. धर्मपाल सिंहल एवं डॉ. बलदेवसिंह बद्दन की कृति है। इसमें तीन शीर्षकों में दोनों ही महान् संतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रकाशन सन् 2008 में हुआ है।

6.(2) 26. 'विलक्षण प्रतिभा के स्वामी गुरु रविदास' डॉ. हरप्रीत कौर का लिखा हुआ शोध ग्रंथ है जिसका प्रकाशन उन स्वयं ने ही किया है।

6.(2)27. 'संत रैदास' डॉ. ऋतम्भरा का शोध–ग्रंथ है, जिसका प्रकाशन 2012 में हुआ है। डॉ. ऋतम्भरा, डॉ. योगेन्द्र की पुत्री हैं। फिर भी इनकी यह पुस्तक उस स्तर की नहीं है, जो स्तर डॉ. योगेन्द्रसिंह की पुस्तक ने प्राप्त किया है।

6.(2) 28. (1) उत्तरी–भारत की संत परम्परा, (2) संत–सुधा–सार, (3) हिन्दी–साहित्य का वृहत् इतिहास भाग–4, **(4) चमार, (5) हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, (6) संत–काव्य, (7) उत्तर–भारत के निर्गुण–पंथ–साहित्य का इतिहास, (8) हिन्दी के जनपदीय संत,** आदि ग्रंथों में वर्णित संत रैदास तथा हिन्दी–साहित्य के अनेक इतिहास ग्रंथों में रैदास संबंधी विवरण आदि–आदि ऐसे स्रोत हैं, जिनमें रैदास का वर्णन स्वतंत्र रूप से संक्षेप में लिखा मिलता है। इन ग्रंथों की जानकरी संदर्भों में आयेगी। पाठक इनका विवरण यथा–स्थान पढ़ सकेंगे।

6.(2) 29. उक्त के अतिरिक्त संत रैदास की परचई का प्रकाशन कई स्थानों से कई विद्वानों ने करवाया है, जिनमें प्रसंगवश सम्पादकों ने रैदास की चर्चा की है। चूँकि रैदास की परचई का प्रकाशन सानुवाद, पाठांतरों सहित इस पुस्तक में हो रहा है, जिसकी भूमिका में मैंने विस्तार से अन्यों के सम्पादनों की कमियों सहित अपने सम्पादन की विशेषताओं को भी इंगित किया है, जिनसे पाठकों को परचई के तथ्यों के बारे में विस्तार से जानने को मिल जायेगा।

6.(2) 30. परचई के साथ ही संत रैदास के बारे में भक्तमालकार श्री नारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल का छप्पय; उसकी टीकाएँ, राघवदास दादूपंथी कृत

भक्तमाल व उसकी टीकाएँ; अन्य अनेक भक्तमालों में रैदास सम्बन्धी विवरण भी उक्त परचई में प्रकाशित हो रहे हैं।

6.(2) 31. पंजाबी–भाषा में भी संत रैदास पर पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है। गद्य में तो आधुनिक–काल में लिखा गया है, किन्तु मध्यकालीन–साहित्य पद्य में ही लिखा गया है। ऐसे साहित्य में से कुछ का प्रकाशन परचई भाग में हो रहा है, शेष का उपयोग आलोचनात्मक जीवनी लिखते समय किया गया है। ऐसी सामग्री में मुख्य है **31.1** भक्तमाल–भास्कर, **31.2** कीरतसिंह कृत रैदास की परचई **31.3** कीरतसिंह कृत नारायणदास नाभा के भक्तमाल की विविध जाति के 57 छंदों की टीका, **31.4** केवलदास कृत प्रेमअंबोध ग्रंथस्थ रैदास की परचई।

6.(2) 32. 'श्रीगुरु रविदास रामायण' रचयिता श्रीरामदत्त शर्मा 'विचित्र' को काशी के डॉ. श्यामसुन्दर शुक्ल ने सम्पादित कर प्रकाशित कराया है। इसकी सम्पादकीय भूमिका परस्पर विरोधी कथनों से भरी पड़ी है। उधर मूल ग्रंथ भी अनेक विचित्र व अद्भुत कथनों का भंडार है। मूल रचना में कहीं भी रचनाकार का नामोल्लेख नहीं है। पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर रचनाकार का नाम रामदत्त शर्मा विचित्र प्रकाशित है, जबकि भूमिका की प्रथम पंक्ति में रचनाकार का नाम प्रयागदत्त शर्मा विचित्र लिखित है। ऐसी स्थिति में यह निर्णय करना अतीव कठिन है कि वास्तव में इस **'रैदास–रामायण'** को बनाने वाले का वास्तविक नाम क्या है। भूमिका में इसका रचना–काल 1868 विक्रम सम्वत् लिखा है, किन्तु यह कहाँ से उठाकर विज्ञापित किया गया है, ज्ञात नहीं होता।

6.(2) 33. 'कबीर–रैदास–गोष्ठी' इसको भक्त सैन की रचना माना जाता है। इसमें रैदास को सगुणमार्गी व कबीर को निर्गुणी बताकर गंभीर चर्चा करवाई गई है। दोनों में गंभीर वाद–विवाद होता है। अंततः रैदास, कबीर की युक्तियों को मानकर निर्गुणी हो जाते हैं और कबीर जो उनके ज्येष्ठ गुरु–भ्राता हैं, इनको गुरु तुल्य मानने लगते हैं। रैदास ने पद व साखियों की रचना करना इस गोष्ठी के सम्पन्न होने के पश्चात् ही प्रारंभ किया। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। मेरे आलेख **'संत सैन, उनकी रचनाएँ और संत रैदास'** में यह गोष्ठी अविकल रूप में प्रकाशित हुई है। यह आलेख इस पुस्तक में भी उपलब्ध है।

6.(2) 34. जैसा पूर्व में उल्लेख किया गया है, दलित–विमर्श की धुरी संत रैदास व नारी–विमर्श की धुरी मीरांबाई को बनाने का प्रयत्न पुरजोर तरीके से हो रहा है। कुछ अति उत्साही लेखक बिना तथ्यों की सम्यक् जाँच–पड़ताल किये संत रैदास के बारे में ऐसे तथ्यों का उल्लेख कर रहे हैं जिनसे सत्य का सामने आना तो दूर, भ्रमों का

बबण्डर फैलता जा रहा है। ऐसे लेखक संत रैदास का भला न करके समाज में वैमनस्य ही फैला रहे हैं तथा सत्य तथ्यों को ढँककर मनमाने तथ्यों को प्रचारित कर रहे हैं। एक उत्साही लेखक ने लिखा कि चित्तौड़ दुर्गस्थ कुंभस्याम मंदिर के आग्नेय कोणस्थ छत्री में रैदास का नाम लिखा हुआ है तथा मीरांबाई ने उसको बनवाया, ऐसा उसमें उल्लेख है जबकि ये दोनों बातें ही सफेद झूठ हैं; तथ्यों से परे हैं। वस्तुतः उक्त छत्री में एक अक्षर भी उत्कीर्ण नहीं है। सत्य तथ्य की जाँच–परख वहाँ जाकर की जा सकती है।

6.(2) 35. झाली रानी को मेड़तणी मीरां बनाने का प्रयत्न भी ऐसे ही अति उत्साही, पूर्वाग्रह ग्रसित व राजस्थानी इतिहास से अनभिज्ञ लेखक कर रहे हैं जो भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन सभी बातों की समीक्षा जीवनी भाग में उपलब्ध है।

6.(2) 36. गुरु रविदास : वाणी एवं महत्त्व का प्रकाशन सन् 2003 में वाणी–प्रकाशन से हुआ है। इसकी सम्पादिका डॉ. मीरा गौतम हैं और इसमें 43 आलेखों को सम्मिलित किया गया है। डॉ. शुकदेवसिंह का आलेख 'पाठालोचन की दृष्टि से रैदास वाणी' वही है जो इनकी ऊपर वर्णित तीसरे क्रमांक की पुस्तक में प्रकाशित है। कुछ दो–तीन आलेख और भी उल्लेखनीय हैं। शेष सभी आलेख प्रायः सेमीनारों में पढ़े जाने वाले जैसे सामान्य आलेख हैं।

7. रैदास की परचई

7.(1) प्रथम बिसराम

नगर बानारसी उत्तिम ठाँऊ। पाप न नीरौ आवै काऊँ।।
[1]मरै न कोऊ [1] नरक हि जाय। संकर नाम[2] सुनावै आय ।। 1।।

वाराणसी उत्तम स्थान है। वहाँ निवास करने वाले किसी के भी पाप निकट नहीं आते। वहाँ मरने वाला कोई भी नरकों में नहीं जाता, क्योंकि मरने वाले के कान में शंकर आकर राम नाम सुनाते हैं। अंत–समय में भगवन्नाम–श्रवण से मुक्ति होती है, ऐसा समस्त शास्त्रों का कथन है। सूक्ति है– **'काशी मरणान्मुक्तिः'** ।। 1।।

श्रुति सुंमृत कौ है अधिकारा। तहा रैदास लियौ अवतारा ।।
साकत कै घर जनम्यौ आई। जाति चमार [3] पिता अर माई ।। 2।।

वाराणसी में श्रुति, स्मृति आदि का पूर्णाधिकार–पूर्णाधिपत्य है। ऐसे उत्तम नगर वाराणसी में रैदास ने जन्म लिया। रैदास शाक्त के घर में जन्मे। उनके माता–पिता की जाति चर्मकार थी ।।2।।

पूरब जनम ब्राहमन [4] होतौ। माँस न छाड़्यौ हरिजन [5]सो तौं[5] ।।
तिहि अपराध नीच घर दीनौ। पहिलौ जनम चीन्हि तिहि लीनौ ।। 3।।

रैदास पूर्वजन्म में ब्राह्मण थे। हरिजन=ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने माँस–भक्षण करना नहीं छोड़ा। माँस–भक्षण करने के अपराध के कारण ही विधाता ने रैदास को नीच के घर में जन्म दिया। यद्यपि रैदास जन्मे चर्मकार माता–पिता के घर में, किन्तु उन्होंने अपना पूर्व–जन्म जान लिया कि वे पहले ब्राह्मण के घर में जन्मे थे ।। 3।।

दूध न पीवै रुदन करई। अैसै देखि कुटँब सब डरई ।।
कलपत कलपत बेटा पायौ। बड़े कै भवनि अजायौ जायौ ।। 4।।

रैदास ने चर्मकारिन माता के स्तनों के दूध का पान नहीं किया और भूखे होने के कारण रुदन करते रहे। दूध न पीने और रुदन करने के कारण सारा कुटुंब किसी अनहोनी से आशंकित होकर डरने लगा। माता–पिता कहने लगे, बड़ी मुश्किलों के उपरान्त पुत्र–जन्म हुआ है। रैदास के माता–पिता बड़े धनवान थे, किन्तु थे संतति–हीन। ऐसे माता–पिता के घर में रैदास का जन्म हुआ। इसलिये वे अत्यधिक चिन्तित हुए।। 4।।

मंगल गीत न कामिनि गावै। दुचित भये बाजे न बजाये ।।
बैद नाँव [6] तैं लै लै आवै। जंत्र मंत्र औषदी करावै ।।5।।

पुत्र–जन्मोत्सव की खुशी में कामनियों द्वारा गीत गाये जाने चाहिए थे, किन्तु गाये नहीं गये, क्योंकि सभी को संशय मिश्रित भय ने आ घेरा था। सभी दुचित्ते हो गये थे। परिणामस्वरूप बाजे भी नहीं बजवाये गये। जो भी वैद्य के नाम से जाने जाते थे, उन सभी को घर में उपचार हेतु लाने लगे। जो जैसा उपचार , यंत्र, मंत्र औषधि बताते; घर वाले वही करने लगते ।। 5।।

[7]बालक मरत राखि दे कोई । हमरै जानि धनंतर सोई[7] ।।
जो फुरमावै [9]सो हम[9] करिहैं। बहोत दरबि[8] लै आगै धरिहैं ।। 6।।

माता–पिता कहते, हमारे मरते हुए पुत्र को जो भी जीवित रख लेगा, हमारे लिये वही धनवंतरी है। वह जो भी कहेगा, हम वही करेंगे और उसको बहुत सारा द्रव्य देंगे ।।6।।

अैसी भाति भये दिन चारी। बहुत अँदोह करै महतारी ।।
कूटँब सहित पिता दुख पावै। रैदास हि निज मरिबौ भावै ।। 7।।

इस प्रकार चार दिन व्यतीत हो गए। रैदास की माता तरह–तरह के विकल्प–विचार मन में लाने लगी। कुटुंब सहित पिता भी दुःख का अनुभव करने लगे। इधर चर्मकार के घर में जन्म मिलने के कारण रैदास अपना मरना चाहने लगे ।। 7।।

जीए ते मरिबौ है नीकौं। हरि ते बिमुख जीवन है फीकौ ।।
[10]हरि हि बिसारी जे जन जीवहि। जम पै बँधन करावत ग्रीवहि[10] ।।8।।

रैदास का सोच था कि हरि से विमुख होकर जीने से मरना अच्छा है क्योंकि हरि–विमुख–जीवन रसहीन होता है। जो हरि का विस्मरण करके जीते हैं वे अपनी गर्दन यम–फंदे से बँधवाते हैं, यमलोक में जाते हैं ।।8।।

कहा दालिद्री कहा धनवंत। कहा दूबरौ कहा मैमंत[11] ।।
कहा मूरख कहा पंडित करई। [12]हरि बिन राजा रंक न तरई[12] ।। 9।।

हरि–विमुख चाहे दरिद्री हो, चाहे धनवंत हो, चाहे दुर्बल हो, चाहे बलवान हो, चाहे मूर्ख हो, चाहे पंडित हो, चाहे राजा हो और चाहे रंक हो, कोई भी भवसागर से पार नहीं होता ।।9।।

निज मरिबौ रैदास बिचारै। हरि करुनामैं [13]बिरद सम्हारै[13] ।।
अरध राति भइ अकास बानी। [14]सो रामानँद लीनी जानी[14] ।।10।।

रैदास अपना मरना चाह रहे थे। इधर भगवान ने अपने विरुद को याद किया। अर्द्धरात्रि में आकाशवाणी हुई। रामानंद ने उसको सुना और समझा ।।10।।

चमरा कै घरि बेटा जायौ। सौ मेरौ जन औतरि आयौ ।।
हरि सब कथा कही समझाई। जो पीछै तै होती आई ।।11।।

आकाशवाणी ने कहा– चर्मकार के घर बेटा उत्पन्न हुआ है। वह मेरा भक्त है। उसका जन्म हुआ है। भगवान ने वह सारी बात कह समझाई जो पीछे घटित हुई थी ।। 11।।

[17]क्रपावन्त ह्वै दछ्या[15] देहूँ। बालक मरत राखि तुम[16] लेहूँ[17] ।।
तब रामानँद कियौ बिचारू। समझायौ सबरै परिवारू ।।12।।

हे रामानंद! कृपालु बनकर उस बालक को दीक्षा दो और उसको मरने से बचा लो। तब रामानंद ने दीक्षा देने का विचार कर रैदास के घर में पदार्पण किया और सारे परिवार वालों को समझाया ।।12।।

जो तुम भगत होह रे भाई। तो हरि[18] बालक देइ जिवाई ।।
जब चमरा उठि लागौ पाई। जो जानैं सो करौ गुसाँई ।।13।।

यदि तुम कुटुंब सहित सभी के सभी हरि–भक्त होने को तैयार हो तो मैं तुम्हारे पुत्र को जीवित रख सकता हूँ। तब चर्मकार उठकर रामानंद स्वामी के पैरों में गिर पड़ा और कहने लगा– आपको जो, जैसा अच्छा लगे, वही व वैसा करो ।। 13।।

तब रामानँद गहर न कीनौं। माथै हाथ सबनि कैं दीनौं ।।
[19]माला तिलक[19] भद्र करवाये। पहले भाजन सब उतराये ।। 14।।

तब रामानंद ने तनिक भी विलम्ब नहीं किया। उन्होंने सभी के माथे पर अपना हाथ रख दिया। सभी को दीक्षित किया। वैष्णवोचित पंच–संस्कार माला, तिलक, कंठी, जनेऊ व मुंडन करवाये। घर में रखे पानी के पुराने सारे बर्तनों का उतरवा दिया।।14।।

सबहिन कै मन भयौ हुलासू[20]। अस्तन पान कियौ रैदासू ।।
दैहिं[21] बधाई बाजे बाजैं। घर घर तोरन कलस बिराजैं[21] ।।15।।

ऐसा होने से सभी के मन में अपार आनंद का अनुभव हुआ। रैदास ने वैष्णव चर्मकारिन माँ के स्तनों से दूध का पान करना प्रारम्भ कर दिया। सभी रैदास के माता–पिता को बधाई देने लगे। बाजे बजने लगे। घर–घर के द्वारों पर तोरण और कलशों की स्थापना हुई ।।15।।

जनम कहत रैदास कौ, सुख पावै भगवन्त।
क्रम के बंधन सब कटै, गावै दास अनन्त ।।16।।1।।

रैदास के जन्म की कथा कहने से भगवान् को सुख का अनुभव होता है। अनंतदास कहता है, कर्म के सारे बंधन भी कट जाते है। ।।16।।

7. (2) द्वितीय बिसराम

इहि बिधि हरि भगतन हितकारी। जुग जुग जन की बिपति निवारी ।।
दिन दिन बड़ौ भयौ रैदास[1]। [2]दिन प्रति हरिजी कौ बिसवास [2] ।।1।।

इस–प्रकार परात्पर–परब्रह्म श्रीहरि भक्तों के हितकारी हैं, जिन्होंने युग–युगों में भक्तों की विपत्तियों का निवारण किया है। दिनानुदिन रैदास बड़े होने लगे। जैसे–जैसे बड़े होने लगे, वैसे–वैसे उनके हृदय में हरिजी के प्रति विश्वास बढ़ता चला गया ।।1।।

बरस सात कौ भयौ है जबही। नौधा भगति दिढ़ाई तबही ।।
[3]सतगुर कहै सीख नहिं टरई। मनसा बाचा हिरदै धरई[3] ।।2।।

रैदास जब सात वर्ष के हुए, तब उन्होंने नवधाभक्ति को दृढ़ता के साथ अंगीकार की। सद्गुरु द्वारा दी गई शिक्षा–दीक्षा से वे तिलमात्र भी दूर नहीं हुए। उन्होंने उस शिक्षा को मनसा–वाचा पूर्णरूपेण हृदय में धारण रखी ।। 2।।

[4]समयै सात औरौं चलि गइयौ। [5]बहोत नेह केसौ सौ भइयौ[5] ।।
बालपना मैं कहिते नींकौ। अब सब कुटब हि लागै फीकौ ।। 3।।

इस–प्रकार गुरु शिक्षानुसार नवधाभक्ति करते–करते सात वर्ष और व्यतीत हो गये। इस अवधि में केशव से उनका स्नेह और अधिक सुदृढ़ता के साथ बढ़ गया। कुटुंबी–जन बाल्यकाल में रैदास को अच्छा कहते थे, किन्तु भक्ति करने के कारण अब उनको रैदास बुरे लगने लगे।। 3।।

बड़ौ भयौ तब न्यारौ कीनौं। बाँटै आयौ सु बाँटि न दीनौं ।।
राख्यौ बाखरि कै पछिवारै। कछु न कह्यौ रैदास बिचारै ।। 4 ।।

माता–पिता ने रैदास को संयुक्त परिवार से अलग कर दिया। जो संपति रैदास को हिस्से में मिलनी चाहिए थी, वह भी माता–पिता ने नहीं दी। बाखड़ (वह अहाता जिसमें कुटुंब के कई परिवार रहते तो अलग–अलग इकाई के रूप में हैं, किन्तु होते हैं एक ही परिवार के) के पिछवाड़े में रहने को स्थान दिया। फिर भी बेचारे रैदास ने कुछ नहीं कहा ।। 4 ।।

सीधौ चामरौ ले ले आवै। ताकी पनही अधिक बनावै ।।
टूटौ फाटौ जरबो जोरै। मसकति कौ काहू न निहोरै ।।5 ।।

रैदास मरे जानवरों के शरीर से चमड़ा उतारने का काम न करके बाजार से खरीदकर चमड़ा लाने लगे और उसकी सुन्दर–सुन्दर जूतियाँ बनाने लगे। फटे–टूटे जूतों की मरम्मत का काम भी करने लगे। पारिश्रमिक के लिये वे किसी से कुछ भी नहीं कहते। कोई देता तो ले लेते। आग्रह नहीं करते ।।5 ।।

[6]ऐसौ लाभ सहज में होई। करम अकरम न [7]लागै कोई [6] ।।
न्यारै मंदिर भोग लगावै। [8]तहाँ न मधिम कोई आवै [8] ।।6 ।।

इस–प्रकार परोपकार रूपी लाभ सहज में ही होने लगा। चमड़े का काम करने रूपी विकर्म का कुछ भी बुरा प्रभाव रैदास पर न पड़ता। रैदास अपने न्यारे घर में भगवान को भोग लगाने लगे। वहाँ अन्य कोई नीचजात्युत्पन्न नहीं आता था ।।6 ।।

पूजा अरचा अधिक अचारा। जान्यौ भगति रीति ब्यौहारा ।।
बरस पाँच[9] ऐसी बिधि भई [10]। कसनी बहौत सरीर हि दई [11] ।।7 ।।

पूजा, अर्चना और उत्तम आचार–विचार सहित भक्ति की रीति व व्यवहार को भली–भाँति रैदास ने जान लिया। इस–प्रकार भक्ति करते–करते पाँच वर्ष का समय और व्यतीत हो गया। इस समयावधि में रैदास ने अपने शरीर को कई प्रकार की कसौटियों पर कसकर कंचन की भाँति शुद्ध किया।। 7 ।।

तब हरि भगत रूप धरि आये। जन रैदास देखि मन भाये ।।
आदर करि आसन बैसारै। दीन वचन करि चरन पखारे ।। 8 ।।

तब परात्पर–परब्रह्म श्रीहरि, रैदास के पास एक भक्त का रूप धारण करके आये।

साधु को देखकर रैदास अत्यधिक प्रसन्न हुए। आदर सहित आसन पर बैठाया। दीन वचनों से विनती करते हुए रैदास ने भक्त के पादों का प्रक्षालन किया ।।8।।

घरी [12]एक लौं हरि कथा चलाई। ता पीछै ज्यौनार [13] बनाई ।।
भोजन करि हरि बैठे जबही। दुख सुख कथा चलाई तबही ।। 9।।

भक्त रूपी भगवान् से एक घड़ी तक हरि–चर्चा की। उसके पीछे भोजन बनाया। भोजनोपरान्त भक्त रूपी भगवान् ने रैदास से उनकी सुख–दुःख की चर्चा प्रारम्भ की।।9।।

कहि रैइदास आपनौ मरम। कैसै रहै तुम्हारौ धरम ।।
संपति कछू न देखौं नैंना। कैसै देही पावै चैंना ।।10।।

हे रैदास! आप अपना रहस्य बताइये; घर का काम कैसे चलता है? बताइये! तुम्हारे गृहस्थ–धर्म का, योगक्षेम का निर्वाह कैसे होता है। तुम्हारे घर में सम्पत्ति के नाम पर कुछ भी नहीं है। ऐसी स्थिति में तुम्हारा शरीर कैसे सुख पाता है ।। 10।।

तब रैदास कहै समझाई। संपति मेरे राघौराई [14] ।।
कोटी लछमी जाकै चरना। दुख क्यौं पाइए ताकी सरना ।।11।।

तब रैदास ने भक्त को समझाते हुए कहा, मेरी सम्पत्ति रघुपति राजा राम हैं। करोड़ों लक्ष्मी उनके चरणों में बसती है। फिर क्योंकर उनकी शरण में रहने वाला भक्त दुःख पा सकता है।।11।।

ऐसी बात कहै रैयदासा। केसौ [15] कै मनि भयो हुलासा ।।
सुनि रैदास वचन इक मेरौ। अबहू दारिद मारौं तेरौ ।।12।।

रैदास ने उक्त–प्रकार से अपना मंतव्य कहा जिसको सुनकर केशव के मन में अतीव आनंद हुआ। भक्त रूपी भगवान् ने कहा– हे रैदास! मेरा एक वचन सुन और उसको मान। मैं तेरा दारिद्र्य अभी तत्काल ही समाप्त किये देता हूँ ।।12।।

बालपना ते हूँ बैरागी। ग्यान पाय कै माया त्यागी ।।
फिरत फिरत तेरै गृह आयौ। काल्हि बाट मैं पारस पायौ ।।13।।

भक्त ने कहा– मैं बाल्यकाल से ही घर–द्वार छोड़कर वैरागी हो गया हूँ। ज्ञान प्राप्त करके मैंने माया का भी त्याग कर दिया है। भ्रमण करते–करते अब मैं तेरे घर आया हूँ। आते समय कल ही मुझे रास्ते में एक पारस नाम का पत्थर मिला है ।।13।।

मेरै कामि न आवै येहू। दया करहु तौ तुमही लेहू ।।
लोहा जो पारस कौं भेटै। कंचन करत कोउ नहीं मेटै ।।14।।

यह पारस पत्थर मेरे कुछ भी काम आने वाला नहीं है। दया करो और इसको तुम ले लो। इस पारस पत्थर से लोहा स्पर्श पाते ही कंचन हो जाता है। फिर पुनः वह लोहा नहीं बनता ।।14।।

ऐसे कंचन करि करि लेही। [16]मन मानें ताही कौं देही [16] ।।
ताकौ दोस न लागै कोई। दूनी भगति तुम्हारी होई ।।15।।

इस–प्रकार तुम इस पारस पत्थर के द्वारा लोहे को स्वर्ण बनाते रहना और जिसको चाहो उसको देते रहना। पारस द्वारा सोना बनाने से कोई भी हानि नहीं होगी; उल्टे भक्ति दुगनी होगी ।।15।।

वचन सुनत भगवंत कै, [17]मौनि गही रैदास [17]।
कै सतु देखन आइयौ, कै करन भगति कौ नास ।।16।।2।।

भगवान् के वचनों को सुनने पर रैदास ने मौन धारण कर लिया। वे मन ही मन सोचने लगे कि या तो यह भक्त मेरे सत् तौलने को आया है या मेरी भक्ति को नष्ट करने आया है ।।16।। 2।।

7.(3) तृतीय बिसराम

घरी एक रैदास न बोल्यौ। हरी[1] गाँठ ते पारस खोल्यौ ।।
तू जिनि जानै डहकै मोही[2]। निहचै करै[3] देत हौं तोही[4] ।।1।।

भक्त रूपी भगवान् की बातें सुनकर रैदास एक घड़ी तक कुछ नही बोले। हाँ, ना का उत्तर न मिलने पर भी हरि ने अपनी गाँठ से पारस को खोलकर रैदास को देते हुए कहा– तू ऐसा मत मानना कि मैं तुझे ठग रहा हूँ। मैं निश्चित तौर पर तुझे पारस दे रहा हूँ ।।1।।

[5]ए देखौ पारस के चिहना। सुई एक लै सोना कीना[5] ।।
[6]ऐसे कबहू होइ न आना। यामैं नाहीं जान बिनाना[6] ।।2।।

यह पारस ही है। लो, इसकी जाँच–पड़ताल करवा देता हूँ। भक्त ने एक सुई ली और पारस से स्पर्श कराकर उसको सोने की बना दी। बिना पारस के ऐसा होना संभव नहीं है, अथवा अन्य किसी से लोहा सोने में परिवर्तित नहीं होता। यह पत्थर पारस ही है, इसमें तनिक भी ननुनच नहीं है, जादू नहीं है ।।2।।

तब रैदास बोलियौ बैना। याहि न कबहू देखौं नैना ।।
कनक कामिनी निंदहि साध। हाथ लिये लागै अपराध ।।3।।

तब रैदास ने कहा— चाहे यह पारस ही क्यों न हो, मैं इसे आँखों से देखूँगा तक नहीं। संत कनक और कामिनी की निंदा करते हैं। कनक को छूने तक से अपराध—पाप लगता है ।।3।।

जै कनक ते सीझै काजा। तौ कत राज छाडि जहि राजा ।।
भिक्षा मागहि भोजन करही। कनक कामिनी ते नित डरही ।।4।।

यदि सोने से ही काम सिद्ध हो जाता हो, मुक्ति मिल जाती हो तो राजा राज छोड़कर क्यों मर जाते हैं? उनके पास तो अपार सोना होता है। हम तो भिक्षा माँगते और भोजन करते हैं। कनक—कामिनी से डरते हुए उनसे हमेशा दूर ही रहते हैं ।।4।।

छाजन भोजन [7]डरपत लेही। जा बिनि दुख पावत है देही[7] ।।
ताकौं[8] कैसे संग्रह कीजे। सत छाड़ै [9]काहे कौं[9] जीजे [8] ।।5।।

वस्त्र और भोजन भी मैं डरते—डरते लेता हूँ। इनका लेना अपरिहार्य है, क्योंकि बिना इनके शरीर दुःख पाता है। इनका संग्रह भी क्योंकर किया जाना चाहिए। संग्रह करने से सत् के भंग होने और फिर जीना व्यर्थ है ।।5।।

तब हरि[10] बोले सुणि[11] सत भाऊ। कंचन दोस न दीजै काऊ ।।
कंचन के मंदिर बैकुंठा। [12]कंचन हरि पहरत है कंठा[12] ।।6।।

तब हरि ने कहा— हे रैदास! श्रद्धा सहित सत्य बात सुन, कंचन को किसी भी तरह का दोष मत दो। बैकुंठ नाम का मंदिर कंचन से ही निर्मित है। परात्पर—परब्रह्म श्रीहरि कंठ में कंचन ही धारण करते हैं ।।6।।

कंचन की द्वारिका बिराजे। कंचन सब देवनि के छाजै ।।
कंचन भाजन हरि की सेवा। कंचन दियौ सुदामा देवा ।।7।।

द्वारका कंचन की ही है। समस्त देवताओं के यहाँ भी कंचन ही कंचन है। हरि की सेवा के सारे पात्र कंचन के ही होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने सुदामा को कंचन के महल व कंचन ही दिया था।। 7।।

[13]कंचन कृष्ण प्रती करि जीजै[13]। कंचन काटि महोछा कीजै ।।
[14]कंचन लै बैकुंठ बसावै। जौ कंचन का[15] मरमहि[15] पावै[14] ।। 8।।

यदि कोई कंचन का सही मर्म जान जाए तो वह कृष्ण के प्रति प्रीति करके जीने लगता है। कंचन खर्च करके महोत्सवों का आयोजन करने लगता है। कंचन के द्वारा ही बैकुंठ का निवास पा सकता है।।8।।

कंचन खरचि पाप जौ कीजै। तौ कत[16] दोष कंचन कौं दीजै ।।
कंचन ले गनिका कौं देई। तौ नरक बिसाहि आपकौ लेही।। 9।।

कंचन खर्च करके यदि कोई पाप कमाता है तो वह दोष कंचन का न होकर कंचन खर्च करने वाले का है। ऐसी स्थिति में कंचन को दोष क्योंकर दिया जा सकता है? यदि कोई कंचन गणिका को देता है तो वह अपने लिये नरकों का निवास मोल ले लेता है।। 9।।

[17]कंचन ले जौ जूवा खेलै। तौ अपनौ जनम नरक मै ठेलै [17] ।।
कंचन ले कलाल कै जाई। सुरापान पी नरकि पराई।। 10।।

यदि कोई कंचन प्राप्त करके उससे जुवा खेलता है तो जानिये, वह अपना जन्म नरकों की ओर ढकेलता है। कंचन लेकर यदि कोई कलाल के यहाँ जाता है और सुरापान करता है तो निश्चय ही वह नरकों में जाता है ।।10।।

कंचन दे जौ [18]आह मुष खाई। तौ सहजै नरकि आप ही जाई ।।
कंचन दे जौ[19] माणस हि मरवावै। तौ गति मोखि[19] कहाँ ते पावै ।।11।।

कंचन से खरीद कर जो आमिष–माँस खाता है, बिना किसी रुकावट के वह स्वतः ही नरक में जाता है। कंचन देकर जो किसी अन्य प्राणियों को मरवाता है, बताइये ऐसा हत्यारा मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकता है? ।।11।।

कंचन दे पर तिरिया राचै। [20]सब ते [20] मरणा कहूँ न बाँचै ।।
कंचन की [21]अकौर जौ लेई [21]। अपराधी कौ आदर देई [22] ।।12।। [23]

जो कंचन देकर पर–त्रिया का भोग करता है, वह सभी की मार खाता है। मार से उसे कोई बचा नहीं सकता! जो कंचन को छाती से लगाकर रखता है, मानिये वह अपराधी को आदर देता है ।।12।।

कचन [24]धरै धरनि मैं जाई [24]। अवरहि देई न आपण खाई ।।[25]
तौ कंचन कैसे निसतारै। देखत जनम आपणौ हारै ।।13।।

कंचन को धरती में गाड़कर रखता है, न स्वयं उसका उपयोग करता है और न

दूसरों को ही देता है; ऐसे व्यक्तियों को कंचन कैसे निस्तार सकता है! ऐसा व्यक्ति जानता—बूझता हुआ भी अपने जन्म को व्यर्थ ही गँवाता है ।।13।।

ऐसी बात कही है जबही। तक रैदास बोलिया तबही ।।
काहे हाथ हमारै देहू। तुमही क्यौं न महोछा करहू ।।14।।

भक्त रूप भगवान् ने जब इस—प्रकार की बात कही, तब विचारकर रैदास ने कहा! हे भक्तवर! इस पारस को मुझे क्यों दे रहे हो। क्यों नहीं आप स्वयं ही इससे कंचन बनाकर महोत्सवायोजन करते हो ।।14।।

हमहि कियौ तुम ऊपरि भाव। अब रैदास मन न डुलाव ।।
पारस ले पाँवन तर धरिया। तब रैदास पिछोड़ा फिरिया [26] ।।15।।

भक्त रूप भगवान् ने कहा, हे रैदास! आप अब मन को दोलायमान मत करो। हमने तुम्हारे प्रति अच्छा भाव रखकर ही आपको पारस देने का मन बनाया है। इतना कहकर उसने उस पारस को रैदास के पाँवों के नीचे (सामने) रख दिया। रैदास तत्काल पीछे की ओर खिसक गये ।।15।।

नाहीं कियाँ न छूटिये, तूठौ कवलाकंत।
सुखसागर हरि सरण ही, गावै दास अनन्त ।।16।।3।।48।।

नहीं कहने से, मना करने से भी पीछा नहीं छूट सका, क्योंकि रैदास पर कमलापति प्रसन्न हो गया था। हरि की शरण में ही सुखों का सागर है। अनंतदास इस बात को कहता है ।।16।।3।

7. (4) चतुर्थ बिसराम

बोल्या जन रैदास बिचारी। हूँ राखत हौं काणि तुम्हारी ।।
जै तुम टेक आपणी करिहौ। तौ [1] बसतर बाँधि छानि मै धरिहौ ।।1।।

विचार करके रैदास ने कहा— मैं आपकी इज्ज़त कर रहा हूँ; इसलिए इतनी विनम्रता से आपसे बात कर रहा हूँ। तब भक्त रूपी भगवान् ने कहा— यदि तुम अपनी ही बात रखना चाहते हो तो इस पारस पत्थर को वस्त्र में बाँधकर मैं छान में ठूँस देता हूँ ।।1।।

नागा भूखा आवै काजा। [2]लीज्यौ काढ़ि न कीज्यौ[2] लाजा ।।
[3]केसौ पारस धरिया बाँधी। घर भीतरि डाँडी की साँधी [3] ।।2।।

यदि कोई भी नंगे–भूखे तुम्हारे पास आएँ तो तुम इसको छान में से निकाल लेना। लज्जा मत करना। केशव ने वस्त्र में बाँधकर पारस को घर के भीतर छान और बलींडे (बलींडा वह मोटी लकड़ी (बीम) होती है जो छान के घर में आमने–सामने की दीवारों पर टिकाकर बीच में रखी जाती है जिस पर पूरी छान टिकती है और जिसके कारण ही छान बीच में ऊँची उठकर दोनों ओर ढालू हो जाती है और छान पर पानी रुकता नहीं है।) की संधि में रख दिया ।।2।।

हम देखत यह खरा लजाई। पीछै कंचन [4]करि करि [4] खाई ।।
यह बिचारि करि केसौ गइया। बरस एक [5] पारस कौ भइया ।।3।।

केशव ने मन में विचार किया कि यह हमारे कारण लज्जा का अनुभव कर रहा है। हमारे जाने के उपरान्त इससे यह कंचन बना–बनाकर खूब माल उड़ायेगा। इस–प्रकार विचार करके केशव वहाँ से चले गए। इस–प्रकार छान में रखे हुए पारस को एक वर्ष हो गया ।।3।।

जन रैदास न देख्यौ काऊ। मास तेरहै बहुर्यौ[6] आऊ[7] ।।
काहे स्वामी काढि न लीनौं। कौंण दोष पारस कौ दीनौं ।।4।।

रैदास भक्त ने पारस को निकालना तो दूर उसकी ओर देखा तक नहीं। तेरहवें मास में केशव पुनः रैदास के यहाँ आये और कहा– हे स्वामी! आपने पारस को निकाल क्यों नहीं लिया? पारस में ऐसा कौनसा दोष आपने देख लिया, जिसके कारण उसको आपने नहीं निकाला ।।4।।

[8]तब [9] रैदास कहै कर जोरै। मैं छाड़्यौ पाथर के भौरै [8] ।।
[10]पारिस मेरै हरि कौ नाम। पाथर सेती [11] नाहीं काम ।।5।। [10]

तब रैदास ने हाथ जोड़कर कहा– मैंने उसे निरा पत्थर जानकर उसकी ओर देखा तक नहीं। मेरे लिये हरि–नाम ही पारस पत्थर है। मुझे इस पारस पत्थर से कोई काम नहीं है, मेरे लिये यह किसी भी काम का नहीं है ।।5।।

हरि पारस कंचन की रासी। अवर सकल माया की पासी ।।
अंगिकार रैदास न कीना। तब हरि अपना पारस लीना ।।6।।

हरि रूपी पारस ही मेरे लिये कंचन का भंडार है। उसके अतिरिक्त अन्य सभी माया रूपी फाँसी है। रैदास ने उस पारस पत्थर को अंगीकार नहीं किया, तब हरि ने अपना पारस वापिस ले लिया ।।6।।

लै पारस [12]रमि गया [12] मुरारी। [13]बहुर्यौ केसौ [13] बुधी बिचारी ।।
सुपनान्तर मैं बिनती करई। मुहर पाँच संपट मैं धरई ।।7।।

पारस को लेकर मुरारी वहाँ से रम गये। केशव ने रैदास को धन देने का दूसरा उपाय सोचा। स्वप्न में केशव ने रैदास से विनती की कि मैंने शालग्राम के संपुट में पाँच मोहर रखी हैं ।।7।।

लेहु कनक जिनि करहु कुभाव। पूजौ साध ह्रिदै करि भाव ।।
[14]इतनी सुनत भयौ [14] सुख भारी। माने बचन जु कहे मुरारी ।।8।।

हे रेदास! तुम उन मोहरों को ले लेना। उनके प्रति लेशमात्र का भी कुभाव मत करना। हृदय में श्रद्धा–भावना धारण करके साधु–संतों की सेवा–सुश्रुषा करो। भगवान् के उक्त वचन सुनने पर रैदास को भारी आनंदानुभूति हुई। मुरारी ने जो आदेश दिया, उसको रैदास ने मान लिया ।।8।।

[15]भोर भये जो देखै जागी। दीनी संपति मैं [16]कब माँगी ।।[15]
तब ते पाँच पाँच निति[17] आवै। ते सब पाक महोछै लावै ।।9।।

प्रातः काल होने व संपुट की मोहरों को देखने पर रैदास ने कहा– हे प्रभो! मैंने इस सम्पति को कब माँगी थी। तब से प्रतिदिन पाँच मोहरें उस संपुट मे मिलने लगीं। रैदास उनके द्वारा क्रीत धन से भगवान् का भोग बनाता, भोग लगाता और महोत्सव करता ।।9।।

मंदिर महल किया बहुतेरा। तहाँ तहाँ भगतन का डेरा ।।
[20]करै कथा कीरतन सारू[18]। [19]आन [19]धरम नाहीं पैसारू ।।10।। [20]

उस धन से रैदास ने बहुत से मंदिर व मकानात वहाँ–वहाँ बनवाये, जहाँ–जहाँ भक्तों का निवास था। रैदास व भक्तजन उन मंदिरों में सारवान कथा व कीर्तन करने लगे। उनमें इनके अतिरिक्त अन्य गतिविधियों की कोई भी व्याप्ति नहीं थी ।।10।।

नग्र का लोग द्रसण करि जाहीं। तिनसौं बाँभण खरा रिसाहीं ।।
काहू कौ धन [21]पायौ डारा [21]। खाय न जाणैं मूढ़ गवारा ।।11।।

नगर की जनता दर्शन करने को आने लगी, जिस–कारण रैदास से ब्राह्मण पूर्णरूपेण क्रोधित होने लगे। कहने लगे– रैदास को किसी का खोया हुआ धन मिल गया है। मूर्ख गँवार उस धन से सुखैश्वर्य भोगना नहीं जानता। मंदिर बनाकर पुजारी बन बैठा है और जनता को बिगाड़ रहा है ।।11।।

[22]टचर करै लोगन बौरावै। सुद्र [23]आपणी सेवा लावै ।।
सीख देण कौं नाहिन कोई। बहोत अनीति नगर मैं होई ।।12।।

अनधिकृत काम करते हुए जनता को भ्रमित कर रहा है। शूद्र होकर भी अपनी सेवा करा रहा है। इसको शिक्षा देने वाला कोई नहीं है। नगर में बहुत बड़ी अनीति–अनर्थ–अनधिकृत काम हो रहा है ।।12।।

मधिम कुल अरु मधिम कामू। मधिम कुटँब अर मधिम धामू ।।
मधिम आपण र मधिम नामू। सो क्यौ पूजै सालिगरामू ।।13।।

इसका कुल अधम है। काम भी अधम है। इसका कुटुम्ब अधम है तो मकान व मंदिरादि भी अधम हैं। यह स्वयं भी अधम है तो इसका नाम भी अधम है। ऐसी स्थिति में यह कैसे शालग्राम की पूजा कर सकता है ।।13।।

बेद पुराण कहै समुझाई । सुद्र हि सिला न जाइ छिवाई ।।
अैसै बाभण [24] कोप कराहीं। तब रैदास हि बरज्या जाई ।।14।।

वेद–पुराण समझाकर कहते हैं कि शालग्राम की शिला को शूद्र छू तक नहीं सकता। इस–प्रकार सारे ब्राह्मण रैदास के प्रति क्रोधित हुए और एक दिन रैदास से शिला की पूजा करने के लिये मना किया ।।14।।

जै तू रह्यौ नगर मै चाहै। तौ जिनि काहू और हि बाहै ।।
[25]सूधौ सुमिरत रहु हरि नामू। तू जिनि पूजहि सालिगरामू [25] ।।15।।

हे रैदास! यदि तू नगर में रहना चाहता है तो औरों को अपने साथ–साथ बहका मत, पाप रूपी सागर में डुबो मत। सीधे–सीधे हरि–नाम का स्मरण करता रह। शालग्राम की पूजा मत कर ।।15।।

बरजै जाइ [26] नगर कौ राजा। बरबट [27] बाँभण करै न लाजा [28] ।।16।। [29]

ब्राह्मणों ने राजदरबार में जाकर राजा से रैदास की शिकायत की कि उसे शालग्राम की सेवा करने से रोका जाए। उदण्ड ब्राह्मणों ने राजा की लाज–शर्म भी नहीं रखी ।।16।।

[30]राजनीति मानै नहीं, बहोत भरे अहँकारि।
बाँभण बरज्या ना रहै, मरण कहै दरबारि [30] ।।17।।4।।65।।

ब्राह्मण राजनीति को भी मानने को तैयार नहीं थे, क्योंकि वे अपने ब्राह्मणत्व के अहंकार से भरे हुए थे। राजा के द्वारा मना करने पर भी ब्राह्मण विरोध करने की नीति से अलग नहीं हुए और राजा पर दबाव बनाने के लिये मर जाने की बात कहने लगे ।।17।। 4।।

7. (5) पंचम बिसराम

[1]बाँभण बोलै [1] नैक न डरही। केसौ काणि हमारी करही ।।
भ्रिगू रिषेसरी [2] मारी लाता। सोभा अधिक भई हरि गाता ।।1।।

ब्राह्मण बोलते समय बिल्कुल भी डरते नहीं। कहते हैं– केशव हमारी इज्जत करता है; हमारी बात मानता है। भृगुऋषि ने विष्णु की छाती पर लात मारी। परिणामस्वरूप हरि के शरीर की शोभा और अधिक बढ़ गई ।।1।।

परसराम सब छत्रि सँघारा[3]। [4]राज दियौ इकईसइ बारा [4] ।।
[5]फुनि पाँडौ कै एनहि टराता[5]। सहस अठ्यासी भोजन कराता ।।2।।

परशुराम ने समस्त क्षत्रियों का संहार कर डाला। सारी पृथिवी ब्राह्मणों को 21 बार प्रदान की। पाण्डवों द्वारा आयोजित अश्वमेध–यज्ञ में शूद्रों को टालकर अठासी हजार ब्राह्मणों को भोजन कराया गया।।2।। (वाल्मीकि नामक श्वपच भक्त को अश्वमेध–यज्ञ में नहीं बुलाया गया था।)

तब रैदास कहत सुनि पाँडे। लात मारि करि भये तुम [6] चाँडे ।।
जानौ नहीं राज की रीती। ताते बहुत [7] भई बिपरीती ।।3।।

तब रैदास ने कहा– हे पंडितों! सुनो। लात मारकर तुम बहुत बड़े चाँडे– निष्शंक हो गये लगते हो। तुम राज की रीति को नहीं जानते। इसी–कारण बहुत बड़ा अनर्थ हो गया है ।।3।।

सहस अठ्यासी सर्‌यौ न काजा। सुपच कै साच पचायन बाजा ।।
तुम्हरी पूजा कौ फल येहू। सेवा करत नरक मैं देहू ।।4।।

अठासी हजार ब्राह्मणों द्वारा भोजन करने पर भी अश्वमेध–यज्ञ का आयोजन सफल नहीं हुआ। पंचायन शंख तो श्वपच द्वारा भोजन करने पर ही बजा जो यज्ञायोजन की सफलता का प्रतीक था। तुम्हारी सेवा करने का फल तो यह है कि तुम सेवक को नरक में जाने का श्राप तक दे डालते हो ।।4।।

नघु[8] राजा तुम नरक पठायौ। दियौ सराप कृष्ण मुकतायौ ।।
पुनि दुरवासा गुरू तुमारा। हरि भगतनि की सरनि उबारा ।।5।।

नृघु (नृग) राजा को तुमने श्राप देकर नरक में भेज दिया। श्रीकृष्ण ने उस श्राप से उसे मुक्त किया। पुनः दुर्वासा भी तुम्हारा ही गुरु–पूर्वज ब्राह्मण है, जिसको हरि–भक्तों की शरण ने ही उबारा ।।5।।

इतनी सुणि बाँभण परिजरिया। मानौ बैस्वाँदर मं[9] घी [9] ढरिया ।।
सुरहि सूकरी क्यौ सम होई। दूध बिचारि पिवै [10] सब कोई ।।6।।

उक्त बातें सुनते ही ब्राह्मण जल–भुन गये; मानो प्रज्ज्वलित अग्नि में घी डाल दिया गया हो। गाय और शूकरी समान कैसे हो सकती है! सभी लोग गाय और शूकरी के भिन्नत्व का विचार करके ही गाय का दूध पीते है, शूकरी का नहीं ।।6।।

गइ न द्रुगँध [11] गंगा मै मंछा। स्वान मँजन किये [12] होइ न वंछा [12] ।।
हंस काग [13]कैसे इकसारी [13]। कंचन काचहि लेहि बिचारी ।।7।।

गंगा–जल में रहने पर भी मछली की नैसर्गिक दुर्गंध समाप्त नहीं होती। स्नान करने से स्वान पवित्र नहीं हो जाता। हंस और कौआ एक समान कैसे हो सकते हैं। कंचन और काँच के भिन्नत्व को भी इस सम्बन्ध में विचार लेना चाहिए ।।7।।

खलि कपूर सौ [14] अन्तर होई। लोक वेद कहत[15] सब कोई ।।
इन्द्री जीति सुद्र जो होई। ताका पाव न पूजै कोई ।।8।।

खल और कपूर में भिन्नता होती है। इसको वेद और लोक दोनों कहते हैं। यदि कोई शूद्र इन्द्रिय–विजेता हो, तब भी उसके पैरों की पूजा कोई नहीं करता ।।8।।

बाँभण जो र भ्रष्ट ह्वै जाई। तौ [16] सब मानै [16] राजा राई ।।
इतनी सुनि रैदास रिसाना। हरि परित्यागे राजा राना ।।9।।

इसके विपरीत यदि कोई ब्राह्मण भ्रष्ट हो जाता है, तब भी उसको राजा, प्रजा सभी मानते हैं, इज्जत करते हैं। इतनी सुनकर रैदास क्रोध से भर गये। कहने लगे– भगवान् ने राजा और राणाओं का हमेशा त्याग ही किया है। हरि ने हमेशा भक्तों को स्वीकार किया है ।।9।।

जरजोधन कौ कीयौ त्यागू। लियौ बिदर घर सतवा सागू ।।
[17]नाहीं राम तुम्हारै बाँटै। सब कोइ लेहु सीस कै साँटै ।।10।। [17]

दुर्योधन के मेवा–मिष्ठान्नों का त्याग किया, जबकि विदुर के घर के सत्तू और शाक–भाजी को स्वीकारा भगवान् ने। भगवान् केवल तुम्हारे ही हिस्से में नहीं आया है। उसको वही प्राप्त करता है, जो उसको अपना सिर भेंट करता है, अर्थात् जो सर्वतोभावेन उसके शरणागत हो जाता है, भगवान् उसी को मिलता है ।।10।।

सालिगराम हि आनि बिराजू। लेहु बुलाइ न [18] कीजै लाजू [18] ।।
[19]जहाँ प्रतीति [19] तहाँ चलि जाई। ऐसी मनि [20] रैदास उपाई ।।11।।

शालग्राम को लाकर बीच में विराजमान कर दीजिये। उसको बुलाइये। लज्जा बिल्कुल मत करिये। जहाँ श्रद्धा–विश्वास होगा, शालग्राम वहीं चला जायेगा। मन में रैदास ने इस झगड़े को मिटाने का यही उपाय सोचा ।।11।।

बाँभण [21] कहै बेगि लै आऊ। जौ तेरै मन मै सत भाऊ ।।
तब रैदास [22] ऊपजी लाजा। सिंघासन ऊपरि [23] आन बिराजा ।।12।।

ब्राह्मण कहने लगे। देरी मत करो। शालग्राम को तुरंत ले आओ, यदि तेरे मन में यही सत्य भाव है तो। तब रैदास के मन के संकोचभाव उत्पन्न हो गया। फिर भी उन्होंने शालग्राम को सिंहासन पर लाकर विराजमान कर दिया ।।12।।

जौ तुम साँचे त्रिभुवनराई। तौ [24] जन की गोद बैठिज्यौ आई ।।
[25]बाँभण कहै आहि [25] प्रभु मेरे। अहो ब्राह्मन [26] देव हम तेरे ।।13।।

रैदास ने प्रार्थना की, हे प्रभो! यदि आप सच्चे त्रिभुवनपति हैं तो मुझ भक्त की गोद में आकर विराजमान हो जाना। ब्राह्मण कहने लगे, परमात्मा हमारा है। अहो देव! हम ब्राह्मण तेरे अपने हैं ।।13।।

करै बेद धुनि दीरघ बानी। तिनकी केसौ नैक न मानी ।।
गाइत्री सुमिरै चित लाई। और धरम सब किया सहाई ।।14।।

ब्राह्मण ऊँचे स्वर मे वेदध्वनि करने लगे, किन्तु केशव ने उनकी तनिक भी नहीं सुनी। गायत्री–मंत्र का जाप मन को एकाग्र करके के लिए करने लगे। अन्यान्य सभी धर्मों को अपना सहायक बनाया कि यदि हमने आपका अनुष्ठान पूर्ण श्रद्धा–भक्ति से किया हो तो तुम हमारी इस समय सहायता करना ।।14।।

इत रैदासि एक पद लीनौ। सब दिन गयौ भोग नहिं दीनौ ।।
साढा तीनि पहर गए बीती। ना काहू की हारि न जीती ।।15।।

इधर रैदास ने एक पद को गाना प्रारम्भ किया, किन्तु भोग की पंक्ति का गायन नहीं किया। साढ़े तीन प्रहर तक दोनों ओर रिझाने का काम होता रहा, किन्तु भगवान् रीझे नहीं। न किसी की हार हुई न किसी की जीत हुई ।।15।।

दे पद भोग रह्यौ रैदासू। प्रेम उमगि जल ढारे आसू ।।
औसि[27] करनी हरि देखी जबही [27]। सालिगराम गोदि गए तबही ।।16।।

अन्ततः रैदास ने पद के भोग की पंक्ति का गायन किया। उसके हृदय से प्रेम उमड़ने लगा। आँखों से अश्रुपात होने लगा। रैदास की जब हरि ने उक्त प्रकार की करनी देखी, तब वह रैदास की गोदी में आकर विराजमान हो गए ।।16।।

जन रैदास रह्यौ उर लाई। राजा परिजा कै मनि भाई ।।
[28]जै जै कार [28] करै सब कोई। बाँभण हारि चले मुख गोई ।।17।।

रैदास ने शालग्राम को हृदय से लगा लिया। राजा और प्रजा के मन में, रैदास की सचाई और भक्ति भा गई। सभी जय–जयकार करने लगे। ब्राह्मण हारकर मुँह छिपाकर वहाँ से चले गए ।।17।।

मुह न दिखावै [29]घूघट जाई [29]। मानौ [30] षटमास तेजरो आई ।।
जीत्यौ जन रैदास निगरवी। विप्र भये विंजन की दरवी ।।18।।

जिस–प्रकार घूँघट के कारण मुँह नहीं दिखता, ऐसे ही ब्राह्मण मुँह न दिखाते हुए व उदास हुए ऐसे जाने लगे जैसे उनको छमाही ज्वर ने आ घेरा हो। निरभिमानी रैदास जीत गया। ब्राह्मण व्यंजनों में चम्मच जैसे हो गये ।।18।।

जुग जुग जन थापे भगवाना। भगति प्रताप अनन्त बखाना ।।19।।

युग–युग में भगवान् ने भक्तों की प्रतिष्ठा की स्थापना की है। भक्ति का प्रताप अनन्त है, ऐसा वर्णन मिलता है ।।19।।

दास अनन्त भगति करौ, जाति पाँति कुल खोइ।
ऊच नीच हरि ना गिनै, भगति कियाँ बसि होइ ।।20।।6।।85।।

अनन्तदास कहता है– जाति–पाँति खो–कर भगवान् की भक्ति करो। भगवान् ऊँच–नीच को नहीं गिनता। वह तो भक्ति करने से वशवर्ती हो जाता है ।।20।।5।।

7. (6) षष्ठ बिसराम

दुबे [1] तिवाड़ी चौबे आयै। ब्यास अचारिज पाठिक धायै ।।
बाला बूढा सबै सकेला। करैहि बाद रैदास अकेला [2] ।।1।।

अकेले रैदास से वाद–विवाद करने को दुबे, तिवाड़ी, चौबे, व्यास, आचार्य, पाठक, अवंटक (उपनाम) धारी ब्राह्मण व बालक–वृद्ध सभी आये ।।1।।

बैठो जहाँ बघेलो राई। तिनकै राजनीति चलि आई ।।
सगरौ लोग [3] तमासै आयौ। दान दियाँ बिनि कौतिक पायौ ।।2।।[4]

वहाँ बघेला राजा जिसका राज व राजनीति पहले से ही चलती आ रही थी, वहाँ बैठा था। सारी जनता इस कौतुक–वादविवाद को देखने आई। उसे यह तमासा बिना किसी दान–दक्षिणा के दिये ही देखने को मिल रहा था ।।2।।

भोमियाँ लोग पाँच[5] मिलि बरजै। संक न मानै बाँभण[6] गरजै ।।
तब रैदास मही[7] सौ आयौ। राजा पिरजा माथौ[8] नायौ[8] ।।3।।

पंचभोमियों ने ब्राह्मणों को वाद–विवाद न करने को कहा, किन्तु वे माने नहीं, उल्टे अपनी बात जोर–जोर से कहते रहे। इसके उपरान्त रैदास अन्दर से निकलकर आये। राजा व प्रजा ने उनको प्रणाम किया ।।3।।

[9]बैठौ भोमि दुलीचौ डारी। मानौ चन्द्रमा करी उजियारी [9] ।।
आसि पासि तारागण सौहैं। भजन प्रताप बापरौ को है ।।4।।

गलीचा बिछाकर रैदास बैठ गए। वे ऐसे लग रहे थे मानो स्याह अँधेरी रात में चन्द्रमा निकल आया हो। रैदास के आस–पास संत रूपी तारागण शोभायमान थे। यह सब भजन का प्रताप है। जिसके पास भजन का बल हो वह बपुरा (दीन–हीन– गरीब–नीच) कैसे हो सकता है ।।4।।

निरमल [10] बचन कहै रैदासा। कौण चूक ते हम [11] ही त्रासा ।। [10]
बाँभण बोलै सुणि रे सुद्रा। तै क्यौ [12]धरम हमारा निंदा [12] ।।5।।

रैदास ने निर्मल वचन कहे कि हे ब्राह्मणो! मेरी ऐसी कौन–सी चूक है, जिसके कारण मुझे त्रास दी जा रही है। ब्राह्मण बोले– हे शुद्र! सुन, तूने हमारे धर्म की निंदा क्यों की है? ।।5।।

[13]हम गुर पूजि आहि सब केरा [13]। लोग बचन मानत है तेरा ।।

तू किनि मानै बात [14] हमारी। तोहि पाप लागत है भारी ।।6।।

हम सभी के गुरु और पूज्य हैं, फिर भी जनता हमारी बात न मानकर तेरी बात मानती है। तू हमारी बात क्यों नहीं मानता। हमारी बात न मानने के कारण तुझको बहुत पाप लगता है ।।6।।

सालिगराम हि लावै हाथ। तब कंपत है श्रीजगनाथ ।।
जल असनान करावै तबही। सूरापान ढारियो जबही ।।7।।

जब तू शालग्राम के हाथ लगाता है, तब जगत का नाथ काँप उठता है। जब तू शालग्राम को जल से स्नान कराता है तब ऐसा मालूम होता है जैसे तूने उस पर सुरा को ढोला हो ।। 7।।

तुरसी चन्दन अरपो फूला। ताकौ दोष थाप [15] समतूला ।।
बाल भोग ते [16] ढारै आसू। राजभोग गऊ [17] कौ[18] मासू [18] ।।8।।

जब तू तुलसी, चन्दन और फूल अर्पण करता है, तब उसका दोष थप्पड़ मारने के बराबर का उत्पन्न होता है। जब बाल–भोग लगाता है तो वह आँसू ढरकाने व राजभोग गौ–माँस के बराबर हो जाता है ।।8।।

धूप दीप आरति कौ [19] भाऊ। तातै भलौ न मानैं काऊ [19] ।।
[20]स्रुति सुमरत की राखै रीती। साधुजन कै नाही [21] हारि न जीती ।।9।। [20]

धूप,दीप और आरती की प्रक्रिया जब तू करता है, तब तू मान कि उससे किसी का भी भला नहीं होता है। श्रुति, स्मृति की मर्यादा का पालन करना चाहिये। साधु के लिये हार पराजय नहीं है; जीत जय नहीं है ।।9।।

अैसौ धरम कहा लै करिहौ। जाते नरककुड़ी मै परिहौ ।।
धरम[22] तुम्हारौ करिये येहू। सब काहू कौं भोजन देहू ।।10।।

ऐसा धर्म धारण करने का क्या लाभ, जिसके कारण नरक–कुण्ड में जाकर रहना पड़े। वास्तव में तुमको तुम्हारा धर्म ही धारण करना चाहिये। तुम्हारा धर्म है, सब किसी को भोजन कराना ।।10।।

हरि सुमिरण हिरदै जिनि टारौ। कलपत पाँचौ इंन्द्री मारौ ।।
पर उपवाद करौ जिनि कोई। हरिखि हरिखि हरि के गुन गाई ।।11।।

हरि स्मरण को कभी भी हृदय में से नहीं निकालना चाहिये। चंचल हुई पाँचों इंद्रियों का दमन करना चाहिये। दूसरों की निन्दा कभी भी मत करो। प्रसन्न हो–होकर हरि के गुणों को गाना चाहिये।।11।।

इतना बचन हमारा मानौ। जो तुम भलौ आपनौ जानौ ।।
तब रैदास कहै समझाई। तुमते भगति दूरि है भाई ।।12।।

हमारी इतनी सलाह तुमको मान लेनी चाहिये, यदि तुम अपना भला चाहते हो तो। ब्राह्मणों के उक्त वचन सुनकर रैदास ने समझाते हुए कहा– हे ब्राह्मण भाइयो! हरि की भक्ति तुमसे बहुत दूर है, अर्थात् भगवद्भक्ति के बारे में तुमको कुछ भी पता नहीं है।।12।।

जूठा फल भीलनी खुवाए। प्रीति जानि हरि के मनि भाए।।
[24]ताते पाप हि हू न डराऊ। [25]भयौ सु [26] पवित्र नारायण नाऊ [25] ।।13।। [24]

शबरी ने श्रीराम को जूठे बेर खिलाए। भगवान् ने आचार का विचार न करके उसकी प्रीति देखी और उनको आरोगा, स्वीकार किये। अतः आपके द्वारा गिनाये गये पापों से मैं नहीं डरता, क्योंकि नारायण–नाम–स्मरण के द्वारा मैं पवित्र हो चुका हूँ ।।13।।

बाँभण बौलै सुणि रैदासा। तू जिनि करै मुकति की आसा ।।
[27]तेता सुद्र तपस्या करई। ताकै पातिग बाँभण मरई [27]।।14।।

ब्राह्मण रैदास से कहने लगे– हे रैदास! सुन, गलतफहमी में मत रह। तुझे आवागमन के चक्र से मुक्त होने की आशा नहीं करनी चाहिये। जो भी शूद्र तपस्या करते हैं; उनके पापों के कारण ब्राह्मणों की मौत होती है और तपस्या करने वाले शूद्र को ब्रह्म–हत्या का पाप लगता है ।।14।।

[28]सो रघुनाथ मारियौ बाणा। बाँभण जियौ सुद्र गयौ प्राणा [28] ।।
[29]तप तीरथ की करौं न आसा। [30]हम हरि सरन कहै रैदासा [30]।।15।।[29]

श्रीरामजी के युग में शम्बूक नामक शूद्र ने तपस्या की थी, जिसके कारण ब्राह्मण की मौत हुई थी। श्रीराम ने ब्राह्मणों द्वारा फरियाद करने पर शूद्र को बाण के द्वारा मार गिराया था। परिणामस्वरूप ब्राह्मण जीवित हो गया था और शूद्र मर गया था। इस पर रैदास ने कहा– न मैं तपस्या और न तीर्थ ही करने का अभिलाषी हूँ। मैं तो श्रीहरि की शरण में हूँ ।।15।।

ऊँच नीच की संका नाहीं। हरि ग्वालनि की झूठनि खाहीं ।।
ता झूठनि कौं ब्रह्मा आयौ। पाई नहीं कृष्ण भरमायौ ।।16।।

हरि ऊँच–नीच का विचार नहीं करता। वह ग्वालों की जूठन तक खाने में शंका नहीं करता। ग्वालों की उस जूठन को खाने के लिये ब्रह्मा आया, किन्तु उसे वह जूठन नहीं मिल सकी, क्योंकि श्रीकृष्ण ने उसे भ्रमित कर दिया था ।।16।।

[31]संतनि को ऐसो परसादू। हरी क्रिपा तैं करौं सँवादू [31] ।।
बेद भागवत बोलै साखी। दास अनंत कथा यौ भाखी ।।17।।

रैदास ने कहा– संतों की ऐसी ही कृपा होती है। श्रीहरि की कृपा से मैंने आपसे संवाद किया है। मेरी बातों की साक्षी वेद, भागवत आदि भरते हैं। अनंतदास ने ब्राह्मण–रैदास–संवाद की कथा का वर्णन किया है ।।17।।

भगति पियारी राम कौं, मरम न जानैं कोइ।
जिनि जाने ते ऊबर्या, बरन बिवरजत होइ ।।18।।5।।103।।

श्रीराम को भक्ति प्यारी है, किन्तु इस रहस्य को कोई जानता नहीं है। जिन्होंने इसके रहस्य को जान लिया, वे उद्धार को प्राप्त हो गये। साथ ही वे वर्णगत उच्चता व नीचता के भेद से भी ऊपर उठ गये ।।18।।6।।

7.(7) सप्तम बिसराम

बरस पाँच कौ [1] अन्तर [2]भाई। बहोरि कथा चितौरे गाई[2] ।।
झाली रानी मति की रूरी [3]। दान धरम सत संजमि[4] पूरी ।।1।।

इस–प्रकार पाँच वर्ष का समय और व्यतीत हो गया। इसके अनन्तर एक घटना चित्तौड़ से सम्बद्ध और घटित हुई, जिसका वर्णन अब कर रहा हूँ। उत्तम बुद्धि वाली वहाँ की रानी जिसका नाम झाली था, थी। वह दान, धर्म, सत् और संयम में पूरी थी।।1।।

भोग सकल की जत है जाकै। माला मंत्र नहीं गुर ताकै ।।
सहजै उपजि भई मन इछ्या। हरषवंत ह्वै [5] चाहै दछ्या ।।2।।

यद्यपि समस्त भोगों के प्रति स्पृहा को जीत लिया था उसने, किन्तु अभी तक उसने गुरु बनाकर उनसे माला व मंत्र नहीं लिया था। सहज ही में उसके आनन्दित मन में इच्छा हुई कि मुझे दीक्षा लेनी चाहिए ।।2।।

भगत एक बूझ्यौ अकुलाई [6]। कापै दछ्या लीजै जाई ।।
[7]तब ते भगत कहै उपदेसू। मैं मन मैं ढूढ़्या चहु देसू [7] ।।3।।

व्यग्र–चित्त हो एक भक्त से पूछा कि मुझे किससे दीक्षा लेनी चाहिए। तब उस भक्त ने कहा कि मैंने मेरे मन में चारों दिशाओं के देशों को ढूँढा है ।।3।।

बहौत भगत कहा कहौ बखानी। [8]ए दोउ [8] भगत बताऊ रानी ।।
कासी नगर बेगि चलि जाहू। [9]तुम मेरे बचन हि पतियावहू ।।4।।

उनमें अनेक भक्त हैं। उनका कहाँ तक वर्णन करूँ, किन्तु हे रानी! अग्रांकित दो भक्तों के बारे में बताता हूँ। तुम मेरे वचनों का विश्वास करके तुरन्त काशी नगर चली जाओ ।।4।।

जाति जुलाहौ नाम कबीर। [10]मानौ सुखदेव कौ आहि सरीर [10] ।।
निरगुन ब्रह्म लियौ पहिचानी। तापै [11] दक्ष्या लीजै रानी ।।5।।

एक का नाम कबीर है। उसकी जाति जुलाहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो शुकदेव ही शरीर धारण करके प्रत्यक्ष हो रहे हों। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को जान लिया है। अतः हे रानी! आप उनसे दीक्षा लो ।।5।।

और एक रैदास चमारा। जानौ [12] नारद लियौ औतारा ।।
सुद्र [13]कहौ तो [13] आवै लाजा। दरसन कारन कलपै राजा ।।6।।

दूसरे का नाम रैदास है, जिसकी जाति चर्मकार है। मानो नारद ने ही अवतार धारण किया हो। उनकी महानता को जानकर उनको शूद्र कहने तक में लज्जा का अनुभव होता है। वे इतने बड़े भगवद्भक्त हैं कि उनके दर्शनों को पाने के लिये राजा तक भी लालायित रहते हैं ।।6।।

पंडित मरम न जानै कोई। [14]बिस्न कौ [14] अंस औतर्‌या दोई ।।
[15]झाली कै मनि आनँद [15] भइया। बानारसी कौ डेरा दइया ।।7।।

पंडित–ब्राह्मण उनके असली मर्म को नहीं जानते। वस्तुतः विष्णु के अंश ही रैदास व कबीर के रूप में अवतरित हुए हैं। इतना सुनने पर झाली के मन में अतीव आनंद हुआ। उसने वाराणसी की ओर प्रस्थान किया ।।7।।

बाँभन संगि चले मनि जानी। हम पै दक्ष्या लेहै रानी ।।
[17]झाली बरजै [16] बरबट जाही[17]। एक दक्ष्या अर गंगा न्हाही ।।8।।

झाली के साथ ब्राह्मण भी गये। उन्होंने मन में सोचा कि रानी हमसे दीक्षा लेगी। झाली ने उनसे साथ में जाने के लिये मना किया, किन्तु वे जबरदस्ती जाते रहे, क्योंकि उनके मन में विचार था कि साथ में जाने से दो लाभ होंगे; एक गंगास्नान का लाभ मिलेगा, दूसरा झाली हमसे ही दीक्षा लेगी ।।8।।

[18]दिन्न बीस मैं कासी गइया[19]। झालि जना दोइ गुपत पठइया[18] ।।
[20]जाइ कबीरे देहु जनाई। झाली सिष होण कौं आई [20] ।।9।।

बीस दिन में झाली का काफिला बनारस पहुँचा। पहुँचने के पूर्व झाली ने दो गुप्तचरों को बनारस भेजा। गुप्तचरों से कहा– जाकर कबीर को समाचार दो कि चित्तौड़ की झाली रानी शिष्या बनने को आ रही है ।।9।।

तब कबीर मन उपजी लाजा। मेरे कामि न रानी राजा ।।
फाटी कामरि ओढी जबही। झाली आनि [21] पहूँची तबही ।।10।।

समाचार सुनकर कबीर के मन में लज्जा का भाव आ गया कि कहाँ झाली रानी और कहाँ मैं फकीर। कबीर ने कहा– मुझे न राजा से कोई काम है और न रानी से कोई प्रयोजन है। झाली जब कबीर के आश्रम में आकर पहुँची, तब कबीर ने जान–बूझकर फटा कम्बल ओढ़ लिया ।।10।।

देख्यौ सबै त्रिगुन बैरागी। जै बैठे हैं माया त्यागी ।।
देखी परनकुटी साँथरिया। तिनि ऊपरि फाटी काँथरिया ।।11।।

कबीर–आश्रम में झाली ने जिनको भी देखा, वे सभी निर्गुण और वैरागी थे। सभी माया त्यागी थे। वहाँ घास–फूस की कुटिया और फटे–पुराने बिछोने थे। शरीर के ऊपर फटा कंथा था ।।11।।

[22]पूजा [23]अरचा देव न लेवा। सहजि समाधि लगावै सेवा [22] ।।
[24]थारी गडुवा दरिब न चीरू। दूजा दिन को रहै न नीरू[24] ।।12।।

कबीर–आश्रम में न पूजा–अर्चा होती देखी और न वहाँ कोई देव–प्रतिमा ही देखी। वहाँ कोई दान लेने वाला भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। वहाँ सभी सहज–समाधि लगाने वाले थे, यही उनकी देव–पूजा थी। वहाँ थाली, लोटा, द्रव्य, वस्त्र कुछ भी नहीं था। इतना ही नहीं, वहाँ दूसरे दिन के लिये जल का संग्रह भी नहीं था ।।12।।

[25]सादि सौंज जब देखी रानी। [26]फिरी पिछौड़ी मनि [26] पछितानी [25] ।।
चलौ जहा रैदास चमारू। [27]उनहूँ कौ देखौ ब्यौहारू ।।13।।

कबीर–आश्रम में सर्वथा साधारण सामग्री को जब झाली ने देखा तो वह मन में काफी पछताई और तत्काल वहाँ से चल पड़ी। उसने कहा– कबीर का व्यवहार तो देख लिया। चलो, अब रैदास चर्मकार का भी व्यवहार देख लें ।।13।।

पहुँचे तहाँ न लागी [28] बारा। ऊचे देखे पवलि पगारा ।।
देखि दिवालौ भयौ अनंदू। तहाँ सदा बैठे गोबिन्दू ।।14।।

रैदास–आश्रम में पहुँचने में देरी नहीं लगी। वहाँ उसने पौली का ऊँचा दरवाजा और बड़ी–बड़ी सीढ़ियाँ देखीं। रैदास के मंदिर जहाँ सदैव गोविन्द विराजमान रहते हैं, उनको देखकर झाली का मन आनंदित हो उठा ।।14।।

ऊपरि साठिक चँदवा तानी। अैसा सुख ज[29] देख्या रानी ।।
सोनै भंजन [30]कनक कपाटा[30]। बहोत सुगंध भरे है माटा ।।15।।

गोविन्द के ऊपर साठ चंदोवे तने हुए थे। रानी ने ऐसा सुखैश्वर्य वहाँ देखा। सोने के बर्तन, कनक के कपाट और नाना सुगंधों से भरे माटों को भी उसने वहाँ देखा ।।15।।

झालरि झीझि पखावज ताला। बरन बरन फूलन की माला ।।
[31]तब देख्यौ [31] स्वामी रैदासा। बहोतक महँत [32]दिसत है [32] पासा ।।16।।

झालर, झाँझ, पखावज, ताल आदि की ध्वनि, नाना रंगों के फूलों की मालाएँ भी झाली ने वहाँ देखी। इतना देखने के उपरान्त झाली ने रैदास को देखा, जिसके आस–पास अनेक संत–महंतों को भी देखा ।।16।।

[33]ऊचौ कपरौ[33] सुंदर गाता। मुख तैं निकसै सीतल बाता ।।
[34]गरब गयौ रानी कौ जबही। किये डँडौत भगतन कौं तबही[34] ।।17।।

रैदास का शरीर सुंदर था। उन्होंने ऊँची किस्म के कपड़े पहने हुए थे। उनके मुख से शीतल बातें निकल रही थीं। रैदास को देखते ही रानी का गर्व–गंजन हो गया। उसने तत्काल भक्त रैदास को दंडवत प्रणाम किया ।।17।।

चरन गहे रैदास के, दीनौ माथै हाथ।
[35]रानी कौ मन मानियौ, लियौ भगतन कौं साथ [35] ।।18।।7।।121।।

झाली ने रैदास के चरणों में माथा रखा। रैदास ने आशीर्वाद दिया, माथे पर हाथ

रखा। रानी ने मन में रैदास को गुरु बनाने का संकल्प कर लिया। उसने भक्त रैदास का साथ स्वीकार कर लिया, सत्संग करना प्रारंभ कर दिया ।।18।।7।।

7. (8) अष्टम बिसराम

[1]पहिलै [2] मरम न जानै कोई। अैसी दछ्या लीनी गोई[1] ।।
[2]बहोत दरब ले आई झाली। सो सब खरच्यौ घर कौं चाली[2] ।।1।।[2]

झाली ने रैदास से इस–प्रकार गुप्त दीक्षा ली कि उसके बारे में कोई जान तक नहीं सका। झाली अपने साथ बहुत सा धन लाई थी। उसने उस सारे धन को खर्च कर डाला और घर की ओर प्रस्थान किया ।।1।।

कोस पाँच तब[3] छोड़्यौ नगरू। [4]बहुर्‌यौ बाँभण माण्ड्यौ झगरू ।।
[5]सुनी पिरोहथि लीनी माला। बाँभण [6] कोप भये हैं[7] काला [5] ।।2।।

बनारस से जब झाली पाँच कोस दूर तक चली गई, तब ब्राह्मणों ने झाली से झगड़ा करना प्रारम्भ कर दिया। पुरोहित ने सुना कि झाली ने रैदास से कंठी–माला ले ली है, तब सारे ब्राह्मण काल के समान क्रोध से भर गये ।।2।।

अगनि रूप मनि उपजी रीसा। पाथर लै लै फोरै सीसा ।।
[9]गही बाग रानी [7]पलटाई। [8]बहुर्‌यूँ कासी पहुँचे [8] आई[9] ।।3।।

उन अग्नि रूप हुए ब्राह्मणों के मन में भयंकर क्रोध उत्पन्न हो गया। पत्थर ले–लेकर माथा फोड़ने लगे। रथ के घोड़ों की बाग–बल्गा ब्राह्मणों ने हाथ में पकड़ ली और उसे काशी की ओर लोटा लाये। इस–प्रकार सभी पुनः काशी आ पहुँचे ।।3।।

बाँभण कोपे देहि सरापू। निरफल होइजौ तेरौ जापू ।।
केऊ [10] पतरा भै सौ मारै। केऊ [11] तोरि जनेऊ डारै ।।4।।

कुपित हुए ब्राह्मण झाली को दुराशीष देने लगे। कहने लगे, तेरा जाप निष्फल हो जायेगा। कोई–कोई ग्रह–गोचरों का भय दिखा–दिखाकर मारने लगे। कोई–कोई यज्ञोपवीत को तोड़ने लगे ।।4।।

[12]केऊ बैठा घाम सुखाही। केऊ धरती परि परि जाहीं[12] ।।
[13]केउ रानी कौ लोही छाँटै। केस उपारै पहुँचा काटै [13] ।।5।।

कोई कड़ी धूप में बैठने लगे। कोई–कोई बार–बार भूमि पर गिरने लगे। कोई

रानी के ऊपर रुधिर के छींटे मारने लगे। कोई बाल उखाड़ने लगे तो कोई पहुँचों को काटने लगे ।।5।।

[14]केऊ दाँत जीभ सरै मारै। देहि आपनी कपरा फारै[14] ।।
[15]केऊ विष की गाँठि ज बाही। केऊ दोरि दिवान हि जाही [15] ।।6।।

कोई दाँतों के बीच जिह्वा को भींचकर काटने लगे, जबकि कोई अपने शरीर के कपड़े फाड़ने लगे। कोई जहर की गाँठ ही फेंकने लगे तो कोई दौड़कर राजा के दरबार में जाने लगे ।।6।।

[16]केऊ पेट कटारी मारहि। केऊ वस्त्र पावक महि जारहि ।।
केऊ लोहू आहुति देही। केऊ प्यासे नीर न लेही [16] ।।7।।

कोई पेट में कटारी मारने लगे। कोई अग्नि में डालकर वस्त्र जलाने लगे। कोई रुधिर की आहुति देने लगे तो कोई जल न पीकर प्यासे ही रहने लगे ।।7।।

मरन [17]कहै चमरा की पौरी। सुनत बघेलौ आयो दौरी ।।
मकनादे दै आई रानी। तब झाली मन मै पछितानी ।।8।।

सभी ब्राह्मण चर्मकार की पौली पर मरने की कहने लगे। ब्रह्म–हत्या का पाप लगेगा, यह सुनकर तत्काल बघेला राजा दौड़कर आया। मकनादे देवी रानी भी आई। तब झाली मन में काफी पछताई ।।8।।

[18]अबकै संकट केसौ [18] राखै। बार बार झाली यौं भाखै [18] ।।
भलौ करंती बुरौ ज होई। तौ करता सौ बस नहिं कोई ।।9।।

बार–बार झाली कहने लगी– अबकी बार के संकट से केशव कैसे भी करके मुझे उबार दे। मैं भला करने जा रही थी किन्तु हो बुरा रहा है। वास्तव में कर्त्ता की गति के आगे किसी का बस नहीं चलता ।।9।।

[19]सगरौ नगर तमासै आयौ [19]। पहिलै परचौ कहि समझायौ ।।
[20]हमरै मरै सरै नहिं [20] काजा। सुनै निहाइत बरजै राजा ।।10।।

नगर के सभी नागरिक कौतुक देखने को दौड़े चले आये। सभी पहले वाले चमत्कार (घटना) की चर्चा करने लगे। मारने अथवा मरने से कार्य सिद्ध नहीं होता, इस–प्रकार की पक्की बातें कह–कहकर राजा, ब्राह्मणों को समझाने (वर्जने लगा) मरने से रोकने लगा ।।10।।

[21]निज हरि भगत सैन है नाऊ। बाँधौगढ़ ते सो चलि आऊ [21] ।।
ताकौ कह्यौ [22] न बाँभण मानै। करै मचलाई मरबौ ठानै [23] ।।11।।

भगवान् का निज–भक्त जिसका नाम सैन था, वह भी बाँघवगढ से आया हुआ था। उसने भी ब्राह्मणों को समझाने का पूरा प्रयत्न किया, किन्तु ब्राह्मणों ने उसकी बात भी नहीं मानी। वे बराबर मचलते रहे और मरने का हठ दोहराते रहे ।।11।।

भगत एक रैदासि पठायौ। सो कबीर कौं बूझण धायौ ।।
बाँभण पौरि हमारी मरिहै। देहु सीख हम कैसी करिहै ।।12।।

रैदास ने अपना एक विश्वस्त भक्त कबीर के पास भेजा कि इस विकट परिस्थिति में क्या करना चाहिये। ब्राह्मण हमारे दरवाजे पर मरने को उतारू हो रहे हैं। कृपया हमें सलाह दें कि हमें क्या करना चाहिये ।।12।।

कहै कबीर न मानै सीखा। जिनि खाई राजन की भीखा ।।
[24]ब्रह्मा सिखवै तोउ न मानै। हमहि तुमहि कमीन करि जानै [24] ।।13।।

कबीर ने कहा– ब्राह्मण तुम्हारी सलाह मानने वाले नहीं हैं, क्योंकि वे राजाओं की भिक्षा का अन्न खाते हैं। यदि उनको चतुर्मुखी ब्रह्मा भी शिक्षा देने को आये तब भी वे उसकी शिक्षा मानने वाले नहीं हैं। हमको व तुमको वे तुच्छ मानते हैं ।।13।।

सालिगरामहि सोपौं न्याऊ। [25]जो तुम आपणि गैल छिड़ाऊ।।[25]
जुगि जुगि जन की बोलै साखी। [26]जिनि डरपै हरि लेहै [26] राखी ।।14।।

यदि तुम अपना पीछा छुड़ाना चाहते हो तो निर्णय शालग्राम पर छोड़ दो। भगवान् युग–युगान्तरों से भक्तों की साक्षी भरते आये हैं, सहायता करते आये हैं। अतः डरो बिल्कुल भी मत। श्रीहरि रक्षा करेंगे ।।14।।

ऐसी सीख कबीर पठाई। सो रैदास बहोत मनि भाई।।
बाँभण हट करै अपघाता। ग्यान ध्यान की सुनैं न बाता ।।15।।

उक्त प्रकार की सलाह कबीर ने उस भक्त के द्वारा रैदास तक पहुँचवाई जो रैदास को अत्यधिक पसंद आई। ब्राह्मण अपघात करने की हठ कर रहे हैं। ज्ञान–ध्यान की बात सुनने को तैयार नहीं हैं ।।15।।

तब रैदास कहै समझाई। केसौ [27] कहै स मानौं भाई ।।
सालिगराम [28]रैदास ज [28] आनी। ऐसी मति सबकै मनि मानी ।।16।।

तब रैदास ने ब्राह्मणों से विनम्रतायुक्त शब्दों में कहा कि जैसा केशव कहें, हमें वही करना चाहिये। रैदास शालग्राम भगवान् के सिंहासन को निर्णय करने के लिये ले आये। सभी को रैदास की तजबीज पसंद आ गई ।।16।।

झगरौ सारौ मिटि गयौ, सुमिरण लागे संत ।।
सोई साँचौ [29] जाणिये, जाहि कहै [29] भगवंत ।।17।।8।।138।।

केशव को निर्णायक बनाने की तजबीज से सारा झगड़ा मिट गया। संत भगवद्भजन करने में लग गये। निश्चित हुआ कि जिसको शालग्राम भगवान् सच्चा कहेंगे, उसी को सच्चा माना जायेगा ।।17।। 8। 138।।

7. (9) नवम बिसराम

[1]जैसौ परचौ पहिलै भयौ। तैसौ बाँभण बहुर्यौ ठयौ [1] ।।
बेद मंत्र गायत्री जापू। पहर सवा दोय[2] कियौ बिलापू ।।1।।

जैसी तकनीक ब्राह्मणों ने पहले परचे के समय काम ली, वैसी ही प्रक्रिया इस बार भी उन्होंने अपनाई। उन्होंने सवा दो प्रहर तक वेदमंत्र–घोष व गायत्री का जाप किया ।।1।।

इत हरि भगत सैनि रैदासू। हरि गुन गावै ढारै आसू ।।
चढ़े विवाँन देवता आये। गण गंध्रप सौ अवरै छाये ।।2।।

इधर हरि–भक्त सैन व रैदास हरि के गुणों का गद्गद् हृदय से दीन–भाव युक्त आँखों से अश्रुपात करते हुए गायन करने लगे। आकाश में अपने–अपने विमानों में बैठकर देवतागण, गंधर्व और अन्यान्य भी आकर छा गये ।।2।।

[3]बोले सालिगराम बिचारी। सबै सुनत है नर अरु नारी [3] ।।
[4]साचौ साचौ जन रैदासा। झूठा [5]बाँभण देहि सरापा [5] ।।3।। [4]

विचारकर, भक्ति–भाव देखकर शालग्राम भगवान् ने आकाशवाणी की जिसको सभी नर और नारी सुन रहे थे। आकाशवाणी ने कहा– 'रैदास सच्चा भक्त है', 'रैदास सच्चा भक्त है'; श्राप देने को उतारू ब्राह्मण झूठे हैं। उनका हठ झूठा है ।।3।।

[6]तीनि बारि [7]बोले है [7] केसौ। तब सबही कौं[8] गयौ अँदेसौ [6] ।।
जै जै कार भयौ जुग माहीं। [9]कौतिगहार सबै [9] घर माहीं ।।4।।

केशव ने उक्त बात तीन बार कही। सुनकर सभी का संदेह नष्ट हो गया। सारे जगत् में रैदास का जय–जयकार होने लगा। तमासा देखने आये सभी नगरवासी अपने–अपने घरों को चले गये ।।4।।

जुग जुग जीति भगत की भइया [10]। फूल [11] बरसि गण गंध्रप गइया [12] ।।
[13]बाँभण चले जुवा सौ हारी। [14]ऊचा कुल कौ आई गारी [14] ।।5।।

युग–युगों में जीत हमेशा भक्तों की ही हुई है। गण–गंधर्वादि पुष्पवृष्टि करके अपने–अपने स्थानों को चले गये। ब्राह्मण मुँह छुपाये इस–प्रकार जाने लगे, जैसे जुवारी हार–कर जाता है। वस्तुतः यह हार उनके उच्च–कुलाभिमान को गाली थी ।।5।।

[15]चले खिसाना दूजै हारी। जानौ माँ बहन कौ हाथ पसारी [15] ।।
एकादसी इह देव उठानी। ता दिन दछ्या लीनी रानी ।।6।।
पून्यौ कै दिन झगरौ भइया। झाली देस आपनै गइया ।।
साँझी बार सैनि रैदासू। चलि आए नगर[16] कै पासू [17] ।।7।।

दूसरी बार भी हार–कर शर्मिंदगी महसूस करते हुए ब्राह्मण वहाँ से ऐसे जाने लगे, जैसे उनकी माँ–बहिनों को छीनने को किसी ने झपट्टा मारा हो। देव उठनी एकादशी के दिन झाली ने दीक्षा ली। पूर्णिमा के दिन झगड़ा हुआ। झगड़ा निर्णीत हो जाने पर झाली अपने देश को चली गई। संध्या समय में सैन व रैदास नगर के कबीर–आश्रम में आये ।।6–7।।

आदर करि कबीर बैठारे। समाचार सब सुनै तुम्हारे ।।
करत परसपर अस्तुति भाऊ। और भगत सब बन्दै पाऊ ।।8।।

कबीर ने दोनों को आदर सहित बैठाया। कहा– मैंने वे सारे समाचार सुन लिये जो आज घटी घटना से सम्बद्ध थे। आपस में दोनों एक दूसरा एक–दूसरे की भाव सहित महिमा गाने लगे। अन्यान्य भक्तों ने पद–वन्दना की ।।8।।

साचौ हरि साचे हरिदासा। हरि सुमिरन सबके दुख नासा ।।
ता पीछे कीरतन कराही। निरभै भया [18]न काहु डराही [18] ।।9।।[19]

श्रीहरि सच्चा है। उसके दास सच्चे हैं। हरि का स्मरण सभी के दुःखों का दलन करता है। परस्पराभिवादनादि के अनन्तर कीर्तन करने लगे। सभी निर्भय हो गये। किसी से भी डरते नहीं थे। अर्थात् अब सबका डर समाप्त हो गया था। अतः सभी बेखटके कीर्तनादि करने लगे ।।9।।

अरध रातरी सुमरण जागे। सब बैरागी सोवण लागे ।।
तीन्यौ भगत [20]न पोढे [20] तबही। दियौ चतुरभुज दरसन जदिही ।।10।।

सभी अर्द्धरात्रि तक स्मरण करते हुए जागते रहे। तत्पश्चात् सभी वैरागी (साधु, भक्त) सोने लगे। तीनों भक्त कबीर, रैदास, सैन फिर भी नहीं पौढ़े। कुछ ही समय पश्चात् श्रीहरि ने चतुर्भुज रूप धारण करके दर्शन दिया ।।10।।

[21]उठि रैदासि परे हरि चरना। सेन कहै हू तुमरी सरना [21] ।।
कबीर दरसन बैठे पायौ। रूप चतुरभुज [22]ह्रिदै समायौ [22] ।।11।।

रैदास ने उठकर श्रीहरि के चरणों में प्रणाम किया। सैन ने कहा— हे परमात्मन्! मैं तुम्हारी शरण में हूँ। कबीर अपने आसन से न हिले, न डुले। उन्होंने श्रीहरि के दर्शन बैठे—बैठे ही किये, क्योंकि चतुर्भुज परमात्मा का रूप उनके हृदय में पहले से ही विद्यमान था ।।11।।

[24]कबीर कौ मन निरगुण राचा। और मता [23]सबही का काचा [23] ।। [24]
इतनै सुनि रैदास रिसानौं। निरगुण सरगुण [25]ऐकै मानौ [25] ।।12।।

कबीर का मन निर्गुण—निराकार परमात्मा में आसक्त था। उसने प्रणाम तक नहीं किया, क्योंकि उसके अनुसार निर्गुण—निराकार—मत से अतिरिक्त अन्यान्य सभी के मतवाद कच्चे हैं। रैदास ने जब कबीर का उक्त मत सुना, तब उनको भारी क्रोध आया। उन्होंने कहा— निर्गुण और सगुण दोनों एक हैं। एक ही मानना चाहिए ।।12।।

[26]सरगुण थापै सैनि रैदासा। कबीर कै निरगुण की आसा [26] ।।
[27]पहर सवा [27] लौं कथियौ ग्याना। टीकै रह्यौ [28] कबीर कौ ध्याना ।।13।।

विवाद होने पर सैन और रैदास सगुण का मंडन करने लगे जबकि कबीर अपनी प्रबल और अकाट्य युक्तियों से निर्गुण का मंडन करने लगे। सवा—प्रहर तक यह ज्ञान—चर्चा चलती रही। अंततः कबीर का मत स्वीकार्य हो गया ।।13।।

निरगुण कथत भयौ मन धीरू[29]। गुर समान करि थरप्यौ [30] कबीरू ।।
करै बंदना सैनि रैदासू। पहुचै अपनै मंदिर पासू [31] ।।14।।

निर्गुण का कथन करने से रैदास का मन स्थिर हो—गया। उन्होंने कबीर को गुरु के समान मान लिया। सैन और रैदास ने कबीर की वंदना की और वे अपने मंदिर में पहुँच गये ।।14।।

निरगुण सरगुण [32]एक बमेका [32]। जिनि को करौ आपणी टेका ।।
निरगुण ब्रह्म न हालै चालै। सुरगुण धरि [33] भगतनि प्रतिपालै ।।15।।

निर्गुण और सगुण दोनों एक हैं। कोई भी मात्र एक के प्रति ही निष्ठा रखकर दूसरे की निंदा मत करो। अपने ही मत का मंडन मत करो। निर्गुण ब्रह्म निष्क्रिय है। हलता– चलता नहीं है। वही निर्गुण ब्रह्म सगुण होकर भक्तों की प्रतिपालना करता है ।।15।।

सुरगुण कहिये माखन भाई। निरगुण तत्त लियौ [34] घ्रित ताई [34] ।।
तब निर्गुण ध्यान गह्यौ रैदासा। छुटि गए [35]आन धरम के [35] पासा ।।16।।

सगुण मक्खन है। निर्गुण तपा हुआ तत्त्व रूप घी है। इस–प्रकार का ज्ञान पाकर रैदास ने निर्गुण तत्त्व को अंगीकार कर लिया। अन्यान्य सभी धर्म के बंधन उनसे छूट गये।।16।।

कथा कीरतन [36]सुमिरण जागै [36]। अंतरजामी अंत्र जु [37] लागै [37] ।।
जिहि विधि सुखदेव [38] संकर सेसू। यौ कबीर दीनौं उपदेसू ।।17।।

अब कथा, कीर्तन, स्मरण आदि में लग गये। अन्तर्यामी श्रीहरि अंतर में विराजमान हो गये। जिस–प्रकार शुकदेव, शंकर, शेष आदि अहर्निश हृदयस्थ परमात्मा का भजन–ध्यान करते है। बाहरी मूर्ति आदि की सेवा पूजा नहीं करते। इस–प्रकार– हे रैदास! आप भी करो। इस–प्रकार का उपदेश कबीर ने रैदास को दिया ।।17।।

जब मन चढ़्यौ ऊपली पौरी[39]। तब नीचाँ कौं नजरि न हेरी ।।
ता पीछै ऐसी विधि ध्याऊ। फुनि रानी कै उपज्यौ भाऊ ।।18।।

अब रैदास का मन ऊपरी सीढ़ी पर चढ़ गया। सगुण रूपी निचली सीढ़ी को छोड़कर ऊपरी सीढ़ी रूपी निर्गुण में अनुरक्त हो गया। ऐसा होते ही अब उनकी दृष्टि नीचे की सीढ़ी की ओर जाना रुक गई, अर्थात् अब रैदास के द्वारा शालग्रामादिक की पूजा–अर्चा होनी रुक गई। इस घटना के पश्चात् रैदास अब इस–प्रकार ही ध्यान–धारणा करने लगे। उधर झाली के मन में पुनः एक नया भाव उत्पन्न हुआ ।।18।।

जै द्वारै आवै गुरदेवा। तौ नीकी विधि कीज्यौ सेवा ।।
जिनके द्वारै गुर न पधारै। ते [40] सब जनम अबिरथा हारै [40] ।।19।।

यदि गुरु महाराज मेरे घर पधारें तो मैं उनकी सेवा–सुश्रुषा भली प्रकार कर

सकती हूँ। जिनके घर गुरु–महाराज नहीं पधारते हैं, मानो वे अपना जन्म व्यर्थ ही गँवाते हैं ।।19।।

तब झाली भगतन कूँ बूझै। मेरै अैसि तुमहि कहा सूझै ।।
भगत कहै धंनि[41] यह भाऊ। जै तुम कहौ तौ हम लै आऊ ।।20।।

तब झाली ने भक्तों से पूछा कि मैं मेरे गुरु महाराज को बुलाना चाहती हूँ। बताओ, तुम्हारा क्या मंतव्य है? भक्त ने कहा– तुम्हारा यह भाव धन्यवाद के योग्य है। तुम आदेश करो तो मैं जाकर उन्हें ले आऊँ ।।20।।

झाली कहै बीनती कीजै। अपनी जानि र [42] दरसन दीजै ।।
ज्यौ माली सीचै बन बेली। अपनी रोपी जाय [43] न मेली ।।21।।

झाली ने कहा– मेरी ओर से गुरु–महाराज से विनती करना कि दासी को अपनी जानकर दर्शन देना। जिस–प्रकार अपने द्वारा रोपी हुई बेलि को माली सींचता है उसे काटता नहीं है, त्यागता नहीं है, ऐसे ही आप मेरे यहाँ का आतिथ्य स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करें।।21।।

अठार भार घन पुरवै आसा। मेटै स्वाति बूँद की[44] प्यासा ।।
ज्यौ माता बालक कौं पोखै। यौं सतगुर आतम संतोषै ।।22।।

बादल अठारा भार वनस्पति की आशाओं को पूर्ण करते हैं। स्वाति नक्षत्र में बरसकर सीप की प्यास को बुझाते हैं और जिस–प्रकार माता बालक का पोषण करती है, उसी–प्रकार सद्‌गुरुदेव शिष्यों का पोषण करते हैं। उद्धार होने का मार्ग बताते हैं ।।22।।

करी बीनती पाती [45] लिखई। मुखबानी भगतन कौ सिखई ।।
चले भगत तब [46] गहर न [46] लाई। कासी नगर पहूच्यौ जाई ।।23।।

झाली ने जबानी विनती तो भक्त को समझाकर कहलवाई ही, पत्र भी लिखवाया। भक्त ने जरा भी विलम्ब नहीं किया। वह तत्काल वहाँ से चल दिया और काशी जा पहुँचा।।23।।

किये प्रनाम मिले रैदासा। सन्तन के जुथ बैठे [47] पासा ।।
सबसौं मिलि पत्री तब दीनी। तब रैदास बचाय र लीनी ।।24।।

रैदास से मिला। उनको प्रणाम किया। उनके पास सन्तों के समूह के समूह बैठे थे। सबसे मिलकर कुशलक्षेमोपरान्त झाली का पत्र रैदास को दिया, जिसको उन्होंने पढ़वाकर सुना ।।24।।

भगति कही बात सब मानी। [48]दरस काज अति [49] आतुर रानी ।।
तब चलिबे की बात चलाई। सब सन्तनि [49]सौं खबरि कराई [49] ।।25।।

भक्त ने वे सभी बातें कहीं जो रानी ने उससे कहने का कहा। उसने यह भी कहा कि रानी आपके दर्शन करने को अति आतुर–व्यग्र है। तब रैदास ने झाली की विनती को मान लिया। सभी से चित्तौड़ जाने की बात कही। सभी संतों को संदेशा भी भेजा कि चित्तौड़ जाने का निमंत्रण मिला है ।।25।।

अैसी जुगति कहै सब सन्त। ज्यौहि आग्या देई भगवन्त ।।
तब रैदास बिचारी बाता। गुर समान कबीर बड भ्राता ।।26।।

सभी संतों ने निवेदन किया कि परब्रह्म–परमात्मा जो भी आज्ञा देगा, वही किया जाये। तब रैदास ने मन में विचारा कि बड़े गुरु–भ्राता कबीर गुरु के समान हैं ।।26।।

ताकौं बूझन प्रात पधारे। आदर करि कबीर बैठारे ।।
तब कबीर कौं बचन सुनावा। चितौर तै हमकौं दल आवा ।।27।।

उनसे प्रातःकाल पूछने गये। कबीर ने रैदास को आदर सहित बैठाया। रैदास ने कबीर से कहा कि मुझे चित्तौड़ बुलाने के लिये पत्र आया है ।।27।।

आग्या देहु तोहि अनुसरही। कहौ चलै कै ऊतर करही ।।
तबै कबीर कही मति अैसी। सौ रैदास कै हिरदै बैसी ।।28।।

आप आज्ञा देंगे, तबही मैं जाने की सोचूँगा। कहो, मैं जाऊँ अथवा न जाने का उत्तर लिखा दूँ। तब कबीर ने ऐसा उपाय बताया जो रैदास के मन में पूर्णरूपेण जच गया ।।28।।

केसौ की आग्या तुम जाऊ। [50]राखै दासातन कौ भाऊ [50] ।।
आग्या [51]मानि रैदास ज आये। चलन समै कै बचन सुनाये ।।29।।

रानी दास–भाव रखती है। अतः केशव की आज्ञा मानकर चित्तौड़ जाओ। कबीर की आज्ञा मानकर रैदास अपने आश्रम पर आ गये और चलने का मंतव्य सभी को सुनाया ।।28।।

आग्या माँगि [52] कबीर की, फुनि आग्या हरि दीन्ह ।।
चलन मतौ चित्तौर कौ, जन रैदास जब कीन्ह ।।30।।9।।168।।

कबीर से आज्ञा माँगकर, पुनः हरि की आज्ञानुसार भक्त रैदास ने चित्तौड़ जाने का मंतव्य निश्चित् किया ।।30।।

7.(10) दशम बिसराम

प्रात समै रमनै कौ कीना। अपना सखा [1]सकल सँगि [1] लीना ।।
सीलवंत सुमिरन सुख[2] सारे। आग्याकारी संगि सिधारे ।।1।।

रैदास ने प्रातःकाल बनारस से चित्तौड़ की ओर रमन किया। साथ में अपने समस्त सखाओं को लिया। वे शीलवान, भगवद्स्मरण करने वाले, सुखी, सारवान और आज्ञाकारी रैदास के साथ पधारे ।।1।।

ग्यान ध्यान निरगुण मनि धारै। सबही अणभै सबदि विचारै ।।
ऐसौ सखा सदा सँगि सोहै। मानिष कहा देवता मोहै ।।2।।

वे मन में निर्गुण ज्ञान और ध्यान रखने वाले थे। सबही अनुभवजन्य पदों को विचारने वाले थे। रैदास के साथ हमेशा ऐसे ही सखा शोभित होते थे। उनको देखकर मनुष्य ही क्या, देवता भी मोहित हो जाया करते थे ।।2।।

जहाँ जहाँ हरिजन चलि जाही [3]। दरसन देखि सबै सुख पाही [4]।।
कथा कीरतन सुमिरन करै। प्रेम सहित सब का मन हरै ।।3।।

जहाँ–जहाँ ये श्रीहरि के भक्त जाते थे, वहाँ–वहाँ की जनता इनका दर्शन करके सुख पाती थी। ये कथा, कीर्तन और प्रेम सहित भगवद्भजन करके सभी के मनों को मोह लेते थे ।।3।।

[5]जिनिकै द्वारै जन पग धारै। काटि पाप सो जीव उधारै [5] ।।
अति उछाह करि प्रेम बढ़ावै। [6]हरि के जन कौंनै [6] नहिं भावै ।।4।।

जिनके भी घर में ये भक्त लोग अपना पैर रख देते थे, उन घरवालों के समस्त पापों को काटकर उनका उद्धार कर देते थे। जनता भी अति उत्साह एवं प्रेम के साथ

इनका स्वागत–सत्कार करती, महोत्सव करती। ऐसा कौन मंदभागी होगा, जिसे हरि के भक्त प्रिय न लगते हों।। 4।।

ऐसै रमत बहुत दिन लागा। झाली आतुर जोवै [7] मागा ।।
चलि चित्तौर निकट जब आई। तब रैदासि [8]भगत दिये [8] पठाई ।।5।।

इस–प्रकार रमते–रमते बहुत समय व्यतीत हो गया। इधर आतुर हुई झाली गुरु–महाराज के आने की राह देखती है। जब रैदास चित्तौड़ के निकट पहुँच गये, तब उन्होंने अपने आगमन की सूचना देने को भक्त भेजे।। 5।।

भगतनि जाइ सुनाई बानी। अधिक उछाह कियौ मनि रानी ।।
धनि दिन आजि घरी धिन येहू। [9]आई बचन सुनायौ तेहू ।।6।।

भक्तों ने जाकर समाचार कहे। रानी ने मन में अत्यधिक आनंद का अनुभव किया। जिसने आगमन के समाचार बताये, उससे झाली ने कहा– आज का दिन, आज की घड़ी धन्य है, जब मैंने गुरु–महाराज के आगमन की सूचना सुनी है ।।6।।

तब रैदासि चलि आए नेरा। पहल बाग मैं दीना [10] डेरा ।।
मंत्री सबै बुलाये रानी। सनमुख पठई सब रजधानी ।।7।।

तब रैदास अत्यंत निकट आ गए। सर्वप्रथम उन्होंने बाग में अपना डेरा लगाया। रानी ने सभी मंत्रियों को बुला लिया। उनके साथ सारी जनता को सन्त रैदास व उनकी मंडली की अगवानी करने को भेजा ।।7।।

लोग महाजन दरसन जाही। बाँभन[11] सुनि मन मैं पछिताही ।।
सकल लोक मनि आनँद हूवा। बिप्र दुखी अति जरि बरि मूवा ।।8।।

जनता व महाजन संतों के दर्शन करने जाने लगे, किन्तु ब्राह्मण रैदास के आगमन को सुनकर पश्चाताप करने लगे, दुःखी होने लगे। सारी जनता के मन में आनंद हुआ, किन्तु ब्राह्मण जल–भुनकर मरणासन्न हो गये ।।8।।

सकल सौंज लै रानी आई। पान सुगंध गुलाल मिठाई ।।
हरि बोलौ हरि बोलौ होई। बाग बन्यौ बैकुंठा सोई ।।9।।

पान, सुगंध, गुलाल, मिठाई आदि समस्त सामग्री लेकर रानी बाग में आई। उस समय हरि बोलो, हरि बोलो– की ध्वनि दसों दिशाओं में हो रही थी। उस समय वह बाग मानो बैकुण्ठ बन गया था ।।9।।

कथा कीरतन बहु बिधि कीनौं। बाँटि प्रसाद सबनि कौं दीनौं ।।
पीछै रानी [12] नगर बिचारै। महिमा करि बाजार उछारै ।।10।।

रैदास व उनकी मंडली ने कथा–कीर्तन अनेक तरह से सम्पादित किये। सभी को प्रसाद का वितरण किया। इसके अनन्तर रानी ने गुरु–महाराज को नगर में बुलाया। बाजार में होकर उनकी शोभा–यात्रा निकाली, उनका यश–कथन किया ।।10।।

आनि पटम्बर [13]माघ पसारै [13]। चरन धरत गुरदेव पधारै [14] ।।11।।

शोभा–यात्रा निकालते समय पूरे रास्ते में पगमंडे बिछाये जाते रहे, जिन पर गुरु–महाराज पैर धरते हुए पधारे ।।11।।

महिमा गुर गोबिन्द की, [15]कहै करै सो थोर [15] ।।
सीस दिये ते उरिन नहीं, और सबै तिहि कोर [16] ।।12।।10।।180।।

गुरु–गोविन्द की महिमा का वर्णन जितना किया जाये, उतना थोड़ा है। गुरु–महाराज को सिर भी भेंट कर दिया जाये, तब भी उनके उपकारों से उऋण होना मुश्किल है और अन्य भेंट आदि तो इसका कोर–किचिंचत्–अंश मात्र ही है ।।12।।10।।180।।

7. (11) एकादश बिसराम

अधिक उछाह कियौ यौ रानी। ता पीछे भोजन की बानी ।।
सकल बिप्र मिलि घात उपाई। याकौ काज बिगारै जाई ।।1।।

इस–प्रकार रानी ने बहुत बडा उत्सव किया। इसके अनन्तर भोजन की व्यवस्था की। सारे ब्राह्मणों ने मिलकर रानी के इस उत्सव को बिगाड़ने–असफल करने का षड़यंत्र रचा ।।1।।

सुद्रहि आनि करै महिमानी। घर के बाँभन छाड़े रानी ।।
जाकौ कारिज राम सँवारै। अैसा कौन ज ताहि बिगारै ।।2।।

आपस में चर्चा की, शूद्र को बुलाकर महिमा मण्डित कर रही है, जबकि घर के विप्रों को रानी ने छिटका दिया है। जिसके कारजों (उत्सवों) को राम स्वयं सँवारते हैं, ऐसा कौन है जो उन कारजों को बिगाड़ सके ।।2।।

सबही [1]मिलि दरबारहि आया[1]। खीजि करै मन मैं दुख पाया [2] ।।

राणी कह बाँभण क्यौ अैसै। धरती खेत छिड़ाया [3] तैसै ।।3।।

सारे ब्राह्मण एकत्रित होकर राज–दरबार में आये। मन में दुखित हुए वे अपनी खीज को प्रकट करने लगे। रानी कहने लगी– हे ब्राह्मणदेवों! आप इतने क्यों खीज रहे हो। क्या आपकी धरती, खेत आदि छीन लिये गये हैं? ।।3।।

बिप्र कहै तै सबै बिगार्‌या। [4]रजधानी मै छाँटा डार्‌या [4] ।।
सब राजा बिप्रन कौं मानै। और अनेक तिनहि नहिं जानै ।।4।।

ब्राह्मणों ने कहा– रानी ! तुमने सब कुछ बिगाड़ दिया है। राजधानी में छाँटा (भेद) डाल दिया है। सभी राजा ब्राह्मणों को मानते हैं। बस्ती में अनेक लोग होते हैं,, किन्तु उनको राजा जानता–मानता नहीं है।।4।।

जौ तू पुन्न करन कौ होती। पहली खबर हमहु कौं देती ।।
जगि करै ते बिप्रहि ईछै [5]। और सबै बिप्रन कै पीछै ।।5।।

हे रानी! यदि तुझे पुण्य ही करना था तो पुण्य करने की खबर सर्वप्रथम हमको देती। जो यज्ञ करते हैं वे सर्वप्रथम ब्राह्मणों से पूछते हैं, उनको ढूँढते हैं। अन्यान्य सभी ब्राह्मणों के पीछे हैं ।।5।।

जाहाँ तहाँ बिप्र अधिकारा। तै गुर कीनौ मधिम चमारा ।।
रानी कहै सुनौ रे भाई। मेरै तौ मनि इहै सुहाई ।।6।।

जहाँ देखो वहीं विप्रों का ही प्राधान्य है। इसके विपरीत तुमने तो चर्मकार को गुरु बना लिया है। रानी ने कहा– हे भाइयो! ब्राह्मणों! सुनो। मेरे मन में तो यही आया, मुझे यही अच्छा लगा और यही किया ।।6।।

करनी हीन [6]स मधिम सोई [6]। करनी करै सु उतिम होई ।।
मधिम उतिम करनी माहीं। मनिष देह कहु उतिम नाहीं ।।7।।

वस्तुतः जो भक्ति रूपी करनी से हीन हैं, वे ही नीच हैं। जबकि जो भगवद्भक्ति रूपी करनी करते हैं, वे ही उत्तम हैं। उत्तमता व नीचता करनी में है। मनुष्य देह से कोई उत्तम या अधम नहीं होता ।।7।।

काम [7]क्रोध लालच का [7] द्वारा। ऐ तौ मन[8] मै सबै चमारा ।।
उतिम [9]भाई जिनि ए[9] जीता। [10]बाँभन कहौ [10] बालमिक कीता ।।8।।

जिसके मन में काम, क्रोध, लालच होता है, वही अधम है। जिसके मन में ये नहीं हैं, वही उत्तम है। हे ब्राह्मणों! बताओ। आपमें कितने वाल्मीकि हैं ।।8।।

जाति पाति [11]नाहीं अधिकारा। राम भजै सो राम हि प्यारा ।।
नाहीं कछू तुम्हारै सारै। उठौ बिप्र जाहू तुम द्वारै ।।9।।

जाति–पाँति की प्रधानता नहीं है। प्रधानता भजन की है। जो रामजी को भजता है, वही रामजी को प्रिय है। हे विप्रों! उठो और अपने–अपने घरों को जाओ, क्योंकि न तुममें और न तुम्हारी बातों में ही कुछ सार है ।।9।।

बिप्र बहुत मन मै दुख पावै। क्रोध [12] करै रानी डरपावै ।।
पहिलै हमकौ देहू रसोई। पीछे [13]भावै त्यौही [13] होई ।।10।।

रानी की बातें सुनकर ब्राह्मणों ने मन में बहुत दुःख पाया। मन ही मन क्रोध करने लगे और रानी को नाना तरह का भय दिखाकर डरपाने लगे। अंततः विप्रों ने कहा– पहले हमको रसोई जिमा दो। उसके पश्चात् तुमको जो अच्छा लगे, वही करो ।।10।।

रानी कहै नहीं मन धीजै। गुर पहली तुम कौं क्यौ दीजै ।।
ऐसौ झगरौ अधिक उठायौ। तब रैदास एक भगत पठायौ ।।11।।

रानी ने कहा– तुम्हारी बातें मानने योग्य नहीं हैं। गुरु से पहले तुमको रसोई क्यों कर दी जा सकती है? रानी ने इस–प्रकार बहुत बड़ा बवंडर उत्पन्न कर दिया, तब रैदास ने रानी के पास एक भक्त भेजा ।।11।।

हमरै नहीं हार अर जीती। इनकी तुम राखौ रस रीती ।।
मन मैं समझ अरु आग्या मानी। [14]खिजि करि [14] दई रसोई रानी ।।12।।

समाचार कहलवाये, हमारे मन में हार–जीत जैसा कोई द्वंद्व नहीं है। तुम उनकी बात को रख लो। ब्राह्मणों को पहले जिमाया जाता है, इस रीति का निर्वाह कर लो। मन में समझकर और गुरु–आज्ञा मानकर रानी ने खीज सहित ब्राह्मणों को पहले रसोई देना स्वीकार कर लिया ।।12।।

मंन अभावत [15] बिप्र बुलाये। हुते नगर मैं सब चलि [16] ध्याये ।।
लैन रसोई बाँभन दौरै। गनती गिनै सातसै जौरै ।।13।।

न चाहते हुए, अश्रद्धाभाव से नगर में जितने भी ब्राह्मण थे, उन सबको रानी ने निमंत्रित किया और रसोई लेने को सभी ब्राह्मण दौड़े चले आये। गिनने पर उनकी संख्या सात सौ थी ।।13।।

लीनौ बुरौ बिचारि कै मन मैं। करौ रसोई सारे दिन मैं[17] ।।
करै मचलाई चौका धोवै [18] । कोरा कलस [19]भरवाइ मँगावै [19] ।।14।।

उन ब्राह्मणों ने मन में बुरा विचारा कि रसोई दोपहर तक तैयार न करके उसको तैयार करने में पूरा दिन लगा दो। देरी करने के उद्देश्य से वे बार–बार मचलाई करने लगे, चौके को धोने लगे। बार–बार कोरे कलशों में जल भर–भर मँगवाने लगे ।।14।।

करै सनान ढील मन माहीं। हरिजन बैठै हरि गुन गाहीं ।।
पाग उतारि किया सिर नागा। भई रसोई जीवँन लागा ।।15।।

मन में देरी करने का भाव था। अतः धीरे–धीरे स्नान करने लगे। इधर हरि–भक्त बैठे–बैठे हरि के गुणों को गाने लगे। ब्राह्मणों ने रसोई तैयार होने पर सिरों से पगड़ी उतार दी और नंगे माथे भोजन करने लगे ।।15।।

जन रैदासि ध्यान मन दीनौ। धरै ध्यान बदेह तन कीनौ ।।
दरपन बहोत एक ही [20]छाई। यौं बदेह जन सबही ठाँही ।।16।।

भक्त रैदास ने मन में ध्यान किया और अपने आपको विदेह बना लिया, अर्थात् देहातीत बनकर सर्वत्र व्यापक हो गए। जिस–प्रकार बिम्ब एक होता है, किन्तु जितने दर्पण होते हैं उतने ही उसके प्रतिबिम्ब हो जाते हैं, ऐसे ही अकेले रैदास अनेक रैदास बन गये ।।16।।

[21]सबही कै सँगि जीवैं बैठौ [21] । उनि वापै उनि वापै दीठौ ।।
सब को अचिरज भया तमासा। जिता बिपर तिता रैदासा ।।17।।

अनेक हुए रैदास सबही ब्राह्मणों के साथ भोजन करने बैठ गए। जब ब्राह्मणों ने देखा कि प्रत्येक के बगल में रैदास बैठे हैं तो हर एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण का मुँह देखने लगा कि आखिर माज़रा क्या है? सबको बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ। जितने विप्र थे, उतने ही रैदास हो गए ।।17।।

तबहि एक डेरा कौं धायौ। जन रैदास तहाँ पुनि पायौ ।।
धनि धनि करि बौलै सब कोई। तबहि बिप्र मुख राखै गोई ।।18।।

तब एक ब्राह्मण दौड़कर वहाँ गया, जहाँ रैदास व उनकी मंडली का डेरा था। उसने वहाँ रैदास को भजन करते हुए पाया। रैदास के इस चमत्कार को देखकर सभी रैदास की जय–जयकार करने लगे, धन्य–धन्य कहने लगे। हारे हुए ब्राह्मण अपना मुँह छिपाने लगे ।।18।।

सबही कै मनि उपजी लाजा। [22]साधु–साधु हम [22]कियौ अकाजा ।।
[23]जै यह कोप करै हम ऊपरि। तौ हम सबही जाहीं जरि बर [23] ।।19।।

सभी ब्राह्मणों के मन में लज्जा का भाव उत्पन्न हो गया, अपने आपको अपराधी मानने लगे। रैदास साधु है। धन्य हैं, धन्य हैं। हमने उनके प्रति अनावश्यक अपराध किया है, उनको दुखाया है। यदि वे हमारे कुकृत्य का विचार कर हम पर क्रोध करेंगे तो हम सबही जल–भुन कर खाक हो जायेंगे ।।19।।

हम अपराधी वै जन पूरा। बिनकै [24] साहिब सदा हजूरा ।।
[25]साँचे हरि साँचे हरि जना। यौ पस्याताप कियौ बँभना [25]।।20।।

हम अपराधी हैं। वे भक्त पूर्ण–पुरुष हैं। पूर्ण पुरुष साहिब रूप परमात्मा उनको प्रत्यक्ष है। हरि सच्चा है। हरि के भक्त सच्चे हैं। इस–प्रकार सारे ब्राह्मणों ने मन में पश्चाताप किया ।।20।।

धनि–धनि साहिब तू बड़ा, और बड़े तुम [26] दास ।।
जाति पाति कुल कुछ नहीं, बाँभण भये उदास ।।21।।11।।201।।

हे साहिब! तुझे धन्य है, तुझे धन्य है। तू बहुत बड़ा है। तेरे भक्त भी बड़े हैं। जाति–पाँति नाम की कोई चीज भक्ति के क्षेत्र में नहीं है, अर्थात् जाति–पाँति का कोई महत्त्व नहीं है। इस–प्रकार जात्याभिमानी ब्राह्मण अतीव उदास हुए ।।21।।

7. (12) द्वादश बिसराम

बहुर्यौ सब मिलि मतौ उपाई। जाइ गहै रैदास के पाई ।।
चाले बेगि गहर नहिं कीनी। बिनती करि झाली सँगि लीनी ।।1।।

अब सभी ब्राह्मणों ने मिलकर निर्णय किया कि हमें रैदास के चरणों में जाकर गिर जाना चाहिए, ताकि कोई अनहोनी न हो। वे तत्काल रैदास के डेरे की ओर चले। चलने में तनिक भी विलम्ब नहीं किया। विनती करके झाली को भी साथ में लिया ।।1।।

कौन भाति हम चरन गहाहीं। बोहत चूक परी हम माहीं ।।
घर डेरा बिच डँडवत करते। इहि विधि आए डरते [1] डरते ।।2।।

रैदास से ब्राह्मणों ने कहा– हम आपके चरण किस मुँह से छुएँ। हमने आपके प्रति बहुत अपराध किये हैं। अपने घरों से आपके डेरे तक दण्डवत् प्रणाम करते हुए आये हैं। मन में डर भी है कि पता नहीं आप हमारे बारे में क्या सोचते होंगे ।।2।।

तब रैदास बोले है दीना। तुम ऊचे हम आहि [2] कमीना ।।
कैसी विधि डंडवत जु करहू। अहो बिप्र तुम लाज न मरहू ।।3।।

तब रैदास विनम्रता से बोले– आप लोग उच्च–वर्ण वाले हैं, जबकि मैं निम्न–जाति जन्मा हूँ। आप दण्डवत् प्रणाम क्यों और कैसे कर रहे हैं? क्या हे ब्राह्मणों! प्रणाम करते हुए आपको शर्म का अनुभव नहीं हो रहा? ।।3।।

बिप्र रहे परि बोल न आई। सबही कौ सुख दे सुखदाई ।।
राज परिजा सबही आया। निन्द्रा करता तिनहूँ भाया ।।4।।

रैदास के विनम्रता–युक्त वचनों से ब्राह्मण इतने कायल हो गये कि वे वहाँ खड़े के खड़े रह गये, कुछ बोल नहीं सके। सुखदायक रैदास ने सबको सुख दिया। एक शब्द भी बुरा नहीं कहा। इस अवसर पर राजा, प्रजा और वे निन्दक भी आये जो इस चमत्कार के पहले रैदास की निंदा करते थे, क्योंकि रैदास उनको भी भा–गये ।।4।।

बिप्र बहोत विधि बिनती करही। कौन भाति करि हम निसतरही ।।
तब रैदास कहै समझाई। आन जनम की कथा सुनाई ।।5।।

ब्राह्मण अनेकविध विनती करने लगे कि हमारा उद्धार कौन–सी विधि से कैसे होगा? तब रैदास ने समझाकार अपने पूर्वजन्म की कथा को कहा ।।5।।

होता बिप्र नहीं हरि जाना। तातै मोहि सुद्र घरि आना ।।
तनि के [3]माहिं जनेऊ काढ़ी। तब सब देखि भये हैं आढ़ी।।6।।

पूर्व–जन्म में मैं ब्राह्मण था, तथापि मैंने ब्रह्म को नहीं जाना, जानने का प्रयत्न भी नहीं किया। इसलिये इस–बार मेरा जन्म शूद्र के घर में हुआ है। प्रमाण स्वरूप रैदास ने अपने शरीर पर से यज्ञोपवीत निकालकर समस्त ब्राह्मणों को दिखाई। देखकर सभी अचम्भित हुए।।6।।

कीये भगति मोहि भौ सूदा [4]। भगती बिना सबै जग सूदा ।।
जाती पाँति [5] नहीं अधिकारा। भगति कियाँ उतरै भौ पारा ।।7।।

भक्ति करने से मैं शुद्ध हो गया हूँ। बिना भक्ति के सारा जगत् ही शूद्र है। जाति–पाँति भव–पार होने का अधिकार–पत्र नहीं है। वस्तुतः भक्ति करने से ही भव–सागर से पार जाया जा सकता है।।7।।

बेद पुरान कहै यह बानी। भगती बसि है सारँगपानी ।।
[6]जन महिमा आपन [6] हरि भाखै। भजन प्रताप सब ऊपरि राखै ।।8।।

वेद, पुराण आदि सभी कहते हैं कि सारंगपाणि भगवान् भक्ति के वशवर्ती हैं। भक्त की महिमा का कथन श्रीहरि स्वयं अपने श्रीमुख से करते हैं। वे भजन के प्रताप को सबसे ऊपर रखते हैं, बताते हैं ।।8।।

जन रैदास कही बिधि अैसी। सो सबही कै हिरदै बैसी ।।
बिप्र कहै तुम [7] गुरू हमारा। अपना तोरि जनेऊ डारा।।9।।

भक्त रैदास ने ब्राह्मणों से उक्त बातें कहीं। वे सभी के हृदयों में स्थित हो गई। ब्राह्मणों ने कहा– आप हमारे गुरु हैं। इतना कहकर उन्होंने अपने यज्ञोपवीतों को तोड़ डाला।।9।।

माथै हाथ देहू तुम स्वामी। हम सेवक तुम अन्तरजामी ।।
तब रैदासि सबै सिष कीया। कृपा करी माथै कर दीया ।।10।।

हे स्वामी! हमारे माथे पर हाथ रखो, हमें आशीर्वाद प्रदान करो। आप अन्तर्यामी हैं, हम आपके सेवक हैं। तब रैदास ने सभी को अपना शिष्य बनाया, कृपा की और उनके माथे पर अपना हस्तकमल रखा, आशीर्वाद दिया ।।10।।

राजा प्रजा सबै सुख पायौ। जै जै कार करि प्रेम बढायौ ।।
भगवत भगत भिन्नि कछु नाहीं। देखै आन सु जमपुरि जाहीं ।।11।।

राजा और प्रजा सभी सुखी हुए। जय–जयकार होने लगा। सभी ने परस्पर प्रेम बढ़ाया। भगवान् और भक्त में भेद नहीं है। जो भेद देखता है, वह यमपुरी में जाता है ।।11।।

श्री पति साधू एक बिचारा। यौ समझै सौ उतरै पारा ।।
दास अनन्त पराक्रत भाख्यौ। भगति भेद याही मै राख्यौ[8] ।।12।।

श्रीपति भगवान् और साधु–भक्त एक हैं, जो ऐसा समझता है, वह भव–सागर से पार हो जाता है। दास अनन्त ने प्राकृत–भाषा में वर्णन किया है। भक्ति का भेद इसमें वर्णित कर दिया है।।12।।

बीस बार जब बोले साखी। तब मैं भगत परचई भाखी ।।
आखिर ऐकौ झूठौ नाहीं। जानै साध असाध रिसाहीं ।।13।।

जब इस परचई में वर्णित घटनाओं की साक्षी बीस–बीस जनों ने दी कि हाँ हमने यह घटना इसी–प्रकार सुनी है, तबही मैंने रैदास भक्त की परचई में उसका उल्लेख किया है, भक्त की परचई लिखी है। इसमें एक अक्षर भी झूठा नहीं है। साधु–जन सुनकर प्रसन्न होंगे, जबकि असाधु–जन क्रोधित होंगे।।13।।

कोटि जनमंतर जीवै कोई। रसना कोटिक पावै सोई ।।
[9]दिन दिन प्रीति नौतम जस गावै [9]। तोउँ न करता की गति पावै ।।14।।

यदि कोई करोड़ों जन्मों तक जीवित रहे, करोड़ों जिह्वाएँ उसके हों और नित्य भगवान् के भक्तों, संतों के नये–नये यशों का कथन करे, तब भी कर्ता की गति–चरित्रों का पूरा पता लगा पाना, गान कर पाना संभव नहीं है ।।14।।

हरि सागर मै बूंद समानी। कोइ न जानै कहाँ हिरानी ।।15।।

हरि रूपी सागर में भक्त रूपी बूंद समा जाती है। कोई नहीं जान पाता कि समुद्र में बूंद कहाँ समा गई ।।15।।

[10]हरि गुन कौन बरनि सकै [10], हारे सुर नर नाग।
दास अनंत बिचारि करि, चरन गहे बड भाग ।।16।।12।।217।। [11]

लीखितं जगजीवनिदासेन वैष्णुः।। आंवावती मधे।। वांचै ताकौ जै श्रीसीताराम सहाई संवत 1722 चेत मासे सुकल पछे तीथ द्वादस्यं।। श्रीराधेकृष्ण जयति।। श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री।। श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री।।

पृष्ठ 89 ।। ग्रंथांक 1843 सिटीपेलेस, जयपुर का पोथीखाना।

हरि के गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? वर्णन कर–करके सुर,नर, नाग सभी थक गये हैं। अनंतदास ने इस अनन्तता को जान व समझकर परमात्मा व उसके भक्तों के चरणों का आश्रय ले लिया है अथवा अनंतदास कहता है, वे बड़भागी हैं जो परमात्मा व उसके स्वरूपभूत संतों–भक्तों का आश्रय लेते हैं ।।16।।

पाठान्तर
बिसराम–1

1. मुवाँ न कोई (1733.1744); मरै स कोइ (1719)
2. रामहि (1733); राम (1719); नांउं (1744)
3. समां (1744)

4. विप्र हू (1733); सु बांभण (1744); तो बाह्मण (1719);
5. श्रोता (1733), सोता (1744);
6. भोपा बैद (1733); डाहा स्याणा (1744)
   जंत्र मंत्र औषदी करांवै। सबै कटूंबी दहुं दिसि धांवै ।। (1719)
7. हमारै भांवै धनंतर सोई। बालक मरत जिवावै कोई (1719);
8. सोंज (1733);
9. सोई (1719);
10. हरि बिसरे तैं जे जन जीवै। जम की सजा सहै विष पीवै (1733);
    जे नर राम विमुख है जीवै। जीवन वृथा नरक सैं दीवै ।। (1744);
    राम बिसारै जे नर जीवै। जम सौं विघन करावै ग्रीवै ।। (1719);
11. बलवंतू (1733); राजा मन्तु (1744);
12. हरि बिन तिरत न देख्या कोई (1744);
13. हरि करुणामैं राखनहारा (1733); अपने जन कूँ हरि नहीं मारै (1744);
14. तब रामानंदि मन मैं जानी (1733); सो रामानंद भली पिछानी (1744);
15. दख्या (1733);
16. किनि (1733;)
17. रामानंद तुम्ह दिख्या देहू। बालक मरत राखि अब लेहू (1744);
18. हम(1744);
19. दे परमोध (1733); भेष दियो अरु (1744);
20. उजासू (1719);
21. अति आनन्द बधावो सबकै। जीवन जन्म सुफल भयौ अबकै ।। (1719)।

बिसराम–2

1. रविदासू (1744)
2. दिन दिन हिरदै हरि को बासू (1733); नारायण को अधिक बिसासू (1744);
3. अरु भगवान जु सेवा करई। सतगुरि कही सु सीख न टरई (1733); बहु भगतन की सेव करई। ...... ।। (1744); और भक्तन की सेवा करही । .... ।। (1719);
4. बरस (1733,1744);
5. बहुत प्रीति हरि सेती भईया (1744); बहुत प्रीति केसो सूँ भया (1733);
6. जो कछू लाभ सहज मैं होई । सो खाइ खुवै और न कोई (1744);
7. जानै (1733);
8. अभगत तहाँ न कोई आवै (1744);
9. सात (1733,1744);
10. गईया (1733);
11. सहिया (1733);
12. येक (1744,1719,1733);
13. परसाद (1744); जवणार (1719);
14. त्रिभुवनराई (1744);

15. भगवंत (1744); कृश्न (1719);
16. आप खाहु संतन कूँ सेउ (1744);
17. सोचि पड्यौ रैदास (1744); मोन रह्यौ रैदास (1733)

बिसराम–3

1. हरिजी (1733)
2. हमकों (1733)
3. कीयाँ (1733)
4. तुम्हको (1733)
5. जाना वणाणो नहीं है कोई । सुनि रैदास यहूँ पारस होई (1744)
6. अैसे सदा होइ यों आनों। यामैं नाहीं जान बिनानों ।। (1733);
   पारस नाहीं सुनो बैरागी। परि मेरी सुरती राम स्यूं लागी ।।
   और न मेरै रिदै आवै। पारस नांउं राम का भावै ।।(1744)
7. लेहै ऐता। संजमि देह रहै है जेता ।। (1744);
   डरपत लैही। जदपि दुख पावत है देही (1733);
8. कंचन संह काहे कीजै। स्वामी राम रस पीजे ।। तुम दीसो बिरकत बैरागी। बालपणैं तैं माया त्यागी ।। अब काहे माया कूँ छूवो। तुम्हारो धरम सबनि तै जूवौ ।। (1744)
9. केतक दिन (1733);
10. हरिजी (1733)
11. 'सुणि' (1733) में नहीं है
12. कंचन सोहै सुर के कंठा (1733); कंचन देव पहरिहै कंठा (1744);
13. कंचन राम प्रीति करि लीजै (1733); कंचन दान तीरथाँ दीजै (1744);
    कंचन कृश्न श्रीलों दीजै (1719);
14. जे कंचन खरचै हरि भाउ। तो कंचन ले वैकूंठ हि जाउ ।। (1744);
15. को भेद सु
16. न; पूरी अर्द्धाली का पाठ इस प्रकार है– "तो कंचन कों दौस न दीजै"।
    पूरा ही पाठ का उलट–पुलट रूप है यह।
17. कंचन ले जुवाँ जे खेलै। तो सहजै जंम नरक को पेलौ (1733);
    कंचन ले जे जुवै रमई। तो चौरासी दुख पावै भ्रमई ।। (1744);
    कंचन ले जो जूवाँ खेलै। तो जन क्यों न नरक मैं पेलै ।। (1719);
18. आमिष
19. अरु जीव मरावै। तो भगति मोकति (1744);
    मानस ही मरावै। तो गति मोखि (1733);
20. सस्त्र ही
21. अंकोड़ ज लीजै (1733);
22. कीजै (1733);
23. इसके पश्चात् अग्रांकित पंक्ति और है–
    ''कंचन देखि करै जे पापू। ताकूँ जुगि जुगि सोग संतापू ।। (1744);
24. धरिये धरणि दुराई (1733);

25. इसके पश्चात् निम्न पाठ और है–
''जीवत खरच्यो ताहि न भावै। श्रूप होइ ता ठरि आवै। (सरप होई ता ठाहरि आवैं)
सुखत मारगि खरची न खाइ। तो कंचन दोस न दीजै भाइ ।। (1744);
26. सरियो (1744); सम्वत् 1733 की प्रति में यह पंक्ति यहाँ नहीं है।
चतुर्थ विश्राम की पहली पंक्ति के रूप में आई है।

बिसराम–4

1. वि॰ 1733 में नहीं है।
2. लेहूँ छोडि न करिहूँ (1733);
3. तब हरि पारस धरिया बांधी। घर भिंतरि बाती की सांधी (1744);
4. खरचै (1733);
5. दिनाँ (1733);
6. औरौं (1733);
7. सं॰ 1744 में अग्रांकित पाठ और है–
"जिन रैदास भूलिगा सोइ। सुमिरण सेवा करताँ होइ ।।"
8. जन रैदास कहै सुनि स्वामी। भगवंत भगत सु अंतरजामी ।। (1744);
9. जन (1733,1719, व 1744)
10. पारस सों नाहीं कछु कामू। पारस मेरै राजा रामू ।। (1719);
11. सों मोहि (1733);
12. तब चले (1733);
13. तब केसो येक (1733);
14. तब रैदास भया (1733);
15. भोर भये ज्यूँ सेव कराई। पाँच मुहर संपट मैं पाई (1744);
16. तैं (1733);
17. दिन (1733);
18. बारू (1733);
19. आपन कथा (1719);
20. कथा कीरतन ग्यान बिचारै। और न वाणी आन उचारै ।। (1744);
21. लह्यौ चमारा (1733);
22. ढचर (1733); भगति (1744);
23. सु अपनी (1733);
24. विप्रा (1733);
25. तो सालिगराम हाथि जिन लावै। सूधो सुमिरो हरि को नामू ।। (1744)
26. तिनहिं (1733);
27. तिनकी (1733);
28. काजा (1744);
29. सं॰ 1744 में निम्न पाठ और है– "कहो रेदास सुनहुँ रे भाई। हमों तुम्हों कछु नाहिं सगाई ।। उत्तिम मधिम तुम मनि आवै। प्रेम भगति भगवंतहि भावै ।।"

30. राजनीति तुम तैं चलै, बाँभण करै पुकार। सुद्र सिला क्यूँ पूजिहै, राजा करै बिचार (1744)।

बिसराम–5

1. विप्रा बोलत (1733);
2. रषेसुर (1733);
3. मारा (1733);
4. राज हमकों दीयो इक बीस बारा (1733);
5. अर पांडों के हिये न टरते (1733);
6. न (1733);
7. बहुरि (1733);
8. नृघु (1744); नृघ (1719);
9. घ्रित (1733);
10. खाइ (1733);
11. विगधि (1733);
12. क्यो होई बछा (1733);
13. को कैसी सारी (1733);
14. को (1733);
15. जानै (1733);
16. तोउ समानै (1733);
17. नींच उंच कै नाहीं बाँटै। राम लेइ सो सिर कै साटै (1744);
18. सोई है साचो (1733);
19. जासों प्रीति (1733);
20. मति (1733);
21. बिप्र (1733);
22. रैदास हि (1733);
23. ऊपरि (1733);
24. तौ (1733) में नहीं है
25. विप्रा कहैं आव (1733);
26. ब्रह्म (1733);
27. आनी करना देखी जबही (1733);
28. जै जै सबद (1733);
29. रहे लुकाई (1733); लज्जा साहीं (1744);
30. जानों (1733, 1719);
31. सं. 1733 में अग्र पंक्ति अधिक है–

    "भगतन की प्रभुता हरि गावै। तिनकी सरभरि कोंन करावै (1733);

    महिमा भगत कही न जाई। मैं अपनी मति सारू गाई (1744);

बिसराम–6

1. सं. 1744 में निम्न पाठ अधिक है– 'तब राजा रैदास बुलाये। साधाँ सहेत तहाँ चलि आये।। राजा कहै सुनो रैदासू। बिप्र पुकारे भये उदासू।।'';
2. इसके पश्चात् निम्न पाठ और है–
''जेती जाति विप्र की होई। राजा आगे आये सोई ।। (1744);
3. नगर (1733);
4. इसके पश्चात् अग्रांकित पाठ और है– 'बाँभण बहुत भयो है भेलो। इत रैदास गरीब अकेलो ।। भगवत भगत रहै जा पासू। ताके है हरि कौ बेसासू ।। (1744);
5. पंच (1733);
6. विप्रा (1733);
7. बाहरो (1733); सभा बिचि (1744);
8. कै मनि भायो (1733); दरसण पायो (1744);
9. बैठे बीचि बिछावनाँ डारी। उडिगण मधि ज्यू ससि उजियारी ।। (1744);
10. सीतल वचन कहै अति स्वादू। कून चूक तैं हमस्यूँ बादू (1744);
11. मोकों द्यो (1733);
12. सालिगराम हि पूज्या (1744);
13. हम लग पूजि आहि सब केरे। लोक बचन मान नहीं मेरे ।। दान पुन्य सब हमहि करावैं।....... ...।। कहै रैदास सुणों हो पाण्डे। तैं राजा परजा सबही भांडे ।। मारग छाडि कुमारगि लाये। भरम करम के पंथि बसाये ।। राम नाम बिन तिर्या न कोई । स्रुति सुम्रित देखो सब जोई ।। आन धरम जे सरिहै काज। तो कत राजा छाडै राज ।। बाँभण कहै सुणो रेदासूँ। तुमकों कहिये हरि को दासू ।। (1744);
14. सीख (1733);
15. नहीं (1733); पाप (1719);
16. बिष (1744);
17. मानूँ (1733);
18. ठा तुमसू (1744);
19. जु करिहूँ। भलौ न मानैं यूँ पचि मरिहूँ ।। (1744);
20. श्रुति सुम्रिति की राखो रीती। साधूजन कै हारि न जीती ।। हारि जीति मैं कछू न जाणों। वाणी पूरण ब्रह्म बखाणों ।। ऊँच नीच मैं हरि नहीं आवै। साँची सेवा साँई भावै ।। जो मोकूँ गुर देइ बताई। सोही धरम पालिहों भाई ।। सालिगराम सेव नहिं छाँडौ। सेवा निमति मरण हों माँडौ ।। (1744);
21. 'नाही' अन्य किसी भी प्रति मे नहीं है। होना चाहिए भी नहीं।
22. भजन (1733);
23. इसके पश्चात् अग्रांकित पाठ और है– "नीच जाति मैं जनम तुम्हारा। सेवा का नाहीं अधिकारा ।। तुम तो जाति पाँति बसि हूवा। हरि मारग तुम्ह तैं रह्या जूवा ।। (1744);
24. तातैं पांडे हों न डराऊँ। भो तारण नारायन नाऊँ ।। (1744);
25. भाव सहित नारायन गाऊँ।। (1733);
26. स्योरी (1719);
27. त्रेता (1719); यह पूरी पंक्ति 1733 की प्रति में नहीं है।
28. जुगि जुगि बाँभण पूजे भाई। अब कलिजुग माँहै अधिकाई (1744);

29. तप तीरथ का हम अधिकारी। सबमैं मानि हमारो भारी ।।
सुद्र लोक कूँ छिंवे न कोई। देह हमारी सरभरि कैसे होई ।। (1744).

30. हम तो सदा राम के पासा ।।(1733);

31. यह पंक्ति 1722 की प्रति में नहीं है। इसको 1733 की प्रति के आधार पर लिखा गया है।

बिसराम–7

1. लों (1733);
2. भईया, गईया (1733);
3. सूरी (1733);
4. संगति (1733);
5. भई (1733);
6. बुलाई (1733);
7. तबही भक्त किया उपदेसा। मन मैं ढूंढे चार्यौ देसा (1733);
8. यैकै (1733);
9. जो (1733);
10. जानों सुखदेव आहि सरीरा (1733); जां तों गोरखनाथ सरीरा (1744);
11. ताकी (1733);
12. जन (1733);
13. कहत सो (1733);
14. बिसन (1733);
15. इतनी सुनि रानी सुख (1733);
16. रोके (1733);
17. राणी सँगि बाँमण यूँ जाहीं (1744);
18. बीस दिनां मैं कासी आया। गुपति जणाँ राणी दुइ दोत पठाया (1744);
19. आया (1733);
20. देहु जनाव कबीर ही जाई। झाली दख्या लेनें आई (1733)
'जाई कबीर हूँ कहियौ भाई। झाली सिखि हूँन कूँ आई (1744);
21. जाइ (1733);
22. ता सेवा कू साहिब जानै। कै को भेदी साधि पिछानै ।।(1744);
23. पूजा न (1733);
24. त्रिगुण दसा नाव रस सोई। राणी कै चिति चढै न कोई (1744);
25. ब्रिकत दसा देखि सब राणी। चली पिछ्योंडी मनि पिछतीणी (1744);
26. ता पीछै मन मैं (1733);
27. वाहू (1733);
28. लाई (1733);
29. न (1733);
30. कपरा पाटू (1733);
31. देखे जहाँ (1733);

32. बिराजे (1733);
33. ऊँचे बसतर (1733);
34. गरब गयो रानीं को भाजी। राणी मन मैं अतिसै राजी ।।
करी डँडोत रु बंदन कीया। तब राणी चरणाँ चित दीया (1744);
35. रोमांच ह्वै राणी आइ, कब दछ्या ल्यों त्रिभवन (नाथ) (1744);

बिसराम–8

1. बाँभन मरम न काहो को जानैं। राणी दख्या लीनी छानैं ।। (1744);
2. विप्रा (1733); पंडित (1719); 2. रुपया तुहर धरे ले आगैं। करो महोछ्यै अरथि सुं लागैं ।। तब रैदास महोछा कीन्हा। बहू संतनि कूँ भोजन दीन्हा ।।(1744);
3. परि (1733);
4. तबही (1733);
5. सूद्र जाति पै दख्या लीनी। वरण धरम की एक न कीनी ।।
मंत्र ले अरु पहरी माला। बाँभण बेध भये जम काला ।।(1744);
6. विप्रा (1733);
7. सब (1733); बहुड़ाई (1744);
8. उलटी अपूठी का (सी) (1744);
9. गही बाग पलटाई रानी। कासी बहुरि पहूँचे जानी(1733);
10. केई ज (1733);
11. ऐक ज (1733);
12. यह पंक्ति 1733 में नहीं है। 'केई बैठे घाम सुकाई। केई धरती धूलि बुकाई (1744); "एक एक बैठा घामि सुकाहीं। एक एक धरती पड़ि पड़ि जाहीं" (1719);
13. येक ज ले लोही छांटै। केस उपाड़ों पोंचा काटै (1733);
केइ ले लोही स्यूँ छाँटो। ऐक ज जीभ दाँत सो खाँटै (1744);
एक एक राणी लेहू छाँटै। केस उपाड़ै पोंचा काटै ।। (1719);
14. केई जीभ दंत स्यूँ मारै। केई गहि गहि बसतर फाड़ै (1744);
एक एक जीभ दाँत सों मारैं। एक एकत अपणा बसतर फारै (1719);
15. यह पंक्ति 1733 में नहीं हैं।
'केई दोरि दीवाना जाही। केई विष की गाढि चबाहीं ।। (1744);
'एक एक बिष की गाँठि चबाही। एक एक दौड़ि दिवाणै जाही ।। (1719);
16. येक जु पेट कटारी मारै। एक कहैं हत्या देहिं द्वारै (1733);
'वो (र) पेटि कटारी मारै। केई पावक बसतर जारै ।। केई क व अति देहीं। केई प्यासा नीर न लेही ।। (1744);
एक एक पेटि कटारी मारै। एक एक बसतर पावक जारै। एक एक लोही आहुति दैहैं। एका प्यासा नीर न लैहै ।। (1719);
17. रच्यो (1733);
18. यह पूरी ही पंक्ति (1733); में नहीं है। 'अब संकुटि सांइ (1744); 'कष्ट अबरको' (1719);
19. कासी नगर सबै चलि आये (1733);
20. मारें मरै न सीझै काजा (1733);

21. महापुरिष रैदास है साधा। ताही दुखायाँ बहु अपराधा ।। जे तुम्ह मानि आपणी चाहो। तो प्रेम प्रीति करि पंजर गाहो ।। सेवो सकल लोक को राई। सुर नर मानि करै सब आई ।। निज हरि भगत सेनि है भाई। सुनी कथा पहुँतो तहाँ आई ।। (1744);
22. बीच
23. सं. 1744 में इसके पश्चात् अग्र पाठ और है –''बहुत भाँति समझावै सोई। ताको सबद न मानैं कोई ।। साध सकल अैसैं समझावैं। पूरौ भगत कबीर बतावै ।। वाँभण वेध करैं अपघाता। ग्यान ध्यान की सुनैं न बाता। तब रैदास कै उपजी अैसी। कहो संत अब करिये कैसी ।। साचा सबद न मानै कोई। तिनकी भूल न कबहूँ होई।।
24. हमारी सीख रैदास न मानैं। हमकूँ महागरीब करि जानैं।। तब वोह भगत दीन होई बौलै। तुम्ह हो ब्रह्म बराबरि तौलैं ।। तुम्ह तैं सकल बोल होइ आवै। मन बच क्रम जो तुम्ह कूँ ध्यावै ।। तब कबीर अैसी विधि बौलै। साँसो संक्या सबही खोलै ।। तुम्ह जिनि डरपो हरि भल करिहै। सब बाँभण यूँही पचि मरिहैं। (1744);
25. प्रगटैगा हरि जन कै भाऊ (1744);
26. रमिताराम लेइगो राखी (1744);
27. राम (1744);
28. बिराजे (1744);
29. मानिये, जो बोलै (1733);

बिसराम–9

1. यह पंक्ति मात्र 1722 की प्रति में मिली है।
2. लौं (1733);
3. सालिगराम बोलि धुनि करहीं। राजा परजा सब तहाँ सुनहीं ।। (1744);
4. रैदास हमेरा जन साचा। झूठे बाँभण झूठी वाचा ।। (1744);
5. विप्रा दैहि जु त्रासू (1733);
6. तीन बार हरि अैसे बोल्यो। तब सबही को साँसो खोल्यो ।। (1744);
7. यों बोले (1733);
8. क्यै (1733);
9. परचो पायो सब घर जाही ।। (1744);
10. भाई (1744);
11. पुहुप (1744);
12. जाई (1744);
13. विप्रा (1733);
14. रामि न मानी बात हमारी (1744);
15. तब चले खिसाइ दूसराँ हारे। जुगि जुगि संत अनँत हरि तारे ।।
    साधन की बाहर हरि आवै। साध कहै श्रुति सुम्रिति गावै ।।
    परचा देखि सकल सुख लीया। उलटि पयाना घर कूँ दीया ।। (1744);
16. कबीर (1733);
17. सुमिरण भाव करै अति भारी। संताँ की सैवा मनि धारी ।।
    मिलै कबीर सैनि रैदासू। रोमि रोमि रवि अनँत उजासू ।। (1744);

18. काहू नहिं डरई (1733);
19. इसके पश्चात् 1744 में निम्न पाठ ज्यादा है
कथा कीरतन राग बहुरँग राख्यौ। सब संताँ मिलि हरिरस चाख्यो ।।
20. जु बैठे (1733);
21. सैणि रैदास गहे हरि चरणा। हम तो नाथ तुम्हारै सरणा ।। (1744);
22. हिरदै आयो (1733);
23. सब दीसै काचा (1733);
24. कबीर कै निरगुन को ध्यानू। निरगुण बिना और नहिं जान्यू ।।
आवै जाई सु हरि का कीया। ताकूँ तन मन मैं नहि दीया ।।
सरगुण कहिये माखण भाई। निरगुण घिरत लियो है ताई ।।(1744);
25. येक करि जानों (1733);
26. श्रगुन थेपै सेनि रैदासा। त्रिगुण ब्रह्म कबीर बिसवासा ।।
आवै जाई नहीं बप धारै। त्रिगुण सबही मांड अधारै ।। (1744);
सुरगुण थापै सेणि रैदासा। निर्गुण–सर्गुण सों कबीर की आसा ।।(1719);
27. पहर येक (1733);
28. भयो (1733);
29. थीरू (1733);
30. थाधे (1733);
31. नमसकारि सेनि रैदासा। पहुँचे अपनैं अस्थल पासा ।। त्रिगुण सगली सिष्टि चलावै। .... ।। श्रगुण भगतन मैं त्रिगुन को अंसा। समझि पड़ै तो भाजै संसा ।। दास अनंति हरि किरपा भाख्यो। भगती दया हिये मैं राख्यौ ।। सुपिनंतरि मैं मोहि सुनाई। भगत परचई कहि समझाई ।। तीनि बार जो बोली वाणी। तो मैं भगत परचई जाणी ।। अखिर एक न झूठो कोई। पीछै भई स भाषी सोई ।। जिभ्या अनन्त अनंत है वाणी। वरणी न जाई भगत कहाणी ।। दिन दिन नोतम हरिगुण गावै। पारब्रह्म को पार न पावै ।। (1744);
32. इहै बसेषा (1733); कहिये एका (1744);
33. हरि (1733);
34. ध्योताई (1733); इसके पश्चात् अन्य प्रतियों में नवम विश्राम पूरा हो जाता है किन्तु यहाँ दोहा न होने से हमें 1722 की प्रति का पाठ व विश्राम–विभाजन अधिक ठीक लगता है। क्योंकि इस प्रति में आगे का पाठ 9वें अध्याय में ही रखा गया है।
35. अंजन भ्रम (1733);
36. अंजन है लागे (1733);
37. जागे (1733);
38. जानत (1733);
39. पैरी (1719);
40. ते तो जनम आपनों हारै (1733); ते तो जनम अविरथा हारै (1719);
41. धनि धनि (1733);
42. मोहि (1733);
43. तजै (1733);
44. की सीपै (1733);
45. पत्री मैं (1733);

46. बार नहीं (1733);
47. देखे (1733);
48. दरसनि कारनि (1733);
49. कों खवरि सुनाई (1733);
50. राखो सदा संतनि को भावो (1733);
51. मांगि (1733);
52. लई (1733); अन्यान्य प्रतियों का दसवाँ विश्राम यहाँ समाप्त हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि 1722 की प्रति के 9वें अध्याय की सामग्री अन्यान्य प्रतियों में 9वें और 10 वें अध्यायों मे विभक्त की गई है, किन्तु हमारे विचार से विश्राम–विभाजन 1722 की प्रति का ही उपयुक्त है।

बिसराम–10

1. संगि हरि (1733);
2. सब (1733);
3. जावै (1733);
4. पावै (1733);
5. यह पंक्ति 1733 में नहीं है।
6. हरिजन कवनै (1733);
7. हेरै (1733);
8. द्वै भक्त (1733);
9. आये (1733);
10. कीना (1733);
11. बिप्रा (1733);
12. डेरा (1733);
13. माग सँवारे (1733);
14. वि.सं. 1733 की प्रति में अग्रांकित पंक्ति और है–
    "ऐसी विधि सब सोंज बनाई। झाली रानी करत बड़ाई (1733);
15. करै कहै सब कोइ (1733);
16. अन्यान्य प्रतियों में यह दोहा यहीं है। वस्तुतः कृतिकार ने चौपाई व दोहा के द्वारा कड़वक न बनाकर विश्राम बनाया गया है। यहाँ दोहा है। अतः योजनानुसार विश्राम बदलना चाहिये। सं॰ 1722 की प्रति में बदला है जबकि 1733 में नहीं। योजनानुसार विश्राम का बदला जाना यहाँ जरूरी है। अतः हमारी पक्की राय है कि 1722 की प्रति का विश्राम विभाजन बिल्कुल सही है।

बिसराम–11

1. सबही चलि दरबारि जु आवा (1733);
2. पावा (1733);
3. छिनाये (1733);
4. राजधरम मैं छांटो पारे (1733);
5. पूछै (1733);

6. मधिम सो होई (1733);
7. वेध लालच नवों (1733);
8. तन (1733);
9. भयो जिन्हों ये (1733);
10. विप्रा कहां (1733);
11. का नहिं (1733);
12. बेध(1733);
13. ज्यूँ भावै त्यूँ (1733);
14. खीजत (1733);
15. अनभांवरि(1733);
16. उठि (1733);
17. इसके पश्चात् 1733 व 1719 की प्रतियों में क्रमशः पाठ इस प्रकार है–
    ''हमरे छतै न बोलन पावै। अैसैं इनको आजि लंघावै (1733);
    हम छता कोई आवण न पावै। अैसै कोरा कलस मंगावै ।। (1719);
18. देवै (1733);
19. मंगाइ र लेवै (1733);
20. झाँई (1733);
21. सबहिन के संगि जीवन बैठा (1733);
22. साध सतायो (1733);
23. जै वै कोप करै हम ऊपरि। तो अवही जाहिं सकल ही जरि बरि (1733);
24. उनकै(1733);
25. वहै संत हम अैसे पापी। भगतन सों लरि अैसीं थापी ।।(1733);
26. सब (1733);

बिसराम–12

1. सब (1733);
2. जाति (1733);
3. माँझ (1733);
4. सूधा (1733);
5. पाँति का (1733);
6. जन की महिमा आप (1733);
7. तूँ (1733);
8. दाख्यो (1733);
9. दिन प्रति नोतम हरि गुन गावै (1733);
10. हरि गुन को बरनैं सबै (1733);
11. वि.सं. 1719 की प्रति में अग्रांकित पाठ अधिक है– ''दास अनंत विचारि करि, चरन गहे बड भाग। पर उपगारी पहम परि, ।।................।। देखो ई का हेत। चंदन पान मलागिरी, तन तजि सोभा देत ।। पर ईम उपगारी संत जन, आए सकलि माहिं। पीवै मीलावै रामरस, आप सुवारथि नाहिं ।।''

8. श्रीनारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल की भक्तिरसबोधनी टीका में रैदास

8.1 मूल

संदेह ग्रंथि खंडन निपुनि बानि विमल रैदास की ।।
सदाचार श्रुति सास्त्र वचन अविरूध उचार्‌यौ।
खीर नीर विवरनी परमहंसनि उर धार्‌यौ ।।
भगवत कृपा प्रसाद परमगति यहि तन पाई।
राज सिंहासन बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई ।।
वर्णाश्रम अभिमान तजि पद रज वंदहि जासकी।
संदेह ग्रंथि खंडन निपुनि बानि विमल रैदास की ।।59।।

टीका

रामानंद जू को सिष्य ब्रह्मचारी रहै एक गहै वृति चुकटी की कहै तासों बानियो।
करो अंगीकार सीधो कही दस बीस बार बरषै प्रबल धार तामै वापै आनियो ।।
भोग कूँ लगावै प्रभु ध्यान नहीं आवै अरे कैसे करि ल्यायो जाय पूछी नीच मानिये।
दीयो सराप भारी बात सुनी न हमारी घटि कुल मै उतारी देह सोइ याकूँ जानिये ।।255।।
माता दूध प्यावै याकों छुयो हु न भावै सुध आवै सब पाछली सु सेवा को प्रताप है।
भई नभवानी रामानंद मन जानी बडो दंड दियो मानी बेग आयो चल्यो आप है ।।
दुखी पित मात देखि धाय लपटाये पाव कीजिये उपाव किये सिष्य गयो पाप है।
स्तन पान कियो जियो लिये उन्है ईस मान निपट अजान फेर भूले भयो ताप है ।।256।।
बढेई रैदास हरिदासनि सों प्रीति करी पिता न सुहाय दई ठौर पिछवारही।
हुतो धन माल कण दियो हु न हाल तिया पति सुख जाल अहो कियो जब न्यारही ।।
गाँठै पगदासी किहु बात न प्रकासी ल्यावै खाल करै जूती साधु सन्त कूँ सँभारही।
डारी एक छान कियो सेवा को सथान रहै चौड़ै आप जान बाट पावै यह धारी है ।।257।।

सहै अति कष्ट अंग हिये सुख सील रंग आये हरि प्यारे लियो भक्ति भेख धारकै।
मेरै धन राम कछु पाथर न सरै काम दाम मैं न चाहों चाहों डारों तन वारकै ।।
कियो बहु मान खानपान सौं प्रसन्न ह्वै कै दीनो कह्यौ पारस है राखियो सँभारि कै।
राँपी एक सोनो कियो दियो करि कृपा राखों राखो यह छान माँझ लेहु जु निकारि कै ।।258।।
आये फिर स्याम मास तेरह व्यतीत भये प्रीति करि बोले कहो पारस की रीति को।
वाँही ठौर लीजै मेरो मन न पतीजै अब चाहो जोई कीजै मै तो पावत हों भीति कों ।।
लै कै उठ गये नये कोतक सो सुनो पावै सेवत मुहुर पाच नित ही प्रतीति कों।
सेवाहुँ करत डर लाग्यौ निसि कह्यो हरि छाडो अर आपनी औ राखो मेरी जीति कों ।।259।।
मान लई बात नई ठौर लै बनाई चाय संतनि बसाय हरि मंदर चिणायो है।
बिबध बितान तान गणों जो प्रमान होय भोय गई भक्ति पुरी जग जस गायो है ।।
दरसन आवै लोग नाना विधि राग भोग रोग भयो विप्रनि कों तन सब छायो है।
बडे हि खिलारी वह रहे छान डारि करी घर पै अटारी फेरि द्विजन सिखायो है ।।260।।
प्रीत रस रास सौं रैदास हरि सेवत है घर मै दुराय लोक रंजनादि टारी है।
प्रेरि दिये ह्रदै जाय द्विजन पुकार करी भरी सभा नृप आगै कह्यौ मुख गारी है ।।
जन कू बुलाय समझाय न्याय प्रभु सौंपि कीनो जग जस साधु लीला मनुहारी है।
जिते प्रतिकूल मै तो माने अनुकूल यातैं संतनि प्रभाव मन कोठरी की तारी है ।।261।।
बसत चितोर माँझ रानी एक झाली नाम नाम बिन खाली कान आन सिष्य भई है।
संग हुते विप्र सुन छिप्र तन आग लागी भागी मति नृप आगै भीर सब गई है ।।
वैसै ही सिंघासन पै आय कै विराजे प्रभु पढै वेद वानी पै न आये यह नई है।
पतितपावन नाम कीजिये प्रगट आज गायो पद गोद आये बैठे भक्ति लई है ।।262।।
गई घर झाली पुनि बोल कै पठाये अहो जैसैं प्रतिपाली अब तैसैं प्रतिपारिये ।।
आप हूँ पधारे उन बहु धन पट वारे विप्र सुन पाव धारे सीधो दे निवारिये ।।
करकै रसोई द्विज भोजन करन बैठे द्वै द्वै मध्य एक यौं रैदास कूँ निहारिये।
देखि भई आखै दीन भाखै सिष्य लाखै भये स्वर्ण को जनेऊ काढ्यौ तुचा कीनी न्यारिये ।।263।।

–नारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल की प्रियादास द्वारा की गई भक्तिरसबोधनी टीका। राजस्थान–प्राच्यविद्या–प्रतिष्ठान, जोधपुर के ग्रंथांक 14460 से गृहीत पाठ। लिपिकाल वि॰सं॰ 1792; लिपिकार कृष्णदास वैष्णव, वृन्दावन निवासी की पुस्तक से श्यामदास निरंजनी द्वारा लिपिकृत पाठ।

8.2

आज का द्यौस का जाँउ बलिहारा।
मेरे गृह आया राजा रामजी का प्यारा ।।
करौं डंडवत चरण पखारौं। तन मन संतन पर वारौं ।।
आँगन भवन भयो अति पावन। हरिजन बैठे हरि जस गावन।।

कहै कथा अर अरथ बिचारै। आप तिरै औरन कूँ तारै ।।
कहै रैदास मिले हरिदासा। जन्म जन्म की पूजी मेरी आसा ।।

यह पद उक्त हस्तलिखित भक्तमाल के हाशिये में पारस पत्थर देने आये भगवान् के आगमन की साक्षी के रूप में लिखा मिला है। वैसे यह पद **(क) सतगुरु रविदास–वाणी**, पृष्ठ 105, पदांक 89 **(ख) रैदास : जीवनी एवं पदावली** पदांक 85 तथा **(ग)** The Life & Works of Raidas के पृष्ठ 215 पदांक 73 के रूप में भी उपलब्ध है।

8.3

भक्त बिछल बिड़द तेरो सुन्यौ मैं,
भक्त बिछल बिड़द तेरो सुन्यौ मैं।
जन की घट्याँ तुमारी घटत है, मानि सबद सत मेरो ।।
जब गजराज गहरे जल भीतर, हरी ह्रदै मुख टेर्यौ।
गरुड़ छाड़ि पयादहि ध्याये, निपट भगत के नेरौ ।।
जन प्रहलाद खंभ सूँ बांध्यौ, चहुँदिसि मंदर घेर्यौ।
खंभ फाड़ नरसिंह होय प्रगटे, नख सूँ उदर झँझोर्यौ ।।
जन द्रोपदि की भरी सभा में, खाँच्यौ चीर घणेरौ।
खाँचत चीर पार नहिं पायो, असुर पच्यौ बहुतेरौ ।।
करि करुणा हरिजन यूँ भाखै ऊपर करि हरि मेरौ।
जन रैदास आस रघुवर की, जन्म जन्म को चेरौ।।

उक्त हस्तलिखित भक्तमाल के हाशिये में उपलब्ध पद। यह पद छंदांक 263 में वर्णित कुंभलगढ़–प्रसंग के समय गाया गया है। यह पद अन्यान्य हस्तलिखित ग्रंथों में अभी तक मुझको नहीं मिला है। भक्तमाल का लिपिकाल सम्वत् 1792 है। अतः प्राचीनता की दृष्टि से इस पद का महत्त्व निर्विवाद है। मैंने इसको पदावली में सानुवाद पदांक 101 के रूप में सम्पादित किया है।

9. श्रीनारायणदास 'नाभा' कृत भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी टीका में रैदास

मूल : धुरमेल कवित्त

संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि विमल रैदास की ।।
सदाचार श्रुति शास्त्र वचन अविरुद्ध उचार्‌यौ।
खीर नीर विवरंन परमहंसनि उर धार्‌यौ ।।
भगवत कृपा प्रसाद परमगति इहि तन पाई।
राजसिंहासन बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई ।।
वर्णाश्रम अभिमान तजि पद रज वंदहि जासुकी।
संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि विमल रैदास की ।।56।।

टीका : चामर छंद

अब सुनहु रयदास गाथा हरि कथा रस सोत।
हर भक्त ते सब सुखी जामें विमुख खावै गोत।
रयदास पूरब जन्म बटु तन ब्रती भिक्षा पाय।
पुनि सिष्य रामानंदजू को स्वामि सेव कराय ।।16।।
इक बनिक ताकूँ कहत प्रतिदिन लेहु सीधो संत।
उहि बनिक एक चमार को ब्योहार बनिज करंत ।।
तिस किणक धरियो बणिक गृह में बरसि तिस दिन मेह।
उहि ब्रह्मचर उस बणिक पासहि लियो सीधो वेह ।।17।।
सो लाय रामानंद पासहि धर्‌यो पाक बनाइ।
गुरु भोग लावत राम कूँ तब ध्यान प्रभु नहिं आइ ।।
करि कोप स्वामी ताहि कहि सठ अन्न कैसो लेत।

तब कही बटु प्रभु बणिक सीधो दियो लीयो हेत ।।18।।
गुरु कही पूछी उही भाखी दियो अंन चमार।
फिरि कही गुरु पै दियो गुरु तब साप तिस हुनहार ।।
भव चमार गमार मेरो बोध मान्यौ नाहिं।
सो भयो मरिकैं ताहि कुल में याद सब मन माहिं ।।19।।
सब चमारनि में बड़ो नर नगर कासी बास।
अनपत्य गेह अपत्य जायो नगर सो रयदास ।।
उहि धात मात न तात कलपत करत बहु उपचार।
रयदास मरिबो चहत लखि तन नीच भक्ति प्रहार ।।20।।
दिन तीन ऐसे गये जबही नभ गिरा हरि कीन्ह।
सुनिवाय रामानंद कूँ सो प्रगट लीजे चीन्ह ।।
मम भक्त बटु जो तुम सराप्यो भयो जाति चमार।
तुम जाहि वाके गेह बोधहि भाखि दूध पिवार ।।21।।
तब समझि रामानंद प्रातहि गए चमरा धाम।
सब चमारनि को पटेला लग्यो करन प्रणाम ।।
कहि स्वामि बालक मरत राखों होहु जो तुम भक्त।
तब चर्मकारा कही सोई करों होय प्रसक्त ।।22।।
तुम मरत बालक दूध प्यावहु मानिहौं गुण कोटि।
कहि स्वामि चमरा भद्र होवा मूँछ दाढ़ी घोट ।।
गृह पात्र पूरब दूरि कीन्हे नवल और धराय।
नित न्हान चौका तिलक माला दिया नाम सुनाय ।।23।।
सब लोक टालि कृपाल स्वामी बाल कूँ कहि बात।
मति मरौ दूध हि पीव जीवहु भक्ति करूँ विख्यात।।
मैं देय बोधहिं तोहि तारूँ राम हुकम करंत।
तुम याहि तन करि राम मिलिहै तब धर्‌यौ गुरु मंत ।।24।।
पय पियो बालक जियो तबही कियो तोष चमार।
तब स्वामि कूँ बड़ ईस जान्या प्रयाना गुरु धार ।।
निज बाल हूँ कूँ अधिक जान्यो तोहू मूरिख जाति।
बड़ भयो बालक संत सेवत जिनहि नाहिं सुहात ।।25।।
रयदास गुरु पै भक्ति रीतिहिं सीखि त्योंहि करंत।
वहु धन उड़ावै हरि लड़ावै अरु जिमावै संत ।।

तब तात मातहि भात नहिं सुत करत है धन अंत।
परिणाय न्यारो कियो सुत कूँ दियो धन बटवंत ।।26।।
सब गृहनि पीछे रहन दीन्हो जहि न संत दिखाय।
रयदास झगरा करा कछु नहिं रह्यो तिय जुत छाय ।।
पुनि एक छपरी करी चोहट संत दरसन काज।
अरु तितहि शालग्राम सेवा करै विलग समाज ।।27।।
अति प्रीति हरि हरिदास सेती करै सेवा नेम।
धन हुतो सो सब दियो खायो रह्यौ घर में क्षेम ।।
तब चर्म सीधा मोल लावै बनावै पद त्रान।
हट बेचि जीवनि करै संतनि सेव मन मसतान ।।28।।
पदत्रान जीरण जोरि देवै दियो लेवै आप।
कउ मजूरी देय ना तो लरै नहिं मन ताप ।।
अस गुदर वोदी कष्ट तन कूँ मन विनोदी धीर।
तब संत तन धरि राम आयो जानि जन की पीर ।।29।।
रयदास आदर ठानि सीधो दियो कीन्हो पाक।
हरि पाय भोजन भणे जन सूँ गुदर चालत चाक ।।
जन कही चाक हि गुदर चालत पुनि भणे हरि बैन।
कछु सम्पदा गृह में न दीसत लहै किमि तन चैन ।।30।।
रयदास कहि अति चैन तन मन संपदा मम राम।
सब संपदापति रमादेवी बसत जिस पद धाम।।
फिरि भक्त वेषी विष्णु बोला सुनहु जन रयदास।
मैं बाल कालहि भयो बिरकत तज्यो माया भास ।।31।।
निज छंद बिहरत काल्हि मग में लह्यौ पारस एहु।
मम काम को नहिं संत सेवक तुमहि याकूँ लेहु ।।
अय परसि याकूँ कनक करि करि संत सेवा मोहि।
जस बढे तेरो देख राँपी कीन्ह सोना लोहि ।।32।।
तब डर्‌यो रयदास दासा मन निरासा जास।
लखि एहु मेरी भक्ति भंगत किधौं देखत आस ।।
क्षण मौन धरि रयदास भाषी नहीं पारस चाह।
गहि कनक कूँ बहु जगत बूडा कनक दोष निवाह ।।33।।
फिरि हरि कही क्यूँ कनक दूषित धर्म जाकरि होय।

करि संत सेवा मिलित मेवा ब्रह्म भोजन पोय ।।
अरु जज्ञ नेम सनान तीरथ गहे सुर हरि धाम।
अस कनक फल नहिं दोष लागै करै अधरम काम ।।34।।
रयदास कहि तब क्यूँ न राषत तुमहि ऐसा बित्त।
हमहि सिखावत राखिबो धन नहीं आवत चित्त।।
हरि कही तबही लेहु लेहु राखि हरि जन बोल।
रयदास कहि यहि मेलि छपरी मांहिं लेहु टटोल ।।35।।
तब उठि गयो हरि मेलि पारस छुयो नहिं रयदास।
षटसप्त मास बिताय हरि पुनि आय जन के पास ।।
कहि कहो पारस रीति कूँ हिम कियो कैधौं नाहिं।
रयदास कहि उहि धर्‌यो लीजै मैं न छूयो ताहि ।।36।।
हरि कही क्यूँ नहिं लियो पारस कही आरस भक्त।
हौं डरत ताके करत घाते भक्ति ही अनुरक्त ।।
तब लेय पारस गये हरि धन फेरि देवे धारि।
हरि स्वप्न में रयदास कूँ कहि छाड़ि टेक तिहारि ।।37।।
मैं तोहि पारस देन आयो धारि तैं अरि टेक।
तब गयो फिरि अब देत हौं मैं पंच मुहर प्रवेक ।।
अब राखि मेरी जीति कूँ तू स्वामि है कै दास।
सो स्वप्न में जन भर्‌यो हूँका प्रगट नहिं तिस आस ।।38।।
तिन प्रात पाई पंच मुहरनि विष्नु संपुट माहिं।
जन समझि लीन्ही कृपा कीन्ही राम काम बिनाहिं ।।
सो दाम रामहिं काम लावत संत पावत पाक।
तब कर्‌यो भारी गृह मुरारी बहु समारी ताक ।।39।।
पकसाल ढाल रसाल बैसन संत साल बिसाल।
झुकवाय सुंदर जाहि अंदर बसत संत कृपाल ।।
जहि कथा कीरति जन उदीरत बढी कीरति गाम।
गुणगान तान विधान तांडव होत प्रभु के धाम ।।40।।
तब लोक बनिया प्रीति सनिया दरस आवत तत्र।
यह हरि तमासा जन प्रकासा कीन्ह जस सरवत्र ।।
रयदास तो हरि गुपत सेवत सबल प्रभु प्रगटाय।
अरु अधिक महिमा करी जन की द्विजन उर लपटाय ।।41।।

रयदास जस रस प्रसर अरुची पाय द्विज रुजवंत।
मन भए तबही दोष ठानत निरखि प्रभुता संत ।।
कहि देखिये यहु चर्मकारा दंभ धारा लोय।
जग भुलावत निज पुजावत बड अनीती होय ।।42।।
सिख देन कूँ कोई न याकूँ नगर नृप हूँ मूढ।
अस खिजत डोलत नगर में द्विज लखत नहिं हरि गूढ़।।
पुनि मिले सब द्विज गए नृप पै कही सुन रे भूप।
तव नगर में अन्याय होवत तू न जोवत रूप ।।43।।
रयदास चमरा वेष हरि के जगत माहिं पुजाय।
हम विप्र सबके पूज्य तिनकी बात हूँ न पुछाय ।।
तुम बोलि वाकूँ देहु शिक्षा नगर नृपति कहाय।
तब नृप कही नहिं जोर मोरहु विष्णु भक्ति गहाय ।।44।।
तब द्विजनि नृप कूँ घेरि आन्यो जहाँ जन रयदास।
द्विज चहत मन में सालग्रामहि पंच मुहरनि आस।।
नृप सुनत ब्राह्मण भणे जन सूँ अरे नीच चमार।
तजि देहु सालग्राम सेवा करत ढचर गमार ।।45।।
श्रुति कहत गलिका पुत्र कूँ नहिं शूद्र नीच छुवाय।
तिहि छुवत दोष अपार लागै विष्णु रोष भराय ।।
तब मधुरबानी जन बखानी सुनहु द्विज भूदेव।
हरि दीन बंधू कृपा सिंधू जास रीत अभेव ।।46।।
सो भजत सब सूँ तोष पावै ऊँच नीच न भेद।
सो कृष्ण झूठनि ग्वालया की गही तजि विधि खेद।।
अरु राम बानर मित्र कीन्हा भील कर फल खाय।
हरि एक प्रीतहिं होत वशचर जाति भेद विहाय ।।47।।
तब रीस कहि फिर बिप्र बोले अरे वाद करंत।
हम पूज्य आदू जगत में नहिं हमहिं पास डरंत ।।
कुल नीच है सो नीच जग में ऊँच है सो ऊँच।
किमि सूकरी गो तुल्य होई समझि ऐसे भूँच ।।48।।
तब रुषित ईषत भक्त बोला सुनहु द्विज मम बात।
तुम वेद पढ़ि नहिं भेद जानत मृषा काढत लात।।
हरि सूकरी कूँ गौ करै फिर गौ हि सूकर जाति।

सोइ अकरण करण कारण धरण उलटी भाँति ।।49।।
मैं हरि हीं सेवत सदन अपने कियो कस न बिगार।
तुम काहे कूँ मम उपरि रोषहि करत करहु विचार।
जो न मानहु तो करहु यहु बीचि हरिहिं धराँहि।
हरि तुमहिं बोलहु हमहि बोलहि प्रीति जापै जाहिं।।50।।
तब कही विप्रनि लाव ठाकुर लाययो रयदास।
हरि आनि सिंघासन बिठाना सबहि देखत पास ।।
इक तरफ सब द्विज पढ़त वेदहि कहत हरिहि ब्रह्मण्य।
इक तरफ हरि रयदास गावत भणत भक्त शरण्य ।।51।।
द्विज कहत हमरे आव ठाकुर ऊँच हम तव दास।
मति नीच की तुम करो पक्षहि धरो श्रुति की भास।।
रयदास तब इक पदहिं गायो पतित पावन टेरि।
अस करत तीसर पहर बीता अजय जय नहिं सेरि ।।52।।
रयदास पद के भोग दे उर उमगि जल भरि नैन।
प्रभु दीन बंधू दयासिंधू अधम उधरण ऐन ।।
अब कृपा कीजे प्रेम लीजे भक्त वत्सल नाथ।
तब विष्णु कारुणि भक्त गोदहि उचकि बैठो साथ ।।53।।
हरि प्रेम राख्यो वेद नाख्यो भक्ति मत यह गूढ़।
तब देखि सब जग कह्यौ जय जय भयो भक्त अरूढ़ ।।
द्विज परि खिसाने सब प्रयाने वृथा झोरि उपाय।
रयदास अस विश्वास हरि के जास राम सहाय ।।54।।

दोहा

गोचर कृत रयदास रत, गोचर जाके राम।
तिस जस रस कछु कहि सकत, फिरि अगले विश्राम ।।55।।

।। इतिश्री भक्तदामगुणचित्रणी टीकायां रयदास भक्त विजयोनाम् एकत्रिंशो रचनावृंद ।। 31 ।।

अथ द्वौत्रिंशो रचनावृंद
चामर छंद

फिरि सुनहु रयदास महिमा भई जगत प्रकास।
चितोड़गढ़ में बसत राणा तिया झाली तास।।

सा दान नेम सु धरम सूरी भक्ति पूरी माहिं।
तिस मन हुलासा सुगुरु आसा करिहु भक्ति सुहाहिं ।।1।।
तब नगर में इक संत कूँ बोलाय पूछी बात।
सतगुरु धरौं मैं तुम बतावहु प्रचयवंत सुहात ।।
तिहि भक्त कासी में कबीरा कह्यौ अरु रैदास।
दोउ जाति हीन प्रबीन परचै बीनधर शुक भास ।।2।।
यहु सुनी झाली मन खुसाली कासि चाली जात।
कुल प्रोहित द्विज संग रोहित और द्विज बहु भात ।।
ते बिना बोला साथ डोला मन विलोला दान।
ऐसेहि कासी गई झाली चीति गुरु अस्थान ।।3।।
तब दोय नर कूँ पठे देखन गुरू कबीर विहार।
पुनि आप झाली दरस चाली कबीरा के द्वार ।।
तहि देखि निर्गुण रीति प्रीति न भई मन मत राज।
पुनि चली गली रयदास केरी जहाँ संपति साज ।।4।।
तित निरखि मंदिर खिचित सुंदर जत्र चित्र वितान।
हरिदास भास उजास तन मन भनत हरि गुन गान।।
पट पाट माट सुघाट हाटक बास अगुर कपूर।
अस निरखि रानी हरष सानी मति लुभानी पूर ।।5।।
पुनि जाय ढिग रयदास पग लगि जगी रति अति जोय।
गुरु धर्‍यौ ओही बुद्धि मोही जथामत जन सोय।।
कुछ भेंट लाई सो चढ़ाई बढ़ाई अति प्रीति।
अरु संत भोजन दयो विधि सूँ विविध पाक विनीत ।।6।।
बहु पट दुसाली दिये झाली करि खुसाली संत।
दिन पंच लगि पग रही झाली गोप द्विज न लखंत ।।
फिरि चली घर कूँ न्हाय कासी देय धन द्विज दान।
गुरु कर्‍यो सो सुनि लियो विप्रनि पुरोहित रिस मान ।।7।।
मग कोस पंचनि हुते घेरी लगे द्विज करि कोप।
फिरि नगर रानी उलटि आनी तजत द्विज गिर तोप।।
रयदास को गृह घेरि द्विज कहि अहो झाली मूढ़।
तजि देहु माला शूद्र की नहिं मरेंगे द्विज रूढ़ ।।8।।
अति करत रारी देत गारी पसारी बहु फैन।

तब डरत झाली कंप हाली बिहाली मन ऐन ।।
द्विज केउ खोटे विषहि खावैं दिखावैं दृग लाल।
कउ जरन काठहि द्वार डारत अति बजावत गाल ।।9।।
रयदास द्वार पसारि धरणा तब डर्‌यो रयदास।
सुनि नगर नृप सब दिखत कौतुक द्विज दिखावत त्रास।।
सुनि न्याय राजा द्विजन बरजत मति करो तुम खंच।
नहिं जीतिहो रयदास सूँ जिस भीर राम अपंच ।।10।।
द्विज गरजि अरजि न काहु मानत बखानत निज मान।
रयदास तबहिं कबीर पै जन भेजि पूछि बखान।।
की करूँ झगरा करत धगरा हठत नाहिं मनंत।
जब कहि कबीरै सालग्राम हि सौंपि न्याव करंत ।।11।।
तब द्विजनि सूँ रयदास भाषा सुनहु द्विज मम बाच।
अब सालग्रामहि न्याव सौंपो वे कहैं सो साँच ।।
द्विज कही लावहु मुख बुलावहु हरिहि हमहिं मनाय।
तब हरिहिं सिंघासन बिठाने नगर देखत आय ।।12।।
तिहि काल नाऊ सेन आऊ बसत बांधव ग्राम।
द्विज भणत वेद न भेद जानत भक्त समरत राम ।।
सब सुनत हरिजी गिरा गरजी भक्त तरजी नास।
ए विप्र झूठा होत रूठा सत्य जन रयदास ।।13।।
इन द्विजनि को कछु की बिगारा देत मारा याहि।
परतीत यामें भई झाली सिष्य भक्ति कराहि ।।
तुम विप्र धर्म विसारि अपनो क्यूँ दुखावत संत।
नहिं जाति कुल को भेद मेरो प्रेम बस भगवंत ।।14।।
मैं न्यून कुल हू अधिक मानत साधुताई देखि।
जे ऊँच कुल अन्याय ठानत परत नीचे पेषि ।।
तुम वेद हू को बल घटावत लोभ लगि करि रारि।
रयदास तुमहि सराप समरथ तोहु कछु न उचारि ।।15।।
मैं की करूँ तुम अनल अपनी जरत घास लगाय।
लघुता बड़ाई हाथ अपने लखहु करतब भाय ।।
अस भाष हरि चुप रहे तब सुर नभ खरे देखंत।
मुख बदत जय जय सुनत सब जन सुमन सुर बरसंत ।।16।।

सब विप्र तब निज राह लागे देखि भक्त प्रभाव।
सा सिष्य झाली मन खुसाली दिखायी गुरुभाव ।।
करि नमन रानी गृह पयानी बढ़ानी मन प्रीति।
तिस दिवस गृह रयदास सेना कबीरा मन जीति ।।17।।
निसि बसे भेला संत मेला भजन केला कीन्ह।
तिहि विष्णु आयुध चारिभुज धरि दरस भक्तन दीन्ह ।।
हरि दरस पायो मोद छायो भयो चरचा ग्यान।
निज जनन कूँ दे मान बहु हरि भये अंतरध्यान ।।18।।
अब सुनहु झाली प्रीति कूँ रयदास सेवा नेह।
उर उमगि उपजी गुरु हिं सेऊँ बोलि अपने गेह ।।
तब भक्त एक पठाय पत्री लिखी रति अति चाय।
गुरुदेव मोपर कृपा कीजै दरस दीजै आय ।।19।।
घन यथा वन कूँ मात बालहि बाग मालिहि पोष।
ज्यों स्वाति सीपहि नृपति द्वीपहि सूर कंजहि तोष ।।
गुरुदेव त्यों विष चाह पुरवै करै प्रीति निबाह।
सुनि पत्रिका रयदास ऐसी लखी सिष मन चाह ।।20।।
ले कबीरा पै हुकम चाले सिष्य लीन्हा संग।
बहु संत औरहु संग जेते रते राम प्रसंग।
ते निपुण गान बखान हरि गुण कथा कथन प्रबीन।
मग करत पावन गढ़ चितौड़हि आय खबरिहि दीन ।।21।।
सुनि गुरहिं झाली दरस चाली मन विसाली मोद।
तब प्रथम नरनि पठाय बागहि रखे करन प्रमोद ।।
मिलि जाय वाद्य बजाय मंगल गाय गुरु पद पास।
धरि सीस ईस बरीस पद रज अमित हृदय हुलास ।।22।।
तब धोय गुरु पद जलहिं सिर मुख धारि अरचन कीन्ह।
शुभ गंध केसरि अगरु मृगमद लाय लाया लीन्ह ।।
पुनि प्रसादहिं बाँटि आबिर गुलाली उड़वाय।
बहु ठानि उच्छव गुरुहिं झाली नगर डगर चलाय ।।23।।
पट पाट मग बितराय गुरुपद लाय सोभा कीन्ह।
धन वारि गुरु पै दान बहु करि मान डेरा दीन्ह ।।
यहु अधिक महिमा सुनी विप्रनि धर्‌यो मत्सर चित्त।

तिहि प्रात झाली पास डोढी गए करत कुपित्त ।।24।।
जब पुकारे तब कहत झाली क्यूँ पधारे विप्र।
की ग्राम घरती छीन लीन्ही इहाँ आए क्षिप्र ।।
ते पुरोहित की जाति के द्विज खिजत झाली पाहिं।
तुम बिगारा राज सारा गुरू चमार कराहिं। ।।25।।
सब लोग हम कूँ पूज्य मानत बखानत श्रुति भास।
तब कोप झाली गिर उछाली हुकम नृप गृह जास।।
द्विज अहो तुम दिल अकल राखहु क्यूँ कुभाषहु बैन।
तब रीति कासी में चमारा की न देखी नैन ।।26।।
कहि वेद में द्विज पूज्य तैसे नहीं लषण तिहारि।
धरि क्रोध मत्सर बोध बिन मन वृथा ठानत रारि।
तुम उतम द्विज तन काहि धारत काम अमरष लोभ।
ए विकारा बड़ चमारा बिगारा सब सोभ ।।27।।
द्विज धर्म सातिक रखो मन में जो पुजावे चाय।
सुनि द्विजनि ज्बाब न आय तब कहि प्रथम हमहि जिमाय ।।
हम पीछै भावै ज्यूँ करो तुम तबहि झाली गाइ।
गुरु पहलि तुम कूँ नहिं जिमाऊँ पीछि तुमहिं दिखाइ ।।28।।
यहु सुना झगरा कहि पठाई सरल मन रयदास।
तुम रखो झाली तोष इनको पीछे लें हम ग्रास ।।
तब मानि झाली द्विजनि सीधो दियो टाली रारि।
द्विज लेय सीधो कुमति ठानी कही बानी धारि ।।29।।
अब करैं इतहीं पाक सब दिन लाय ठानि अबारि।
तब मरहिं भूषे सकल मुड़िया देहु ऐही मारि ।।
द्विज करन लागे पाक तब दिन रहो मुहरत दोय।
उदघाट सिर द्विज लगे जेमन तबहि अदभुत होय ।।30।।
रयदास करि हरि ध्यान लीला करी विप्रनि हेत।
एक देह रूप अनेक दिखया द्विजनि पंक्ति उपेत।
द्विज जिते हुत रयदास तेते लगे जेमन संग।
द्विज परस्पर देखंत जन कूँ भयौ कौतुक रंग ।।31।।
ले आचमन द्विज परस्पर कहि कछू देख्या ख्याल।
तिहि माहिं विप्र सयान बोला अबहि आयो काल।।

रयदास सबके संग जेमा करामात दिखाय।
अब परो ताके चरन दौरो न तो मारहि पाय ।।32।।
द्विज डरे झाली पास विनवैं लेहु हमहि बचाय।
कहि जाहु मम गुरु चरन लागहु कोप नाहिं कराय ।।
द्विज करत भूमि प्रणाम चाले जहाँ लगि रयदास।
तिहि समय राणा पास हलका देखि एहि प्रकास ।।33।।
तब भूप सुनि रयदास दरसहि झुक्यो तबही आय।
पुनि विप्र हूते आय पहुँचे लगत हरिजन पाय ।।
रयदास तब उठि द्विजनि कूँ बहु मान दीन्हो गाय।
तुम ऊँच कुल द्विज हम चमारा क्यूँ लगत पग ध्याय ।।34।।
तब विप्र कहि तुम गुरु हमारा हम तुम्हारा दास।
दे सीष हमकूँ करैं सोई कीन्ह नवगुण नास ।।
अपराध हम बहु करा तुम्हरा तुम बड़े करणालु।
हरि भक्ति करणी हीन हम अभिमानि मन अदयालु ।।35।।
अब कृपा कीजै भक्ति दीजै संत संग प्रभाव।
रयदास तबहि प्रकास पूरब जनम निज अनुभाव ।।
तन चीर चर्म उदीर कांचन जनेऊ प्रगटाय।
सत सप्त विप्रनि दई तेती दिखत राणा राय ।।36।।
करि शिष्य तिनकूँ बोध बानी बखानी रयदास।
सुनिये अहो द्विजदेव हमही पुरा द्विज तन भास ।।
हरि भक्ति साधत चूक परिया पर्‌यो मैं कुल नीच।
अब भक्ति करि तन नीचहू मैं पूज्य सबके बीच ।।37।।
हरि भक्ति को अनुभाव ऐसो नहीं तैसौ कोइ।
धन जाति आश्रम वर्ण जप तप राज विद्या सोइ ।।
दृढ़ भक्ति करि हरि होत बसचर जथा अर्जुन कीन।
उहि देखिए तो कुंड गोलक पितामह कानीन ।।38।।
सब दोष हरि की भक्ति नासै प्रकासै जस सुद्ध।
ज्यों पांडवा सब बल बिहीना भक्ति बल जस रुद्ध ।।
ज्यों मेघ के इक नीर गुण करि अगुण सबहि दुराय।
जहि विषम मारुत तड़ित भय घन घोर सोर कराय ।।39।।
त्यों भक्ति करि सब अगुण नर के मिटत मृग हरि न्याय।

द्विज तुमहि तातें भक्ति धरिये जाति दर्प विहाय।।
नहिं ऊँच नीच विसेष प्रभु के सकल व्यापक विष्णु।
इक प्रीति प्यारी लगत ताकूँ गर्व को प्रभु जिष्णु ।।40।।
अस सुनी बानी द्विजनि मानी गह्यो भक्ति विचार।
हरि संत सम करि जानि मन में कीन्ह जै जैकार।।
तहि समय सिष रयदास के नर भए अगणत मान।
नृप नारि नर सब देख हरषे गयो द्विज अभिमान ।।41।।
सा सिष्य झाली भइ निहाली निरखि गुरु जस मोद।
रयदास अस जस सरस सुखप्रद भक्ति जाके गोद।।
हरि भक्ति हीन हि दुसह लागत ज्यों उलूकहि सूर।
यहु कथा रुचि नर सुनत गावत होय भक्ति प्रपूर ।।42।।

दोहा

भक्त भक्त जस मानई, नहिं अभक्त मानंत।
ज्यों ज्वर जुत नर असन को, नहिं आदर ठानंत ।।43।।

इतिश्री मभक्तदामगुणचित्रणी टीकायां रयदास भक्त गुण वर्णनोनाम् द्वौत्रिंशो रचनावृंद ।।32।।

10. श्रीदयालदास, खेड़ापा के भक्तमाल में रैदास

विमल चित्त पण प्रीत दिढ़ रैदास गिरा भगवद प्रियै ।।
प्रगट भये तत्काल आप मूरत मध बोले।
झूठे तुम सब विप्र जात अभमानस डोले ।।
गंग प्रगट जन करी किनक तन जंतु प्रकासी।
राजा राणा वंद वरण चत चरण निवासी ।।
हंस दसा मुख राम चव सुणत भगत मो मान श्रियै।
विमल चित्त पण प्रीत दिढ़ रैदास गिरा भगवद प्रियै ।।225।।

11. श्रीध्रुवदास कृत भक्तनामावली में रैदास

जगत विदित पीपा धना, अरु रैदास कबीर।
महा धीर दृढ़ एकरस, भरे भक्ति गंभीर ।।99।।

12. श्रीकिशनदास, टाँकला के भक्तमाल में रैदास व मीराँ

जन रिवदास साध घर माहीं, गुर भगता हरि संगी।
रामानंद सतगुरू भेट्या, हो गया कीट भिरंगी ।।113।।
नीचे कुल ऊँचे पद दीया, ऐसा राम दयालम।
जन रिवदास सिरोमणि कीना, भगतबछल प्रतपालम ।।114।।
सालगराम साध रिवदासा सनमुष बाताँ कीनी।
ब्राह्मण झूठ साच रविदासा, ब्रह्म बड़ाई दीनी ।।115।।
सरगुण भक्त नाम भज निरगुण, अर्थ कबीर उपाया।
घट में अघट राम अविनासी, दिल दीदार दिखाया ।।116।।
कहै कबीर सुणौं रिवदासा, घट भीतर पट खोलौ।
जे कोइ ग्यान दास होइ बूझै, राम बिना मत बोलौ ।।117।।
प्रेम बिरह जिज्ञास अँदर में, मीराँ आतुर आई।
जन रिवदास सतगुरू कीना, ब्रह्म भगति जद पाई ।।118।।
गढ़ चीतौड़ राज पटराणी, कुल राठौड़ कहाई।
मीराँ भगत दूसरी सिवरी, धिन जननी जस जाई ।।119।।

दो हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर सम्पादित पाठ;
संपादक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

13. सतं श्रीसुखसारण, टालनपुर के भक्तमाल में रैदास

नाम की प्रतीत आए सज्ना घर सालग्राम ऊँच नीच कुल की न कीनी काँई काण रे ।।
नाम की प्रतीत रविदास व्रिप्राँ पड़्यौ बाद सालग्राम करै न्याव सोई लीज्यो माण रे ।।
साँचो जन रविदास झूठा बामण दे त्रास तीन बेड़ भई बाणी बिप्र बेईमान रे।
भगत की लाज राखी अभगत गया भाज नाम की प्रतीत सुखसार्ण साँची आन रे ।।17।।

नाम की प्रतीत मगा देस में कबीर संत अंत हूँ मुगत पूँता और खर बाण रे।
नाम की प्रतीत गुर नानग पुजिजै मका पाँवड़िया सेवे सैद मुगल पठाण रे ।।
नाम की प्रतीत मन चंगा तो कठोती गंगा काँचली रैदास दीवी दे गई काँकण रे।
नाम की प्रतीत संत अंजली सुनाथ सदा गंगा में न कैई गत पदम पुराण रे ।।
तीरथ सुनाथ जामें संत जो चरण धरे नाम की प्रतीत सुखसार्ण साँची आण रे ।।40।।

रैदास की अवग्या कीनी राणी पै रसोई लीवी भग्वत जिंवाए भेला बामण चमार रे ।
बिपरा मुँडाय मूँड अराध्यो अनेक भेष कबीर की कोट कला करी करतार रे ।।
भेष की पँगत परी दादूजी की भिन कीनी एक सामी एक संत भए जिन बार रे ।।
बन सूँ रघुनाथ आए अयोध्या मिलण ध्याय जेता राम लिछमण तेता नर नार रे ।।
मथुरा किसन आए बधाए जनकराय सूरत सूँ मिल्या हरि उभै वपु धार रे।
सुखसार्ण राम रता सोई संत पतव्रता अवगत की गत कहा जाणें बिभचार रे ।।106।।

—नामप्रतीत—भगतमाला, पृष्ठ 24, 28, 44; टीकाकार
ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल; प्रकाशकः राजस्थानी—शोध—संस्थान।

14. दादूपंथी श्रीराघवदास कृत भक्तमाल पर चत्रदासी टीका में रैदास

मूल

रैदास निम्रल वाणी करी संशय ग्रंथि विदारने ।।
आगम निगम पुराण शब्द सब मिलत उचारण।
पय पाणी भिन्नता संत हंसा साधारण ।।
गुर गोविंद प्रसाद मुक्ति याही बपु जाहीं।
ब्राह्मण छत्रिय चकित काढि उपनयन बताहीं ।।
अष्ट मदादिक त्यागिया चरण रेण सिर धारणे।
रैदास न्रिमल वाणी करी संशय ग्रंथि निवारणे ।।156।।

दास रैदास की पैज रही निबही सब लोक सिरै मधि कासी।
बिप्रन बाद कियो यह जानकै सूद्र क्यों सालग्राम उपासी ।।
टेक यहै बटवा बिच राखहु जाहि के प्रीति है ताहि के आसी।
राघौ कहै गये दास रैदास पै प्रीति खुसी हरि जाति न जासी ।।157।।

टीका

राम हिं नंद सु सिष्य भलो इक ब्रह्म सु चारिहु चून हि ल्यावै।
वैस्य कहै इक चून हमार हु ल्यो तुम बीसक बार सुनावै ।।
मेह भयो तब वाहि पै ल्यावत भोग धर्यो हरि ध्यान न आवै।
रे किमि ल्यावत बूझ मंगावत ढेढ बिसाहत साप चलावै ।।116।।
नीच भयो सिसु खीर न पीवत याद सु पूरब बात रहाई।
अम्बर बैन सुन्यो रामा नंद हि दंड भयो मन यूँ चल जाई ।।

देखत पाय पड़े पितु मात हि सीस धर्‌यो कर पास नसाई।
बोब न पीवत यूँ पन जीवत ईश्वर जानत फेरि भुलाई ।।117।।
साधुन सेव लगे रयदास जु मात पिता ने जुदा कर दीया।
संपति ठाँव दिया न हुता बहु याहु तिया पति नाम न लीया ।।
जूतिन गाँठ न्रिवाह करै तन और उपानत संतन कीया।
सालगराम हि छान छवावत आप सु बाहर बाँट हि धीया ।।118।।
पावत कष्ट गनैं न भजै हरि संत सरूप धरे प्रभु आये।
भोजन पान कराय रिझावत लेहु करो सुख पारस ल्याये ।।
पाथर ढीमन से नहिं काम भजैं इक राम बहू समझाये।
हेम दिखाय दियो घसि राँपिन हाथ दियो धर छान पिखाये ।।119।।
मास त्रयोदस बीत गये हरि पूछत हैं जन पारस रीतं।
ल्यो बहिं ठौर सु मो डर चौर सु द्यौ किहिं और हि पावत भीतं ।।
ले फिर जात सुनो नव बात महोर हु पाँच दिई नित धीतं।
पूजन हू करते भय मानत रात कहा प्रभु राखत जीतं ।।120।।
आयसु मान चिंणावत मंदिर साधन राखि भली विधि चीन्हीं।
तान बितान हु ठौरन ठौरन भाव भगत्ति सु कीरति कीन्हीं ।।
राग रु भोग करै विधि वीधिहि ब्राह्मण बैर धरै बुधि दीन्हीं।
आप सिखावत विप्रन कौं हरि नीच तिया महलायत भीन्हीं ।।121।।
प्रेम सहेत करै नित पूजन यूँ रयदास छिप्यो हि लड़ावै।
तोहु सिखावत भूपति कों द्विज होय सभा मुखि गारि सुनावै ।।
दास बुलाय कहै नृप जोर न न्याय करैं हरि गैल छुड़ावै।
राखि सिंघासन दोउन के बिचि तेउ बड़े जिनपै प्रभु आवै ।।122।।
ग।। चितोड़हि भूप तिया सिष आय हुई उस नाम सु झाली।
साथ कई द्विज देख उठै दझि भूपति पै सु सभा मिल चाली ।।
भाँति उही धरि है बिच ठाकुर पाठ करै द्विज है सब खाली।
गावत है पद हो अघमोचन आप लगे उर प्रीति सु पाली ।।123।।
देस गई फिर कागज भेजत आय दया करि पावन कीजे।
आप चितोर गये धन वारत ब्राह्मण आवत याहु जिमीजे ।।
जीमन को जु लगे जब ही द्विज दोय में एक रैदास लखीजे।
आम्हनैं साम्हनैं पेष भये सिख काढ रु कंध जनेउ दिखीजे ।।124।।

15. चारण, संत श्रीब्रह्मदास दादूपंथी कृत भक्तमाल में रैदास

कितनेई परगट किये परचे तैं प्यारे।
दे मोहराँ रैदास कूँ तैं संकट टारे ।।

भगतमाल क्रमांक 5, पृष्ठ 52–53, सम्पादक : चारण–कवि
उदयराज उज्ज्वल, प्रकाशक : राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

16. श्रीसुखरामदास, मेड़ता के भक्तमाल में रैदास

जन रैदास राम का प्यारा, रामानँद गुरु पाया।
सालगराम साध के सायक, कासी न्याव चुकाया ।।90।।
विप्र वंस घर भरम भुलाया, ब्रह्म भगति नहिं पाई।
चीर गात अरु कनक जनोई, सब कूँ काढ़ दिखाई ।।91।।
भगतविछल भगवान भगत की टेक निभाई।
विप्र पड़्या फिर पाँय जगत सब करत बढ़ाई ।।92।।

—दो हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर सम्पादित पाठ।
सम्पादक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

17. रींवा नरेश रघुराजसिंह जुदेव के रामरसिकावली नामक भक्तमाल में रैदास

अब प्रकाश रैदास को, यह इतिहास अखंड ।।
सब श्रोता चित दे सुनहु, नाशत पाप उदंड ।।1।।
रामानंद भक्त परधाना। तासु शिष्य इक विप्र सुजाना ।।
सात भवन ते भिक्षा लेई। रामानंद गुरू कहँ देई ।।2।।
ताते कृपा पात्र गुरु केरो। होत भयो सो विप्र घनेरो ।।
एक दिवस भिक्षा हित गयऊ। जल प्रपात अतिशय तहँ भयऊ ।।3।।
खड़ो भयो यक बनिक दुवारे। बनिक ताहि अस वचन उचारे ।।
हम ही ते भिक्षा ले सटको। द्वार द्वार काहे को भटको ।।4।।
ला भिक्षा द्विज गुरु ढिग आयो। रामानंदहु पाक बनायो ।।
पुनि श्री हरि को भोग लगायो। भोजन करन आप मन लायो ।।5।।
तब द्विज सों बोले अस बानी। यह भिक्षा कहँ ते तुम आनी ।।
शिष्य कह्यो सब बणिक हवाला। बणिक बुलायो गुरु तत्काला ।।6।।
कहो पिसान कहाँ तुम पायो। बणिक नारि निज नाम बतायो ।।
तब पूछ्यो नारी सूँ जाई। नारी कही चमारिनी ल्याई ।।7।।
रामानंद प्रकोप करि, शिष्यहि दीन्हों शाप।।
चर्मकार कुल जन्म तुव, होय कियो बड पाप।।8।।
मर्‌यो ब्रह्मचारी लहि काला। सोइ चमार घर जन्यो उताला ।।
पै गुरु सेवन प्रगट प्रभाऊ। भयो न पूरव सुरति दुराऊ।। 9।।
बालक भयो वर्ष जब तीना। तब तें दूध पान नहिं कीना।।
मातु पिता तब भये दुखारी। बैठे रहे अचर्ज विचारी।। 10।।
रामानंदहि इतै खरारी। कह्यौ स्वप्न महँ वचन उचारी ।।

चर्मकार कुल तव शिष जायो। पय को पान करन बिसरायो ।।11।।
दे आवहु तुम ताहि रजाई। करै पान पय शोक विहाई ।।
रामानंद तुरत उठि धाये। बालक कानहिं वचन सुनाये ।।12।।
बच्चा करहु मातु पय पाना। तेर्‌यो दोष हर्‌यो भगवाना ।।
तब ते पान करन पय लाग्यो। बालहि ते रामहिं अनुराग्यो ।।13।।
भौ रेदास नाम अस ताको। करै कर्म रचिवौ जू ताको ।।
रचि पाँवरी संत कहँ देवै। संत चरण जल शिर धरि लेवै ।।14।।
जो कछु अहै चुराय कै, संतन देय चुराय ।।
मातु पिता अस जानि कै, दियो ताहि अलगाय ।।15।।
बाहर ग्राम कुटी रचि लीन्हीं। तहँ आपनी नीति अस कीन्हीं ।।
विरचि उपानत वेचन करई। आधो धन संतन को भरई ।।16।।
आधे में घर काज निवाहीं। पूजै सालग्राम सदाहीं ।।
करै रोज संतन सेवकाई। संत दीन नहिं लेय टिकाई ।।17।।
शुद्ध द्रव्य देतो जो कोई। पावत राम द्रव्य है सोई ।।
जो अशुद्ध धन करतो दाना। ताको कहुँ नहिं लगत ठिकाना ।।18।।
है नहिं दीन दान सम दाना। राम नाम सम नाम न आना ।।
दया धर्म सम धर्म न कोई। ब्रत सम और धाम नहिं होई ।।19।।
रैदासै विचारि निज दासा। साधु रूप धरि रमा निवासा ।।
आवत भे रैदासै धामा। रैदासहु किय दंड प्रणामा ।।20।।
साधु कह्यो तोहिं खर्च सकेतू। ताते मैं बांध्यो यह नेतू ।।
पारस देहुँ हर्ष संदोहा। सुवरन होत छुवाये लोहा ।।21।।
अस कहि रापी ताहि की, तामें दियो छुवाय ।।
तुरतै कंचन की भई, तेहि गुण दियो दिखाइ ।।22।।
कह रैदास न पारस लेहौं। याको कौंन काम करि देहौं ।।
मेरी रापी कियो खुआरा। चाम कटै नहिं गोठिल धारा ।।23।।
तब हरि पारस तेहि घर खोसी। कह्यौ राखियो है अति होसी ।।
अस कहिकै हरि अनत सिधारे। नहिं तापर रैदास निहारे ।।24।।
हरि बहुरे यक संवत माहा। पूछ्‌यो पुनि निज पारस काहाँ ।।
कह रैदास छुयो मैं नाहीं। लै पारस हरि गे कहुँ वाहीं ।।25।।
भोरहि जब रैदास नहाई। पूजै सालग्राम सोहाई ।।
मिलीं पाँच मोहर तेहि नेरे। फेंकि दियो नहिं तापर हेरे ।।26।।

दुसरे दिन दस मोहर देख्यो। महा उपद्रव निज कहँ लेख्यो ।।
अब करिहों पूजन नहिं कोई। साधु रूप प्रगटे हरि सोई ।।27।।
कह्यौ छाँडु अड़ अबहु पियारे। लै धन बिरचहु मोर अगारे ।।
जिनकौं पूजहु ते हैं हमहीं। मानों कहो बुझावैं तुमहीं ।।28।।
तब रैदासै कह्यौ वचन, करतो भजन चुराइ ।।
यामें ह्वैहै विघन बहु, जो देहो प्रगटाइ ।।29।।
तब हरि कह्यो निवारन करिहैं। तेरो धन संतन महँ डरिहैं ।।
तब रैदास लियो मन मानी। रोजहि मोहर दस प्रगटानी ।।30।।
हरि मंदिर बनवावन लाग्यो। संतहु सहस खवावन राग्यो ।।
वाराणसी बात प्रगटानी। अशकुन गुणि पंडित अभिमानी ।।31।।
जाय भूप सूँ चुगली खाई। भूपति होत अधर्म महाई ।।
सालग्रामहि एक चमारा। पूजत है नहाय हर बारा ।।32।।
ताहि देश तें देहु निकारी। नातो लगै अधर्महि भारी ।।
बेद विरूद्ध जासु नृपराजू। होत अनेकन कर्म दराजू ।।33।।
सो दूषण लागत नृप काहीं। करौ बिलंब नाथ अब नाहीं ।।
राजा तब रैदास बुलाई। बारबार तेहिं आँखि दिखाई ।।34।।
कह्यो वचन करि कोप अपारा। पूजब सालग्राम तुम्हारा ।।
बेद विरूद्ध धर्म यह हेरो। सालग्राम अहै द्विज केरो ।।35।।
तब रैदासै कह्यो वचन, नृपति न्याउ रत होय ।।
न्याउ सहित दीजै हुकुम, यामें दोष न कोय ।।36।।
हम पूजैं जे सालगरामा। लै आवैं चलिकै निज धामा ।।
फेकि दियो गंगा महँ जाई। जाके होय सो लेय बुलाई ।।37।।
आवै नहिं पंडितन बुलाये। तौ हम अपने लेत मँगाये ।।
जो निषाद शबरी गृह माहीं। गये होयँगे संशय नाहीं ।।38।।
जो पै पतित पावन कहवे हैं। मेरे टेरे कस नहिं ऐहैं ।।
भूप मुदित संमत सुनि कीन्हो। सकल पंडितन सों कहि दीन्हो ।।39।।
साभिमान पंडित बतराने। ऐहैं कस न हमारे आने ।।
चर्मकार की ओर सिधैहैं। पंडित विप्र और नहिं ऐहैं ।।40।।
यह अनरथ करिहैं कस ईशा। शासन दीजै तुरत महीशा ।।
तव राजा पयान उठि कीन्हें। सकल मंत्र शास्त्री सँग लीन्हें ।।41।।
वैदिक अरु षटशास्त्री जेते। साभिमान गवनत भे तेते ।।

नृप सँग चलि गंगा के तीरा। बैठे यत्न करहिं मति धीरा ।।42।।
नीच नीच सब तरि गये, रामचरण लवलीन।
जाति हि के अभिमान ते, बूड़े सकल कुलीन ।।43।।
कोउ कुशासन बैठि बिछाई। होम करै कोउ कुंड बनाई ।।
कोउ सुर्य्य सन्मुष भे ठाढ़े। कोउ गंगा पूजैं मन गाढ़े ।।44।।
इष्टदेव निज निजै मनावैं। स्तुति पाठ बहुत विधि गावै ।।
भई दंड दश की मरयादा। प्रथम दुहूँ सो होत विवादा ।।45।।
द्विजन बुलावत द्वादश दंडा। वीति गये भो शोच अखंडा ।।
तब भूपति बोल्यो असि वानी। द्विजन सयानप सकल सिरानी ।।46।।
बोले सालग्राम न आये। जप तप होम पाठ सब गाये ।।
अब तुमहूँ रैदास बोलाओ। आवत होय तौन मुख गाओ ।।47।।
सब पंडित मुख भये मलाने। देखन हित बहु मनुज जुहाने ।।
कह्यौ पंडितन सों पुनि राजा। कहै जो सब पंडितन समाजा ।।48।।
तौ रैदासो नाथ बुलावै। आवैं चाहि इतै नहिं आवै ।।
पंडित कह्यौ बोलावै सोऊ। लखैं तमाशा यह सब कोऊ ।।49।।
तब रैदास हुलास भरि, करिकै दृढ़ विश्वास ।।
यह पद कियो प्रकाश तहँ, ध्वावत रमानिवास ।।50।।
हे हरि आवहु बेगि हमारे।
जैसे आये द्रुपदसुता के, गज के काज सिधारे ।।
ज्यों प्रहलाद हेतु नरहरि हो, प्रगटे बज्रखंभ को फारे।
पति राखौ रैदास पतित की, दशरथ कौशलनाथ दुलारे ।।51।।

सहित सिंघासन राम, अंक लगे रैदास के ।।
द्विज सब करत प्रणाम, चरण गहे तजि मान को ।।52।।
निज जन प्रण को राखही, चारों युग रघुबीर ।।
शबरी पद के परसते, शुद्ध भयो सरि नीर ।।53।।
यह आश्चर्य विलोकि सु राजा। पर्यो चरण महँ सहित समाजा ।।
वित्त लुटावत सकल शहर में। पहुँचायो रैदासहि घर में ।।54।।
तजि तजि मान वर्ण तहँ चारी। भे रैदास शिष्य नर नारी ।।
एक दिवस बैठे निज द्वारा। एक विप्र सों वचन उचारा ।।55।।
जो तुम प्रागै भूसुर जैयो। एक सुपारी मोरि चढ़ैयो ।।

आयो विप्र तुरंत प्रयागा। दीन्ह्यो दान कियो यक जागा ।।56।।
चलत सबै गंगातट जाई। कह्यौ वचन करि बहुत हँसाई ।।
चर्मकार की लीजै भेंटा। दीन्ह्यौ मोहिं चलत भे भेंटा ।।57।।
अस कहि दीन्ह्यौ फेंकि सुपारी। निकस्यो कर मणि कंकण धारी ।।
तबै विप्र मन में पछिताना। मैं किय याग योग जप दाना ।।58।।
सो मैं कबहुँ न दरशन पायो। चर्मकार हित कर कढ़ि आयो ।।
गंगा तट कीन्ह्यौ सो धरना। स्वप्न माँह अस सुरसरि बरना ।।59।।
जाहु तुरत रैदास घर, परी भेद तहँ जानि ।।
विप्र तुरत रैदास पै, चल्यो अश्चर्य हि मानि ।।60।।
भई भेंट तब मारग माहीं। कह रैदास जाहु घर पाहीं ।।
कह्यो जाय अस मम तिय काहीं। धरे चार घृत घट घर माहीं ।।61।।
घूरे फेंकहु तिनहिं तुरंता। ऐसो कह्यो तुम्हारो कंता ।।
विप्र जाय रैदास तिया को। कह्यो सकल वृतांत पिया को ।।62।।
तुरतहि घृत घट डार्यो फोरी। कीन्ही नारि शंक नहिं थोरी ।।
तब अचरज गुणि द्विज घर आयो। अपनि तिया को वचन सुनायो ।।63।।
सजल एक घट फेंकहु प्यारी। सो सुनि दीन्ह्यौ पति को गारी ।।
मिलत कुँभारन के घर नाहीं। कहत बावरो फेंकन काहीं ।।64।।
तब द्विज नित शिर कूटन लागो। धनि रैदास विश्व बड़भागो ।।
ऐसी जाकी तिय घर विलसै। तेहि हित कस न गंग कर निकसै ।।65।।
यक झाली नामक की रानी। आई शिष्य होन हुलसानी ।।
नहिं रैदास मंत्र तेहि दीन्ह्यौ। तब कबीर सम्बोधन कीन्ह्यौ ।।66।।
रानी को रैदास तब, कियो शिष्य दे मंत्र।
तब तेहि सँग पंडित सकल, कीन्हें बैर स्वतंत्र।।67।।
चर्मकार को गुरु कियो, दीन्ह्यो धर्म बहाय।
रानी कह्यौ न नीच है, सांचौ ईश्वर आय।।68।।
भई परीक्षा गंग में, जाहिर सकल जहान।
पंडित कह्यो जो होय अब, तौ हम करैं प्रमान ।।69।।
तब तैसे पुनि गंग में, सालग्राम डुबाय।
द्रुत रैदास बुलाय लिय, गिरे बिप्र सब पाय।।70।।
रानी पुनि अस विनय सुनाई। ह्वै है कब मम भवन अवाई ।।
बोले बचन तबै रैदासा। एकबार ऐहैं तुव वासा ।।71।।

रानी गई देश कहँ जबहीं। गे रैदास भवन तेहि तबहीं ।।
संत पंचशत सहित समाजा। छावत हरि रव सकल दराजा ।।72।।
पहुँचे रानी देशहि जाई। रानी चलि कीन्हीं अगुवाई ।।
तहँ संतन भोजन करवायौ। निज घर में पंगति बैठायौ ।।73।।
विप्र कह्यो नीचन सँग माहीं। अशुचि होव बैठव हम नाहीं ।।
तब द्वै पाँती दिय बैठाई। खान लगे जब सब द्विजराई ।।74।।
देखि पर्‌यो अस तहाँ समाजा। द्वै द्वै विप्र बीच रैदासा।
सिगरे विप्र गुमान बिहाई। रैदासै प्रसाद लिय खाई ।।75।।
परे चरन में शिष्य अनंता। जय जयकार कियो सब संता ।।
पुनि रैदास सभा महँ आये। चीरि त्वचा उपवीत देखाये ।।76।।
कनक जनेऊ सब लखे, त्वच के भीतर आसु।
ऐसे चरित अनेक हैं, जे कीन्हें रैदासु ।।77।।

इतिश्री भक्तमाला रामरसिकावल्यां कलियुगखंडे उत्तरार्द्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।।47।।

18. संत श्रीहरिदास 'उतराधा' दादूपंथी के ग्रंथ

भक्तविरदावली में रैदास

दीन भगत रैदास न्हाण गंगा महिं आयौ।
दुष्टाँ कियौ तसकार और ही वोर खंदायौ ।।
चरण परस गंगा फिरी तन तैं निकस्यौ तार।
पंडित पलटे सात सै सतगुर कियौ चमार ।।9।।

– दादूपंथी उतराधा हरिदासजी कृत ग्रंथ भक्तविरदावली का छंदांक 9

– भक्त–विरदावली हमको दादूधाम, नरायना के ग्रंथांक 2, लिपिकाल वि.सं. 1796 में लिखा मिला 18 छंदों का छोटा सा ग्रंथ है।

– उक्त छंद में दो घटनाओं का उल्लेख है। प्रथम काशी की घटना हैए जहाँ ब्राह्मणों ने रैदास को गंगा में स्नान करने से रोककर दूर जाकर स्नान करने को कहा। रैदास ने दूर जाकर जैसे ही स्नान करना प्रारम्भ किया, वैसे ही गंगा मूर्तिमान होकर प्रकट हुई। रैदास के चरणस्पर्श किये और अन्तर्ध्यान हो गई। समस्त ब्राह्मण अपने किये पर लज्जित हुए।

– दूसरी घटना कुंभलगढ़ (चितौड़) की है, जहाँ रैदास ने अपने ब्राह्मण होने के प्रमाण में तार–यज्ञोपवीत अपने कंधे पर दिखाई, जिसके फलस्वरूप कुंभलगढ़ के 700 ब्राह्मणों ने रैदास को गुरु धारण किया। अनंतदास की परचई में भी सात सौ ब्राह्मणों का ही उल्लेख है। उदयपुर राज्य का इतिहास लेखक गौ. ही. ओझा ने भी महाराणा कुंभा के राज्यकाल में कुंभलगढ़ में सात सौ ब्राह्मणों द्वारा सात सौ मंदिरों में सात सौ झालरों के बजने की बात लिखी है। अतः सात सौ ब्राह्मणों की संख्या सर्वथा सही है।

19. कुचेरा निवासी सन्त श्रीसांवतराम कृत

भक्तमाल में सन्त रैदास

प्रगट संत रयदास पास पारस हर दीनो।
पारस पाहण जान प्राण बर हर उर चीनो ।।67।।
सालगराम सुधाम जाम आठू सँत सेवा।
ब्राह्मण घर अभमान अंध अग्यान अबेवा ।।68।।
सेवन सालगराम की सुद्र होय किम साझिया।
विप्र भगत झगड़ौ भयो हर जन गोद बिराजिया ।।69।।
जन कबीर रयदास दास दोन्यू गुरभाई।
जाको सुण परभाव भाव भल मीराँ आई ।।70।।
जन कबीर के जाय आय उर अत पिछताणी।
रैदास दास की भगति देख सुख पायो राणी ।।71।।
धर आपस में रोस विप्र बहु अवग्या कीनी।
उत्तम कुल कूँ छाड़ सुद्र की दछ्या लीनी ।।72।।
सुण राणी सँत सरण बैण भाखू समझाई।
मीधम जात अछोप सीर गुर धार र आई ।।73।।
तब मूरत मुख बोलकर मेटी गल की पास।
सब झूठा षटदरसणी साचा जन रयदास ।।74।।
चले बिप्र मुख मोड़ दौड़ राणा पै आये।
वास बरत तप त्याग सुद्र कुल धरम समाये ।।75।।
भई भिसट बेबुधी सुधी तज सज्यो अग्यानं।
तजी राज कुल रीत कियो कोइ पुंन न दानं ।।76।।
चरणामत के नांय न्रपत विष प्यालो दीयो।

लेकर दियो उतार जहर हर इंम्रत कीयो ।।77।।
जन मन जब परचो पायो अकाल मोत मेटण हरी।
जन रयदास प्रताप तैं राम सिंवर मीरां तिरी ।।78।।
राणी होय मन प्रसन द्रसन हरजन मन भाये।
देख दास दिल भाव चाव कर सतगुर आये ।।79।।
आण खड़ा चीतोड़ दोड़ जन चरण छवाये।
जन मन धन उर उमग देख दरसण सुख पाये ।।80।।
आतुर अनँत उमंग मन भाग भलो दरसन दियो।
विप्र भये बिपरीत गत प्रीत बिना भोजन लियो ।।81।।
करी रसोई तुरत सुरत धर जीमण लागा।
येक विप्र रैदास सरब बाँभण तम सागा ।।82।।
तज्यो बिप्र अपमान ग्यान अपनो उर माहीं।
हर गर हरजन बलब नहीं कुल कारण नाहीं ।।83।।
अभमान मान सब भान नर कर जोड़ चरण वंदन कियो।
काढ जनेऊ किनक की रैदास दास परचो दियौ ।।84।।

– सन्त सांवतराम कृत भक्तमाल, पृष्ठ 83, हस्तलिखित ग्रन्थ, लिपिकाल विक्रम–सम्वत 1893, श्रावण कृष्णा अमावस, लिपिकार साधु रामबकस, निवासी कुचेरा।

– संत साँवतराम का समय सम्वत् 1790, रामनवमी से पौष शुक्ला 3 सं. 1863 तक का है। इनके गुरु व पिता सन्त नानगदास, कुचेरा नवासी थे। नानगदास प्रसिद्ध सन्त दरियाव साहब के शिष्य थे।

– उक्त भक्तमाल में कुल 1010 छंद हैं। यह भक्तमाल उक्त पुस्तक के पृष्ठ 51 से प्रारम्भ होकर पृष्ठ 92 पर समाप्त होता है।

– भक्तिरसबोधनी टीका व अनंतदास की परचई का कुछ प्रभाव उक्त वर्णन में है। अनंतदास की झाली मीरां ही यहाँ जनश्रुत्यानुसार मीरां मेड़तणी बन गई है, जो गलत है।

– मीरां को राणा द्वारा दिया गया विष का कारण मीरां का रैदास की शिष्या बनना बताया गया है, जो मीरां के पदों से समर्थित नहीं है। मेड़तणी मीरां रैदास की शिष्या नहीं थी। अतः इस विवरण को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

– संत किशनदास, संत सांवतराम आदि ने मीरां झाली को मेड़तणी मीरां से मिला दिया है, जो सर्वथा अशुद्ध तथ्य है।

20. श्रीनारायणदास नाभा कृत भक्तमाल की श्रीबालकराम कृत भक्तदामगुणचित्रणी टीका में झाली रानी

मूल : छप्पय

कलिजुग जुवती जन भक्तराज महिमा सब जानै जगत ।।
सीता झाली सुमति सोभा प्रभुता उमा भटियानी।
गंगा गौरी कुँवरि उबीठा गोपाली गनेसदे रानी ।।
कला लखा कृत गढौ मानमति सुचि सतिभामा।
जमुना कोली रामा मृगादेवादे भक्तन विश्रामा ।।
जुग जेवा कीकी कमला देवकी हीरा हरिचेरी पोखे भगत।
कलिजुग जुवती जन भक्तराज महिमा सब जानै जगत ।।104।।

टीका : मनहरछंद

एती सप्तबीस बाई जिनि संत सेवकाई करी धरी हिये प्रीति सबै जग जानिये।
सुनो झालीजू की कथा जथा संत सेवकाई करत ही पाई प्रभुताई सो बखानिये ।।
एकदा रैदास जू को सिष्य सो चितौड़ आयो संग संत भीर धीर झाली सुनि मानिये।
नाना मिझमानी करी अति रति ठानी खरी धरी हिये दरसन कूँ काज साज ठानिये ।।30।।

एही सुनि राणा सोय झाली कूँ बरजदई नई रजधानी भई पति सुत भूप है।
संतनि दरस हेत झाली को सरस चेत अकुलाय कही कैसे देखौं संत रूप है ।।
पुनि मन दृढ़ धारि कोप लोप भूप कारि कैसे मोकूँ दैहै मारि चली सो अनूप है।
सोक सुत राणा कूँ पठाई भाषी खीजि के जू जात मैं दरस संत हरि को स्वरूप है ।। 31।।

राणा डौढी गाढ़ी करी धरी चौकी चौकस कूँ तेइ हरि अंध किये झाली चाली गई है।
काहू नहीं देखी ताहि जाय संत पद लागी बड़भागी रागी हर संत प्रीति लई है ।।

झाली मन मोद भरी संत आसा पूर करी काहू देखि झाली बात राणा कूँ जनई है।
झाली बैठी संतनि के पास सुख राशि भरी करी फेरि ठीक देखि नर कहि दई है ।।32।।

सुनि भूप अचरज मानि कही कैसे गई चौकी डोढी बैठी रही ताहि न निहारिये।
तब फेरि चौकी धारि देवाए किमार द्वारि कही पाछी आवै तब मारिके निसारिये ।।
पुनि झाली आई पाछी आछी भाँति निहसंक रंक चौकी बैठी तेई ताकत बिचारिये।
आवत ही द्वार के कपाट फाट गए भए अंध दृग चौकीदार हरि माया धारिये ।।33।।

झाली निज घर गई छिन मात्र लीला भई भई आँखि भूपति के ताकी कला सुनी है।
भूप आय रावले में झाली माय पाय पर्‌यो डर्‌यो मन पै न भर्‌यौ भक्ति सुधा घनी है ।।
कही लोग लाज काज राज रीति साज तामें तुम कूँ मैं बरज्यो है सुनि झाली भनी है।
मोकूँ तो अटकै मति तेरी तूही जानै कही छाने जावो मानी झाली ऐसे प्रीति छनी है ।।34।।

इतिश्री मभक्तदामगुणचित्रणी टीकायां झाली भक्त गुण वर्णनोनाम् पंचषष्टितमो रचनावृंद ।।65।।

– छन्द 31 की प्रथम पंक्ति का तात्पर्य है, नई राजधानी बनाने वाले राणा का पुत्र था, वह राणा जो इस घटना के समय कुंभलमेर नामक नई राजधानी का राणा था। नई राजधानी कुंभलमेर राणा कुंभा ने बसाई थी। अतः इसके अनुसार राणा कुंभा का पुत्र ऊदा इस समय मेवाड़ का राणा या युवराज था और झाली उसकी विमाता लगती थी। छंद 34 की पंक्ति 'भूप आय रावले में झाली माय पाय पर्‌यो' से भी झाली माँ तथा तत्कालीन राणा या युवराज पुत्र सिद्ध होता हैं। ऊदा सं. 1525 से 1530 तक मेवाड़ का राणा रहा। यह कुंभा का पुत्र था। अतः निर्विवाद रूप से झाली मीरां, राणा कुंभा की पत्नी सिद्ध होती है।

– सन्त बालकराम भक्तमाल के पहले टीकाकार हैं, जिन्होंने झाली का उक्त विवरण दिया है। संत बालकराम, बिसन्या जिला भीलवाड़ा (मेवाड़) राजस्थान के निवासी थे। अतः इन्होंने मेवाड़ के बासिन्दों से उक्त विवरण सुना होगा। मेवाड़ निवासी मेवाड़ की बातें प्रामाणिकता से कह व लिख सकता है। बालकरामजी ने प्रामाणिक ही लिखा है।

– झाली भी परमभक्ता थी। उसकी भक्ति में अनन्यता व दृढ़ता थी। तबही राणा के कोप का, पहरों का, चौकी बैठाने का कोई लाभ नहीं हुआ। वह निष्कंटक बनारस गई और आकर महलों में बिना किसी रुकावट के घुस गई। दरवाजे अपने आप खुल गए। यह घटना मेड़तणी मीरां की जीवन–घटनाओं से मेल नहीं खाती। अतः मेड़तणी मीरां और झाली मीरां अलग–अलग व्यक्तित्व हैं।

21. चरणदासी–सम्प्रदाय के संत श्रीजसराम 'उपकारी' कृत भक्त–बावनी में सन्त रैदास

दोहा

भक्त भयौ रैदास इक, सुनौं तास परताप।
अन्तज कुल में औतरा, सतगुर दिया सराप ।।1।।

चौपाई

रामानँद को सिस ब्रह्मचारी। गुर सेवा नित करै सँभारी ।।
भँवर वृत्ति करने कूँ जावै। इक बनिया नित बचन सुनावै ।।2।।
इक दिन सीधा हमसूँ लीजै। हरि संतन कूँ अरपन कीजै ।।
इक दिन बरखा भइ अति भारी। भिक्ष्या कूँ नहिं गया ब्रह्मचारी ।।3।।
वा दिन बनिये सैं ले आया। ल्याकरि सुन्दर पाक बनाया ।।
स्वामी हरि कूँ भोग लगावै। हरिजी ध्यान माहिं नहिं आवै ।।4।।
स्वामी कहि अन कित सूँ आया। उन कह मैं बनिये सूँ ल्याया ।।
स्वामी बनिया लिया बुलाई। कहि तेरे कहा होत कमाई ।।5।।

दोहा

जब बनिये कर जोर कै, कहा आपना भेव।
चाँडालों का बनज है, मेरे सुनि गुरदेव ।।6।।

चौपाई

जब स्वामी सुनिकै रिस कीया। सिस कूँ श्राप कोप करि दीया ।।
नीच अंस ले आया पापी। जन्म नीच घर धारौ आपी ।।7।।

गुर कूँ नमसकार जब कीना। तन तजि जन्म नीच घर लीना ।।
माता अस्थन करै न पाना। भक्ति प्रताप रही पहचाना ।।8।।
मात पिता सोचै मन माहीं। पुत्र भया पै पीवै नाहीं ।।
जब अकास बानी यौं भई। रामानँद कूँ ल्यावौ सही ।।9।।
होइ अधीन स्वामी कूँ ल्याया। स्वामी जानी मो सिस आया ।।
कहि बालक अब दूधी पीजै। सदा प्रभू की भक्ति करीजै ।।10।।

दोहा

गुर अग्या दूधी लई, नाँव धरा रैदास।
बालपना सूँ हरि भगति, करै जु डिढ बिसवास ।।11।।

चौपाई

इन हरि भक्तन सूँ चित लाया। मात पिता कूँ नहीं सुहाया ।।
माता पिता न्यारा करि दीया। इन इक जुदा भवन करि लीया ।।12।।
साध बिराजै वाके माहीं। आपन बैठै ता परछाँई ।।
मोलि रँगा चमड़ा ले आवै। वाके जूते सीम बनावै ।।13।।
तिनकूँ बेच और ले आवै। नफा रहै साधन भुगतावै ।।
सालगराम सँतन सूँ लीया। ताके सेवन में चित दीया ।।14।।
संत दया करि पारस दीना। राँपी लाइ स्वर्ण इन कीना ।।
पारस सौना धरि दिया जबही। फिर यानैं देखा नहिं कबही ।।15।।

दोहा

दे साधू रमते भये, तीरथ परस जाय।
तेरह मास बदीत करि, फिर दरसन दिये आय ।।16।।

चौपाई

साधौं देखा जूता करता। कहि पारस ले क्यौं दुख भरता ।।
जब रैदास कहा निज भेवा। मेरै पारस हरि गुरदेवा ।।17।।
यह पारस मो कारज नाहीं। तुम धरि गये धरा वा ठाहीं ।।
साधू पारस ले कहिं धाये। इन हरि पूजा हित चित लाये ।।18।।
पाँच महुर पूजा के माहीं। नित आवै यह लेवै नाहीं ।।

कहै प्रभु मोहि चहिये भगती। माया सूँ नित रखो बिरकती ।।19।।
हर मंदर इक नया बनाया। हर सरूप तामें पधराया ।।
रैदासा की असतुति छाई। सो बिप्रन कूँ नहीं सुहाई ।।20।।

दोहा

मनह किया रैदास कूँ, उन नहिं मानी कोय।
जाय पुकारे भूप पै, बेग बुलाया सोय ।।21।।

चौपाई

कहि हरि पूजा करै चमारा। याको नहिं तोकूँ अधिकारा ।।
कहि रैदास भक्ति मैं करूँ। खोटा कर्म नहीं चित धरूँ ।।22।।
पाप त्यागि हरि भक्ती कीजै। यामें कहा तुम्हारो छीजै ।।
जभी सोच नृपती कूँ परी। कहि यह न्याव चुकावैं हरी ।।23।।
ठाकुर की चौकी मँगवाई। सो दोउन के बीच धराई ।।
कही प्रभू जो तुमकूँ प्यारा। जापै जावौ सबन मँझारा ।।24।।
राजा अरु सब विनती करी। आप नवेड़ा कीजे हरी ।।
जब हरि चौकी सबन मँझारी। रैदासा पै बेग पधारी ।।25।।

दोहा

सब ब्राह्मण अहँकार करि, कही करैं अपघात।
मिटी बेद मरजाद सब, उलटी कीनी बात ।।26।।

चौपाई

जब वाणी भइ गगन मँझारी। प्रेम भक्ति कहि श्रुति सूँ न्यारी ।।
आप आप कूँ सब उठि गये। रैदासा हरि सेवत भये ।।27।।
भाव बढा राजा मन माहीं। आवत भया द्रसन के ताहीं ।।
रैदासा चरनामृत दीया। तन में डारा नृप नहिं पीया ।।28।।
बसन दिये धोवन कूँ राये। इक चेरी के हाथ पठाये ।।
बहुत सुगँध चेरी कूँ आई। उन सूंघा फिर जीभ लगाई ।।29।।
ताकूँ भक्ति भई अधिकाई। वह ले धोबी कूँ दे आई ।।
धोबी गँध ले दाँत लगाया। बाकूँ भक्ति ज्ञान होइ आया ।।30।।

दोहा

धोबी चेरी बचन सुनि, पछताया जब भूप।
कहि अब चरनामृत लहूँ, उपज्या हेत अनूप ।।31।।

चौपाई

फिर नृप चरनामृत कूँ आया। कहि रैदास अबै नहिं राया ।।
जब बहुतै पछताया राई। तब वाकूँ हरि भक्ति बताई ।।32।।
फिर इक झाली रानी आई। रैदासा की सिस होय धाई ।।
रहै दरावड़ देस मँझारा। गुर उतसव का किया भँडारा ।।33।।
उन सुमरण करि गुरू बुलाया। प्रीत जानि रैदासा ध्याया ।।
तिन न्यौंता दे बिप्र बुलाये। वे सब यौं बतलाकै आया ।।34।।
जब सब आगै पारस आवै। तजि भागै परसाद न पावै ।।
जब उन आगै पारस आये। रैदासा बहु रूप बनाये ।।35।।

दोहा

तब द्वै द्वै बिच एक इक, लखे सबन रैदास।
जब सबही पावत भये, ऊठन की तजि आस ।। 36।।

चौपाई

उठिकै कही क्रिया सब खोई। सुनत भया रैदासा सोई ।।
रैदासा तन चीरा तबही। कनक जनेऊ काढा तबही ।।37।।
लखि बहु प्रीति तिन्हौं कूँ भई। रैदासा सूँ दिक्ष्या लई ।।
बहुत भक्ति परताप बढ़ाया। जब रैदास आप घर आया ।।38।।
एक समैं परबी दिन आया। इक ब्राह्मन आ बचन सुनाया ।।
आ रैदास गँगाजी चलैं। करै सनान दरस होइ भलैं ।।39।।
कही रैदास द्रसन मैं पाऊँ। घर बैठें नित गंगा न्हाऊँ ।।
ब्राह्मण के निहचै नहिं आई। दस कौडी रैदास पठाई ।।40।।

दोहा

कहीक मो दंडौत कहि, कर काढै जब द्योह।
जाइ ब्राह्मण बंदन करी, कही मात यह ल्यौह ।।41।।

चौपाई

हाथ काढ़ि कौडी लइ गंगा। करि कंगन करि दिया उमंगा ।।
कहि देइयो रैदासा ताहीं। ब्राह्मण रखि लीनौं घर माहीं ।।42।।
बिप्पर बेच बैस कूँ दीया। रानी सुन मगवाय जु लीया ।।
रानी भूपति बात सुनाई। राजा ब्राह्मण लियो बुलाई ।।43।।
कहि दूजा कंगन द्यौ ल्याई। उनि रैदासा दियो बताई ।।
आयो रैदासा पै राई। कहि कंगन दूजा द्यौ भाई ।।44।।
कहि रैदासा मोपै नाहीं। कंगन लीजै ब्राह्मण पाहीं ।।
ब्राह्मन कही दगा मैं कीया। याकूँ दीया में रखि लीया ।।45।।

दोहा

रानी कहि दूजे बिना, मैं जीऊँ कोइ नाहिं।
राजा पड़ा अधीन होइ, रैदासा पग माहिं ।।46।।
सुमरण करि रैदास जब, गंगा लई बुलाय।
कूँडी में कर काढि कै, कँगन दियो हरषाय ।।47।।
गंगा कहि हरि भक्त तुम, करूँ कहो सो काज।
तुम अग्या क्यौं ना करूँ, भक्तन बसि महाराज ।।48।।
कंगन दीया भूप कूँ, सब पूरन किये काम।
भक्ति बढाई जगत में, प्रगट भये जसराम ।।49।।
कथा कही रैदास की, सुनौं राखि बिसवास।
हिरदै में हरि भक्ति होय, टूटै जम की पास ।।50।।

इतिश्री भक्तबावनी उपकारी जसराम कृत जन रैदास आख्यान वर्णनोनाम उणतीसमों प्रभाव।। 29।।

– विक्रम–सम्वत् 1853, मार्गशीर्ष, शुक्ल–पक्ष, मंगलवार को सापला की गढ़ी में ब्रह्मदास के शिष्य मलूकदास द्वारा लिखित पुस्तक के पृष्ठ 26 से 254 तक में लिखी भक्त–बावनी से रैदास–सम्बन्धी 29वें प्रभाव का यथारूप पाठ। पृष्ठ 180 से 184 तक।

– सन्त जसराम, प्रसिद्ध सन्त चरणदासजी के शिष्य थे। इनका जन्म–स्थान झाझर परगने का सुवाणा नामक गाँव था। इनके पिता का नाम सीताराम व माँ का नाम अनंदी था। बचपन से ही इनका मन वैराग्योन्मुख था। पिता जल्दी ही परालोकवासी हो गये। माँ ने इन्हें चरणदासजी को भेंट कर दिया। भक्त–बावनी ग्रंथ संतों के

आग्रह से इन्होंने तापी गंगा के किनारे बसे बुरहाननगर में आषाढ़ कृष्णा पंचमी, मंगलवार, विक्रम–सम्वत् 1841 को बनाना प्रारम्भ करके आश्विन मास, विक्रम–सम्वत्, 1841 को पूरा किया।

– आलोच्य हस्तलिखित ग्रंथ के प्रारम्भ में पृष्ठ 1 से 26 तक इनका अन्य ग्रन्थ 'भक्तिबोध' लिखा हुआ है। अन्त में पृष्ठ 254 से 284 तक इनके कई रागों में पद लिखे हुए हैं। इनकी रचनाओं को पढ़ने से ये कुशल वाणीकार संत मालूम होते हैं। पता नहीं, इन जैसे कितने ही कुशल रचनाकार सन्त अभी–तक कर्पट मंजुषाओं में बन्द पड़े अपने उद्धार की बाट जोह रहे हैं।

– संत जसराम ने झाली को दरावड़ (द्रविड़)–देश की बताई है। भोजन के समय दो रैदास दीखने की घटना भी दरावड़–देश की ही बताई है। यहीं झाली ने दीक्षा ली, जबकि भक्तमाल की टीकादि में इस घटना को चित्तौड़ (कुंभलमेर) की बताई गई है। इस घटना के पश्चात् रैदास को वापिस बनारस भी जाता हुआ बताया है।

– संत जसराम ने गंगा को चढ़ाने के लिए ब्राह्मण के हाथों दस कौड़ी भेजना लिखा है। कोई कंगन भेजना लिखते हैं। कोई एक पैसा भेजना बताते हैं।

– चरणामृत का प्रसंग संत जसराम ने राजा के संदर्भ से लिखा है। कुछ इसे गोरखनाथ से सम्बन्धित बताते हैं और 'वह पानी मुलतान गया' कहावत का उद्‌गम स्रोत इसी घटना को बताते हैं। विस्तार के लिए पढें 'हरदास ग्रंथावली' : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल।

22. मराठी भक्तमाल 'भक्तविजय' में रैदास

श्रीगणेशायनमः।। श्रीराधाकृष्णाभ्यांनमः

ऐका श्रोते हो सावकाश। परम वैष्णव रोहीदास ।।
हरिभजन रात्रं दिवस। प्रेम भावें करीतसे ।।1।।
मनें दुराशा सांडोन। भावें करीतसे हरकीर्तन ।।
नित्यनेमें स्नान करून। विष्णुपूजन करीतसे ।।2।।
संसारी असोनि जाण। परोपकारी योजिला त्याणें ।।
आल्या वैष्णवाकारण। एक जोड़ा देतसे ।।3।।
चर्मकवृत्ति नीच दिसे। तेथें अणुमात्र न घडे दोष ।।
उपकारा करीतां जगन्निवास। प्राप्त होईल तयासी ।।4।।
गवंडी आणि पाथर वटांस। कर्म करितां नाहीं दोष ।।
उपकार करितां जगन्निवास। प्राप्त होईल तयांसी ।।5।।
साळी कोळी बेलदारांस। निज कर्मांत न घड़े दोस ।।
परोपकारें जगन्निवास। प्राप्त होईल निजनिष्ठें ।।6।।
रजक आणि रंगाप्यासी पाहीं। निजकर्म करिता दोष नाहीं ।।
परोपकारें भजतां कांहीं। सार्थक देहीं घडेल ।।7।।
तपी आणि ब्राह्मणांच कर्मांत। कपट घात नाहीं त्यांत ।।
परोपकारें रुक्मिणीकांत। श्रोतीं चित्त देइंजे ।।8।।
असो आतां बहु भाषण। अठरा वर्णांची सांगतां खूण ।।
पुढें कथा वाढेल जाण। श्रोतीं चित्त देइंजे ।।9।।
मग परोपकारें रोहिदास। भजों लागला वैष्णवांस ।।
फाटके मोचे यात्रे कर्यांस। सांधोनियाँ देतसे ।।10।।
परोपकारी भक्त जाण। हरीस आवडती जीवाहून ।।

त्यांचे घरी जगज्जीवन। रात्रं दिवस तिष्ठत ।।11।।
उपदेश देऊनि जनासी। सेवा घेती तयांपासीं ।।
आपण थोडें उदकही कोणासी। न देती जार सर्वथा ।।12।।
ते पढत मूर्ख ते अज्ञान। ऐसें रोहिदासें जाणून ।।
भावें करी वैष्णव पूजन। मिथ्या संसार जाणूनि ।।13।।
प्रातः काळीं उठोन। आधीं करीत से भोजन ।।
यावरी कारूनियाँ स्नान। विष्णुपूजन करीतसे ।।14।।
ऐसें ऐकूनि मानसीं। विपरीत वाटलें श्रोतयांसी ।।
तरी उपवासी बैसतां ध्यानासी। स्वस्थ मनासी वाटेना ।।15।।
कलियुगीं अन्नमय प्राण। ऐसें बोलती सर्वज्ञ जन ।।
दोन प्रहर येतां दिन। व्याकुळ होती तत्काळ ।।16।।
क्षुधा लागेळ करितां ध्यान। तेन्हा तत्काळ फांकेल मन ।।
रोहिदास हे जाणून। आधीं भोजन करीतसे ।।17।।
जैसें चोर झोंपतांचि जाण। आधीं टाकूनि देइजे धन ।।
कीं पिशाचबाधा न होतां पूर्ण। देती सांदण पंचाक्षरी ।।18।।
कीं निधान उकरिता विवसी छली। त्या आधीं साधक देती वली ।।
कीं हवालदार न देतां शिव्यागाली। जवा तत्काल देइजे ।।19।।
रोहिदास तैशा रीतीं। आधीं देत प्राणाहुती ।।
मग स्नान करूनि सत्वरगति। करी एकांतीं देवपूजा ।।20।।
तंव कोणे एके दिवसीं। विष्णु भक्त बैसला देव पूजेसी ।।
साहित्य घेऊनि एकातांसीं। चंचल मनासी आवरिले ।।21।।
चर्माचा बोदला आणून। उदक ठेविलें भरून ।।
आसन गवाले संपुष्ट जाण। चर्माचींच असती कीं ।।22।।
सर्व चर्माचीं उपकरणी। रोहिदास बैसला घेऊनी ।।
तो पंचांग सांगावयालागूनी। ब्राह्मण गृहासी पातला ।।23।।
वृंदावन सुचिर्भूतसुंदर। ते स्थलीं बैंसळा द्विजवर।
रोहिदास उठोनि सत्वर। केला नमस्कार निजभावे ।।24।।
ब्राह्मण म्हणे रोहिदासासी। देवपूजा तूं करितोसी।
चर्माचे आसानीं बैसलासी। याचें फल कोणतें ।।25।।
विष्णुमूर्ति शालिग्राम जाण। आम्ही ब्राह्मण करितों पूजन ।।
त्वां चर्माची संबळी करून। त्यांत कैसा घातला ।।26।।
वैकुंठवासी जगज्जीवन। ज्याचें योगी करिती ध्यान ।।

त्वां चर्माची संबळी करून। त्यांत कैसा घातला ।।27।।
जो क्षीरसागरीं शेषशायी। शास्त्रें धुंडितां न पडे ठायीं ।।
चर्माची संबळी करूनि पाहीं। त्यांत कैसा ठेविला ।।28।।
ब्रतें तीर्थे तपें याग। करितां नातुडे श्रीरंग ।।
तो वैकुठवासी भक्तभव भंग। चर्मांत कैसा वेष्टिला ।।29।।
ऐकूनिं द्विजवराचें वचन। रोहिदास बोले त्याकारण ।।
चर्मावांचोनि पदार्थ कोण। तुम्हीं दृष्टीस देखिला ।।30।।
काहाल ढोल मृदंग जाण। त्यावरी होत से हरिकीर्तन ।।
चर्मावांचूनि पदार्थ आन। दृष्टीस न देखों सर्वथा ।।31।।
चर्माची धेनु कपिलवर्ण। तिचें दुग्धं पवित्र जाण ।।
तेणें पंचामृत स्नान। देवाकारण घालितां ।।32।।
जारज अंडज उद्‌भिज्ज नाम। तीन्ही खाणी वेष्टिल्या चाम।।
त्यांत नांदे आत्माराम। सर्वां भूतीं सारिखा ।।33।।
शूद्र वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण। चामें वेष्टिलें संपूर्ण ।।
चामाचा नगारा करून। चामाचा हात वाजविती ।।34।।
त्यांतूनि मधुर निघे ध्वन। ते चर्माचे ऐकती कान ।।
चर्माचे जिव्हे करून। वेद कैसे बोलती ।।35।।
चर्माचे हस्तें करून। तुम्ही करितां अन्नपान ।।
चर्ममंदिरीं आत्माराम। मधुर ध्वनि बोलत ।।36।।
ब्राह्मण म्हणे रोहिदासासी। ब्रह्मज्ञान तूं बोलतोसी ।।
परी जीव असतां शरीरसी। विटाळ नाहीं सर्वथा ।।37।।
यावरी रोहिदास बोले वचन। विश्वव्यापक जगज्जीवन ।।
तो गवाळ्यांत असोन। विटाळ कैसा मानितां ।।38।।
रजस्वलेच्या रुधिरांत। त्यांत पुरषांचें पडे रेत ।।
त्याचें शरीर हें निश्चित । अभंगळचि जाणतां ।।39।।
जन्मतां आणि मरतां। याचा विटाळ तुम्ही धरितां ।।
तेथें उत्तम पदार्थ कोणता। तुमचे दृष्टीस कोण दिसे ।।40।।
अंमगळ यापरीचे चाम। तेथे उत्तम आत्मराम ।।
निष्कलंक घनश्याम। सर्वां घटीं घटीं सारिखा ।।41।।
ब्राह्मण वदेते वेळां। शालिग्राम शुद्ध शिला ।।
हा चर्मकानीं जरी पूजला। दोष घडतो त्यां लागीं ।।42।।
ऐकूनि ब्राह्मणाचें वचन। रोहिदास वदे त्यालागून ।।

शालिग्राम शिला पूजावी कोणें। ऐसें स्वामी मज सांगा ।।43।।
ब्राह्मण म्हणे रे शतमूर्खा। आम्हीं पूजावें वैकुंठनायका ।।
चहूँ वर्णांमाजी देखा। श्रेष्ठ वर्ण ब्राह्मण ।।44।।
देवांत श्रेष्ठ श्रीहरी। चहूँ वर्णांत ब्राह्मण थोरी ।।
यज्ञोपवीताचा अधिकारी। त्यानेचि विष्णु पूजावा ।।45।।
ऐसें ऐकूनियां वचन। रोहिदास बोले व्याकरण ।।
यज्ञोपवीत दाखवीन। तुजलागून स्वामिया ।।46।।
मग रांपी घेऊनियां करीं। उदर चिरिलें ते अवसरी ।।
यज्ञोपवीत सत्वरीं। तयामाजी दाखविलें।।47।।
विप्र बोले ते अवसरा। तूं विष्णु भक्त होसी खरा।
म्यां न करिता निज विचारा। तुजकारणें छलिलें कीं ।।48।।
अग्नींत टाकितां जाण। मोलासी चढ़े जैसें सुवर्ण ।।
तैसें करितां तुझे छलण। महिमा तुझा वाढविला ।।49।।
नातरी नाणें सुलाखीं टोंचून। त्याचें पाहाती खरेपण।
त्यापरी करितां तुझे छलण। महिमा तुझा वाढेल ।।50।।
कीं साहाणेवरीं घांसितां चंदन। तयाचा सुगंध कले पूर्ण ।।
तेवीं मीं तुझें करितां छळण। तुझा महिमा वाढेल ।।51।।
कीं लोह परिसासी झगटतां जाण। तत्काल त्याचें होय सुवर्ण ।।
तैसें करितां तुझे छळण। महिमा पूर्ण वाढला ।।52।।
नातरी टांकींनें फोड़ईनि पाषाण। देव बैसविला दृढ करून ।।
तेवीं म्यां तुझें छळण। केलें जाण न कळतां ।।53।।
तूं विष्णु भक्त आहेसी परम। सुखें पूजीं शालिग्राम ।।
ऐसें बोलिनि द्विजसत्तम। गृहासी गेले आपुल्या ।।54।।
पुढिले अध्यायीं निरूपण। पिवाजी चरित्र अति पावन ।।
महीपते म्हणे एकाग्र मन। परिसा सज्जन निज प्रीतीं ।।55।।
स्वस्ति श्री भक्त विजय ग्रंथ। ऐकतां तुष्टेल जगन्नाथ ।।
प्रेमळ ऐका भाविक भक्त। पंचविंशाध्याय रसाळ हा ।।56।।

अध्याय ।।25।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।
श्रीरुक्मिणीपाण्डुरंगार्पणमस्तु ।। श्रीरस्तु ।। शुभं भवतु ।।
।। भक्तविजय पंचविंशाध्याय समाप्त ।।

23. रसिकभक्त श्रीहरिरामजी 'व्यास', वृन्दावन की वाणी में रैदास

23.(1)

इतनौं है सब कुटुँब हमारौ।
सैंन धना अरु नामा पीपा, और कबीर रैदास चमारौ ।। टेक।।
रूप सनातन कौ सेवक, गंगल भट्ट सुढारौ।
सूरदास परमानँद मेहा, मीरां भक्त विचारौ ।।
ब्राह्मन राजपुत्र कुल उत्तम, तेऊ करत जाति कौ गारौ।
आदि अंत भक्तन कौ सर्बस, राधाबल्लभ प्यारौ ।।
आसू कौ हरिदास रसिक, हरिबंस न मोहि बिसारौ।
इहि पथ चलत स्याम स्यामा कै, व्यासहि बोरौ भावहि तारौ ।।80।।

23.(2)

साँचे साधु जु रामानन्द।
जिनि हरिजू सौं हित करि जान्यौं, और जानि दुख द्वंद्व ।। टेक।।
जाकौ सेवक कबीर धीर अति, सुमति सुरसुरानंद।
तब रैदास उपासिक हरि कौ, सूर सु परमानंद ।।
इनतें प्रथम तिलोचन नामा, दुख मोचन सुख कंद।
खेम सनातन भक्ति सिंधु रस, रूप राघवानंद ।।
अलि हरिवंशहि फव्यौ राधिका, पद पंकज मकरंद।
कृष्णदास हरिदास उपास्यौ, वृंदावन कौ चंद ।।
जिनि बिनु जीवत मृतक भये हम, सह्यौ बिपति कौ फंद।
तिनि बिनु उर कौ शूल मिटै क्यौं, जिये व्यास अति मंद ।।85।।

23.(3)

व्यास बडाई छाँड़ि कैं, हरि चरनन चित जोरि।
एक भक्त रैदास पर, वारौं बामन कोरि ।।48।।

23.(4)

भक्त न भयौ भक्त कौ पूत।
भक्त होइ साकत कैं ज्यौं, श्रुतदेव सुदामा सूत ।। टेक।।
उग्रसेन कैं कंस बली कैं, बानासुर जमऊत।
भीषम कैं रुक्म विभिषन, के घर भयौ कपूत ।।
सेन धना रैदास भयौ, जयदेव कबीर अभूत।
बूड़्यौ बंस कबीर कौ जब, भयौ कमाला पूत ।।
होइ भक्त के साकत जानिवौ, अन्य काहु कौ मूत।
ब्रह्मा के नारद व्यास कैं, विदुर औ शुक अवधूत ।।146।।

23.(5)

नाचत गावत हरि सुख पावत।
नाचि गाइ लीजै दिन द्वै पुनि, कठिन काल दिन आवत ।। टेक।।
नाचत नाऊ भाट जुलाहौ, छीपा नीकै गावत।
पीपा अरु रैदास विप्र जय, देव सु भलैं रिझावत।।
नाचत सनक सनन्दन अरु सुक, नारद सुनि सचु पावत।
नाचत गान गंधर्व देवता, व्यासहि कान्ह नचावत ।।209।।

23.(6)

कहा कहा नहिं सहत सरीर।
स्याम सरन बिनु कर्म सहाइ न, जनम मरन की पीर ।। टेक।।
करुनावंत साधु संगति बिनु, मनहिं देइ को धीर।
भक्ति भागवत बिनु को मेटै, सुख दै दुख की भीर ।।
बिनु अपराध चहूँ दिसि बरसत, पिसुन वचन अति तीर।
कृष्ण कृपा कवची तै उबरै, सोच बढ़ी उर पीर ।।
नामा सैंन धना रैदास, दीनता फुरी कबीर।
तिनकी बात सुनत श्रवननि सुख, बरषत नैंननि नीर ।।
चेतहु भैया बेगि कलि बाढी, काल नदी गंभीर।
व्यास वचन बलि वृंदावन बस, सेवहु कुंज कुटीर ।।219।।

— हरिराम व्यास वाणी, सम्पादकः स्वामी हितदास, वृंदावन

24. संतप्रवर दादूदयाल के शिष्य संत रज्जब की वाणी में रैदास

24.(1)

राँका नाम कबीर सेन सदना कुलहीना।
पदम परस रैदास धना नापा सु कमीना ।।
देगू दीपू कौन कौन कीता सु कनेरी।
बिदुर बाँदरा बंस जाति सबही की हेरी ।।
सुकल हंस से गोत गत नीच न को इनसे करैं।
रज्जब भजन प्रताप से सकल वंस सिर पर धरैं ।।9/3।।

— रज्जब की वाणी, टीकाकार : नारायणदासजी स्वामी

24.(2)

जाति जगतगुर देखै नाहीं। मिलै प्राणपति प्रीतिहि माहीं ।।टेक।।
नाम कबीर दादू जन तारे। नाँव नेह नौखंड उजारे ।।
सधना सैन र कीता थोरी। हरि हित सीझे हैं कुल कोरी ।।
आदि जैदेव अंति रैदासा। भाव भगति काटे क्रम पासा ।।
जन रज्जब करुणामै केसौ। पेम नेम भजि भानि अँदेसौ ।।

— 22/19— रज्जब की सरबंगी, सम्पादक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

24.(3)

चमारी गर्भे उत्पन्नो रैदासो महामुनि।
उत्तम ब्रह्म स्मरणं नामं तस्मात् किम् न्याति कारणं ।।

—22/39— रज्जब की सरबंगी, सम्पादक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

25. हरदासी–पंथ–प्रवर्तक संत हरदास की वाणी में रैदास

हरि हरि हरि हरि हरि हरि। हरि हरि कहत गये निसतरि तरि ।। टेक।।
हरि कैं नाँव कबीर उजागर। जनम मरण के छेके कागर ।।
निमति नामदे घरि पय पायौ। बहुरि न जोनी संकुटि आयौ ।।
जन रैदास राम रँगि राता। हरि परसाद नरकि नहिं जाता ।।
धू सुनि साखि अमर पद अंजे। पखि प्रहलाद पिसन सब गंजे ।।
मन परतीत प्रेम ल्यौ लागी। रटि रैदास रसन ल्यौ लागी ।।22/21।।

– रज्जब की सरबंगी; सम्पादक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल
– हरदास – ग्रंथावली, सम्पादक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

26. राजर्षि पीपा की वाणी में संत रैदास

मनाँ भजसि रे हरि चरण।
परम पुनीत आरति हरण, और जँजाल सब तजसि लोई ।।
जोग अरु जग्य जे कोटि तीरथ करै, तो बिना रघुनाथ नहिं मुकति होई ।।
जपत जे जंन हरि चरन कँवलापति, तास सम तुल्य नहिं और कोई ।।
आदि ही एक अनेक ह्वै बिसतर्यौ, अंति भी एक कौ एक सोई ।।
जिनि भजे हरि चरन जीते च्यारू बरन, जास की जाति अछोप छीपा।
ब्यास में लेखिये सनक में पेखिये, नामा की नामना सपत दीपा ।।
जाकै ईद बकरीद नित गऊ रह बध करै, मानिये सेख सहीद पीरा।
बाप बैसी करी पूत अैसी धरी, नाँव नवखंड परसिध कबीरा ।।
जाकी जात के ढेढ ढोर ढोवत फिरैं, अजहूँ बानारसी आसपासा।
षटक्रम सहित विप्र डँडवत करै, प्रगट नीसान रैदासा दासा ।।
जिनकौ जस पूरि रह्यौ तिहूँ लोक में, कौन मारग गये खोज पाऊँ।
दास पीपौ कहै कठिन कलिकाल में, भगत भगवंत भजि पार पाऊँ ।।

— 22/22— रज्जब की सरबंगी, सम्पादक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

संत–सप्तक, पृष्ठ 44, लेखक : ब्रजेन्द्रकुमार, इस पुस्तक में इस पद का पाठ वि. सम्वत् 1660 से गृहीत कर पाठांतर सम्वत् 1780, 1795, 1710 की पुस्तकों से गृहीत किये गये हैं।

27. संतप्रवर दादूयाल की वाणी में रैदास

27.(1)

राम बिमुख जग मरि मरि जाइ। जीवै संत रहै ल्यौ लाइ ।। टेक।।
लीन भये जे आतमरामा। सदा सजीवन कीये नामा ।।
अंमृत राम रसाइन पीया। ताथैं अमर कबीरा कीया ।।
राम राम कहि राम समाना। जन रैदास मिले भगवाना ।।
आदि अंत केते जग जागे। अमर भये अबिनासी लागे ।।
राम रसाइन दादू माते। अबिचल भये राम रंगि राते ।।51।।

27.(2)

राम रस मीठा रे, पीवै साधु सुजाण।
सदा रस पीवै प्रेम सौं, सो अविनासी प्राण ।। टेक ।।
इहि रस मुनि लागे सबै, ब्रह्मा विष्णु महेस ।।
सुर नर साधू संत जन, सो रस पीवै सेस ।।
सिध साधिक जोगी जती, सती सबै सुखदेव ।।
पीवत अंत न आवई, ऐसा अलख अभेव ।।
इहि रसि राते नामदेव, पीप अरु रैदास ।।
पिवत कबीरा ना थक्या, अजहूँ प्रेम पियास ।।
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस ही माहिं समाइ ।।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ।।58।।

—दादूदयालजी की वाणी; सम्पादक : मंगलदास स्वामी

28. दादू–शिष्य श्रीजग्गा के भक्तमाल में रैदास

पीपा सोझा धना रैदासा। राम राम की बँधाई आसा ।।
सुकाल सेठ जनक राँका बाँका। इनहू दिया हरि नाम का नाका ।।21।।

–जग्गाजी का भक्तमाल, सम्पादक : अगरचंद नाहटा

29. श्रीदादूदयाल के प्रशिष्य व श्रीजनगोपाल के शिष्य चैनजी के भक्तमाल में रैदास

रामानंद कबीर अरपियो परसू। गलगला सुरसुरा पावै दरसू ।।
मतिसुंदर रैदास पद्‌मावती सेवा। बेलि सूरिया भजै हरि देवा ।।30।।

— भक्तमाल, सम्पादक : अगरचंद नाहटा

30. चौथे सिख–गुरु श्रीरामदास के पदों में संत रैदास

30.(1)

नीच जाति हरि जपतिआ, उत्तम पदवी पाइ।
पूछहु बिदर दासी सुतै, किसनु उतरिआ घरि जिसु जाइ ।।1।।
हरि की अकथ कथा सुनहु जन भाई,
जितु सहसा दूख भूख सभ लहि जाइ ।। रहाउ।।
रविदासु चमारु उसतति करे, हरि कीरति निमख इक गाइ।
पतित जाति उतमु भइआ, चारि वरन पए पगि आइ ।।2।।
नामदेउ प्रीति लगी हरि सेती, लोकु छीपा कहै बुलाइ।
खत्री ब्राहमण पिठि दे छोडे हरि नामदेउ लीआ मुखि लाइ ।।3।।
जितने भगत हरि सेवका मुखि अठसठि तीरथ तिन तिलकु कढाइ।
जनु नानकु तिन कउ अनदिनु परसे जे क्रिपा करे हरि राइ ।।4।।1।।8।। पृष्ठ 733

30.(2)

सतिगुरु परचै मनि मुंद्रा पाई गुर का सबदु तनि भसम द्रिड़ईआ।
अमर पिंड भए साधू संगि जनम मरण दोऊ मिटि गईआ ।।1।।
मेरे मन साध संगति मिलि रहीआ।
क्रिपा करहु मधसूदन माधउ मै खिनु खिनु साधू चरण पखईआ ।।1।।रहाउ।।
तजै गिरसतु भइआ बनवासी इकु खिनु मनूआ टिकै न टिकईआ।
धावतु धाइ तदे घरि आवै हरि हरि साधू सरणि पवईआ ।।2।।
धीआ पूत छोडि संनिआसी आसा आस मनि बहुतु करईआ।
आसा आस करै नही बूझै गुर कै सबदि निरास सुखु लहीआ ।।3।।

उपजी तरक दिगंबरु होआ मनु दह दिस चलि चलि गवनु करईआ।
प्रभवनु करै बूझै नही त्रिसना मिलि संगि साथ दइआ घरु लहीआ ।।4।।
आसण सिध सिखहि बहुतेरे मनि मागहि रिधि सिधि चेटकईआ।
त्रिपति संतोखु मनि सांति न आवै मिलि साधू त्रिपति हरि नामि सिधि पईआ ।।5।।
अंडज जेरज सेतज उतभुज सभि वरन रूप जीअ जंत उपईआ।
साधू सरण परै सो उबरै खत्री ब्राहमणु सूदु बैसु चंडालु चंडईआ ।।6।।
नामा जैदेउ कबीरू त्रिलोचनु अउजाति रविदासु चमिआरू चमईआ।
जो जो मिलै साधू जन संगति धनु धंना जटु सैणु मिलिआ हरि दईआ ।।7।।
संत जना की हरि पैज रखाई भगति बछलु अंगीकारु करईआ।
नानक सरणि परे जगजीवन हरि हरि किरपा धारि रखईआ ।।8।।4।।7।। पृष्ठ 834

31. पाँचवे सिख–गुरु श्रीअर्जुनदेवजी की दृष्टि में संत रैदास

31.(1)

बसंतु महला 5 घरू 1 दुतुकीआ :

इसमें आठ चरणों का लम्बा पद है, जिसके अन्तिम आठवें चरण में रैदास का पावन स्मरण किया गया है।

'कबीरि धिआइओ एक रंग। नामदेव हरिजीउ बसहि संग ।।
रविदास धिआए प्रभ अनूप। गुरु नानक देव गोविन्द रूप ।।8।।1।।

– गुरुग्रंथ–साहिब, पृष्ठ 1192

31.(2)

सारंग, महला 5

उआ अउसर कै हउ बलि जाई।
आठ पहर अपना प्रभु सिमरनु बडभागी हरि पाई ।।रहाउ।।
भलो कबीरु दासु दासन को ऊतमु सैनु जनु नाई ।।
ऊच ते ऊच नामदेउ समदरसी रविदास ठाकुर बणिआई ।।1।।
जीउ पिंडु तनु धनु साधन का इहु मनु संत रेनाई ।।
संत प्रतापि भरम सभि नासे नानक मिले गुसाई ।।2।।4।।18।। पृष्ठ 1207

32. संत श्रीधन्ना जाट के पद में रैदास

महला 5 में ही राग आसा के अन्तर्गत धन्ना जाट की छाप का एक पद मिलता है, जिसको विद्वानों ने भक्त धन्ना जाट का ही पद माना है। महला 5 में लिखा मिलने से ऐसा अनुमान होता है कि इस पद की रचना गुरु अर्जुनदेव ने भक्त धन्ना की छाप से की है। पृष्ठ 487—488।

गोबिन्द गोबिन्द गोबिन्द संगि नामदेउ मनु लीणा।
आढ दाम को छीपरो होइओ लाखीणा ।।1।। रहाउ।।
बुनना तनना तिआगि कै प्रीति चरन कबीरा।
नीच कुला जोलाहरा भइओ गुनीय गहीरा ।।1।।
रविदासु ढुवंता ढोर नीति तिन्हि तिआगी माइआ।
परगटु होआ साध संगि हरि दरसनु पाइआ ।।2।।
सैनु नाई बुतकारीआ ओहु घरि घरि सुनिआ।
हिरदै वसिआ पारब्रहमु भगता महि गनिआ ।।3।।
इह विधि सुनि कै जाटरौ उठि भगती लागा।
मिले प्रतंखि गुसाईआ धंना बडभागा ।।4।।2।।

33. भक्तिमती मीरां के पदों में रैदास

भक्ति स्वरूपा मेड़तणी मीरांबाई के नाम के साथ भक्तप्रवर रैदास का नाम अनायास/सायास जुड़ गया। अब यह सम्बंध गंभीर बहस का विषय बन गया है। मेड़तणी मीरांबाई के एक पद का साक्ष्य देकर कुछ विद्वान् रैदास को मीरांबाई का गुरु सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु ऐसे विद्वान् इस पद की प्रामाणिकता, प्राचीनतम प्राप्ति–स्रोत व उपलब्ध पाठान्तरों पर बिल्कुल भी विचार नहीं करते। मैंने मेरी पुस्तक **मीरांबाईः प्रामाणिक जीवनी एवम् मूल पदावली** में इस सम्बंध में गंभीर ऊहापोह की है। निम्नोद्धृत पद मुझे कई हस्तलिखित ग्रंथों में मिला है। किसी में 'रैदास' तो किसी में 'हरिदास' छाप पदकर्त्ता के रूप में मिली है। इसका तात्पर्य यह है कि यह पद मीरांबाई द्वारा रचित न होकर निर्गुणी–संत–गायकों द्वारा निर्मित है। किसी ने रैदास लिख दिया, किसी ने हरिदास लिख दिया। यदि यह पद मीरांबाई द्वारा रचित होता तो कभी भी एक ही गुरु के दो नाम एक ही पद में नहीं होते। अतः यह नाम का घालमेल सिद्ध करता है कि यह पद मीरांबाई द्वारा रचित न होने से प्रक्षिप्त, अप्रामाणिक अतएव अस्वीकार्य है। पद का पाठ इस–प्रकार है।

मीरांबाई : प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली; पृष्ठ 464, 465, 466

33.(1)

हस्तलिखित गुटका संख्या 3 का चौथा पद। अन्तिम चरण

हिन्दूपति रूसौ भलै, म्हारौ करसी काँय।
सती जालण कूँ नीसरी सो तो, पाछी आवै नाय ।।
पिहर जावाँ न सासरै, नहीं पिया के पास।
मीरां सरणैं राम के म्हाँनैं, गुरु मिलिया हरिदास ।।3/4।।

33.(2)

हस्तलिखित गुटका संख्या 16 पदांक 59; अंतिम चरण

नहिं कराँ चोरी मारगाँ, चालाँ नहीं कुबाट।
म्हैं म्हानैं मारग चालताँ, म्हांनै काँइ कहौ छौ राज ।।
नहीं रहाँ पीहर सासरै, नहिं रहाँ राणा पास।
मीराँ सरणैं राम के, गुरु मिलिया रैदास ।।16/59।।

33.(3)

हस्तलिखित गुटका संख्या 9 पदांक, 5; अंतिम चरण

ना कोई चोरी करी, ना कोइ कियौ जी अकाज।
पुन के मारग चालताँ, म्हानै काँइ कहौ छौ राज ।।
पीहर जाऊँ न सासरै, नहीं पिया के पास।
मीराँ सरणैं राम के म्हानैं, गुरु मिलिया हरिदास ।।9/5।।

33.(4)

मीरां वृहत–पदावली; सम्पादक–हरिनारायण, पदांक 423

पीहर जाऊँ न सासरै, नहीं पिया के पास।
मीराँ सरणैं राम के, म्हांनैं गुरु मिलिया रैदास ।।

34. अन्तर्राष्ट्रीय–रामस्नेही–सम्प्रदाय प्रवर्तक स्वामी श्रीरामचरण के प्रशिष्य संत श्रीब्रह्मदास की वाणी में रैदास

भक्ति के हेत धर्‌यौ तन ही जिन कासी में बास कियौ रविदासा।
सालगराम बुलाय लियौ पुनि पारस लाय धर्‌यौ जन पासा ।।
काढ़ि जनेउ बताय दई उर बामण देख भये जु उदासा।
ब्रह्महिदास जे भक्त भए जिनके नहिं ऊँच रु नीच कौ भासा ।।26।।

–सवैया, सुमरण को अंग, पृष्ठ 132–33,
–श्रीब्रह्मदास–वाणी ; सम्पादकः ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

35. सखी किम्वा टट्टी–सम्प्रदाय के श्रीभगवतरसिक द्वारा रचित भक्तनामावली मे रैदास

सैना धना कबीरा नाभा, कूबा सदन कसाई।
बारमुखी रैदास सभा में, सही न स्याम सहाई ।।17।।

यह भक्तनामावली 21 कड़ियों का पद है, जिसमें अनेक भक्तों के नामों को उल्लिखित किया गया है। रैदास की सभा में हुई विजय का उक्त पंक्ति में संकेत है। ब्रजमाधुरीसार में इनका जन्म–सम्वत् 1795 लिखा है। उक्त पाठ ब्रजमाधुरीसार से ही पृष्ठ 230, सत्रहवें संस्करण से लिया गया है।

36. निम्बार्क–सम्प्रदाय के 36वें आचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्य की वाणी में संत रैदास

36.(1) राग सारंग

हरि की जीवनि जन रैदास।
जाके हिरदै प्रगट प्रकास्यौ, आपण लियौ निवास ।। टेक।।
बिसर्‌यौ सब माया मोह पसारौ, जग आसा घर वास।
छूटि गयौ कुल कुटुम कुमारग, कटे करम भव पास ।।
मिट्‌यौ बिघन छल काल बिषै बल, भयौ अविद्या नास।
पीयौ सरस सुअंमृत सीतल, जगतैं भयौ उदास।
सुमिरन सार पि हरि सुख पायौ, गायौ ब्रह्म बिलास।
प्रेम प्रीति हरि निमस न बिसर्‌यौ, भाव भगति बेसाल।
निर्बैरी निर्दोष सुनिर्मल, कंचन कमल सुवास।
परसा सो संसारि सु मंदिर, दीपक सकल उजास ।।8।।

–श्री परशुराम–पदावली, भाग 4, पृष्ठ 139

– सम्पादक : डॉ. रामप्रसाद शर्मा, किशनगढ़ (राज.)

36.(2)

हरिजन की यौं राखी रेख मही।
मानौ जगत प्रहलाद भगत की, कीरति पुहमिं कही ।। टेक।।
चीर्‌यौ गात जनेऊ निकसी, मिटि गई अटक ठही ।।
बोले सालगराम सरोतरि, सुणि सब सँकट ढही ।।1।।
द्विज मंजन जल ऊँच कहित सुणि, सलिता सोच गही।
परिहरि सिंधु स पल कौं सनमुख, यों गंगा उलट बही ।।

न्यौंते विप्र हहेड़ जुराणी, गुरु हित दोष दही।
भोजन करत उम्हैं आपस महिं, कहत सुमिल तरुही ।।
महिमा अमित सुणी मैं नीकैं, संतनि साषि कही।
परसा नाम रविदास की, पैज प्रगट निवही ।।

उक्त, पृष्ठ 298, भाग 4

37. पंजाबी परंपरा की परचई

परची रविदास भगत की चौपाई

अब रविदास की कथा सुनाई। जिउसि सुनिआ तिउ वरनो भाई ।।
रविदास जाति चमिआर कहावै। जाति धरम कुल करम कमावै ।।
निसबासर अपकरमन माही। लागि रहै कछु समझे नाही ।।
शास्त्र बेद को नहीं अधिकारू। तति गिआनु किउ लहै चमिआरू ।।
जाति बरन कुल करम का हीना। निरगुन रूप हो रहिओ अधीना ।।1।।

दोहरा

प्रेम रतन सब की गिरहि, सब कउ ताकी आसु।
कहु प्रीतम किन पाइआ, विना प्रेम परगासु ।।1।।

चौपाई

जिसु घटि प्रीतम जोति दिखावै। तिस घटि मांहि प्रेम उपजावै ।।
उमगै प्रेम तब पीतम पावै। प्रेम परीतम एक होइ जावै ।।
रहे प्रेम तहि अउर न बीआ। प्रेम रूप घटि घटि बरतीआ ।।
प्रेम की बात कान जिस परै। उमगै प्रेम तिस बउरा करै ।।
करि बउरा तिस करै सिआना। तीन लोक महि प्रेम प्रधाना ।।2।।

दोहरा

प्रेम प्रेम सब को कहो, प्रेम न जाने कोइ।
प्रेम पुरख परमातमा, जलि थलि महीअल सोइ ।। 2।।

चौपाई

प्रेम पुरख परीतम परक्रित। इह जग है ताकी परविरत ।।
परक्रित के बस होइ करम कमावै। करम का बांधा आवै जावै ।।
प्रेम भाउ जब घटि मैं लागै। त्रिगुण नींद तो सोइआ जागै ।।
जाग परै फिर नींद न आवै। प्रेम प्रेम परीतम हो जावै ।।
कहिनु सुनन की सो बिध नाहि। देखे हूं ते मन पतिआहि ।।3।।

दोहरा

वाटि घाटि नहीं पाइए, प्रेम न हाटि बिकाइ ।।
जउ परीतम किरपा करै, घट ही में उमगाइ ।।3।।

चौपाई

रविदास रैनि सखोपत सोता। तहि बिन प्रेम कछु अउर न दोता ।।
तिह तह अपना आप निहारा। इहु जग जाका मांहि पसारा ।।
चमक परिओ सु सुधि महि आइओ। पुनि प्रेम महोदधि गोता खाइओ ।।
कब डूबै कब ऊपरि आवै। प्रेम समुंदर की थाहु न पावै ।।
बिन दरसन तिस चैन न परै। अहिनिस प्रेम अगनि महि जरै ।।4।।

दोहरा

मुख ते गुंगा होइ गइआ, बोलै कछू न बैन ।।
बोल नाम उचरन लहौ, जिउ चंद चकोरा रैन ।।4।।

चौपाई

कर बीच वह गरदन रहै। सीत उसन सब सम करि सहै ।।
नहीं किस कउ तिस रहिओ। लगत प्रेम सो हो बउरा गइओ ।।
बुरा भला कोऊ कहि जावै। करि ऊचै तिस नदर न लावै ।।
कोई आन खाक सिर डारै। कोइ धरम दइआ करि चंदन धारै ।।
इहु बउरा कछु मन नहीं आवै। राचि रहिओ पूरन भगवानै ।।5।।

दोहरा

मन प्रकाश देह का सब, इंद्री के ले सार ।।
सो जाइ रचो निज प्रीतमै, को करै देहि संचार ।।5।।

चौपाई

अरे प्रेम तूं बुरी बलाइ। जहि तू रहे तह कोई न रहाइ ।।
आसा मनसा देहि निकारी। प्रेम अगनि जाही तन जारी ।।
दुख दरद न भउ तिसहि बिआपै। अभै पदारथ प्रेम ही खापै ।।
जोग बैराग गिआंन जो ईसे। प्रेम गुरू पे चेलै दीसै ।।
सब देखै हम सार पछार। प्रेम प्रमातम त्रिभवण सार ।।6।।

दोहरा

प्रेम बीज अंकूर जग, संसा सोच न काइ ।।
जिस घटि प्रेम प्रकासई, सो प्रीतम होइ जाइ ।।6।।

चौपाई

अधिक प्रेम रविदास लगाना। जगत और ते भइओ दिवाना ।।
बैठ बजार सो पनहिआ गाठै। भउ प्रेम मगन इत उत कउ हाटै ।।
जो कोई कछु देइ सौ लेवै। जो देउ नहीं इऊ ही कउ देवै ।।
ऊँचे कर नहीं नैन पसारै। भावैं को जावे सिरि मारै ।।
कछुक गिआन तिन गुर ते पाइआ। पुनि देखि दरस प्रेम अधकईआ ।।7।।

दोहरा

कहा होत गुर गिआन ते, जउ घटि प्रेम न होइ।
प्रेम तबे घटि होत है, जउ नैन लखावै कोइ ।।7।।

चौपाई

कोइ एक पूरब तहिं आइआ। गंगा नहावण संग सिधाइआ ।।
एक सँगी ने पनही गढ़ाई। बंधी दमड़ी तिनै दिवाई ।।
सो दमड़ी पुनि तिस कउ दीनी। स्री गंगा जी की भेट सो कीनी ।।
इउ कहिओ तिस किओ समझाई। गंगाकओ इह लै दिखराई ।।
जब गंगा करि आगै करै। तब देहि तिसे बाहीं अउसरै ।।8।।

दोहरा

जो दमड़ी वानै दई, पुनि वाही कउ दीन।
सहित सुनाइ रविदास ने, भेटि गंगा कीन ।।8।।

चौपाई

जब जात्री गंगा पर गइआ। जाइ तीर परि ठाढा भइआ ।।
गंगा जी सो बिनती कीनी। इह भेंट तुमारी रविदास ने दीनी ।।
बाहु काढ करि दीओ पसारी। तिन दमड़ी ताहूं परि धारी ।।
ता करि कंगण एक लाल जडाए। धरि परि गिरिओ उन लीन उठाए ।।
देइ भेटि एह नामु लिआए। अचरज कथा कछु कहिन न जाए ।।9।।

दोहरा

गंगा तिस कंगण दीओ, जड़िओ जडाउ अनूप।
जिउ हरि तंदल चाब कै, कीओ बिप्र कउ भूप ।।9।।

चौपाई

पाइ कंगन तिन नऊनिध पाई। किसहू सिउ नहिं बात जनाई ।।
लै आइओ अपने घरि ताईं। घरि राखिओ तिह गुह जीथाईं ।।
ताकी त्रिआ एहिआ कहाई। धरि होते भूखै किऊ रहाई ।।
कंगण बेच करि दाम करीजै। अंन बसत्र ले सुखी रहीजै ।।
सो लै कंगण जबहरी कउ दिखाइआ। वहि तहि देखु विसमै होइ आइआ ।।10।।

दोहरा

जाइ कहिओ कुटबाल कओ, जहवारी लाग कै कान।
एक कंगण चोरी का लीए, ढाढा मोहि दुकान ।।10।।

चौपाई

तबहि कुटवार ताकउ बुलाइ। कह कंगण ते कहां ते पाइ ।।
हा हम कै डरिते तिन कहि दीआ। मैं गंगा ते इहु कंगण लीआ ।।
रविदास मोहि एक दमड़ी दीनी। करी सरधा भेट गंगा कउ कीनी ।।
सो गंगा ने बाहु पसारा। दमड़ी लीनी बिच हरिदुआरा ।।
तिह करि ते कंगण गिरिओ। पा इनाम सिर पर लै धरिओ ।।11।।

दोहरा

इहु गंगा की बखसीस है, मोकउ दीआ एनाम।
रविदास प्रसादि ते पाइओ, नहिं चोरी को काम ।।11।।

चौपाई

तब कुटवाल मन ऐसी आई। इह कैसे सचिनिओ जाई ।।
रविदास भगत अरि कंगण बालै। ले आइओ वै निकटि भूपालै ।।
भूपत देख बिसमै हो रहिआ। अचरज बात कछु जाए न कहिआ ।।
तब राजा रविदास सिउ कहई। साच कइहु किओ करि अहई ।।
रविदास कहै इहु कंगण जिसका। सोइ निआउ करैगी इसका ।।12।।

दोहरा

राजे मन महि कोप करि, हुकम किआ कुटवाल।
इनहीं ईहां राखहो, जओ न होइ सचिआरु ।।12।।

चौपाई

तब रविदास ने कहिओ बखिआना। सुनहो राजा सुथरि सुजाना ।।
गंगा जल लिआवहु भूपालौ। गंगा जल गंगा इहु कालै ।।
लघु तीरथ का भरम तिआगहु। समता गिआनु घटि भीतर रचावहु ।।
सब घटि भीतर ब्रहम है एकू। बसतु एक है भाजन अनेकू ।।
जिसका मन चित ही बहुत चंगा। तिस कउ आहि कठउती गंगा ।।13।।

दोहरा

गंगा जल मंगाई कै, दीओ कठौती डार।
तब तिन सिउ बिनती करी, ऊपिर बसतर डार ।।13।।

चौपाई

ऐ गंगा तू हरि जन भावै। जग तीरथ तोकउ बतलावै ।।
जग मैं तीरथ बहुत प्रधाना। कलजुग मैं नहिं तोहि समाना ।।
जउ इहु कंगण तैने दीआ। नहि चुराइ इन कहां ते लीआ ।।
तब दूसरो तुम करि होई। कर किरपा दीजै वहि सोई ।।
जाते झगड़ा इसका मिटै। तोहि दइआ ते प्राणी छुटै ।।14।।

दोहरा

जब रविदास विनती करिओ, बसत्र लीओ उतार।
कंगण दूजा पाइआ, राजा रहिओ निहार ।।14।।

चौपाई

देखि चलत्र बिसमै भइओ राजा। इह भगत आहि परपूरन काजा ।।
जब राजा ने परचो पाइआ। दे कंगण वै विदा कराइआ ।।
इहु बात सबन सुनि पाई। रविदासहि सब जगु पुजमाई ।।
रविदास भगत सकल जग जाना। चार बरन ताकी माने आना ।।
जो को हरि सिउ प्रीति लगावै। दुहि जग में बड़िआई पावै ।।15।।

दोहरा

मनि बच करम हरि धिआइए, सबु घटि अंतरि हेर ।।
प्रेम पदारथ परस कै, तृण ते होइ समेर ।।15।।

चौपाई

मीरांबाई राजकुमारी। बिसन भगत्त परम हितकारी ।।
तिस साधि संगति की इछा होई। रविदास पास चल आई सोई ।।
ताके चमार जाइ तिन पकरे। खुनसे विप्र तहां के सगरै ।।
जउ चमर दीखिआ कउ देवै। दिज को नाम कहां को लेवै ।।
इहु अनीति देखि दुखि पाई। होइ सरमिंदे मरि मरि जाई ।।16।।

दोहरा

रविदास भगत भगवान को, पूजै सालगराम।
प्रेम मगन अहिनिस रहे, सब विधि पूरन काम ।।16।।

चौपाई

जब बिप की कछु न बसाई। जाइ राजा पहि चुगली लाई।।
शास्त्र बेद पुरान न भाखी। इहु कांहू कै मति नहिं आखी ।।
सालगराम पूजै रविदासु। चार बरन कउ होइ उपहासु ।।
जाके देस अनीत जो होई। ताकै देस सुख बसै न कोई ।।
जो कोई अनीति चलावै। राजा ताकउ डंड दिवावै ।।17।।

दोहरा

राजा कउ बूझीए, जो कोइ उसके देस।
बेद रहित करतन करै, डंडे तिसै नरेस ।।17।।

चौपाई

तब राजे रविदास बुलाइआ। जब बिप्र बरन सबही जुर आइआ ।।
राजा ताकउ बात जनाई। ठाकुर पूजा तुझ किनै बताई ।।
वेद रहित चाल जो चलैहै। उन लीए पगु तहां न धरैहै ।।
चार बरन आसरम है चार। तिस कउ भिंन भिंन आचार ।।
इत मिरजाद मैं जे को होई। कुसल करम धरम करे सब कोई ।।18।।

दोहरा

बरन आसरम कुल कुल धरम, ते जो पग बाहिर राखि।
ताकउ हउं मैं देउ, मार मिलावह खाक ।।18।।

चौपाई

सति वचन रविदास उचारा। हरि भगत महि सब को अधिकारा ।।
जीओ पिउ जिन हरि ते पाइआ। पुनि कवल वचन दे जग मैं आइआ।।
जगत जाइ हरि भगत कमावहु। वनि हरि रोग न दूजा भावहु ।।
सालगराम जो हरि बप धारा। तउ सब कउ पूजन का अधिकारा ।।
सालगराम जो पाथर आही। तिस सबको पूजौ बिबरजत नांही ।।19।।

दोहरा

सालगराम सब को परै, इन मै बडो विवेकु।
बिसवास बिना सब पूजई, विरलै ठाकुर एकु ।।19।।

चौपाई

मंत्री तिस का असु रसमाई। तिन नै तहा एक बात चलाई ।।
हरि को निआउ हरि ही ते होई। विन हरि अउर न जानै कोई ।।
ले सालगराम सब सरता डारहु। आवाहन टाकुर सबे उचाहु ।।
जो पूजा का अधिकारी होई। ता पहिआइ पुजावहि सोई ।।
जे को पाथर पूजै लोरे। तउ जग माहि न पाथिर थोरै ।।20।।

दोहरा

धरम निआउ हरि की करै, जो हरि सेवक होइ ।।
ता पहि ठाकुर आई कै, आपि पुजावै सोइ ।।20।।

चौपाई

इहु भूपति मनि नीकी मानी। रविदासहु ने उतम करि जानी ।।
बामन ता महि रहै खिसाई। भूपति सिउ कछु नाहिं बसाई ।।
ले सालगराम सरता मैं डारै। अब डूबन की सबै उचारै ।।
भाउ भगत होवै तउ आवै। डारत ही सरता डुबखारै ।।
ऐसे ही सब दिए डुबाई। तब बारी रविदास की आई ।।21।।

दोहरा

रविदास ते ठाकुर लै के, डारिओ सरता मांहि।
मुरगाई जिउ तरि फिरिओ, बामन देखि खिसाहिं ।।21।।

चौपाई

मुरगाई जिउ जल मैं फिरै। भगत हेतु हर क्रीडा करै ।।
सिआम कमल जिउ देउ दिखाई। मानो अंखिअन पुतरी सिआम सुहाई।।
राजा देखि बहुतु सुख पावै। बामन सगले अधिक खिसावै ।।
चुगलखोर मुह काला भइआ। रविदास भगत का आदर रहिआ ।।
जब रविदास भगत बुलाइआ। प्रेम मगन हरि दउरिआ आइआ ।।22।।

दोहरा

ले तुलसी दल रविदास ने, करि भाउ भगत परणामु।
धूप दीप नईवेद सिउ, पूजै सालगराम ।।22।।

चौपाई

जब बामन वे अधिकारी खिसाए। दे दिलासा विदा कराए ।।
भाउ भगत जो कोई करै। तिन ते ठाकुर दूर न परै ।।
रविदास भगत कउ करि प्रणाम। पुन भूपाला आइओ निज धाम ।।
रविदास भगत अपने हरि आइआ। प्रेम प्रभाउ न जाइ छपाइआ ।।
प्रेम मगन झूलत सब रहै। सो अंतर बाहिर प्रीतम लहै ।।23।।

दोहरा

करम धरम सब भरि गए, उमगिओ अधिकह प्रेमु।
मनसा बाचा करमना, बिनसिआ सगला नेमु ।।23।।

चौपाई

देह सहित बिसारिओ बिउहारा। जउ ऊभा तउ ऊभा रहै ।।
ऊठ चलै तब इत उत बहै। कबहूं हंसै कबहू बहि रोवै ।।
कबहुं कंवल सिउ बिगस खलौवै। कबहुं कवल जिउ बिगस खडोवै।।
जउ लेटे लेटि आही रहै। जउ बोले जावत जावत कहै ।।
प्रभ भूत ते अति बउराइआ। ताको कोउ न करे उपाइआ ।।24।।

दोहरा

प्रेम प्रवाह जा घटि बहे, मन बुधि चित अंहकार।
दिन मै परले कर रहै, जिउ एक परलै बार ।।24।।

चौपाई

प्रेम के बस होइ बुधि बिसराई। बिसरगी जग की चतुराई ।।
मतिवारे जिउ घूमति फिरै। अचल बिचल बानी उचरै ।।
सब को देख अधरन मै हंसै। जा तै सब घटि प्रीतम बसै ।।
सोइ परे जब बिरह सतावै। दरस पिआस को त्रिखा बुझावै ।।
तब लोक करत थे मान बडाई। अब कमला जान सब को हस जाई ।।25।।

दोहरा

देहि द्रिसटि या जगत की, पूजहि बाहिर भेस ।।
प्रेमी कउ सोई लखै, जा घटि प्रेम प्रवेस ।।25।।

चौपाई

बाहिर जग मै फिरै उदासा। अंतर प्रेम रविदास पिआसा ।।
बाहिर चलै फिर उठ बहै। उतरे इक रस राता रहै ।।
अंतर–मौन हो रहे धिआवै। बाहिर बहुविधि बादु बखानै ।।
अंतर सीतल परम अपारा। बाहिर दुंद मचावन हारा ।।
इक दिन मन बुधि चित थक गई। देहि मीत को चित सो भई ।।26।।

दोहरा

प्रेम मगन मन मूरछा, बुधि अहंकार अउ चीतु।
गलत महोदधि प्रेम महि, तन जिउ भीत को चीत।।26।।

चौपाई

अंतर प्रेम सो नैन उघारै। प्रीतम अंतर द्रिसटि निहारै ।।
सो प्रीतम त्रिभवण सारू। निरंकार वोहि सरब आकारू ।।
अंतर जोति सरूप प्रगासा। तीन भवन मैं ताका बासा ।।
लखीपति में जो रूप दिखाइआ। पुनि सो रूप द्रिसटि महि आइआ ।।
साई सरूप फिर बाहिर आइओ। दरसन देख चरनी लपटाइओ ।।27।।

दोहरा

ठाकुर तब प्रसन भओ, रविदास मांगहि सो लेहु।
रिध सिध नउ निध सब, ले सुख भोग करेहु।।27।।

चौपाई

रविदास ठाकुर कहिओ बुझाई। इह रिध सिध जो तोहि बडाई ।।
ताकउ अब नीके सुन लीजै। जाते तेरा मन जो पसीजै ।।
जिह असथान तूं पगहि लगावै। रुपये मुहरां तहुं उपजावै ।।
द्रिसटि हीआं जहां भर ताकै। सब धातू कचंन करि साकै ।।
बचन सिध तेरा सब होवै। सब को चरन तुमारे धोवै ।।28।।

दोहरा

संपति लोक सुरलोक लउ, नउ खंड प्रिथवी राजु।
जो मांगो सो देत हो, सकल सवरग समाजु ।।28।।

चौपाई

रविदास कहौ हे प्रान पिआरै। सकल जगत है तोहि अधारै ।।
तू आतम परआतमु सोई। तुम ते भिंन नहीं कहु कोई ।।
जो तुम ते कोई भिन्न कछु कहौ। भरम भूतना असुर सु अहौ ।।
अब रविदास अउर जग सारा। घटि घटि मंहि तू फुरनेहारा ।।
को मांगे का कउ तुम देहू। तुम बिन दूजा अहि ने केहू ।।29।।

दोहरा

प्रेमी प्रीतम रूप जो, दोनो गए बिलाइ।
जोतु सरूपी आतमा, रहिओ प्रेम ठबि छाइ ।।29।।

चौपाई

भाखि सुनाइओ प्रेम जिउ, रविदास घटि उपजिओ।
जो सुन करि पकरै नेम, हर अैसे हो तुम मिलै ।।30।।

38. प्रसिद्ध भक्तमाली श्रीनारायणदास 'मामाजी' बक्सर–निवासी और रैदास

प्रगटे धर्मराज धरणी पर कलि में भये भक्त रैदास।
प्रथम ब्रह्मचारी बनि आये, सदगुरु की सेवा मन लाये,
होगई होनहारवश भूल,
किसी की, पुत्र–कामना मूल, भाव–दूषित इक भीख कबूल,

कवित्त

शूद्र परिवार एक काशीपुरी चर्मकार, सन्तति से हीन, युक्ति बूझी बिलखाइ के।
स्वामी रामानंद जू की महिमा अपार सुनि, करिके विश्वास अति, हिय हुलसाइ के।
लोभी बेईमान एक बनिया के माध्यम से, भिक्षा पठवाई पुत्र–प्राप्ति आशा लाइ के।
करि लई स्वीकार ब्रह्मचारी ने परस्थिति वश, बरषा की झड़ी माँहिं नेकु अलसाइ के ।।

दोहा

समझ गये वार्त्ता सकल, स्वामी जी सर्वज्ञ।
बोले, अब तो बँधि गयो, दास प्रमादी अज्ञ ।।
दूषित भिक्षा लई, तो जाके पुरवहु वाकी आशा ।।प्रगटे.।।1।।

जाको चून, पुण्य वाही को, सार्थक करु या लोकोक्ती को,
कर्म को बन्धन अति मजबूत,
तुम्हीं अब बनो जाय के पूत, भगावो छुआछूत को भूत,

कवित्त

घटना घटी है ऐसी प्रभु ही की प्रेरणा से, धर्मराज चर्मकार कुल में अवतरेंगे।
शास्त्र की मर्यादा हू सुरक्षित रहेगी और, रहि के अनुशासित श्री हरि की भक्ति करेंगे।

देखा देखी तुम्हरी चतुर्थ वर्ण हू के लोग, सहज स्वभाव ही प्रभु की ओर ढरेंगे।
हो के सदाचारी शुद्ध सात्विक आहारी, नर–नारी वे भी भारी भवसागर से तरेंगे ।।

दोहा

जो आज्ञा कहि गुरु वचन, लिये शीस निज धार।
छूट्यो तनु जनम्यो तुरत, जा वाही परिवार ।।
पियत न दूध सुरति करि पूरब वैष्णवता आभास ।। प्रगटे.।।2।।

भइ आकाशवाणी तेहि काला, रामानन्द करैं प्रतिपाला, करहु आग्रह चरणनि में जाय,
देहिं दीक्षा स्वामीजी आय, दुग्ध पुनि पीवै बाल अघाय,

कवित्त

सुनि नभ–बानी, गुरुदेव हू ने जानी मति करुणा में सानी झट, आय शिष्य किये हैं।
हुते जे निराश, लै दम्पत्ति चैन श्वाँस जब पाय गुरु–कृपा शिशु ने मातृ–दुग्ध पिये हैं।
चर्चा बड़ी जोर चली, नगरी में शोर मच्यो, कैसे गुरु ने जाय शिष्य अपनाय लिये हैं।
उभर्यो संसकार भले जाति है चमार किन्तु उच्च हैं विचार भक्ति–ज्ञान भरे हिय हैं।

दोहा

आगे चलि प्रख्यात भे, यही भक्त रैदास।
समय वृथा नहिं खोवते, सुमिरत प्रभु प्रति श्वास ।।
कथा–कीर्त्तन भक्ति भाव युत, सेवत हरि–हरिदास।। प्रगटे.।। 3।।

दम्पति गुरु–उपकार भुलाने, कोरी सांसारिकता ठाने,
किन्तु दिन प्रति बालक रैदास,
बढ़त प्रभु–चरण आश–विश्वास, स्वयं को मानत दासन–दास,

कवित्त

जूती निर्माण औ मरम्मत को काज गेह, करै उतसाह युत हित–चित लाइ के।
मुँह खोलि माँगे नहीं, मिलै जो स्वाभाविक ही, वाही सों गुजारै दिन, राम–गुण गाइ के।
प्रेम लखि आवैं सन्त, देत हैं अनन्त सुख, सुविधा जुटावै, खावै सन्तन खवाइ के।
माता पिता दुखी ये तो घर बरबाद करै, करैगो दरिद्र गृह–सम्पति लुटाइ के ।।

दोहा

व्याहि दियो न्यारो कियो, मन मँह अति रिसियाय।

घर पिछवारे नीम तर, दीनी ठौर बताय ।।
डारि झोंपड़ी वृक्ष तले, कीन्हे रैदास निवास ।।प्रगटे०।।4।।
रहते सतत ढरे रघुराई, पत्नी अति पतिवरता पाई,
देखि घर में आर्थिक संकोच,
पर्‌यो प्रभु के हिय में अति सोच, भक्त–जीवन में लगै न खोंच,

कवित्त

आये एक दिन हरि, स्वयं सन्त वेष धरि, लाये संग पारस, बताये गुण कहि के।
दैन लागे हठ करि, जावैगी गरीबी टरि, रो सन्त–सेवा खूब दृढ़ता को गहि के।
नटि गे रैदास कही राखो अपने पास, होय साधन–विनाश सुख–सम्पति को लहि के।
हठ मत कीजे आशीर्वाद बस दीजे यही, रहै गरीबी में पन भक्ति को निबहि के ।।

दोहा

अपने हाथन सन्त जी, राँपी लोह उठाय।
पारस परस कराय के, दीन्यो स्वर्ण बनाय ।।
घबड़ाये रैदास, कही राँपी को भयो विनाश ।। प्रगटे.।।5।।

बोले सन्त, करहु मन भायो, पारस यह तुम्हरे हित लायो,
नहीं अब वापस लै के जाउँ,
बताओ अपने मुख कोउ ठाउँ, जहाँ बहुमूल्य रत्न पधराउँ,

कवित्त

बोले तब रैदास, भरसक राखो अपने पास प्रभु, सेवक के हाथ,
मत ऐसो दोष–कोष दो।
अर्थ तो कहावै पै अनर्थ ही बढ़ावै प्रायः, ऐसो धन दैके ना परिणाम में अफसोस दो।
मेरो मन भरै नाहिं, पारस पै ढरै नाहिं, प्रभु–पद से टरै नाहिं, हरि को भरोस दो।
वापस लै के जावो, काम और कुछ बनावो ना तो, जहाँ मन मानै तहाँ छप्पर में खोंस दो।।

दोहा

पारस को तो सन्त जी, दये छानि में खोंस।
भक्ति–ज्ञान–वैराग्य लखि, मन में अति सन्तोष ।।
चले सन्त, पर भक्त–हृदय को नेकहु लगी न फाँस ।। प्रगटे.।।6।।

उद्यम करिके जो कछु पावै, वाही सों निज गुजर चलावै,

बीति गये, यों ही तेरह मास,
भजन सुमिरन सेवा सहुलास, किन्तु नहिं गे पारस के पास,

कवित्त

आये पुनि प्रभु वाही सन्त जी के भेष में, औ पूछ रहे कहो भाई पारस के हाल को।
ऐसो दिव्य रत्न पाय, जूती अभी गाँठि रहे, गहि रहे गरीबी औ पुरानी चाल–ढाल को।
और कोऊ होतो तौ लोह को बनाय स्वर्ण, जोर लेतो कोठा और अटारी धन माल को।
धन्य हो बैरागी त्यागी तपसी सन्तोषी वीर, कहाँ डारि राखे वा अनोखे दिव्य लाल को।।

दोहा

कह रैदास सम्हारि लो, जहाँ धरे प्रभु आप।
हमने तो देखे नहीं, परसत होय परिताप ।।
लै पारस, प्रसाद लहि, वापस लौटे नाथ निराश ।।प्रगटे०।।7।।

पुनि प्रभु या घटना के आगे, पाँच मुहर प्रगटावन लागे,
सबेरे ठाकुर लिये जगाय,
लखे सिंहासन पर घबड़ाय, स्वर्ण की पाँच मुहर चमकाय,

कवित्त

कर सों न परस्यो, गहि के चिमटी सों मुहर सो शीघ्र,
गंगा जी में डारि पुनि लौटे निज ऐन जू।
दूजे दिना ठाकुरजी ने मुहरें प्रगटाई पुनि, त्यागे कल की नाईं,
मन अतिशय भो बेचैन जू।
कही एक दिन घरनी सों, ऐसो कलियुग आयो अब,
सन्त देवैं पारस, मुहर देवैं कमलनैन जू।
आगे ऐसो भयो तो उठाऊँ अपने ठाकुर जू को,
गंगाजी में डारि के कराऊँ जल में शैन जू ।।

दोहा

सपने में रैदास सों, बोले प्रभु घिघियाय।
हार्‌यो भक्तन से सदा, अब की देहु जिताय ।।
बात हमारी मान, बना लो घर इक सन्त–निवास ।। प्रगटे.।।8।।

सुनि रैदास प्रभू के वचना, करि लइ पक्के घर की रचना,
सन्त–सेवा को भो विस्तार,
कथा–कीर्त्तन, हरि–भक्ति प्रचार, भक्त को बाढ़्यो सुयश अपार,

कवित्त

देखि के विद्वान विप्र काशी के विद्वेष मानि, करते विरोध सभी, मिल के जोरदार जू।
भक्ति के प्रताप आगे काहू की न चली कछु, कीनी जा पुकार काशी–नृप के दरबार जू।
आदर अपूज्य को हो, पूज्यन की पूछ नाहिं, याको परिणम हो भयावह अपार जू।
जाँच–पड़ताल करिके कीजै सही न्याय, ना तो, राज्य नष्ट, प्रजा कष्ट पावै बेशुमार जू।।

दोहा

पूजत शालिग्राम को, शूद्र बिना अधिकार।
शास्त्र–विरुद्धाचार को, शमन करो सरकार ।।
सुनि काशी–नृप बुलवाये रैदास आपने पास ।। प्रगटे.।।9।।

विप्रन जो अभियोग लगाये, नरपति सादर बोलि सुनाये,
करो क्यों पूजा अन–अधिकार,
यही विप्रन की अहै पुकार, बतावहु हेतु भरे दरबार,

कवित्त

बोले तब रैदास स्वयं आके मेरे पास प्रभु, आज्ञा दिये खास नित्य सेवा मेरी करो रे।
आवै जोई व्यवधान, वाते खेद नहीं मान, तजि लोक कुल–कानि, लाभ–हानि ते न डरो रे।
करि के विश्वास, मेरे चरणन की आश, छूटिबे को भव–त्रास, सब में भक्ति भाव भरो रे।
देत हैं सम्पत्ति, मैंने करी हू आपत्ति कहैं, करि के प्रपत्ति, केवल मेरी ओर ढरो रे ।।

दोहा

अब निर्णय दें आप ही, सम्यक सोच बिचार।
करनो का है उचित मोहिं, न्याय मूर्ति सरकार ।।
सुनि उत्तर रैदास भक्त को, नृप ने भरी उसाँस ।।प्रगटे।।10।।

उत बहु संख्यक विप्र सुजाना, इत में हरिजन भक्त महाना,
न्याय नहिं मेरे वश की बात,
हमारे दोनों पूज्य दिखात, धर्म संकट आ पर्‌यो हठात,

कवित्त

प्रभु ही निबटावैं या उलझन को सुरझावैं, स्वयं प्रेरणा करेंगे कोई जुगुति सुझावेंगे।
एक ओर नेम पक्ष, वैदिक विद्वान–मत, दूजी ओर प्रेम पक्ष भाव सरसावेंगे।
बीच में विराजेंगे श्रीठाकुरजी संहासन पै, दोनों पक्ष बारी बारी प्रभु को बुलावेंगे।
वे ही अधिकारी माने जावेंगे, आह्वान जिनके,
ठाकुरजी खिसकि के कृपया जिनकी ओर जावेंगे ।।

दोहा

उभय पक्ष ने शर्त यह, करि लीनी स्वीकार।
ठाकुर राखे बीच में, करन लगे मनुहार ।।
अपनी अपनी विधि से दोऊ, लागे करन प्रयास ।। प्रगटे.।।11।।
वेद मन्त्र द्विज वृन्द उचारे, हवन पाठ पूजा वस्तारे,
भंगिमा–भाव अनेक दिखाय,
अनेकन मुद्रा हू दरशाय, सके कोउ प्रभु को नाहिं रिझाय,

कवित्त

हारि गये विप्र वृन्द प्रभु को पुकार के, न आये जब मुरारि तो मन मारि झुँझला गये।
अनुमति दई तब नृप ने रैदास जू को, फिर तो दीन बचन रैदास जू सुना गये।
पतित पावन, दीनबन्धु रघुनाथ! जैसी, प्रीति गीध शबरी निषाद से निभा गये।
वैसे ही निभावो निज विरद् कलिकाल हू में, सुनत ही रैदास जू की गोद प्रभू आ गये।

दोहा

यह लीला प्रत्यक्ष लखि, भरे भूप–दरबार।
भक्त और भगवान की, मचि गइ जय जयकार।
धन्य भक्तवत्सलता प्रभु की, धन हे रमा–निवास ।।प्रगटे.।।12।।

राजस्थान की रानी झाली, गुरु बिनु श्रवण नाम से खाली,
करत तीर्थाटन, काशी आय,
निरखि रैदास गई हर्षाय, लई दीक्षा–शिक्षा भरि भाय,

कवित्त

देखि के रिसाये विप्र रानी के व्यवहार पै, चमार से क्यों दीक्षा लीनी विप्र वृन्द छोड़ि के।
भले वश चले ना पै खीझे श्री रैदास हू पै, दैन लग्यो दीक्षा हू, मर्याद मेंड तोड़ि के।

रानी गई देश पै तो राजस्थानी विप्रन हू ने, करि दिये विरोध भारी, पंचायत जोड़ि के।
मेटी है मर्याद वर्ण–आश्रम–नेम तोड़ि याते, रानी हू ते विप्रवृन्द रहे मुँह मोड़ि के।।

दोहा

झाली ने तब पत्र लिखि, कीन्हे गुरु को याद।
हे गुरुदेव ! पधारि के, मेटहु वाद–विवाद ।।
दूरि करहु अज्ञान जनित भ्रम, दैके भक्ति प्रकाश ।।प्रगटे.।।13।।

लै परिकर रैदास पधारे, रानी गुरु पर धन बहु वारे,
बुलाई द्विज अरु साधु समाज,
किये तिन भोजन से एतरज, लेहिं भोजन हित सूखो नाज,

कवित्त

दीक्षा लै चमार से, तुम गिरी वर्ण आश्रम से,
तुम्हरे कर को भोजन तो हम करैं ना स्वीकार जू।
छोड़त हू ना बनै क्योंकि प्रश्न है आजीविका को,
कर के इनकार भूखों मरैगो परिवार जू।
सूखो लै सामान करैं, अपने से रसोई हम सब,
मध्यम मार्ग खोज्यो करिके आपस मे बिचार जू।
कहिके तथास्तु श्री गुरुदेव ने अनुमोदन किये,
जैसे कहैं वैसे करो, निबहै सदाचार जू ।।

दोहा

लै सीधो सामान द्विज, किये पाक तैयार।
बैठे भोजन करन जब, भे सब चकित निहार ।।
दीखत हैं रैदास बैठि रहे, हर ब्राह्मण के पास ।।प्रगटे॰।।14।।

व्यापकता गुरुवर की देखी, सबही द्विज भे चकित विशेष,
सभी ने अनुभव पाये एक,
एक रैदास दिखात अनेक, जग्यो अन्तर को सहज विवेक ।।

कवित्त

शूद्र के शरीर में है कोई पवित्रात्मा सन्त, महिमा अनन्त सिद्ध, मुक्त ज्ञानवान जू।

हम सब हैं सांसारिक देह–गेह के धरातल पै, भौतिक प्रपंच सने, भरे हैं, अज्ञान जू।
मन ही मन लजाये, भले विप्र कुल में जाये, किन्तु ढोये हैं आजीवन विप्रपन को अभिमान जू।
आत्म औ अनात्म के विवेक से रहित रहिके, मात्र व्यवहार में विवाद रहे ठान जू।।

दोहा

लखि महानता दिव्यता, मन में अति भयभीत ।
शरणागति करि चरण में, याचत प्रीति प्रतीति ।।
देखि दैन्य रैदास प्रबोधे, कीन्हे भाव–विकास ।। प्रगटे।।15।।

सुनहु उपस्थित जन जिज्ञासू, करौं यथामति भाव प्रकाशू,
प्रथम सब विप्रन्हि करौं प्रणाम,
सुमिरि गुरु सन्त लखन सियराम, कहूँ भागवत–धर्म सुखधाम,

कवित्त

भागवत–धर्म है वर्णाश्रम ते ऊँचो, हरि–भक्ति में सभी को है समान अधिकार जू।
वैदिक कर्मकाण्ड ज्ञान योग तप आदि माँहिं, होवै अधिकारी–अनधिकारी को बिचार जू।
मति अनुमान, श्रुति शास्त्र को प्रमान कहूँ सुनिये दैके ध्यान, सत्य हो तो लीजै धार जू।
गुरु कोऊ व्यक्ति नाहिं, गुरु स्वयं परम तत्व, परम ब्रह्म निर्गुण निराकार औ साकार जू।।

दोहा

ब्रह्म तत्त्व, गुरु तत्त्व में, नहिन द्वेष– आसक्ति।
काहू के कल्याण हित, कहूँ से हो अभिव्यक्ति ।।
परम स्वतन्त्र कहूँ ते काहु को दैं प्रेरणा प्रकाश ।।प्रगटे.।।16।।
दत्तात्रेय ईश्वर अवतारा, ठौर चतुर्विंशति गहे सारा,
व्यास जी सत्यवती के पूत,
लोहमर्षण जू विलोमज सूत, विदुरजी दासि–गर्भ–सम्भूत,

कवित्त

ऐसे ऐसे दिव्य दिव्य पार्षद विभूति भव्य, गुरुन के गुरु हैं, पै जाति ना बिचारिये।
भरद्वाज पाण्डव कुन्ती द्रौपदी भुसुण्डि काग, जो पै बनै इन पै तन–मन–प्राण वारिये।
कच्छप वराह मत्स्य रूप है अनोखो किन्तु, अहैं भगवन्त यह, भाव ना बिसारिये।
तुलसी भले घूरे पै प्रगट होवै नारायण, तौहू इनके प्रति प्रिय पूज्य भाव धारिये ।।

दोहा

बाल्मीकि से आदि कवि, कुम्भज और वशिष्ठ।
प्रगट उर्वशी व्याज पै, गुरुवर परम वरिष्ठ ।।
तन ते जो कुछ हों, आत्मा में है गुरु तत्त्व–विकास ।।प्रगटे.।।17।।

वर्ण धर्म अरु आश्रम–चारी, निज निज ठौर महत्ता भारी,
धर्म भागवत परन्तु विशेष,
कहत महिमा श्रुति शारद शेष, हरत आश्रित के दोष अरु क्लेश,

कवित्त

अन्त्यज कसाई गज गणिका औ गीध व्याध, कोल भील काग भये परम पुनीत जू।
गोपी गोप ग्वाल बाल डाकू औ मल्लाह चोर, भालु–कीश भये प्रभु राम जू के मीत जू।
प्रभु की शरण आय, भक्ति भाव अपनाय, दोष और क्लेश गे असंख्यन के बीत जू।
धारके विशेष धर्म भये भव से पार और, माया को कटक लिये सहज ही में जीत जू।।

दोहा

जाति–पाँति–धन–गर्व करि, बूड़े बहुत कुलीन।
दीन पतित बहु तरि गये, भक्ति भाव लवलीन ।।
बिनु हरि कृपा करोड़ जतन से मिटै नहीं भव–त्रास ।।प्रगटे.।।18।।

सुनि के विप्रवृन्द वर बानी, हरि–हरिजन प्रति अति रति मानी,
जाति कुल धन अहमिति बिसराय,
प्रणत भये सहज चरण में आय, धन्य, शरणागति प्रभु की पाय,

कवित्त

अवसर पाय के रैदास प्रभु–प्रेरणा से, सिंहासन बैठि बात, पूर्व की बताई है।
मैं हू रह्यो विप्र ब्रह्मचारी पूर्व जन्म माँहिं, करिके प्रमाद ऐसे कुल में देह पाई है।
सद्गुरु–कृपा ते गयो सम्हलि ये मनुज जन्म, पूर्व संस्कार वश श्रीहरि की भक्ति भाई है।
चाहें तो विश्वास हेतु चीरि के दिखाऊँ चर्म, अन्तर में जनेउ–स्वर्ण, अब लौ रह्यो छाई है।।

दोहा

त्वचा चीर दिखला दिये, स्वर्ण जनेऊ काढ़ि।

मचि गई जय जयकार अरु, आइ प्रीति की बाढ़ि ।।
भये हजारों शिष्य चरण पड़ि, भयो मोह–भ्रम–नाश ।।प्रगटे॰।।19।।

लौटि पुनः काशी में आये, गृह में बसि हरि–गुण गण गाये,
एक दिन द्विजवर एक सुजान,
जा रहे करन गंग–असनान, तिनहिं कछु भेंट दई मतिमान,

कवित्त

विप्रदेव! गंगा जू सों कहिके प्रणाम मेरो, भेंट में सौगात कर, कमल में दीजियो।
करैं जो स्वीकार तो सौभाग्य है हमारो अति, माता के अनुग्रह, अचरज मत भीजिये।
नाहीं तो लौटाय पाई नारियल सुपाड़ी केला, याही ठौर लौटि पुनि वापस मोहि दीजियो।
भेंट दियो विप्र कढ़ि, आयो कर छिप्र एक, कंगन दै के बोलीं ये, प्रसाद धरि लीजियो।

दोहा

कंगन दै रैदास को, कहियो मम सन्देश।
प्रेम–भक्तिमय भाव सों, रहूँ प्रसन्न हमेश ।।
कंगन आनि दियो द्विज ने रैदासहि भरि उल्लास ।।प्रगटे॰।।20।।

लै कंगन विप्रहि लौटायो, आपु रखो आपुहि ने पायो,
काल कछु बीते अवसर पाय,
भूप पै कंगन पहुँच्यो जाय, दिये नृप रानी को पहिराय,

कवित्त

रानी मन में आनी, अपने पति ते हठ ठानी, एक और याको जोड़ो दीजै बेगि ही मँगाइ के।
कंगन अहै दिव्य कोई, प्राकृत सोनार ऐसो, काहू भाँति दूसरो दै सके ना बनाइ के।
खोजत–पूछत बात, पण्डितजी पै पहुँची जाय, पण्डितजी भयभीत गे रैदास पै घबड़ाइ के।
भैया रैदास! मेरे प्राण अब बचावो, चाहे–जैसे भी हो, कंगन को जोड़ो दै लगाइ के।।

दोहा

कंगन पहुँच्यो नृपति पै, रानी लइ हठ ठानि ।
चाहे जैसे हो सकै, जोड़ो दीजै आनि ।।
मोहि बुलाय काशी नरेश ने, आज्ञा दीनी खास ।।प्रगटे॰।।21।।

बोले तब रैदास उदारा, गंगा माय करैं निबटारा,
जिन्होंने दीन्हे हाथ बढ़ाय,
वही अब जोड़ो सकैं लगाय, कहै द्विज चलिके देहु दिवाय,

कवित्त

बोले तब रैदास, आप होवैं ना उदास बहुत, करनो ना प्रयास कतहूँ और ठौर जाइके।
मन है अगर चंगा तो कठौती में ही गंगा, देंगी सहित उमंगा, कर–कमल बढ़ाइ के।
विनती सुनाय, गंगा–महिमा कही गाय, कर गयो प्रगटाय वा कठौती में ही आइ के।
कंगन दीनो ल्याइ अति हिय हुलसाइ, भक्ति–महिमा प्रगटाई ऐसी घटना घटाइ के।।

दोहा

ऐसे ऐसे चरित हैं, जन के अमित अपार ।
जन नारायण नेहनिधि, कौन पासके पार ।।
गाये यत्किञ्चित्, जस वर्णित भक्तमाल इतिहास।। प्रगटे.।।22।।

पड़े ठाकुरजी हमरे पिछार, कराय रहे सेवा हैं।
कहिये कैसे हम कर दें किनार, यही याको भेवा हैं।
जैसे चाहें राजन करा लें परीक्षा,
देवें न्यायोचित हमारे लिये शिक्षा,
हम तो लेंगे वही सिर पै धार, आप नरदेवा हैं ।।पड़े.।।1।।
वेद–शास्त्र सकल प्रभु के श्रीमुख की बानी,
वे ही जो करावें, करूँ, नहिं कुछ मन मानी,
यामें कछू ना दुराग्रह हमार, न कोइ हठ–टेवा है ।।पड़े.।।2।।
चाहें तो श्रीठाकुरजी को गंगा में डालें,
जो भी चाहें विनय करिके धार से निकालें,
वर्ण ओछा, चतुर्थ है हमार, ये विप्र भूमि देवा हैं ।।पड़े.।।3।।
प्रभु हैं स्वतन्त्र औ समर्थ अन्तर्यामी,
नारायण नेहनिधि अखिल जग के स्वामी,
देखें निर्णय प्रभु चरणन में डार कौन यश लेवा है ।।पड़े।।4।।
निर्णय नरनाथ! अब तो प्रभु ही पर छोड़ें,
प्रभु के निर्णय से कोई मुख भी न मोड़ें,
है पसन्द मन्त्र विधि अथवा प्यार, साग अथवा मेवा है।। पड़े.।। 5।।231।।

अहै उत्तम पतिव्रता श्रीरैदास की घरनी
सन्तन की सेवा प्रेम से करै ।।
जाकी लोक–विलक्षण कहनी–रहनी–करनी ।।सन्तन की.।। 1।।
वाणी सत्य–मधुर, सेवा में नेकहु आलस नाहीं,
रसना पै प्रभु–नाम, राम को रूप बसै मन माँहीं,

मन–क्रम–वचन सकल विधि सतत प्रभू की शरनी ।।सन्तन की.।।2।।
पति को परमेश्वर समान गुनि सब प्रकार सन्माने,
भले गरीबी गले पड़ी है, हानि गलानि न माने,
बिना बिचारे–सोचे, पति–आज्ञा दिशि ढरनी।।सन्तन की.।।3।।
लई परीक्षा जाय विप्र ने, बिनु मन किये उदास,
पटको घृत–मटुकी आँगन में कहि पठये रैदास,
पटकि दइ तुरंत, सिक्त हो गइ आँगन की धरनी ।।सन्तन की.।।4।।
पण्डित बोले, ऐसी नहिं करि सकै मेरी घरवारी,
तनिक–तनिक में, तुनक–तुनक के देइ अनेकन गारी,
वैसी नारी ते तो बाढ़ै जिय की जरनी ।।सन्तन की.।।5।।
'नारायण' को दास नेहनिधि, गुनि मन कियो बिचार,
ऐसी होय गृहस्थी फिर तो भव से बेड़ा पार,
हरि की भक्ति भजन बिनु वृथा है जियनी–मरनी ।।सन्तन की.।।6।।24।।

39. रैदास : पदावली (सटीक)
राग रामगिरी (1)

(1)

परचै राम रमै जे कोइ। पारस परसें दुबिधि न होइ ।। टेक।।
जे दीसै सो सकल बिनास। अणदीठै नाहीं बिसवास ।।
बरण रहित कहै जो राम। सो भगता केवल निहकाम ।।1।।
फल कारणि फूली बणराइ। उपज्यौ फल तब पहुप बिलाइ ।।
ग्यानहि कारणि करम कराइ। उपज्यौ ग्यान तब करम नसाइ ।।2।।
बटक बीज जैसा आकार। पसर्‌यौ तीनि लोक बिसतार ।।
जहाँ का उपना तहाँ समाइ। सहज सुन्य में रह्यौ लुकाइ ।।3।।
जे मन ब्यन्दै सोई ब्यंद। अमावस में जैसे दीसै चन्द ।।
जल में जैसे तूँबा तिरै। परचै प्यंड जीवै नहीं मरै ।।4।।
सो मन कूण जु मन कूँ खाइ। बिन द्वारै त्रीलोक समाइ ।।
मन की महिमा सब को कहै। पंडित सो जे अनभै रहै ।।5।।
कहै रैदास यहु परम बैराग। राम नाम किन जपहु सभाग ।।
घृत कारणि दधि मथै सयान। जीवत मुकति सदा निरवान ।।6।।1।।

गुरुग्रन्थीय—पाठ, रागु भैरउ, पृष्ठांक—1167

बिनु देखे उपजै नही आसा। जो दीसै सो होई बिनासा ।।
बरन सहित जो जापै नामु। सो जोगी केवल निहकामु ।।
परचै रामु रवै जउ कोई। पारसु परसै दुबिधा न होई ।।रहाउ।।
सो मुनि मन की दुबिधा खाइ। बिनु दुआरे त्रैलोक समाइ ।।
मन का सुभाउ सभु कोई करै। करता होइ सु अनभै रहै ।।

फल कारन फूली बनराइ। फलु लागा तब फूलु बिलाइ ।।
गिआने कारण करम अभिआसु। गिआनु भइआ तह करमह नासु ।।
घ्रित कारन दधि मथै सइआन। जीवत मुकत सदा निरबान ।।
कहि रविदास परम बैराग। रिदै रामु की न जपसि अभाग ।।

सद्‌गुरु, शास्त्र, संत, सत्संग के द्वारा परब्रह्म– परमात्मा रूप रामजी का परोक्ष–ज्ञान प्राप्त करके जो रामजी का स्मरण करता हुआ उसी में रमण करना प्रारम्भ कर देता है, उसे पारस रूपी रामजी का अपरोक्ष–ज्ञान हो जाता है और अपरोक्ष–बोधानन्तर द्वैत रूपी दुविधा का सर्वथा शमन हो जाता है। जो दृष्टिगोचर होता है, वह विनाशशील होता है। परमात्मा दृष्टि–मुष्टि में नहीं आता; अतः उसका प्रत्यक्ष न होने से उसके 'है पन' के प्रति विश्वास नहीं होता कि वह है अथवा नहीं है। वस्तुतः परमात्मा रूप राम वर्णन रहित है। उसका रूप, आकार, वर्ण आदि कुछ भी नहीं है। ऐसे वर्ण रहित अक्षरातीत परमात्मा का जो स्मरण करता है, यथार्थ में वही निष्केवल व निष्काम–भक्त है। वृक्षों, लताओं, पादपों में फल आने के लिए ही फूल खिलते हैं। फल आने के उपरान्त फूल स्वतः ही विनष्ट हो जाता है। ऐसे ही माया व मायाजन्य दृश्यमान जगत् तब–तक ही सत्यवत् प्रतीत होते हैं, जब–तक कि मनःअगोचर परब्रह्म–परमात्मा का अपरोक्ष–बोध नहीं होता। ज्ञान प्राप्ति के लिए ही कर्म–साधना की जाती है। जब ब्रह्मात्मैक्य रूपी ज्ञान हो जाता है, तब साधना रूपी कर्म का करना रुक जाता है। निर्गुण–निराकार परमात्मा बट–बीजवत् अदृश्य रहता है। संसार बट–वृक्षवत् प्रत्यक्ष दीखता है। वस्तुतः तीनों लोकों में बीज रूप से वही परमात्मा परिव्याप्त है। दृश्यमान् जगत् व इसके समस्त पदार्थ यहीं उपजते और यहीं खप जाते हैं, जबकि आत्मा रूप परमात्मा सहज–शून्य में सदैव छिपा हुआ विद्यमान रहता है। वह षड्‌विकार रहित एकरस रहने वाला है। जो मन से बिंध जाता है, वही बँधा हुआ है, जैसे अमावस्या की काली रात्रि में चन्द्रमा नहीं दिखता। इसके विपरीत जिसने मन को वश में कर लिया है, वह संसार में रहते हुए भी संसार से वैसे ही निर्लिप्त रहता है, जैसे जल में रहती हुई तुम्बिका जल में न डूबकर जल पर तैरती रहती है। मन को जीतने वाले की कभी भी मृत्यु नहीं होती। वह परमात्म–साक्षात्कार प्राप्त करके जीवन्मुक्त हो जाता है। संतप्रवर रैदास प्रश्न करते हैं, वह मन कौनसा है, जो मन को ही खा–जाता है। बिना आने–जाने के द्वारों के ही वह तीनों लोकों में भ्रमण करता है। मन की महिमा–महानता का बखान हर कोई करता है, किन्तु पंडित–बुद्धिमान वही है जो मन को वश में करके अणभैआत्मसाक्षात्कार के रास्ते पर चल पड़ता है या आत्मसाक्षात्कार कर लेता है। रैदास कहता है– मन को वश में कर लेना ही परम वैराग्य है। हे भाग्यवान! राम–नाम का जप क्यों नहीं करता?

सयाने लोग घृत पाने के लिए दधि–मंथन करते है। तू भी आत्मसाक्षात्कार हेतु राम–नाम–स्मरण कर। राम–नाम–स्मरण करने से जीवन्मुक्ति मिलती है और जीवन्मुक्ति सदैव निर्वानमाया रहित होती है अर्थात् मुक्ति सच्चिदानन्द रूप आत्मस्थ हो जाना है, जहाँ माया की पहुँच तक नहीं है।

(2)

अब मैं हार्‌यौ रे भाई।
थकित भयौ सब हाल चाल थैं, लोकनि बेद बडाई ।। टेक।।
थकित भयौ गाइण अरु नाचण, थाकी सेवा पूजा।
काम क्रोध थैं देह थकित भई, कहूँ कहाँ लौं दूजा ।।1।।
राम जन होउँ न भगत कहाऊँ, चरन पखालु न देवा।
जोइ जोइ करूँ उलटि मोहि बाँधै, ताथैं निकटि न भेवा ।।2।।
पहलि ग्यान का किया चाँदणा, पीछै दिया बुझाई।
सुन्य सहज में दोऊ त्यागे, राम कहूँ न खुदाई ।।3।।
दूरि बसैं षट करम सकल अरु, दूरि ब कीन्हें सेऊ।
ग्यान ध्यान दोऊ दुरि कीन्हें, टूरि ब छाडे तेऊ ।।4।।
पंचूँ थकित भये जहाँ ताहाँ, जहाँ तहाँ थिति पाई।
जा कारनि मैं दोर्‌यौ फिरतौ, सो अब घट में पाई ।।5।।
पंचौं मेरी सखी सहेली, तिनि निधि दई दिखाई।
अब मन फूलि भयौ जग महिंयाँ, उलटि आपमें समाई ।।6।।
चलत चलत मेरौ निज मन थाक्यौ, अब मोपै चल्यौ न जाई।
साँईं सहज मिल्यौ सोइ सनमुख, कह रैदास बताई ।।7।।2।।

लोक=समस्त संसार में वेदों की महिमा का बखान होता है, अर्थात् सारी दुनिया वेदमार्गानुमोदित विधि–निषेध के चक्र में ही उलझी पड़ी है। दुनिया के इन हाल–चालों को देखते व सुनते–सुनते मैं थक गया हूँ। अब तो उन्हें समझा–समझाकर भी हार गया हूँ, क्योंकि वे अपनी लीक से हटने को तैयार ही नहीं हैं। नाचने और गाने से मैं थक चुका हूँ। मैंने सेवा–पूजा का भी परित्याग कर दिया है। काम–क्रोधादिक से भी मेरी देह थक चुकी है। अन्यों की कथा कहाँ तक कहूँ। न मैं राम–जन होना चाहता हूँ और न मैं भक्त ही कहलाना चाहता हूँ। मैं देवी–देवताओं के चरण प्रक्षालन भी नहीं करता। मैं जो–जो भी करता हूँ, वे–वे ही मुझे बंधन में बाँधते हैं। इसलिए निकटस्थआत्मस्थ परमात्मा का रहस्य ज्ञात नहीं हो पाता है। मैंने प्रारम्भिकावस्था में ज्ञान प्राप्त करने का

प्रयत्न करके उसका प्रकाश अपने हृदय में किया, किन्तु अब मैंने उस ज्ञान रूपी दीपक को बुझा दिया है, क्योंकि मेरा निवास अब सहज शून्य में हो गया है, जिस कारण न मैं अब राम–स्मरण करता हूँ और न खुदा का जिकर ही करता हूँ। मेरे से अब षट्कर्म बहुत दूर निवास करने लगे हैं। मैंने उनका भी परित्याग कर दिया है। ज्ञान और ध्यान दोनों को भी दूर करके परित्याग कर दिया है। पाँचों विषय जहाँ के तहाँ रुक गये हैं। जहाँ उनका उत्पत्ति–स्थान था, वे वहीं स्थित हो गये हैं। जिस परमात्मा के प्राप्त्यर्थ मैं इधर–उधर घूमा फिरता था, अब उस परमात्मा को मैंने इस शरीर में ही प्राप्त कर लिया है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अब मेरी सखी–सहेली बन गई हैं, जिन्होंने मुझे मेरे घर में ही छिपी परम–निधि के दर्शन करा दिये हैं। परम–निधि रूप परमात्मा के दर्शन हो जाने से संसार में रहने के बावजूद भी मेरा मन आनंद–निमग्न हो गया है, संसार से विमुख होकर स्वात्मा में रमण करने लगा है। चलते–चलते= भ्रमण करते–करते मेरा निज–मन भी थक गया है, निश्चल रूप परमात्मा में निश्चल हो गया है। परिमाणतः अब मेरे से चला ही नहीं जाता है। रैदास जताकर कहता है, मुझे परमात्मा सहज में ही मिल गया है, जिसके मैं सदा–सर्वदा सन्मुख रहता हूँ; उसका शरणागत हूँ ।।2।।

(3)

गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ, गावणहारा कूँ निकटि बताऊँ ।। टेक।।
जब लग है या तन की आसा, तब लग करै पुकारा।
जब मन मिट्यौ आस नहिं तन की, तब को गावणहारा ।। 1।।
जब लग नदी न समदि समावै, तब लग बढ़ै अहँकारा।
जब मन मिल्यौ राम सागर सूँ, तब यहु मिटी पुकारा ।। 2।।
जब लग भगति मुकति की आसा, परम तत्त सुणि गावै।
जहाँ जहाँ आस धरत है यहु मन, तहाँ तहाँ कछू न पावै ।। 3।।
छाडै आस निरास परम पद, तब सुख सति करि होई।
कह रैदास जासुँ और कहत हैं, परमतत्त अब सोई ।। 4।। 3।।

गाने योग्य स्मरणीय का स्मरण अब–तक अनेक विधियों से प्रभूत–मात्रा में कर लिया। अब और क्या–क्या कहकर किस–किस विधि से उसका स्मरण और करूँ, क्योंकि स्मरणीय स्मरणकर्त्ता के सन्निकट ही बताया जाता है और ऐसा मुझे अनुभव भी हो गया है। जब–तक इस शरीर के प्रति मोह रहता है, तब–तक ही जीव संसार के नाना भोग–विलासों का चिन्तन, स्मरण और प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। जब मन नियंत्रित हो जाता है और शरीर के प्रति राग समाप्त हो जाता है, तब

सांसारिक–भोगविलासों का चिन्तन करने वाला कोई शेष ही नहीं रहता। जब–तक व्यष्टि आत्मा रूपी नदी समष्टि ब्रह्म रूपी समुद्र से एकाकार नहीं हो जाती, तब–तक ही व्यष्टि चेतन में अहमत्व का वास रहता है और तब ही तक उसकी संज्ञा जीव रहती है। जब व्यष्टि आत्मा रूपी नदी समष्टि ब्रह्म रूपी समुद्र से एकाकार हो जाती है, तब सांसारिक–भोगविलासों की प्राप्ति के प्रयत्न थक जाते है, उनका चिन्तन–स्मरण रुक जाता है। जब–तक मन में भक्ति और मुक्ति की आशा रहती है, तब ही तक परमतत्त्व रूपी परब्रह्म–परमात्मा के बारे में सुन व जानकर उसका स्मरण–चिन्तन मन में होता है। वस्तुतः मन जहाँ–जहाँ से यह आशा करता है कि इनके माध्यम से मुझे भक्ति व मुक्ति की प्राप्ति हो जायेगी, वहाँ–वहाँ से उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। यथार्थ में सुख तब होता है, जब मन समस्त आशाओं, तृष्णाओं को त्यागकर निराश हो जाता है; तबही वह परमपद रूप परमात्मा को पाता है। रैदास कहता है– दुनिया जिसको और–और ही कहती है, वेद नेति–नेति कहते हैं, निराश हो जाने पर ऐसा और–और तत्त्व ही परमतत्त्व के रूप में अनुभूत होने लगता है।। 3।।

(4)

राम कहूँ न भगत कहाऊँ, सेवा करूँ न दासा।
गुनी जोग जगि कछू न जानू, ताथैं रहूँ उदासा ।। टेक।।
भगत हुवाँ तौ चढ़ै बढ़ाई, जोग करूँ जग मानैं।
गुणी हुवाँ थैं गुणि गुणिजण कहैं, गुणी आप कूँ तानैं ।। 1।।
ना मैं ममिता मोहि न महियाँ, ए सब जाहिं बिलाई।
दोजग भिस्त दोउ समि करि जानूँ, दुहुँवाँ थैं तरक है भाई ।। 2।।
तैं मैं ममिता देखि सकल जग, मैं तैं मूल गवाई।
जब मन ममिता एक एक मन, तबहि एक है भाई ।। 3।।
कृष्ण करीम राम हरि राघव, जब लग एक एक नहिं पेख्या।
बेद कतेब कुरान पुराननि, सहजि एक नहिं देख्या ।। 4।।
जोइ जोइ करि पुजियै सोइ काची, सहजि भाव सति होई।
कह रैदास मैं ताहि कूँ पूजौं, जाकै गाव न ठाव न नाव नहिं कोई ।। 5।। 4।।

रैदास अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहते हैं– न मैं राम–नाम–स्मरण करता हूँ और न अपने आपको भक्त ही कहलवाता हूँ। न मैं सेवा करता हूँ और न अपने–आपको दास कहलवाता हूँ। न मैं गुणीपना जानता हूँ, न योग, यज्ञ अथवा और कुछ जानता हूँ। इसीलिए मैं इन सबसे उदासीन रहता हूँ। यदि मैं भक्त होता हूँ तो जगत्

में मेरी बड़ाई होती है, महिमा का गायन होता है। यदि मैं योगमार्ग का आश्रय लेता हूँ तो जगत् मुझे योगी मानकर मेरे से चमत्कार दिखाने की आशा करता है। गुणी होने से दुनियावी लोग गुणीजन कहने लगते हैं और मैं स्वयं भी अपने आपको गुणी मानने लगता हूँ। न मेरे मन में किसी के प्रति ममता है और न मोह–माया है। ये सब समाप्त हो चुके हैं। नरक और स्वर्ग दोनों के प्रति मेरी सम–बुद्धि है और दोनों से ही हे भाई! मेरी बुद्धि तरक–दूर है। मैं, तू के प्रति ही सकल जगत् में ममता देखने को मिलती है, किन्तु मैंने मैं, तू की जड़ माया का ही परित्याग कर दिया है। जब मन और ममता एक–मन=एकाकार हो जाते हैं तबही हे भाई! वे एक हैं। कृष्ण, करीम, राम, हरि, राघव आदि को जब–तक एक करके नहीं देखा=माना जाता, तब–तक वेद, पुराण, कुरान, किताबों ने स्वभावतः एक ही तत्त्व को एक करके नहीं जाना। सहज के अतिरिक्त अन्यों को जिस–जिस भी भाव से भजिये, वह सब कच्चे हैं। मात्र सहजभाव ही सत्य है। रैदास कहता है– मैं तो उसकी पूजा करता हूँ जिसका गाँव, ठौर–ठिकाना व नाम–पता तक नहीं है ।। 4।।

(5)

इब मोरी बूडी रे भाई, ताथैं चढ़ी लोक बडाई।। टेक।।
अति अहँकार ऊरमाँ सत रज, तामें रह्यौ उरझाई।
करम बझि बसि पर्‌यौ कछू न सूझै, स्वामी नाँव बुलाई ।।1।।
हम मानुँ गुनी जोग सुनि जुगता, हम महापुरिष रे भाई।
हम मानुँ सूर सकल बिधि त्यागी, ममिता नहीं मिटाई ।।2।।
मानूँ अखिल सुन्य मन सोध्यौ, सब चेतनि सुधि पाई।
ग्यान ध्यान सबही हम जान्यूँ, बूझैं कौन सूँ जाई ।।3।।
हम मानुँ प्रेम प्रेम रस जान्यूँ, नौबिधि भगति कराई।
स्वाँग देखि सबही जग लटक्यौ, फिरि आपणपौ रु बँधाई ।।4।।
स्वाँग पहरि हम साच न जान्यूँ, लोकनि इहै भ्रमाई।
स्यंघ रूप मेषी जब जहरी, बोली तब सुधि पाई ।।5।।
ऐसी भगति हमारी संतौ, प्रभुता इहै बड़ाई।
आपन अन्यन और नहिं मानत, ताथैं मूल गवाई ।।6।।
भणैं रैदास उदास ताही थैं, इब कछु मोपैं करी न जाई।
आपौ खोयाँ भगति होत है, तब रहै अंतरि उरझाई ।।7।।5।।

लोक=संसार में मेरी महिमा का बखान हो रहा है; इसलिए अब समझो कि मैं डूब गया हूँ, डूबने लगा हूँ। प्रचंड अहंकार, षडूर्मि, सत्त्व, रज व तम=त्रिगुणों में मैं आकंठ

डूबा पड़ा हूँ। नाना कर्म करने में भी मैं उलझा पड़ा हूँ, जिस कारण मुझे अच्छा–बुरा कुछ भी सूझता नहीं है। जनता मुझे स्वामी के नाम से बुलाती है, जिसको सुनकर मैं फूला नहीं समाता हूँ। हमने अपने आपको गुणी मान लिया है। योग की युक्तियों को मात्र सुनकर ही मैंने अपने आपको योगी मानना प्रारम्भ कर दिया है। इतना ही नहीं, अपने आपको महापुरुष भी मानना प्रारम्भ कर दिया है। हमने अपने आपको शूरवीर और सर्वथा त्यागी मानना प्रारम्भ कर दिया है, जबकि अभी भी मेरे मन में से सांसारिक भोग–विलासों के प्रति ममता समाप्त नहीं हुई है। मैं ऐसा भी मानने लगा हूँ कि मैंने अखिल शून्य समान मन का शोधन कर डाला है, सर्वप्रकार से चैतन्य हूँ व मुझे तीनों कालों का ज्ञान हो गया है। मैंने ज्ञान–ध्यान को भलीप्रकार जान लिया है। जानना कुछ भी शेष नहीं रहा है। अतः कौन किससे जाकर ज्ञान–ध्यान की बातें जाने। मुझे ऐसा भी अहंकार होने लगा है कि मैंने प्रेम–तत्त्व व प्रेम–रस को पूर्णतः जान लिया है। नवधा–भक्ति का सम्पादन सांगोपांग करता हूँ। मेरे स्वांग को देखकर सारा ही संसार मेरी ओर आकर्षित हो गया है। मैं भी अपने स्वांग से मोहित हो गया, बँध गया। स्वांग पहन कर मैंने सत्य को नहीं जाना, किन्तु संसार इस स्वांग से भ्रमित हो गया। उन्होंने मुझे सच्चा साधु मान लिया, किन्तु मेरी स्थिति ठीक वैसी ही है जैसे बकरी को सिंह की खाल पहना दी जाय तो दुनिया उसे सिंह मानने लगती है, किन्तु जैसे ही वह बोलती है, उसकी असलियत की जानकारी हो जाती है। ऐसी ही हमारी भी भक्ति ढोंगपूर्ण है; अतः हे संतो! हमारी उक्त वास्तविकता ही हमारी प्रभुता व बड़ाई का राज है। रैदास कहते हैं– स्वयं तो अपने लक्ष्य के प्रति अनन्य=सर्वतोभावेन समर्पित नहीं हैं, साथ ही दूसरों के सत्परामर्श मानते नहीं हैं। इसी कारण अपनी मूल पूंजी को भी गँवा बैठते हैं, लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। रैदास कहता है– इसीलिए मैं इन सबसे उदासीन हो गया हूँ। मेरे से अब कुछ कर पाना भी संभव नहीं है। अहंकार को विगलित कर देने पर ही भक्ति का होना संभव होता है और जब यथार्थ भक्ति होना संभव हो जाता है, तब समस्त बहिर्मुखता समाप्त होकर प्रत्यगात्मा–अन्तरात्मा में ही रमण करना प्रारम्भ हो जाता है।

(6)

भाई रे भरम भगति सु जानि।
जौंलौं नहीं साच सूँ पहिचानि ।। टेक।।
भरम नाचण भरम गाइण, भरम जप तप दान।
भरम सेवा भरम पूजा, भरम सूँ पहिचानि ।।1।।
भरम षट क्रम सकल सहिता, भरम नाँव बिनाउँ।

भरम करि करि करम कीयै, भरम की यहु बानि ।।2।।
भरम इंद्री निग्रह कीयां, भ्रम गुफा में बास।
भरम तौंलौं जाणियैं, सुन्य की करै आस ।।3।।
भरम सुध सरीर जौंलौं, भरम नाँव बिनाव।
भरम भणैं रैदास तौंलौं, जौंलौं चाहै ठाँव ।।4।।6।।

हे भाई! जिससे सत्यस्वरूप परब्रह्म– परमात्मा का अपरोक्षानुभव नहीं होता, उस साधित भक्ति को भक्ति न जानकर भ्रम जानना चाहिए। नाचना, गाना, जप, तप, दान, सेवा, पूजा आदि सभी भ्रम रूप हैं। ये न भक्ति और न भक्ति के अंग ही हैं। इनको करना या साधना मानो भ्रम से जान–पहचान= मित्रता करना है। अंग–प्रत्यंगों सहित षट्कर्म भ्रम रूप हैं तो नाम, अनाम भी भ्रम रूप ही है। भ्रम की पहचान ही यही है कि कर्म करने वाला कर्त्ता भ्रमित हो–होकर ही भ्रमपूर्ण कार्य करता रहता है। इन्द्रिय–निग्रह भ्रम रूप है। गुफा–निवास भ्रमात्मक है। जब–तक साधक शून्य की आशा करता है तब–तक भ्रम ही जानना चाहिए। जब–तक देह की सुधि–देहाध्यास रहता है, तब–तक भ्रम ही का साम्राज्य रहता है। नाम–अनाम भी भ्रम ही है। जब–तक ठाँव–वैकुण्ठादि लोकों की आशा=इच्छा रहती है तब–तक रैदास कहता है– भ्रम की ही स्थिति रहती है।।6।।

(7)

त्यौं तुम्ह कारनि केसवे, अंतरि ल्यौ लागी।
एक अनूपम अनभई, किम होइ बिभागी ।।टेक।।
इक अभिमानी चात्रिगा, बिचरत जग माहीं।
जदपी जल पूरण मही, कहुँवाँ रुचि नाहीं ।।1।।
जैसें कामी देखैं कामिनी, हिरदै सूल उपाई।
कोटि बैद बिधि ऊचरैं, वाकी बिथा न जाई ।।2।।
जो जिहिं चाहै सो मिलै, आरति गत होई।
कहै रैदास यहु गोपि नहीं, जाणैं सब कोई ।।3।।7।।

हे केशव! तुझे पाने के लिए मेरे अन्तः करण में लौ लग गई है। तू एक=अद्वितीय और अनुपम है। ऐसे तुझ अद्वितीय और अनुपम का मुझे अनुभव–अपरोक्षानुभव हो गया है, जिससे मेरी और तेरी सत्ता एक=अद्वैत रूप हो गई है। अब वह खंडित नहीं हो सकती या विभागयुक्त नहीं हो सकती। अभिमानी=अपनी टेक के प्रति दृढ़–प्रतिज्ञ और इस दृढ़–प्रतिज्ञा के प्रति अभिमान रखने वाला चातक सारे जगत् में विचरण करता है।

सारे जगत् में सर्वत्र जल उपलब्ध होता है फिर भी वह उस जल को पीने में लेशमात्र की भी रुचि नहीं लेता; पीता भी नहीं। वह स्वाति नक्षत्र के जल को ही पीता है। जैसे कामिनी को देखते ही कामी के हृदय में काम रूपी शूल=दर्द उत्पन्न हो जाता है और वह शूल तब–तक शमित नहीं होता, जब–तक कि वह कामिनी के संग रमण नहीं कर लेता, चाहे करोड़ों दवाइयाँ वैद्य द्वारा उसको दी जाएँ। जो जिसको चाहता है, वह उसको मिलता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है, किन्तु मिलता आरति=वियोगजन्य विरह की स्थिति=तीव्रता अथवा मंदता के अनुसार ही है। रैदास कहता है– उक्त बात गुप्त न होकर जग–जाहिर है, सारा जग उक्त तथ्य को जानता है।। 7।।

(8)

आयौ हो आयौ देव तुम्ह सरणा,
जानि कृपा कीजै अपनौं जना ।। टेक।।
तृबिधि जोइनी बास, जम की अगम त्रास,
तुम्हारे भजन बिन भ्रमत फिर्‌यौ।
ममिता अहं विषै मदिमातौ,
इहिं सुखि कबहूँ न दूतर तिर्‌यौ ।।1।।
तुम्हारे नाँइ बेसास, छाडी है आन की आस,
संसारी धरम मेरौ मन न धीजै।
रैदास दास की सेवा, मानिहो देवाधिदेवा,
पतित पावन नाँउ प्रगट कीजै ।।2।।8।।

हे देव! मैं तेरी शरण में आ गया हूँ । हाँ, तेरी ही शरण में आ गया हूँ। अपना शरणागत–जन जानकर मेरे ऊपर दया करके कृपा कर। जल–चर, थल–चर व नभ–चर नामक तीनों योनियों में जन्म लेकर व रहकर मैंने यम की अगम्य त्रास सहन की है, क्योंकि मैंने कभी भी तेरा भजन नहीं किया जिस कारण मैं उक्त तीनों तरह की योनियों में पुनः–पुनः जन्म लेता रहा व मरता रहा। जन्म–मरण के चक्र से मुक्त नहीं हो सका। ममता और अहंकार के मद में ही मैं मस्त बना रहा। सांसारिक सुखों को भोगने में आकण्ठ डूबा रहा जिस–कारण संसार–सागर से मैं पार न हो सका। हे देव! तेरे नाम के विश्वास पर ही मैंने समस्त अन्य आशाओं को छोड़ दी हैं। अब नाम का आश्रय ले लेने से मेरा मन सांसारिक–धर्म–कर्मों से विलग हो गया है। हे देवाधिदेव! मुझ रैदास नामक दास की सेवा को स्वीकार कर और अपने पतित–पावन नामक बिड़द को प्रकट कर, पतितपावन नाम के बिड़द की लाज रख ।।8।।

(9)

भाई रे राम कहाँ है मोहि बतावो।
सत्य राम ताके निकटि न आवो।। टेक।।
राम कहत सब जगत भुलाना, सो यहु राम न होई।
करम अकरम करुणामै केसौ, करता नाँव सु कोई ।।1।।
जा राम हिं सब जग जानैं, भ्रमि भूला रे भाई।
आप आप थैं कोइ न जाणैं, कहैं कौंण सूँ जाई ।।2।।
सतित न लोभ परसि जिय तन मन, गुन परसन नहिं जाई।
अखिल नाँव जाकै ठौर न कतहूँ, क्यूँ न कहौ समझाई ।।3।।
भणैं रैदास उदास ताही थैं, करता को है भाई।
केवल करता एक सही करि, सत्य राम तिहिं ठाई ।। 4।।9।।

हे भाई! मुझे बताने की कृपा करो कि राम कहाँ है? जो राम त्रिकालावाधित सत्य–स्वरूप है। हे भाई! तुम क्यों नहीं उसके सन्निकट आते, क्यों नहीं उसको जानने का प्रयत्न करते? जिसको सारा संसार 'राम'–'राम' कहता है, वस्तुतः वह सत्य स्वरूप राम नहीं है। सारा जगत् सत्यातिरिक्त अन्य राम में ही अनुरक्त हुआ भ्रमित हुआ पड़ा है। कर्म, अकर्म, करुणामय, केशव, कर्ता आदि राम के अन्य नाम हैं। जिस राम को जगत् जानता है, वह राम नहीं है। हे भाई! तुम सभी भ्रम से भ्रमित हो। अपने आप कोई भी न तो जानने का प्रयत्न करते हैं और न जानते ही हैं। फिर बताइये, किससे जाकर सत्यस्वरूप राम के बारे में कहा जाए! जिसको लोभ सता नहीं पाता; जिसके तन, मन और प्राण को लोभ छू तक नहीं पाता; तीनों गुण भी जिसका स्पर्श तक नहीं कर पाते; जिसका नाम अखिल=कभी भी खण्डित न होने वाला है; जिसकी कोई एक निश्चित् ठौर नहीं है; ऐसे राम के बारे में कोई समझा–कर कहता क्यों नहीं है। वस्तुतः ऐसे राम के बारे में कोई भी कहता=जानता ही नहीं है। इसीलिये मैं रैदास सबसे उदासीन हूँ। उक्त प्रकार का कर्त्ता कौन है, हे भाई! बताओ। वस्तुतः भ्रम रहित (केवल) एक कर्त्ता का निश्चय (सही) जहाँ हो जाता है, सत्यस्वरूप राम की ठौर वहीं है ।।9।।

(10)

ऐसौ कछु अनभै कहत न आवै।
साहिब मेरौ मिलै त को बिगरावै ।। टेक।।
सब में हरि है हरि में सब है, हरि आपनपौ जिनि जाना ।।1।।
अपनी आप साखि नहीं दूसर, जाननहार समाना ।।2।।

बाजीगर सूँ रहनि रहीजे, बाजी का मरम अब जाना ।।3।।
बाजी झूठ साच बाजीगर, जाना मन पतियाना ।।4।।
मन थिर होइ तौ काँइ नहीं सूझै, जानैं जाननहारा ।।5।।
कहै रैदास बिमल बमेक सुख, सहज सरूप सँभारा ।।6।।10।।

अनुभव–आत्मसाक्षात्कार कुछ इस–प्रकार का अनुभव है कि उसका वर्णन करना अशक्य है। मेरे साहिब के प्राप्त हो जाने पर, ऐसा कौन है जो प्राप्तकर्त्ता का कुछ बिगाड़ सके। वस्तुतः एक–बार आत्मसाक्षात्कार हो जाने पर फिर कभी भी कोई भी आत्मसाक्षात्कारी का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। वह पतित भी नहीं होता। वह तो हमेशा–हमेशा के लिए भव–बन्धन–मुक्त हो जाता है। सभी में हरि विद्यमान हैं। हरि में सभी विद्यमान हैं, किन्तु फिर भी कोई भी अपने आपमें हरि की विद्यमानता को नहीं जानता। अपने आप का साक्षी आप स्वयं ही है, अन्य दूसरा कोई नहीं। ज्ञाता और ज्ञेय दोनों समान हैं। बाजी का रहस्य जानकर बाजीगर की भाँति रहिये। जिस–प्रकार बाजीगर अपने द्वारा दिखाये जा रहे हैरत–अंगेज करतबों से प्रभावित नहीं होता, उसी–प्रकार साधक को साक्षी–भाव अंगीकार करके संसार और संसारी सुखैश्वर्यों में लिपायमान नहीं होना चाहिए, उन्हें साक्षी भाव से भोगना चाहिए। बाजी को झूठ व बाजीगर=परमात्मा को सत्य मानना चाहिए। जिस दिन बाजीगर को त्रिकाल सत्य जान लिया, मानो उसी दिन मन में विश्वास जम गया कि परमात्मा रूप आत्मा सत्य स्वरूप है। जब मन स्थिर हो जाता है, तब माया व मायाजन्य संसार कुछ भी नहीं दिखते। ये मन को उद्विग्न नहीं कर पाते। फलतः जानने योग्य परमात्मा को जानने वाला साधक सत्य स्वरूप को जान जाता है, उसका साक्षात्कार कर लेता है। रैदास कहता है– विमल विवेक और विमल सुख रूप स्वयं का सहज–स्वाभाविक स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप सच्चिदानन्द रूप है और जब मन स्थिर हो जाता है, तब उसको संसार और संसार के तत्त्व भासित न होकर सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।।10।।

(11)

अखिल खिलै नहिं का कहि पंडित, कोइ न कहै समझाई।
अबरण बरण रूप नहिं जाके, सु कहाँ ल्यौ लाइ समाई ।।टेक।।
चंद सूर नहिं राति दिवस नहीं, धरनि अकास न भाई।
कर्म अक्रम नहिं सूभ असुभ नहिं, का कहि देहूँ बड़ाई ।।1।।
सीत उसन्न बाइ नहिं सरवत, काम कुटिल नहिं होई।

जोग न भोग रोग नहिं जाके, कहौ नाँव सति सोई ।।2।।
निरअंजन निरकार न्रिलेपहि, निरबिकार नीरासी।
काम कुटिलता ही कहि गावत, हर हर आवै हासी ।।3।।
गगन धूर धूसर नहिं जाके, पवन पूर नहिं पानी।
गुंन बिगुन कहियत नहिं जाके, कहो तुम्ह बात सयानी ।।4।।
याही सूँ तुम जोग कहत हो, जब लग आस की पासी।
छुटै तबहि जब मिलै एक ही, भणैं रैदास उदासी ।।5।।11।।

हे पंडित=बुद्धिमान् शास्त्रज्ञ! जो कभी भी खंडित नहीं होता प्रत्युत् तीनों कालों में अखंड=एकरस रहता है, उसका कैसे करके वर्णन किया जा सकता है! क्योंकि कोई भी समझाकर उसके बारे में पूरी बात नहीं बताता; इसीलिए वेद नेति–नेति कहते हैं। वस्तुतः वह परमात्मा न वर्ण रहित है और न वर्णयुक्त है। उसका कोई रूप–स्वरूप भी नहीं है। ऐसी स्थिति में, कोई कैसे व किसमें लय=चित्त–वृत्ति को नियोजित करे। परमात्मा न सूर्य, न चन्द्रमा, न रात्रि, न दिवस, न भूमि, न आकाश, न कर्म, न अकर्म, न शुभ, न अशुभ, कुछ भी नहीं है। ऐसी स्थिति में बताओ कि उसको किन लक्षणों, उपलक्षणों, विशेषणों से जाना जा सकता है? वह न शीत, न उष्ण, न वायु, न अग्नि (सरवत)?, न काम, न कुटिलता, न योग और न भोग ही है। उसको आधि–व्याधि रूप रोग भी नही व्यापते। वस्तुतः उसका नाम सत्य (सच्चिदानन्द) है। वह परमात्मा निरंजन माया से अस्पृष्टय, आकारहीन, निर्लिप्त, निर्विकार, निर्आशी, कामहीन, कुटिलताहीन है। यदि कोई परमात्मा को मायाविशिष्ट, साकार, संलिप्त, सविकारी, आशायुक्त, कामयुक्त, कुटिल कहता है तो मुझे उस पर हड़–हड़=बडी भारी हँसी आती है। वह परमात्मा न गगन, न धूल, न धूसर, न पवन, न पानी, न सगुण, न निर्गुण ही है। हे सयाने पंडित! तुम बुद्धिमत्तापूर्ण बात कहो। जिसको तुम योग कहते हो और जब–तक तुम्हारे अन्तः करण में आशा की फाँसी बँधी हुई है, तब–तक तुम एक अद्वितीय परमात्मा से एकाकार नहीं हो सकते। उनसे छूटने पर ही अद्वितीय परमात्मा से एकाकार हो सकता है, ऐसा उदासी रैदास कहता है ।।11।।

(12)

नरहरि चंचल मति मोरी, कैसैं भगति करूँ राम तोरी ।। टेक।।
तूँ मोहि देखै हूँ तोहि देखूँ, प्रीति परसपर होई।
तूँ मोहि देखै हूँ तोहि न देखूँ, इहिं मति सब सुधि खोई ।।1।।
सब घटि अंतरि रमसि निरंतरि, मैं देखत ही नहिं जाना।

गुन सब तोर मोर सब अवगुन, कृत उपगार न माना ।।2।।
मैं तैं मोर मोरीअ समझिसि, कैसैं करि निसतारा।
कहै रैदास कृष्ण करुणामै, जै जै जगत अधारा ।।3।।12।।

हे नरहरि! मेरा मन अतीव चंचल है। हे राम! तेरी भक्ति कैसे करूँ। तू मुझे देखे, मैं तुझे देखूँ; इस परस्पर के देखने=याद करने से परस्पर प्रेम होता है। तू तो मुझे देखे किन्तु मैं तेरी ओर देखूँ ही नहीं; ऐसी स्थिति में सारी सुधि=याद जाती रहती है। प्रीति परस्पराश्रित है, एकतरफा नहीं। हे हरि! आप सचराचर में रमे हुए हो, इसको जानते हुए भी मैं आपको नहीं जान पाया। तेरी ओर से हमेशा उपकार ही उपकार किये गये, जबकि मेरी ओर से सारे अवगुण=अपकार ही किये गये। मैं इतना बड़ा कृतघ्नी हूँ कि मैंने तेरे किये गये उपकारों को उपकार माना ही नहीं। मैं हमेशा मैं, मेरी; तू, तेरी ही करता व समझता रहा। ऐसा करने से भवसागर से निस्तारा कैसे हो सकता है! हे जगदाधार करुणामय कृष्ण! रैदास तेरी जय–जय करता है ।।12।।

(13)

राम बिन संसै गाँठि न छूटै।
काम किरोध मोह मद माया, इनि पंचनि मिलि लूटै ।।टेक।।
हम बड कबि कुलीन हम पंडित, हम जोगी सिन्यासी।
ग्यानी गुनी सूर हम दाता, यहु मति कदे न नासी ।।1।।
पढें गुनें कुछ समझि न परई, जौंलौं अनभै भाव न दरसै।
लोहा हरन होइ धूँ कैसैं, जो पारस नहिं परसै ।।2।।
कहै रैदास और असमझिसि, भूलि परे भ्रम भोरैं।
एक अधार नाँव नरहरि को, जीवनि प्रानधन मौरैं ।।3।।13।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ, रागु रामकली, पृष्ठांक– 973–74

पडीऐ गुनीऐ नामु सभु सुनीऐ, अनभउ भाउ न दरसै।
लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे, जउ पारसहि न परसै ।।
देव संसै गांठि न छूटै।
काम क्रोध माइआ मद मतसर, इन पंचहु मिलि लूटे।।रहाउ।।
हम बड कबि कुलीन हम पंडित, हम जोगी संनिआसी।
गिआनी गुनी सूर हम दाते, इह बुधि कबहि न नासी।।
कहु रविदास सभै नही समझसि, भूलि परे जैसे वउरे।
मोहि अधारु नामु नाराइन, जीवन प्रान धन मोरे।।

बिना रामजी के नाम–स्मरण व उसकी कृपा के संशय रूपी गाँठ खुलती नहीं है। काम, क्रोध, मोह, मद व माया ये पाँचों मिलकर तो जीव को लूटते ही हैं, अकेले–अकेले भी लूटते हैं। जीव अभिमान करता है, मैं बहुत बड़ा कवि हूँ, कुलीन हूँ, पंडित हूँ, योगी हूँ, संन्यासी हूँ, ज्ञानी हूँ, गुणी हूँ, शूरवीर हूँ, दाता हूँ, जीव की यह देहाध्यास–मयी बुद्धि कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होती है। जब–तक अनुभव भाव=आत्मा का अपरोक्षानुभव नहीं होता, तब–तक पढ़ने–गुनने, समझने का कोई लाभ नहीं। यदि लोहा पारस का स्पर्श नहीं करे तो वह कभी भी सोना नहीं बन सकता, ऐसे ही जब–तक आत्मसाक्षात्कार नहीं होता, तब–तक पढ़ना, सुनना, गुनना, समझना सब व्यर्थ है। रैदास कहता है– ऐसे पढ़े, लिखे, किन्तु आत्मसाक्षात्कार शून्य जीव भ्रमों से भ्रमित होकर भूलों में भटके पड़े हैं। आत्मकथन करते हुए रैदास कहते हैं– मेरा एक ही आधार है, वह है नरहरि का नाम; वही मेरा जीवन–प्राणधन है ।।13।।

(14)

तब राम नाम कहि गावैगा।
ररंकार रहित सबहिन थैं, अंतरि मेल मिलावैगा ।। टेक।।
लोहा समि करि कंचन समि करि, भेद अभेद समावैगा।
जे सुख होइ पारस के परसें, सो सुख का कहि गावैगा ।।1।।
गुरू प्रसादि भई अनभै मति, विष अंम्रित समि धावैगा।
कहै रैदास मेटि आपा पर, तब वा ठौरहिं पावैगा ।।2।।14।।

ररंकार जो समस्त मिलावटों=माया व मायात्मक तत्त्वों से रहित है, से जब मन मेल मिलायेगा, अर्थात् तादात्म्य–सम्बन्ध जोड़ेगा, तब वह रामजी के नाम का सतत् स्मरण करने लग जाएगा। उस–समय मन समस्त अन्य व्यापारों से विलग होकर मात्र और मात्र राम–राम–स्मरण करेगा। उस समय उसके लिए लोहा और कंचन समान हो जाएंगे, इनमें उसकी जो पहले द्वैत–बुद्धि थी, वह अद्वैत–भाव में समा जाएगी। पारस का स्पर्श पाकर लोहे को जो अपूर्वानन्द प्राप्त होता है, उसका वर्णन वह नहीं कर सकता। ऐसे ही जीव जब ब्रह्म से ऐक्य अनुभव करता है, तब उस अखंडानंद का वर्णन करना अशक्य होता है। प्रथमतः दोनों की सत्ता एक अनुभव होने लगती है। द्वितीयतः ब्रह्मानन्द इतना अवर्णनीय है कि उसका वर्णन किया नहीं जा सकता। गुरु–महाराज की कृपा से मुझे अणभै–मति= स्वात्मसाक्षात्कार हो गया है, मैं जीव रूपी विष ब्रह्म रूपी अमृत हो गया। रैदास कहता है– जब अपना–पराया मिट जाता है, तब स्वात्मसाक्षात्कार रूप ठौर की प्राप्ति होती है ।।14।।

(15)

संतौ अन्यन भगति यहु नाहीं।
जब लग सत रज तम पाँचूँ गुण, ब्यापत हैं या माहीं ।।टेक।।
सोइ आन अंतर करै हरि सूँ, अपमारग कूँ आनैं।
काम क्रोध मद लोभ मोह की, पल पल पूजा ठानैं ।।1।।
सकति सनेह इष्ट अँगि लावै, अस्थलि अस्थलि खेलै।
जे कुछ मिलै आन अख्यत ज्यौं, सुत दारा सिरि मेले ।।2।।
हरिजन हरि बिन और न जानैं, तजै आन तन त्यागी।
कहै रैदास सोइ जन निरमल, निसदिन निज अनरागी ।।3।।15।।

जब–तक भक्ति के क्षेत्र में सत्त्व, रज व तम नामक तीनों गुणों व पाँचों विषयों–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध का साम्राज्य रहता है, तब–तक हे सन्तों! उस भक्ति को अनन्यभक्ति नहीं कह सकते। व्यभिचारिणी भक्ति (अनन्य–भक्ति से व्यतिरिक्त) हरि से अन्तराय उत्पन्न करती है तथा अपमार्ग पर चलने को प्रेरित करती है। यह काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि दुर्गुण–दुराचारों को पल–पल अंगीकार करके इनका स्वागत–सत्कार करती है। बल (शक्ति) से स्नेह करती है। शक्ति के बल से इष्ट=प्रियकर धन पदार्थादि कमाता व लाता है, जिनके उपार्जन हेतु जगह–जगह भ्रमण करता–फिरता है। जो भी कुछ मिलता है उसको अख्यत=अक्षत=यथारूप लाकर सुत, दारादिक पारिवारिक–जनों को सौंप देता है। इसके विपरीत हरि के अनन्य–भक्त, हरि के अतिरिक्त किसी अन्य से कोई वास्ता ही नहीं रखते। वे हरि के अतिरिक्त अन्यों को त्याग देते हैं। अन्य का आश्रय लेने की अपेक्षा हरिजन तन त्यागना श्रेयस्कर समझते हैं। रैदास कहता है– वही भक्त निर्मल है जो भगवद्प्रेमी है ।।15।।

(16)

भगति न होइ रे न होइ जब लग, तन मन सुध न होई ।। टेक।।
भगति नहीं नाचे अरु गाये, भगति न बहु तप कीन्हा।
भगति नहीं स्वामी अरु सेवग, जब लग परमतत्त नहिं चीन्हा ।।1।।
भगति न ग्यान जोग बैरागै, भगति न कहे कहाये।
भगति न सुंनि मँडल घर सोध्ये, भगति न कछू दिखाये ।।2।।
जहाँ जहाँ जाइ तहाँ तहाँ बँधावै, ताथैं कछू कह्या न जाई।
कहै रैदास तबै सच पावै, आपा उलटि समाई ।।3।।16।।

जब–तक तन और मन शुद्ध नहीं होते, तब–तक भक्ति नहीं हो सकती, भक्ति नहीं हो सकती। बहुत नाचने और गाने से भक्ति नहीं होती। कठोर तप करने का नाम भी भक्ति नहीं है। स्वामी और सेवक का सम्बन्ध जोड़ लेने का नाम भी भक्ति नहीं हैं, जब–तक कि तब–तक परमतत्त्व को जान नहीं लिया जाता। ज्ञान, योग व वैराग्य भी भक्ति नहीं है। कहना–कहाना–सुनना, सुनाना भी भक्ति नहीं है। शून्य–मण्डल में घर बसा लेना भी भक्ति नहीं है। चमत्कार दिखाना या कुछ दिखाना भक्ति नहीं है। जहाँ–जहाँ जाया जाता है, जो–जो किया जाता है उन सबसे जीव बँधता ही है। इसलिए कुछ भी कहा नहीं जा सकता। रैदास कहता है– सत्य का बोध तब ही होता है, जब आपा=देहाध्यास का ध्वंस होकर आत्मा और परमात्मा का ऐक्य हो जाता है ।।16।।

(17)

भगति ऐसी है सुनहुँ रे भाई।
भगति आई तब गई बडाई ।।टेक।।
भगति न रस दान, भगति न ब्रह्म ग्यान,
भगति न बन में गुफा खुदाई।
भगति न ऐसी हासि, भगति न आसा पासि,
भगति नहीं यह सब, कुल कानि गाई ।।1।।
भगति न इंद्री बाँधैं, भगति न जोग साधैं,
भगति न अहार घटाई, ए सब कर्म कहाई।
भगति न न्यंद्रा साधैं, भगति न बैराग बाधैं,
भगति नहीं सब, बेद बडाई ।।2।।
भगति न मूँड मुँडायैं, भगति न माला दिखायै,
भगति न चर्न धुवायैं, ए सब गुनीजन कहाई।
भगति नहीं जानी, जौंलौं आपु कूँ आपु बखानी,
जोई जोई करै सोई, सोई कर्म बढ़ाई ।।3।।
आपौ गयौ तब भगती पाई, ऐसी है भगती भाई,
राम मिल्यौ आपौ गुन खोयौ, रिधि सिधि सबै जु गँवाई।
कहै रैदास छूटी आस, तब हरि ताही के पास,
आतमा अस्थिर, तब निधि पाई ।।4।।17।।

हे भाई! भक्ति ऐसी है कि जब यह आती है, तब बड़ाई=अहंकार, मान, मर्यादा सब चले जाते हैं और विनम्रता, दीनता, लघुता आदि आ जाते हैं। भक्ति न रस–दान,

न ब्रह्म–ज्ञान, न वन में गुफा खुदवाकर उसमें तप करना है। भक्ति हँसी–मजाक नहीं है, आशा की गाँठ बाँध लेना भक्ति नहीं है। कुल व कुल की कानि=मान–मर्यादा, इज्जत आदि भी भक्ति नहीं है। इंद्रियों का दमन भक्ति नहीं है, योग–साधन भक्ति नहीं हैं, मित–आहार करना भी भक्ति नहीं है। ये सब कर्म कहे जाते हैं। निद्रा–जय भक्ति नहीं है, वैराग्य–धारण करना भक्ति नहीं है, वेदों की महिमा का गान व वेद–पाठ करना भक्ति नहीं है। मूँड–मुँडाना भक्ति नहीं है। माला दिखाना भक्ति नहीं है। चरण–प्रक्षालन कराना भक्ति नहीं है। ऐसा करने वाले गुणीजन मात्र हैं। जब–तक स्वयं ही स्वयं की बड़ाई=महिमा का गायन करता है, तब–तक भक्ति नहीं कही जा सकती। जो–जो भी करता है, उसी–उसी कर्म की बड़ाई करता है, यह भी भक्ति नहीं है। जब आपा गल जाता है, तब भक्ति आती है। हे भाई! भक्ति इसी का नाम है। जब रामजी मिल जाते हैं, तब आपा=अंहकार व समस्त गुण विगलित हो जाते हैं। साथ ही सारी रिद्धि–सिद्धि भी जाती रहती हैं। रैदास कहता है– जब जगत् की आशा छूट जाती है, जानिए तब परमात्मा उसी के पास है। जब आत्मा स्थिर हो जाती है, जानिए तबही निधि की प्राप्ति हो गई ।।17।।

(18)

ऐसी भगति न होइ रे भाई।
राम नाम बिन जे कुछ करिये,
सो सब भरम कहाई।। टेक।।
भगति न रस दान, भगति न ब्रह्म ज्ञान,
भगति न बन में गुफा खुदाई।
भगति न ऐसी हाँसि, भगति न आसा पासि,
भगति नहीं यह सब, कुल कानि गाई ।।1।।
भगति न इंद्री बाँधे, भगति न जोग साधे,
भक्ति न अहार घटाये, ये सब कर्म कहाई।
भगति न न्यन्द्रा साधे, भक्ति न बैराग बाधे,
भगति न यह सब, है बेद की पढ़ाई ।।2।।
भगति न मूँड मुँडाये, भक्ति न माला दिखाये,
भगति न चरन धुवाये, ए सब गुनी जन कहाई।
भगति तौलौं नहीं जानी, जौलौं आप कौं आप बखानी,
जोइ जोइ करै सोइ, सोइ करम चढ़ाई ।।3।।

आपौ गयौ तब भगति पाई, जैसी है भगति भाई,
राम मिल्यौ आपो गुण खोयौ, रिधि सिधि सबै ज गँवाई।
कहै रैदास छूटी आस, तब हरी ताही के पास,
आतमा स्थिर तब निधि पाई ।।4।।

राम–नाम–स्मरण के अतिरिक्त अन्य जो भी कुछ किया जाता है, वह सब भ्रम कहा जाता है। ऐसी भ्रमात्मक साधनाओं को भक्ति नहीं कहा जाता। भक्ति न रस–दान है और न ब्रह्म–ज्ञान है। वन में गुफा बनाकर उसमें बैठकर तप करना भी भक्ति नहीं है। भक्ति हँसी–मज़ाक नहीं है; आशाओं की गाँठ बाँध लेना भी भक्ति नहीं है। ये सब भक्ति नहीं प्रत्युत् कुल की कानि–मर्यादा आदि हैं। इन्द्रिय–दमन भक्ति नहीं है; योग–साधना भी भक्ति नहीं है; अल्पाहार करना या निराहार रहना भक्ति नहीं है; ये सब तो कर्म हैं। निद्रा को जीत लेना भक्ति नहीं है, वैराग्य–धारण कर लेना भक्ति नहीं है; प्रत्युत् ये सब भक्ति न होकर वेद–विद्या पढ़ना–पढ़ाना है। मूँड–मुँडा लेना भक्ति नहीं है, माला पहन लेना भक्ति नहीं है; चरण–प्रक्षालन कराना भी भक्ति नहीं है, जो भक्ति के बहाने ये सब करते हैं, वे गुणीजन तो हैं, किन्तु भक्त नहीं हैं। भक्ति तब–तक नहीं जाननी चाहिये, जब–तक प्राणी स्वयं का बखान करता है, ऐसा व्यक्ति जो–जो करता है, उससे वह कर्मों के बन्धनों में जकड़ता है, कर्म–बंधन टूटते नहीं हैं। जब आपा=अहंकार विगलित हो जाता है, तब भक्ति की प्राप्ति होती है। भक्ति ऐसी है कि इसके प्राप्त हो जाने पर रामजी का मिलन हो जाता है, आपा=अहंकार नष्ट हो जाता है तथा सभी रिद्धि व सिद्धि हाथों से निकल जाती हैं। रैदास कहता है– जब आशा नष्ट हो जाती है, तब हरि स्वयं ऐसे भक्त के सन्निकट आ जाते है; निधि स्वरूप रामजी की प्राप्ति होते ही आत्मा रामजी में ही सुस्थिर हो जाती है ।।18।।

(19)

अब कछू मरम विचारा हो हरि।
आदि अंति औसाण राम बिन, कोइ न करै निरवारा, हो हरि ।। टेक।।
जल तैं पंक पंक अंम्रित जल, जल ही सुध होइ जैसें।
अैसें करम धरमि जीव बाँध्यौ, छूटै तुम्ह बिन कैसें, हो हरि ।।1।।
जप तप बिधि नषेद करुणामै, पाप पुन्य दोउ माया।
अस मोहित मन गत बिमुख धन, जनमि जनमि डहकाया, हो हरि ।।2।।
ताड़ण छेदण त्रपण नषेदण, बहु विधि करि ले उपाई।
लूणखड़ी संजोग बिना जैसें, कनक कलंक न जाई ।।3।।

कहै रैदास कठिन कलि केवल, का उपाव इब कीजै।
भौ बूडत भै भीत भगत कूँ, कर अवलंबन दीजै ।।4।।19।।

हे हरि! मैंने अब कुछ रहस्य जान लिया है। वह रहस्य है, राम ही आदि–अंत, और अवसान का निवारण करने में समर्थ हैं; और कोई नहीं। जल में से कीचड़, कीचड़ में से अमृत सदृश जल, शुद्ध जल के मिलाने से ही अलग होता है, ऐसे ही हे हरि! सांसारिक माया–मोह से ग्रसित जीव तुम्हारे स्मरण व तुम्हारी कृपा के बिना धर्म–कर्मों से बँधा हुआ जीव इनसे छूट नहीं पाता। जप–तप, विधि–निषेध, पाप–पुण्यादि द्वंद्व, माया आदि सहित धन से मोहित मन के कारण ही जीव हर जन्म में ठगा जाता है। ताड़ण, छेदन, तर्पण, निषेधन आदि षड्विध आभिचारिक (मारण, मोहन, विद्वेषण, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन) कितने ही उपाय किये जाएँ, इनसे शाश्वत्–सुख रूप अपरोक्षानुभूति वैसे ही नहीं हो सकती जैसे बिना लूनखड़ी (नौसादर) के संयोग के सोने में विद्यमान गंदगी दूर नहीं होती। रैदास कहता है– कलियुग कठिन समय है। बताओ, अब कौनसा उपाय किया जाय, जिससे कि मैं भवसागर से पार हो सकूँ। हे हरि! सांसारिक दुःखों से दुखित व यमराज के भय से भयभीत अपने भक्त को अपने वरदहस्त का अवलम्बन प्रदान करो! अपनी शरण में स्थान दो ।।19।।

(20)

नरहरि प्रगटिसिना हो प्रगटिसिना। दीनानाथ दयाल नरहरी ।।टेक।।
जनमैं तोही थैं बिगराना। अहो कछु बूझत हूँ र सयाना ।।1।।
परिवार विमुख मोहि लाग। कुछ समझि परत नहिं जाग ।।2।।
इक भंभ देस कलि काल। अहो मैं जाइ पर्‌यौ जम जाल ।।3।।
कबहूँ कैं तोर भरोस। जौ मैं न कहूँ तौ मोरौ दोस ।।4।।
अस कहिये तेऊ न जान। अहो प्रभू तुम्ह सरवगि सयान ।।5।।
सुत सेवग सदा असोच। ठाकुरहिं पितहिं सब सोच ।।6।।
रैदास बिनवैं कर जोरि। अहो स्वामी तोही नाहिंन खोरि ।।7।।
सु तौ पूरबिला अक्रम मोर। बलि जाऊँ करौ जिनि और ।।8।।20।।

दीनों पर दया करने वाले दयालु नरहरि! क्यों नहीं प्रकट होकर मुझे दर्शन देते, क्यों नहीं? जन्म से ही मैं आप से विमुख हो गया। अब सयाना होने पर कुछ समझ सका हूँ। परिवार मुझसे विमुख होकर मेरे पीछे लग गया है कि मैं आपकी भक्ति नहीं करूँ, किन्तु मुझे कुछ भी समझ नहीं पड़ रहा है, बोध भी नहीं हो रहा है कि क्या करूँ? एक तो मेरे देश जिसमें मैं रहता हूँ, उसके निवासी भ्रमित हैं; दूसरे इस समय प्रवर्तमान

समय कलियुग है। मैं जन्म के जाल में फँसा पड़ा हूँ। फिर भी मुझे तेरा भरोसा है। यदि मैं यह नहीं कहूँ कि 'मुझे मात्र तेरा ही भरोसा है' तो इसमें मेरा ही दोष है, तेरा नहीं। यद्यपि मैं कहता तो जरूर हूँ कि मुझे मात्र तेरा ही भरोसा है, फिर भी मैं इसकी असलियत को नहीं जानता। इसके विपरीत, आप सर्वज्ञ और सयाने हैं; वास्तविकता को जानते हैं। पुत्र व सेवकादि सदैव अपने हित के प्रति अनुत्सुक ही रहते हैं; सचेष्ट नहीं रहते, किन्तु उनके हित–साधन के लिए पिता व स्वामी आदि सदैव समुत्सुक व सचेष्ट रहते हैं। रैदास दोनों हाथों को जोड़कर विनती करता है– हे स्वामी! तुझे लेशमात्र भी दोष नहीं है। ऊपर वर्णित स्थिति का कारण तू न होकर मेरे पूर्वजन्म के दोष ही हैं। मैं आपके प्रति न्यौछावर होता हूँ। कृपा करके मुझे 'अन्य' मत बनाओ। मुझे अपना लो, अपना ही मानो ।।20।।

(21)

त्यूँ तुम्ह कारनि केसवे, लालचि जीव लागा।
निकटि नाथ प्रापति नहीं, मन मंद अभागा ।। टेक।।
साइर सलिल सरोदिका, जल थल अधिकाई।
स्वाति बूँद की आस है, पिव प्यास न जाई ।।1।।
जो र सनेही साहियै, चितवत हूँ दूरी।
प्यंगुल फल न पहूँचई, कछु साधन मूरी ।।2।।
कहै रैदास अकथ कथा, उपनषद सुनीजै।
जस तूँ तस तूँ तस तूँ ही, कस ऊपम दीजै ।।3।।21।।

हे केशव! तेरे कारण अर्थात् तुझे प्राप्त करने का लालच मेरे मन में समा गया है। हे नाथ! तू मेरे सन्निकट है फिर भी मैं तुझे प्राप्त नहीं कर पा रहा हूँ। इसके पीछे मेरी मंद मनेच्छा और कुभाग्य ही है। सागर, सर–तालाब, भूमि आदि में सर्वत्र जल ही जल है, फिर भी पपीहा इनका जल नहीं पीता। वह प्रियतम स्वाति नक्षत्र के जल की ही आशा करता रहता है, अन्य जल को न वह पीता है और न उससे उसकी प्यास ही बुझती है। प्रभु से प्रेम करने वाला प्रेमी प्रभु को प्राप्त करना चाहता है, किन्तु उसके लिए वह भौतिक रूप में ही नहीं, चित्त की चितवन के लिए भी उसी प्रकार दूर है, जैसे वृक्ष पर लगा फल पंगु को ऊँचा होने के कारण अप्राप्य होता है। रैदास कहता है– उपनिषदों के अनुसार उक्त सब कुछ कहने में आ सकने योग्य नहीं है। वस्तुतः वह परमात्मा जैसा है, वैसा ही है। उसके समान कोई दूसरा नहीं है। वह अद्वितीय है। अतः ऐसे अनुपमेय व अद्वितीय को समझने व जानने के लिए किसकी उपमा दी जाए ।।21।।

(22)

गोब्यंदे भौ जलधि अपारा, तामें कछु सूझत वार न पारा ।। टेक।।
अगंम ग्रेह दूरि दुरन्तर, बोलि भरोस न देहू।
तेरी भगति परोहन संत अरोहन, मोहि चढ़ाइ न लेहू ।।1।।
लोह की नाव पखाननि बोझी, सुकृत भाव बिहूना।
लोभ तरंग मोह भयौ गालौ, मीन भयौ मन लीना ।।2।।
दीनानाथ कलंकी औतार, कौनैं हेत बिलंबे।
रैदास दास संत चरन, मोहि अवलम्बन दीजै ।।3।।22।।

हे गोविन्द! भव रूपी सागर अपार है। उसका आर–पार कुछ भी सूझता ही नहीं है। अंतिम घर अर्थात् मुक्ति रूपी घर दूर–देशान्तर में है अथवा हे गोविन्द! तेरा घर अगम्य है, दूर–देशान्तर में है; उस तक पहुँचने में भव रूपी सागर अतीव बाधक है। केवल शाब्दिक ढाँढस कि अपार सागर से मैं पार हो जाऊँगा, मेरे मन में भरोसा उत्पन्न करने में असमर्थ है। तेरी भक्ति रूपी नौका में संत–भक्त बैठे हुए हैं। क्यों नहीं मुझे भी उसी नौका में बैठा लेता! भक्तों की नौका भक्ति से भरपूर है, जबकि मेरी नौका लोहे की बनी हुई है, उसमें पाप रूपी पत्थर लदे हुए हैं। सुकृत=पुण्य और भाव=भक्ति का अंश उसमें लेशमात्र भी नहीं है। इससे भी ज्यादा, लोभ रूपी तरंग, मोह रूपी गाला और मीन=मछली (मच्छ) रूपी मन उस नौका को आगे बढ़ने नहीं देते उल्टे उसे डुबोने को संनद्ध रहते हैं। हे दीनो के नाथ! मेरा जन्म कलंकी (तुच्छ) जाति में हुआ है। आपने अनेक अधमाति–अधमों का उद्धार किया है। मुझे किस कारण से अभी तक भव–सागर में ही अटका रखा है। संतों की चरण–रज मुझ दास रैदास को अपनी शरण का अवलम्बन दीजिए।।22।।

(23)

कहा सूते मुगध नर काल के मंझि मुख।
तजि बसति राम च्यंतत अनेक सुख ।। टेक।।
असह धीरज लोप कृष्ण उधरन कोप,
मदन भुयंग नहीं मंत्र जंत्रा।
विषम पावक झाल ताहि वार न पार,
लोभ की सरपणी ग्यान हंता ।।1।।
विषम संसार भौ लहरि ब्याकुल तबै,
मोह गुण विषै सनबंध भूता।

टेरि गुर गारड़ी मंत्र श्रवणा दियौ,
जागि रे राम कहि काँइ सूता ।।2।।
सकल सुमृत्य जिती संत मति कहैं तिती,
पाइ नहीं पनँग मति परम बेता।
ब्रह्मरिषि नारदा स्यंभ सनकादिका,
राम रमि रमत गए पारि तेता ।।3।।
जजन जापनि जाप रटणि तीरथ दान,
बोषदी रसिक गद मूल देता।
नागदवणि जर जरी राम सुमिरण बरी,
भणत रैदास चेतन्य चेता ।।4।।23।।

हे मुग्ध जीव! काल के मुख का ग्रास होकर भी तूँ क्योंकर सोया हुआ पड़ा है। रामजी से विमुख हुआ क्योंकर संसार में उलझा पड़ा है। बसति=वस्तु=सांसारिक–भोगैश्वर्यों को तज दे, रामजी का अहर्निश चिंतन क,र जिससे तुझे अखंडानन्द की प्राप्ति हो सके। जागतिक–जीव की विशिष्टता बताते हुए कहते हैं– जागतिक–जीव असह=सहनशील न होने से धैर्य को लुप्त कर बैठता है। उसके व्यवहार में काला–क्रोध प्रकटता रहता है। मदन=काम रूपी भुजंग इतना बलवान होता है कि उसको यंत्र–मंत्र भी वश में करने में सक्षम नहीं होते। स्वभाव में विषमता रूप अग्नि की झाल भभकती रहती है। उसका कोई ओर–छोर नहीं होता। लोभ रूपी सर्पनी ज्ञान को नष्ट कर डालती है। विषम संसार–सागर की डुबोने वाली व व्याकुल करने वाली लहरें जीव को व्यापती रहती हैं। ऊपर से मोह, तीनों गुण व विषयों का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जिससे जीव व्याकुल होता रहता है। उक्त सांसारिक–जीवों को परामर्श देते हुए कहते हैं– गारुड़ी (सर्प को मंत्र–बल से वश में करने वाले सपेरे को गारुड़ी कहते हैं।) रूपी गुरु की शरण का आश्रय ग्रहण कर। श्रवण–द्वार के माध्यम से राम–मंत्र का श्रवण कर और मोह रूपी निशा से जागकर राम–नाम का जप कर। सोया हुआ क्यों पड़ा है? समस्त स्मृतियों ने जो कुछ कहा है, संतों ने भी वही कहा है, किन्तु शास्त्रों के वेत्ता परोक्ष ज्ञानी हैं, वे कभी भी पनंगमति=गारुड़ी–मति=श्रोत्रियत्त्व व ब्रह्मनिष्ठत्त्व युक्त गुरु सदृश नहीं हो सकते। ब्रह्मऋषि नारद, शंभु, सनकादिक चारों भाई और भी कितने ही अनेक राम–नाम का रटन करके पार हो गए हैं। यजन, जाप, मंत्रोच्चारण, तीर्थ–भ्रमण, दान आदि रसिक=रसपूर्ण=सांसारिक–भोगविलास ही देते हैं, जो अशेष बीमारियों की जड़ ही हैं। इनसे बीमारी ठीक नहीं होती। हे आत्मस्वरूप चैतन्य! चेतन होकर नाग–दमन नामक जर=जड़ी को शरीर में जरा कर शरीर को निरोग कर और राम–नाम–स्मरण का वरण कर, रैदास का यही कथन है ।।23।।

(24)

है सब आतम सोयं प्रकास साचौ,
निरंतर निराहार कलपत पाँचौ ।। टेक।।
आदि अंत औसाण एकरस, तारतंब नहीं भाई।
थावर जंगम कीट पतंगा, पूरि रहे हरिराई ।।1।।
सरबेसुर सरबंगि सरबगति, करता हरता सोई।
सिबिनस्य बिनस्य साध अरु सेवग, उनै भाव नहीं होई ।।2।।
धर्म अधर्म मोछि नहीं बंधन, जुरा मरण भव नासा।
दृष्टि अदृष्टि गेव अरु ग्याता, एकमेक रैदासा ।।3।।24।।

त्रिकाल सत्य स्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाश है। वह अन्य की चेतनता से चैतन्य न होकर स्वयं के चिद्रूप से ही चैतन्य है। यही नहीं, समस्त सचराचर भी आत्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्धात्मक पाँचों जड़ तन्मात्राओं का आत्मा में प्रवेश नहीं है। जब साधक आत्म स्वरूप हो जाता है, तब इन पाँचों तन्मात्राओं को आहार मिलना बन्द हो जाता है। अतः ये निरन्तर निराहार रहकर अप्रभावी हो जाती हैं। आत्मा आदि से लेकर अन्त तक, इतना ही नहीं औसाण=अवसान =महाप्रलय के समय भी एकरस रहती है। इसका अन्य जड़ पदार्थों से कोई तारतम्य नहीं है। स्थावर, जंगम, कीट, पतंग अर्थात् सचराचर में हरि परिपूर्ण है। वह आत्मा रूप हरि सबका ईश्वर है, सर्वांगपूर्ण है, सर्वज्ञ है, सचराचर ब्रह्मांड का वही कर्त्ता व वही संहर्ता है। वह परमात्मा अविनाशित्त्व, नाशत्त्व, साधु, सेवक आदि द्वंद्वात्मक भावों से परे है। उनै=उसको ये भाव व्यापते नहीं हैं। धर्माधर्म, मोक्ष–बंधन, जरा–मरण, भव–नाश आदि भी उसमें नहीं हैं। वह दृष्टि–अदृष्टि, ज्ञेय और ज्ञाता जैसे भावों से भी विवर्जित है। वह परमात्मा एकमूएक=एक जैसा एक=उस जैसा वही, अर्थात् अद्वितीय है ।।24।।

(25)

कान्हा हो जगजीवन मोरा।
तूँ न बिसारी राम मैं जन तोरा।। टेक।।
संकुट सोच पोच दिन राती।
करम कठिन मेरी जाति कुभाँती ।।1।।
हरहु बिपति भावै करहु कुभाव।
चरन न छाडौं जाइ सु जाव ।।2।।

कहै रैदास कछु देहु अवलंबन।
बेगि मिलौ जिनि करौ बिलम्बन ।।3।।25।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ, रागु गउड़ी गुआरेरी, पृष्ठांक 345

मेरी संगति पोच सोच दिनु राती।
मेरा करमु कुटिलता जनमु कुभाँती ।।
राम गुसईआ जीअ के जीवना।
मोहि न बिसारहु मै जनु तेरा ।।रहाउ।।
हरहु बिपति भावै धरहू कुभाव।
चरन न छाड़ौं जाइ सु जाव ।।
कहै रेदास कछू देहु अवलंबन।
बेगि मिलौ जिनि करौ बिलंबन ।।

हे कान्हा! तू ही मेरे जीवन का सर्वस्व है, जीवन–प्राण है। हे राम! कभी भी, किसी भी परिस्थिति में, कैसे भी मुझे विस्मृत मत कर देना, क्योंकि मैं तेरा अपना ही जन हूँ। दिन और रात संकटों के निवारणार्थ दीन–हीन हुआ मैं सोच– चिन्तन करता रहता हूँ। मेरे कर्म भी कठिन=नीच हैं तो मेरी जाति भी हीन है। हे प्रभो! मेरी विपत्ति का हरण करो अथवा मेरे प्रति दुर्भाव रखो, किन्तु मैं किसी भी स्थिति में आपके चरणों का आश्रय नहीं छोड़ूँगा, चाहे मेरा कुछ भी चला जाए! जो भी जाए, चला जाए, मुझे उसकी बिल्कुल भी चिन्ता नहीं है, किन्तु मैं आपके चरणाश्रय को नहीं छोड़ूँगा। रैदास विनती करता है– हे प्रभो! मुझे अपने चरणों का अवलम्बन प्रदान करिये। मुझ को शीघ्रता के साथ मिलो, तत्काल दर्शन दो, तनिक भी विलम्ब मत करो ।।25।।

(26)

तेरौ जन काहे कूँ बोलै।
बोलि बोलि अपणी भगती खोलै।। टेक।।
बोल बोलताँ बढै बियाधि, बोल अबोलै बोलै जाई।
बोलै बोल बोल कूँ पकड़ै, बोल बोल कूँ खाई ।।1।।
बोलै ग्यान र बोलै ध्यान, बोलै बेद बडाई।
उरमी धरि धरि जबहीं बोलै, तबही मूल गँवाई ।।2।।
बोलि बोलि औरै समझावै, तब लग समझि नहीं रे भाई।
बोलि बोलि समझि जब बूझी, तब काल सहित सब खाई ।।3।।

बोलै गुर अरु बोलै चेला, बोल बोल बोलताँ की परमिति जाई।
कहै रैदास थकित भयौ जब, तबही परमनिधि पाई ।।4।।26।।

रामजी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं– हे राम! जो तेरा भक्त है, वह क्यों अपनी भक्ति व स्वयं पर तेरी कृपा का ढिंढोरा पीटे। क्यों–कर कह–कह–कर अपनी भक्ति का भेद खोले। अपनी बात का, भक्ति का प्रचार–प्रसार करने से व्याधि बढ़ती ही है। अबोलै बोल=जो बात कहने योग्य नहीं है, वह भी बोलने से महत्त्वहीन हो जाती है, पराई चीज हो जाती है। ऐसे बोल बोलने चाहिए जिनसे कि बोल=मौन को पकड़ा=स्वीकारा जा सके, बोल ही बोल को खा जाए। ज्ञान की चर्चा करते हैं। ध्यान की चर्चा करते हैं। वेदों की महत्ता सम्बन्धी वचन बोलते हैं। जब कोई ऊरमी=षडूर्मी=अहंकार (?) धारण करके बोलता है, अहंकार–युक्त बात बोलता है, तबही वह अपना मूल गँवा बैठता है। वचन बोलकर जब–तक कोई किसी को समझाने का प्रयत्न करता है, तब–तक जानिए वह स्वयं ही समझदार नहीं है। बोल–बोलकर जब समझ को जानने=समझने का प्रयत्न किया जाता है, तब जानिए काल सहित सब कुछ खा लिया जाता है। मात्र बोलने वाले गुरु, मात्र बोलने वाले ही शिष्य की साधना न करके बल्कि मात्र बोलने से परमिति=पत=विश्वास समाप्त हो जाता है। रैदास कहता है– जब जो बोलने से थक जाता है, जब ही जानिए कि उसने परमनिधि रूप परमात्मा को प्राप्त कर लिया है ।।26।।

(27)

का गाँउँ कछु गाँइ न होई, गाँउँ रूप सहजै सोई ।। टेक।।
नहीं आकास नहीं धर धरणी, पवन पुर घट चंदा।
नहिं अब राम क्रिष्ण गुण भाई, बोलत है सूछंदा ।।1।।
नहीं अब बेद कतेब कुराणनि, सुंनि सहज रे भाई।
नहीं अब मैं तैं तैं मैं नाहीं, कास्यौं कहौं बताई ।।2।।
भणैं रैदास का कहि गाँऊँ, गाइण गाइ हराणा।
समझि बिचारि बोलि कहाँ धौं, आप ही आप समाणा ।।3।।27।।

क्या गाऊँ? गाने योग्य कुछ है ही नहीं। जो गाने योग्य है, वह सहज रूप है। सहज रूप अपने आपको अपने आपमें विलीन करना है (देखें इसी पद की अंतिम पंक्ति) स्वयं के स्वरूप का क्या कोई वर्णन हो सकता है? नहीं हो सकता! इसीलिए परब्रह्म–परमात्मा को 'न इति=नेति' कहा गया है। आत्मा और परमात्मा स्वरूपतः एक हैं। अतः आत्मा के सहज=स्वाभाविक रूप का वर्णन नहीं हो सकता। वह परमात्मा

आकाश नहीं हैं, धर–धरणी=पृथिवी नहीं है, पवन नहीं है, पुर=नगर नहीं है, घट=शरीर नहीं है, चन्द्रमा नहीं है, अब=वर्तमान काल नहीं है, मैं–तू, तू–मैं रूपी द्वंद्व नहीं है, ऐसा क्या है जिसके सदृश उस परमात्मा को बता सकूँ। रैदास कहता है– मैं क्या कहकर उस परमात्मा का विवेचन करूँ, क्योंकि गाने वाला गायक गा–गाकर हार गया है फिर भी उसका अन्त नहीं आया है। कहाँ तक उसका वर्णन करूँ? अब उसको मैंने समझ लिया है, उसके बारे में चिन्तन कर लिया है और अन्ततः मैंने मेरा आपा उसी में विलीन कर लिया है। अतः अब उसका वर्णन करना अशक्य है। कहाँ तक वर्णनातीत का वर्णन किया जाए।।27।।

(28)

अब का कहि कौन बताऊँ, अब कहि देवलि देव समाऊँ ।। टेक।।
कासौं राम कहौं सुनि भाई, कासौं कृष्ण करीमा।
कासौं वेद कतेब कहौं अब, कास्यौं कहुँ ल्यौ लीना ।।1।।
कास्यौं तप तीरथ ब्रत पूजा, कास्यौं नाऊँ कहाऊँ।
कास्यौं भिस्ति दोजिगु नासति करि, कास्यौं कहूँ कहाँई ।।2।।
कास्यौं जीव सीव कहौं माधौ, सुंनि सहजि घरि भाई।
कास्यौं गुनी नगुण कहुँ माधौ, कासौं कहौं बताई ।।3।।
जल के तरँग जल माहिं समाई, कहि काकौ नाँव धरिये।
ऐसे तैं मैं येक रूप है माधौ, आपण ही निरवरिये ।।4।।
भणैं रैदास अब का कहि गाऊँ, जो कोइ और ही होई।
जास्यौ गाइहि गाइ कहत है, परम रूप है सोई ।।5।।28।।

अब किसको क्या कहकर बताऊँ, क्योंकि देवल देव में समा गया है। आत्मा परमात्मा से एकाकार हो गई है। अब उसकी पृथक् सत्ता शेष नहीं है। अतः उसे किसी या किन्हीं भी लक्षणों–उपलक्षणों, नाम–रूप आदि से लक्षित करते हुए बताया नहीं जा सकता। हे भाई! सुन, किसको तो मैं राम कहकर पुकारूँ और किसको कृष्ण व करीम। किसको वेद व किसको किताब–कुरान कहकर पुकारूँ? जिसमें चित्तवृत्ति (लय) लीन हो गई है, ऐसा किसको बताऊँ? किसको तप, तीर्थ, व्रत, पूजा कहूँ। किस नाम से अपने आपको इंगित कराऊँ? किससे स्वर्ग और नरक के अस्तित्व को नकारूँ? किससे कहूँ कि मैं कहाँ हूँ? किसको जीव तो किसको शीव=ब्रह्म कहूँ? हे माधव! घर तो सहज शून्य में है। हे माधव! किससे गुणी तो किससे कहूँ कि तू निगुणा है। ये सब बातें किसको कहकर बताऊँ? जल की तरंगें जल में समा जाती हैं। समा जाने पर बताओ

उन तरंगों का क्या, कौनसा नाम हो सकता है? हे माधव! जिस प्रकार जल और तरंग एक हैं, ऐसे ही तू और मैं एक हैं, भेद तनिक भी नहीं है। अतः स्वयं अपना स्वरूप ही स्वयं में एकाकार करिये। यदि कोई दूसरा हो तो अब उसका वर्णन कर सकता हूँ किन्तु स्वात्मातिरिक्त कुछ है ही नहीं। अतः दूसरे का विवेचन करना असंभव है। जो गाकर कहता है, वर्णन करता है, वही अब अपने आपको परमतत्त्व रूप मानने–जानने लगा है; ऐसी स्थिति में वह कैसे अपना वर्णन कर सकता है ।।28।।

(29)

आगे मंदा ह्वै रह्या, परकीरति न जाइ।
कूकर चौकि चहोड़िये, फिरि वहै सुभाइ ।।टेक।।
सुरसरी में जु सुरा पर्‌यौ, को करै न बिचार।
राम नाम हिरदै बसै, सब सुख निधि सार ।।1।।
कहै रैदास सुनि केसवे, अंतहकरन विचार।
तुम्हारी भगती के कारनैं, फिरि ह्वै हौं चमार ।।2।।29।।

पहले से ही, जन्म से ही मैं मंद=जाति–हीन व कर्म–हीन हूँ। प्रयत्न करता हूँ, मेरी प्रकृति बदल जाए किन्तु वह बदलती नहीं, जाती नहीं। मेरी प्रकृति वैसी है जैसी कुत्ते की होती है। चाहे उसे रसोई में लाकर बैठा लीजिए फिर भी बर्तन चाटने, पत्तल चाटने की उसकी आदत जाती नहीं। गंगा में शराब के डाले जाने के उपरान्त भी गंगा की पवित्रता–अपवित्रता का विचार कौन करता है? कोई नहीं करता; क्योंकि गंगा को हर हालत में पवित्र मानने का मानस भारतीयों का है व रहेगा। जिसके हृदय में, राम–नाम बसता है, वह समस्त सुख की निधियों का सार है। रैदास कहता है– हे केशव! मेरी विनती सुन और मन में विचार कर। मैं तेरी भक्ति करने के लिए पुनर्जन्म लेकर चर्मकार ही होना चाहूँगा, चर्मकार ही बनना चाहता हूँ ।।29।।

(30)

संतौ कुल पखि भगति ह्वैसी कलिजुग में, निरपख बिरला निबहीसी।
जाणि पिछाणि हरखि मन हुलस्यौ, बिन पिछाणि मिलता सुरझासी।। टेक।।
अपस्वारथ परमोधि दख्या दे, परमारथ न दिढ़ासी।
बिन बिसवास बाँझ रुति जैसे, हरि कारणि क्यों रासी ।।1।।
भाव भगति हिरदै नहिं आसी, विषै लागि सुख पासी।
कहै रैदास पूरा गुर पाखै, स्वाँग कौं स्वाँग दुखासी ।।2।।30।।

संतों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि कलियुग में कुलाम्नायानुसार ही भक्ति का सम्पादन किया जाएगा। कोई बिरला ही होगा जो कुल की लीक को छोड़कर भक्ति करेगा व अन्य उसका निर्वाह होने देंगे। जब कोई परिचित के पास भक्ति की दीक्षा लेने जाएगा, तब दीक्षा देने वालों का मन परिचित को देखकर हर्ष के मारे प्रफुल्लित होगा, किन्तु अपरिचित को देखकर उसका मन मुरझा जाएगा। ऐसे दीक्षा देने वाले अपने निजी क्षुद्र स्वार्थों के पूर्त्यर्थ प्रबोध देकर दीक्षा तो देंगे, किन्तु दीक्षार्थी को परमार्थ–मार्ग= आत्म–कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करके उस पर सुदृढ़ नहीं करेंगे। जैसे बिना ऋतु हुए=बिना वर्षा हुए रासी=अन्न का उत्पादन नहीं होता, ऐसे ही बिना श्रद्धा–विश्वास के हरि की प्राप्ति नहीं होती! उक्त स्वार्थी गुरुओं के उपदेश से हृदय में भाव–भक्ति का उदय नहीं होगा, उल्टे विषय–भोगों में लिप्त होकर आनन्दित होंगे। रैदास कहता है– श्रोत्रिय और ब्रह्म–निष्ठ गुरु के पाखै=बिना कलियुग में एक भेष वाले अन्य भेष वालों को दुःखायेंगे ।।30।।

(31)

भगति दुर्लभ सुनहुँ रे भाई, लोक बेद का कियैं बझाई।। टेक।।
कहा भयौ नाचैं अरु गायैं, कहा भयौ तप कीन्हैं।
कहा भयौ जे चरण पखाले, जो परम तत नहीं चीन्हैं ।।1।।
कहा भयौ जे मूंड मुँडायौ, बहु तीरथ व्रत कीन्हैं।
स्वामी दास भगत जन सेवग, जे परम तत नहीं चीन्हैं ।।2।।
कहै रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बडे सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपलक होइ चुणि खावै ।।3।।31।।

हे भाइयों! सुनो!! भक्ति करना तब–तक दुर्लभ है, जब–तक कि लोक और वेद के विधि और निषेधों में उलझे रहोगे। नाचने और गाने से क्या होने वाला है? तपस्या करने से भी कुछ होने वाला नहीं। चरण–प्रक्षालन से भी तब–तक कुछ होने वाला नहीं है, जब–तक कि परमतत्त्व की पहचान न हो जाये, स्वात्मतत्त्व रूप परमतत्त्व का अपरोक्षानुभव न हो जाये। सिर मुँडा लेने से क्या होने वाला है? बहुत तीर्थ एवं अनेक व्रतों को करने से कौनसा लाभ होने वाला है? स्वामी और दास, भक्त–जन व सेवक जैसा सम्बन्ध स्थापित करना भी तब–तक व्यर्थ है, जब–तक कि परमतत्त्व रूप परमात्मा को पहचाना न जाये! रैदास कहता है– हे परमात्मन्! तेरी भक्ति करना कठिन है, अर्थात् भक्तितत्त्व की प्राप्ति सामान्यतः अति दूरस्थ होने से कठिन है। यह उसी को मिलती है, जिसका भाग्य बड़ा हो। भक्ति उसी को प्राप्त हो सकती है जो अभिमान को त्याग देता

है, अपने–पराये को छोड़ देता है। चींटी की तरह नीचे से नीचा=विनम्र से विनम्र बनकर साधना रूपी अंन–कणों को चुनकर खाता है।।31।।

राग गौडी (2)

(32)

मरम कैसै पाइबौ रे,
पंडित कोई न कहै समझाइ। जाथैं मेरौ आवागवन बिलाइ।। टेक।।
बहु विधि धरम निरूपियै, करता दीसै सब लोइ।
जाहि धरम भ्रम छूटियै, ताहि न चीन्हैं कोइ ।।1।।
अकरम करम बिचारियै, सुणि संक्या बेद पुराण।
जाके हिरदै भै भरम, हरि बिन कौंन हरै अभिमान ।।2।।
सतजुग सत त्रेता मखा, द्वापर पूज आचार।
तीन्यूँ जुग तीन्यूँ दिढ़ी, कलि केवल नाँव अधार ।।3।।
बाहरि अंग पखालिये, घट भीतरि बिबधि बिकार।
सुच्य कवन परि होइये, कुंजर गति ब्यौहार ।।4।।
रवि प्रकास रजनी जथा, गत दीसै संसार।
पारस मनि तांबौ छिवैं, कनक होत नहीं बार ।।5।।
धन जोबन प्रभु ना मिलै, ना मिलै कुल करणी आचार।
एकैं अनेक बिगोइया, ताकूँ जाणैं सब संसार ।।6।।
अनेक जतन करि टारिये, टारी टरै न भ्रम पास।
प्रेम भगति नहीं ऊपजै, ताथैं रैदास उदास ।।7।।32।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ, रागु गउड़ी वैरागणि, पृष्ठांक–346

सतजुगि सतु तेता जगी, दुआपरि पूजाचार।
तीनौ जुग तीनौ दिडे, कलि केवल नाम अधार ।।1।।
पारु कैसे पाइबो रे, मोसउ कोऊ न कहै समझाइ।
जाते आवागवनु बिलाइ।।रहाउ।।
बहु विधि धरम निरूपीऐ, करता दीसै सभ लोइ।
कवन करम ते छूटीऐ, जिहि साधे सभ सिधि होइ ।।2।।
करम अकरम बीचारीऐ, संका सुनि बेद पुरान।
संसा सद हिरदै बसै, कउनु हिरै अभिमानु ।।3।।

बाहरु उदकि पखारीऐ, घट भीतरि विविधि बिकार।
सुध कवन पर होइबो, सुच कुंचर विधि बिउहार ।।4।।
रवि प्रगास रजनी जथा, गति जानत सभ संसार।
पारस मानो ताबो छुए, कनक होत नही बार ।।5।।
परम परस गुरु भेटीऐ, पूरब लिखत लिलाट।
उनमन मन मन ही मिले, छुटकत बजर कपाट ।।6।।
भगति जुगति मति सति करी, भ्रम बंधन काटि बिकार।
सोई बसि रसि मन मिले, गुन निरगुन एक बिचार ।।7।।
अनिक जतन निग्रह कीए, टारी न टरै भ्रम फास।
प्रेम भगति नही ऊपजै, ताते रविदास उदास ।।8।।

कोई भी पण्डित समझाकर नहीं कहता कि असली रहस्य को कैसे जाना जाता है, जिसके जानने से मेरा आवागमन मिट जाए। ग्रंथों में विविध प्रकारेण धर्म का निरूपण किया गया है। वर्तमान में भी सभी लोग धर्म का निरूपण करते हुए जान पड़ते हैं, किन्तु जिस धर्म से मिथ्या भ्रम का निरसन होता है, उसको कोई नहीं जानता। वेदों और पुराणों को सुन–सुनकर कर्म–अकर्म=विधि–निषेध का विचार करते हैं, शंका–समाधान करते हैं, किन्तु उनके हृदय में निषेधात्मक कर्म करने का भय व विधेयात्मक कर्म करने पर भी अनुकूल फल मिलेगा या नहीं, रूपी भ्रम बना रहता है। साथ ही शास्त्रानुसार धर्म का निरूपण करने के पाण्डित्य का अभिमान भी मन में उत्पन्न हो जाता है। ऐसे अभिमान को मात्र हरि के अतिरिक्त और कोई नहीं हरता! सतयुग में सत्, त्रेता में मख=यज्ञ, द्वापर में पूजाचार भव–सागर से पार होने के साधन कहे गए हैं। इन तीनों युगों में इन तीनों साधनों का क्रमशः प्राधान्य है, किन्तु कलियुग में मात्र भगवन्नाम–जप का ही आश्रय है। कलियुगी जीव अंगों=शरीरों का बाहर से तो खूब प्रक्षालन करते हैं, किन्तु उनके मनों में नाना विकार भरे होते हैं। वस्तुतः ये कलियुगी जीव शुचि=पवित्र कैसे हो सकते हैं, अर्थात् नहीं हो सकते, क्योंकि इनका व्यवहार हाथियों जैसा होता है जो तालाब के पानी में खूब नहाने के पश्चात् उससे बाहर आते ही सूंड में मिट्टी भर–भर कर पूरे शरीर पर डाला करते हैं। संसार में सूर्योदय हो जाने पर रात्रि का समाप्त होना देखा जाता है, पारस–मणि का ताम्बे से स्पर्श होते ही तांबे को स्वर्ण में परिवर्तित होते देखा जाता है। स्वर्ण बनने में लेशमात्र का भी समय नहीं लगता। परमात्मा की प्राप्ति धन, यौवन, कुल, करनी, आचारादि से नहीं होती। एक भ्रम ने ही सबको विनष्ट किया हुआ है, जिसको सब जानते भी हैं। भ्रम रूपी फाँसी को अनेक यत्नों से काटने का प्रयत्न करिये, कटती नहीं है। भ्रम के कारण प्रेमाभक्ति का उदय नहीं होता, इसी कारण रैदास उदास है ।।30।।

(33)

कोई सुमार न देखूँ, ए सब ऊपली चोभा।
जाकूँ जेता प्रकासै, ताकूँ तेता ही सोभा ।। टेक।।
हम हीं पैं सीखि सीखि, हम हीं सूँ माँडै।
थोरैं ही इतराइ चालै, पातिसाही छाँडै ।।1।।
अति ही आतुर बहै, काचा ही तोरै।
ऊंडे जलि पैसै नाहीं, पांडुरै खौरै ।।2।।
थौरै थौरै मुसियत, परायौ धना।
कहै रैदास, सुणौं संत जना ।।3।।33।।

जो कुछ दीख रहा है, वह ऊपरी शोभा मात्र है, इनमें से एक भी सुमार=शुमार=गिनने योग्य=महत्त्वपूर्ण=शाश्वत् नहीं है; ऐसी मेरी दृष्टि है, मानना है। जिसको जितनों की अशाश्वतता के बारे में बोध हो जाए, उतना ही शोभावान=अच्छा है। कई एक ऐसे निगुरे होते हैं जो मेरे से ही ज्ञान सीखते हैं, फिर बाद में मेरे से ही वाद–विवाद रूपी युद्ध माँडते=ठानते=करते हैं। यदि उनको थोड़ा सा भी ज्ञान हो जाता है तो वे अधकचरे ज्ञानाभिमान में औंधे हुए इतराते रहते हैं, अन्यों को गिनते ही नहीं हैं, ऐसे अभिमानियों की बादशाहत समाप्त होते देखी जाती हैं। ऐसे लोग बहुत ही उतावले होते हैं; बहुत जल्दी ही सब कुछ पा–लेना चाहते हैं। इनकी स्थिति ठीक वैसी ही होती है, जैसे कोई भूखा कच्चे फलों को ही पेड़ों से तोड़–तोड़ कर खाने लगे। ये गहरे जल तक=तत्त्व की गहराई तक जाने का प्रयत्न नहीं करते; ऊपरी तौर पर ही थोड़ा बहुत ज्ञान पाकर पंडित=विद्वान्=परमार्थी बन बैठते हैं। सतही पांडुरै खौरै=नदी–नालों में ही डूबे पड़े रहते हैं ऊपरी ज्ञान में ही मस्त रहते हैं। ये लोग थोड़े–थोड़े से ज्ञान के आधार पर ही या थोड़ा–थोड़ा करके दूसरों के माल का हरण करते हैं, मुसियत=चोरी करते हैं। हे संतों! रैदास की उक्त सच्ची बातों को सुनो ।।33।।

(34)

देवा हम न पाप करन्ता, अहो अनंता,
पतित पावन तेरा, बिड़द क्यूँ होता ।। टेक।।
तोही मोही मोही तोही, अंतर ऐसा।
कनक कुटक जल तरंग जैसा ।।1।।
तुम्ह हीं मैं केई नर अन्तरजामी।
ठाकुर थैं जन जानियैं, जन थैं स्वामी ।।2।।

तुम्ह सबननि मैं सब तुम्ह माहीं।
रैदास दास असमझिसि, कहै कहाँ ही ।।3।।34।।

पफतेहपुरीय–प्रति का पाठ : पदांक 91, पृष्ठांक 73, राग धनाश्री

देवा हम न पाप करता।
अहो अनंता पतितपावन, तेरौ नाव क्यौ होता।
हम जु निगम कहै अंतरजामी, स्वामी ते जन जानीए जन ते स्वामी ।।
तुम्ह हम अंतरै कैसा, कनक कूटक जल तरंग जैसा।
रौदास उदास विश्रामु नाही, देहि भगत जन कौ एकु तुहीं ।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु सिरि, पृष्ठांक 93

तोही मोही मोही तोही अंतरू कैसा।
कनक कटिक जल तरंग जैसा ।।
जउ पै हम न पाप करंता अहे अनंता।
पतित पावन नामु कैसे हुंता।।रहाउ।।
तुम जु नाइक आछहु अन्तरजामी।
प्रभ ते जनु जानीजै जन ते सुआमी ।।
सरीरु अराधै मोकउ बीचारु देहू।
रविदास समदल समझावै कोऊ ।।

हे देव! हे अनन्त! यदि हम पाप न करते तो तेरा विड़द पतित–पावन=पतितों को पावन करने वाला कैसे होता! अर्थात् पतित–पावन नाम की सार्थकता पतितों के होने पर ही है। हे परमात्मन्! तेरे और मेरे में, मेरे और तेरे में अन्तर वैसा ही है, जैसा नाम मात्र का अन्तर कनक और कनक के कुण्डल व जल और जल की तरंगों में होता है। हे अन्तर्यामी! ठाकुर होने पर ही भक्त और भक्त होने पर ही भगवान् होता है, सेवक होने पर ही स्वामी होता है। सारे सचराचर में तू व्याप्त है। सारा सचराचर तेरे में हैं। दास रैदास कहता है– जो अज्ञानी हैं, वे ही कहते हैं, पूछते हैं कि परमात्मा कहाँ है ।।34।।

(35)

यार माँ एक तूँ दाना।
तेरा आदू बैष्णौ, तूँ सुलितान सुलिताना, बंदा सकतिर जाना ।। टेक।।
मैं बेदियानत बदनजर दे, जरबंद बरखुरदार।

बेअदब बदबखत बीराँ, बेअकलि बदकार ।।1।।
मैं गुनहगार गरीब गाफिल, कमदिलाँ करतार।
तूँ दर कदर दरिया जिहावन, मैं हेसिया हुसियार ।।2।।
यहु तन हस्त खस्त खराब खातिर, अंदेसा बिसियार।
रैदास दास हिंडोल साहिब, देहु अब दीदार ।।3।।35।।

यार=मित्र–प्रियतम। **मां**=मेरा। **एक**=मात्र एक। **दाना**=बुद्धिमान। **आदू**=कदीमी–जन्म–जन्मान्तरों का। **वैष्णौ**=वैष्णव दास। इससे संज्ञान में आता है कि शैवों की नगरी काशी में रहने वाले रैदास अपने आपको वैष्णव कहने और मानने में गर्व अनुभव करते थे। **सुलितान सुलिताना**=सुलतानों का सुलतान; सबसे बड़ा व महानतम। **बंदा सकतिर**=मैं तेरा माया–विमोहित वंदा हूँ। **बेदियानत**=बेईमान। **जरबंद**=माया में जकड़ा हुआ, माया में आकंठ डूबा हुआ। **बर खुरदार**=माया के फलों की इच्छा करने वाला। **बेअदब**=अविनीत, अशिष्ट। **बदबखत**=अभागा, बदकिस्मत। **बीराँ**=वीरान, निराश। **बेअकलि**=बुद्धिहीन। **बदकार**=बुरे काम करने वाला। **गुनहगार**=दोषी, अपराधी। **गाफिल**=लापरवाह, असावधान। **कमदिलां**=छोटे दिल का। **दरकदर**=शरणागत–वत्सल। **दरिया जिहावन**= दरियादिल, उदार। **हेसिया=हिरसिया**=विशाल तृष्णा वाला। **हुसियार**=चतुर। **हस्त–खस्त**= अस्त–व्यस्त, बुरा हाल। **खातिर**=दिल। **अंदेसा**=शक, संदेह। **बिसियार**=बहुत अधिक।

हे परमात्मन्! आप ही एक–मात्र मेरे बुद्धिमान प्रियतम हैं, यार हैं। आप ही सुलतानों के सुलतान हो, जबकि मैं आपका कदीमी=हमेशा–हमेशा का वैष्णव=दास हूँ, आपका कदीमी सेवक होने के बावजूद माया में आकण्ठ डूबा हुआ सेवक हूँ, जिसके कारण मेरे में अनेक दोष, अवगुण हैं यथा–मैं बेईमान हूँ, बुरी नज़रवाला हूँ, माया का लालची हूँ, माया के फलों की इच्छा करने वाला अविनीत हूँ, अभागा हूँ, निराश हूँ, अक्लहीन हूँ, बुरे कर्म करने वाला हूँ, अपराधी हूँ, गरीब हूँ, लापरवाह हूँ, तंग–दिल हूँ। हे करतार! तू शरणागत–वत्सल है, दरिया–दिल है; इसके विपरीत मैं कामुक किम्वा अन्तहीन तृष्णा वाला हूँ। स्वार्थ–साधन में चतुर हूँ। मेरा शरीर अस्तव्यस्त= खस्ताहाल है, दिल में अनेक बुरे विचारों का जमावड़ा है। साथ ही मन में अनेक तरह के बड़े–बड़े संशय भरे पड़े हैं। हे साहिब! दास रैदास को अब दर्शन देने की कृपा करो ।।35।।

(36)

अब हम खूब बतन घर पाया। ऊँ जा खैर सदा मेरे भाया ।।
बेगमपुर सहर का नाँव। फिकर अँदेस नहीं तिहिं ठाँव ।। टेक।।
नहीं तहाँ सीस खला तन मार। हैफ न खता न तरस जवाल ।।1।।
आँवन जान रहम महसूर। जहाँ गनियाव बसै माबूद ।।2।।
जोई सैल करै सोइ भावै। महरम महल मैं को अटकावै ।।3।।
कहै रैदास खलास चमारा। जो उस सहर सो मींत हमारा ।।4।।36।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : रागु गउड़ी गुआरेरी, पृष्ठांक 345–346

बेगमपुरा सहर को नाउ। दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ ।।
नां तसवीस खिराजु न मालु। खउपु न खता न तरसु जवालु ।।
अब मोहि खूब वतन गह पाई। ऊहां खैरि सदा मेरे भाई ।।रहाउ।।
काइमु दाइमु सदा पातिसाही। दोम न सेम एक सो आही ।।
आबादानु सदा मसहूर। ऊहां गनी वसहि मामूर ।।
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै। महरम महल न को अटकावै ।।
कहि रविदास खलास चमारा। जो हम सहरी सु मीतु हमारा ।।

खूबवतन=आत्मसाक्षात्कार। **ऊं जा**=उस जगह। **खैर**=चैन, शांति, आनन्द। **फिकर**=चिंता। **अंदेस**=डर, संदेह। **सीस**=मस्तक जो अहंकार का प्रतीक है। **खला**=जूता। **हैफ**=अन्याय। **खता**=चूक, गलती। **तरस**=दया। **जवाल**=सितम, दुःख। **रहम**=दया, **मिहरि**। **महसूर**=उसकी दया प्रकट है। **गनियाव**=ब्रह्म, बडा ब्रह्म। **माबूद**=मामूर=खचाखच भरे रहते हैं। **महरम**=मर्मी=रहस्य को जानने वाला। **अटकावै**=रोके।

स्वात्मकथन करते हुए कहते हैं– अब मैंने उत्तम–अच्छे देश में निवास–स्थान प्राप्त कर लिया है, अर्थात् इस शरीर में ही स्वात्मतत्त्व का अपरोक्षानुभव प्राप्त कर लिया है। उस जगह सदैव शांति ही शांति बनी रहती है, उद्वेग का नाम तक नहीं होता; उस शहर का नाम बेगमपुर=शोक रहित शहर है। उसमें चिन्ता व डर नाम की चीज तक नहीं है। वहाँ अहंकार का लेश तक नहीं है और न शरीर पर जूते ही पड़ते हैं। न वहाँ अन्याय है, न कसूर है, न दया है और न सितम–दुःख ही है। वहाँ न आना है और न वहाँ से जाना है। वहाँ परब्रह्म–परमात्मा की दया प्रकट रहती है। इसी कारण वहाँ गनी–अपरोक्षानुभूति सम्पन्न ब्रह्मात्मा–जन खचाखच भरे रहते हैं। जिसकी जैसी रुचि होती है, वह उसी–प्रकार वहाँ–वहाँ आता–जाता है, जहाँ–जहाँ उसको आना–जाना होता है क्योंकि वह उस घर का महरमी=मर्मी=रहस्य–ज्ञाता होता है। उसके सामने कोई भी अवरोध नहीं होते। रैदास कहता है– जो उक्त शहर में रहता है, वही मेरा मित्र है।।36।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु गउड़ी पूरबी, पृष्ठांक 346

(37)

कूपु भरिओ जैसे दादिरा, कछु देसु बिदेसु न बूझ।
ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ, कछु आरा पारु न सूझ ।।
सगल भवन के नाइका, इकु छिनु दरसु दिखाइ जी ।।रहाउ।।
मलिन भई मति माधवा, तेरी गति लखी न जाइ।
करहु क्रिपा भ्रमु चूकई, मैं सुमति देहु समझाइ ।।
जोगीसर पावहि नहीं, तुअ गुण कथनु अपार।
प्रेम भगति के कारणै, कहु रविदास चमार ।।37।।

कूप में रहने वाला मेंढक जैसे कूप के अतिरिक्त बाह्य–जगत्=देश–विदेश के बारे में कुछ नहीं जानता, ऐसे ही मेरा मन विषय–भोगों से विमोहित है, जिसको न आरा= इहलोक के बारे में कुछ सूझता है और न पारु=परलोक के बारे में सूझता है। अतः हे सकल भुवन नायक! ज्यादा समय के लिए संभव न भी हो सके तो एक क्षण के लिए ही मुझे अपने दीदार करा दो। हे माधव! मेरी मति मलिन हो चुकी है जिस–कारण तेरा रहस्य जानने में नहीं आता। मैं कुछ रहस्य जान सकूँ, ऐसी कृपा करो, मेरा भ्रम समाप्त हो सके, ऐसी भी कृपा करो। मुझे अच्छी बुद्धि प्रदान करो और अच्छी समझ भी। हे परमात्मन्! तेरे गुण अपार हैं; इसीलिए वे गुण योगीश्वरों के लिए भी अकथनीय एवं अप्राप्य हैं। तेरी प्रेमाभक्ति के प्राप्त्यर्थ रैदास तुझसे निवेदन करता है ।।37।।

राग जंगली गौड़ी (3)

(38)

पहले पहरे रैंणि दै बणिजारिया, तैं जनम लिया संसार वे।
सेवा चूका राम की बणिजारिया, तेरी बालक बुधी गँवार वे ।।
बालिक बुध्य गँवार न चेत्या, भूला माया जाल वे।
कहा होइ पीछैं पछितायैं, जल पहली न बंधी पाल वे ।।
बीस बरस का भया अयाना, थंभि न सक्या भार वे।
जन रैदास कहै बणिजारा, तैं जनम लिया संसार वे ।।1।।
दूजे पहरै रैंणि दै बणिजारिया, तूँ निरखत चल्या छाँव वे।
हरि न दमोदर ध्याइया बणिजारिया, लेइ न सक्या नाँव वे ।।
नाँव न लीया औगण कीया, इस जोबन के ताण वे।
अपणी पराई गिणी न काँई, मंदे कंम कमाण वे ।।
साहिब लेखा लेसी तूँ भर देसी, भीड़ पड़ै तुझ ताँह वे।
जन रैदास कहै बणिजारा, तूँ निरखत चल्या छाँह वे ।।2।।
तीजे पहरे रैंणि दै बणिजारिया, तेरे ढिलड़े पड़े पराण वे।
काया रवनी क्या करै बणिजारिया, घट भीतरि बसै कुजाण वे ।।
इकु बसै कुजाण काया गढ़ भीतरि, अहिला जनम गवाइया।
इबकी बेर न सुकृत कीया, बहुरि न यहु गढ़ पाइया ।।
कँपी देह काया गढ़ खीणा, फिरि लगा पछिताण वे।
जन रैदास कहै बणिजारा, तेरे ढिलड़े पड़े पराण वे ।।3।।
चौथे पहरे रैंणि दे बणिजारिया, तेरी कंपण लगी देह वे।
साहिब लेखा मँगिया बणिजारिया, तूँ छड़य पुराणा थेह वे ।।

छड्य पुराणा ज्यंदु अयाणा, बालदि हकी सवेरिया।
जम के आये बंधि चलाये, बारी पूगी तेरिया ।।
पंथि चलै अकेला होइ दुहेला, किस कूँ देइ सनेह वे।
जन रैदास कहै बणिजारा, तेरी कंपण लागी देह वे ।।4।।38।।

फतहपुरीय–प्रति (वि.सं. 1639) का पाठ : पदांक 152, पृष्ठांक 95

राग गौडी

पहलै पहरै रैनि जार बै तैं क्या कीया, ब्यौपार बे बनिजारें बे।
हरि न दमो दमोदर ध्याइयौ बनिजारे बे, बालक मति गावार बै ।।
बालक मति गावार न चेत्या, भूला माया जाल बे।
क्या होइ पछितायै नीर पहला, बाधि न सक्या पाल बे ।।
जन रैदास कहै बनिजारे, बालक मति गावार बे ।।1।।
दूजे पहरै रैनि कै बनिजारा ब, देखत चाल्या छाह बे ।।
हरि न दमोदर ध्याइया बनिजारा बे, लेइ न सक्या नाउ बे ।।
हरि नाउ न लीया जोबन कै तान बे ।।
आपनी पराई गिनी न काई, मंदे काम कमान बे ।।
हरि लेखा लेसी तूँ भरि देसी, काम परै तुझु ताह बे।
लेखा लेसी तूँ भरि देसी, काम परै तुझु ताह बे ।।
जन रैदास कहै बनिजारे, देखत चाल्या छाह बे ।।2।।
तीजै पहरै रैनि कै बनिजारा बे, ढीला भया परान बे।
काया न बनी क्या करै बनिजारा बे, अतरि बसै कुजान बे ।।
अंतरि बसै कुजान कु मूरिख, अहिला जन्म गवाया बे।
अब का वेला कीया न सुक्रितु, बहुरि न या गढि पाया बे ।।
थाकी देह भया तन हीना, तौ भी लागा पछितान बे।
जन रैदास कहै बनिजारे, टीला भया परान बे ।।3।।
चौथै पहरै रैनि कै बनिजारा बे, थरहरि कंपी देह बे।
लेखा साहिब मागई बनिजारा बे, छोडि पुपुराना तेह बे ।।
गढ छोडि पुराना होहु सयाना, बालदि हाकि सवार बे।
जमपुर माया वाधि चलाया, तसकरु जम द्वारि बे ।।
पथु दुहेला चलै अकेला, कासौ करै सनेह बे।
जन रौदास कहै बनिजार, थेरहरि कंपी देह बे ।।4।।

जीव रूपी बनजारे को सम्बोधित करते हुए कहते हैं– हे बनजारे! रात्रि के प्रथम

प्रहर में तूने संसार में जन्म लिया। बाल्यावस्था में तू रामजी की भक्ति रूपी सेवा करने से चूक गया। इस समय तेरी बुद्धि अपरिपक्व थी तथा तू विद्या व विवेक से भी हीन था। माया–जाल में भ्रमित हो गया। अपरिपक्व बुद्धि सम्पन्न गँवार बाल्यावस्था में सावधान न हो सका। अब समय बीत जाने पर पश्चाताप करने से वैसे ही कोई लाभ नहीं है, जैसे वर्षा का विपुल जल आने के पूर्व सर–तालाबादि की पाल=सीमा न बाँधने से जल व्यर्थ चला जाता है। अज्ञानी बीस वर्ष की उम्र का हो गया फिर भी चौरासी को मिटाने के भार के वज़न को रोक नहीं सका, अर्थात् ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया, जिससे कि चौरासी लाख योनियाँ छूट सके। भक्त रैदास कहता है– हे बनजारा रूपी जीव! तूने इस–प्रकार जगत् में जन्म लिया।।1।। रात्रि के दूसरे प्रहर में तू अपनी छाया को, परछाँई को निरखने–परखने लगा अर्थात् अपने ही स्वार्थ–साधन में, कमाई–धंधे में लग गया। हे बनजारे! तूने हरि, दामोदर की आराधना इस प्रहर में नहीं की। काम–धंधों में आकण्ठ डूबे रहने के कारण तू हरि–नाम–स्मरण भी नहीं कर सका। यौवन के जोर में मदमस्त होकर तूने भगवन्नाम का स्मरण किया ही नहीं, ऊपर से नाना अवगुण=अपराध=दुराचरणादि किये। तूने अपनी–पराई कुछ भी नहीं जानी, सभी को भोगा। ऊपर से नीच कर्म और किये। मरने पर परमात्मा रूप धर्मराज तेरे से किये हुए अच्छे–बुरे का हिसाब लेगा। तुझे उन दण्डों को भोगना ही होगा, जो धर्मराज सजा के रूप में तुझे देगा। वहाँ तेरे ऊपर नाना–प्रकार की भीड़=मार पड़ेगी। रैदास कहता है– हे बनजारे जीव! तू यौवन के मद में मदोन्मत्त हुआ जीवन व्यतीत करता रहा, तूने रामजी का जरा भी भजन नहीं किया ।।2।। रात्रि के तीसरे प्रहर में हे बनजारे! तेरी देह ढीली=बीमारी आदि के कारण शिथिल होने लगी।

हे बनजारे! सुन्दर देह क्या कर सकती है, किस काम की है, यदि उसमें कुजाण=अज्ञान ही अज्ञान भरा हो, दुराचरण–दुर्विचार भरे पड़े हों। काया रूपी गढ़ में एक अज्ञान–भ्रम बसता है, जिसके कारण देवदुर्लभ मनुष्य–तन व्यर्थ ही चला जाता है। यदि तूने मनुष्य जन्म पाकर भी इस–बार कोई सुकृत=अच्छे कर्म=भगवभजन नहीं किया तो तेरा यह मनुष्य–जन्म तुझे पुनः प्राप्त नहीं होगा। जरावस्था आने पर शरीर कँपकँपाने लगता है, देह कमजोरी से ग्रस्त हो जाती है। ऐसी अवस्था में जीव पश्चाताप करता है कि हाय! मैं मनुष्य–जन्म का सदुपयोग नहीं कर सका। जन रैदास तुझ बनजारे से कहता है कि रात्रि के तीसरे प्रहर में तेरी देह शिथिल हो जाती है ।।3।। हे बनजारे! रात्रि के चौथे प्रहर में तेरी देह कँप–कँपाने लगी। साहिब=परमात्मा द्वारा धर्मराज से तेरे द्वारा जीवनभर किये शुभाशुभ कर्मों का लेखा–जोखा माँग लिया गया है। अतः अब पुरानी आदतों, कुकर्मों, दुराचरणों को छोड़ दे। हे अज्ञानी जीव! पुरानी

को छोड़ दे, क्योंकि प्रातःकाल होते ही तेरी वाळद रवाना हो जाएगी। यमदूत आते ही तुझे बाँध लेंगे और यमपुर ले जाएंगे। तेरी बारी=कूँच करने का समय आ गया है। यमपुरी के रास्ते में तू अकेला ही होगा; रास्ता दुहेला=दुःखों से पूरित होगा। उस समय तुझे कौन स्नेह देगा। तेरे से कोई भी स्नेह से बात नहीं करेगा। हे बनजारे! भक्त रैदास कहता है– तेरी देह कँपकँपाने लग गई है।।4।।38।।

राग आसावरी (4)

(39)

केसवे बिकट माया तोर, ताथैं बिकल गति मति मोर ।। टेक।।
सु बिष डसन कराल अहिमुख, ग्रसियत सुढाल सुभेख।
निरखि माखी बकत ब्याकुल, लोभ काल न देख ।।1।।
इंद्रयादिक दुख दारन, असंख्यादिक पाप।
तोहि भजत रघुनाथ अंतरि, ताहि त्रास न ताप ।।2।।
प्रतंग्या प्रतिपाल चहुँ जुगि, भगत पुरवन काम।
आस मोहि भरोस है, रैदास जै जै राम ।।3।।39।।

हे केशव! तेरी माया बहुत ही विकट=भयंकर है, इसी कारण मेरी गति व मति विकल=अशान्त है। सर्प के मुख में रहने वाले विष युक्त कराल दाँतों जैसे उसके दाँत हैं, जिनसे वह अच्छों–अच्छों को भी डँस लेती है। मक्खी के समान जरा सी भी माया को देखते ही उसकी चाहत में व्याकुल हुआ लोभी मन अंट–शंट बकता है; सामने खड़े काल को नहीं देखता। इतना ही नहीं, इन्द्रियादिक को दारुण दुःख सहना पड़ता है, असंख्य=असीम पापों का भागी बन जाता है। इसके विपरीत, हे रघुनाथ! जो तेरा भजन करता है, उसको तेरी माया न त्रास दे पाती है और न तापों से तप्त कर पाती है। चारों–युगों में अपनी भक्त–वत्सलता रूपी प्रतिज्ञा को, भक्तों की कामनाओं को पूरी करके रखने वाले हे राम! मुझे तेरी ही आशा है और तुझ पर ही भरोसा है। तेरी जय है, जय है।।39।।

(40)

बरजि हो बरजि बीठले, माया जग खाया।
महा प्रबल सबहीं बसि कीयै, सुर नर मुनी भ्रमाया ।। टेक।।
बालक बृधि तरुन अति सुंदर, नाना भेष बणाया।
जोगी जती तपी सिन्यासी, पंडित रहण न पाया ।।1।।

बाजीगर की बाजी कारनि, सबको कौतिक आया।
जो देखै सो भूलि रहै, वाकै चेलै मरम जु पाया ।।2।।
खंड ब्रह्मंड लोक सब जीते, इहि विधि तेज जनाया।
स्यंभू को चित चोर लियौ, वाके पीछैं लागा धाया ।।3।।
इन बातनि सुकचनि मरियतु है, सबको कहै तुम्हारी।
नैंकु हटकि किनि राखौ केसौ, मेटहु बिपति हमारी ।।4।।
कहै रैदास उदास भयौ मन, भाजि कहाँ अब जइये।
इत उत तुम्ह गोब्यंद गुसाँई, तुमही माहिं समइये ।।5।।40।।

हे बिट्ठल! माया ने सारे जगत् को खा डाला है, अपने प्रभाव में ले लिया है; अतः इसे नियंत्रित कर, नियंत्रित कर!! यह अति प्रबल है। इसने सबको अपने वश में कर रखा है। सुर, नर, मुनि सभी को भ्रमित कर रखा है। कभी यह बालक, कभी वृद्ध, कभी तरुन, कभी अति सुन्दर, नाना रूप बनाकर सबको ठगती रहती है। योगी, यती, तपी, संन्यासी, पंडित कोई भी इससे बच नहीं पाया। बाजीगर=जगत्–निर्माता परमात्मा द्वारा जगत् की रचना कर देने के कारण सभी जीवादि सचराचर इस जगत् में उत्पन्न हुए हैं; जो इस कौतुक=जगत् के नाशवान् पदार्थों को देखने, भोगने में लग जाते हैं वे भ्रमित हो जाते हैं, जबकि बाजीगर के चेले=परमात्मा के भक्त माया के अनिर्वचनीयत्व के मर्म को जानकर इससे किनारा कर लेते हैं। इस माया ने खंड, ब्रह्मांडादि समस्त लोकों को जीत लिया है। इस–प्रकार सर्वत्र इसने अपना तेज=प्रभाव प्रकाशित किया है। इस माया ने शंभु जैसे कामारि=कामदेव को भी भस्म कर देने वाले के चित्त को भी चुरा लिया। शंभु भीलड़ी के पीछे–पीछे काम के वशीभूत होकर दौड़ पड़े। उक्त सत्य तथ्यों के कारण सभी माया से डरते हैं, उसका विरोध करने से डरते हैं जिस–कारण अन्ततः सभी आवागमन के चक्र में घूमने रूप मरण को अंगीकार करते हैं। वस्तुतः सभी कहते हैं– 'यह' तो रामजी की माया है, 'वह' तो रामजी की माया है। 'सभी कुछ' को रामजी की माया बता देते हैं। यदि हे रामजी! यह माया तेरी ही है तो इसको थोड़ी–बहुत नियंत्रित करके क्यों नहीं रखते हो। मेरी माया–जन्य विपदा को क्यों नहीं मिटा देते हो। रैदास कहता है– मेरा मन माया से उदास हो गया है, किन्तु बताइये, अब भागकर कहाँ जाऊँ, माया का साम्राज्य तो सर्वत्र फैला है। इधर–उधर–सर्वत्र हे गोविन्द! आप ही परिव्याप्त हैं। अच्छा यही है कि आप से ही सम्बन्ध स्थापित किया जाए! आपमें ही समरस हुआ जाए ।।40।।

(41)

राम हिं पूजा कहा चढ़ाऊँ। फल अरु फूल अछूतौ न पाऊँ ।। टेक।।
थनहर दूध जु बछ जुठार्‌यौ। पहुप भवर जल मीन बिटार्‌यौ ।।1।।
मलियागर बेधियौ भुवंगा। विष अंमृत दोउ एक हि संगा ।।2।।
मन ही पूजा मन ही धूप। मन ही सेऊ सहज सरूप ।।3।।
पूजा अरचा न जानूँ राम तेरी। कहै रैदास कवन गति मेरी ।।4।।41।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु गूजरी, पृष्ठांक 525

दूधु त बछरै थनहु बिटारिओ। फूलु भवरि जलु मीनि बिगारिओ ।।
माई गोबिंद पूजा कहा लै चरावउ। अवरु न फूलु अनूपु न पावउ ।।रहाउ।।
मैलागर बेर्हे है भुइअंगा। बिखु अंम्रितु बसहि इक संगा ।।
धूप दीप नईबेदहि बासा। कैसे पूज करहि तेरी दासा ।।
तनु मनु अरपउ पूज चरावउ। गुर परसादि निरंजनु पावउ ।।
पूजा अरचा आहि न तोरी। कहि रविदास कवन गति मोरी ।।

फल और फूल कुछ भी अछूते नहीं हैं, ऐसी स्थिति में रामजी की पूजा में किन वस्तुओं का प्रयोग करूँ? यदि कोई कहे कि दूध चढ़ाकर पूजा की जा सकती है तो दूध बछड़े द्वारा पहले से ही जूठा किया होता है। पुष्प भ्रमरों द्वारा जबकि जल मछलियों द्वारा जूठा किया होता है। चन्दन को सर्प जूठा कर देता है। विष और अमृत एक हो गए होते हैं, चन्दन के वृक्ष पर सर्प के लिपट जाने से। जब सारी की सारी सामग्री ही जूठी है, तब पूजा की सामग्री मात्र मन बचा रह जाता है। मन ही पूजा है तो मन ही धूप है। सहज स्वरूप आत्मा की मन के द्वारा ही सेवा करता हूँ। हे राम! मैं तेरी पूजा–अर्चा कुछ नहीं जानता। ऐसी स्थिति में मेरी कौनसी गति होगी ।।41।।

(42)

तुझा चरन अरुब्यंद भवर मन।
पान करत पायौ पायौ मैं राम धन ।।टेक।।
संपति बिपति पटल माया घन।
तामें मगन होइ कैसें तेरौ जन ।।1।।
कहा भयौ जे गत तन छिन छिन।
प्रेम जाइ तौ डरै तेरौ निज जन ।।2।।
प्रेम रजा ले राखूँ रिदै धरि।
कहै रैदास छूटिबो कवन परि ।।3।।42।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु आसा, पृष्ठांक 486–487

कहा भइओ जउ तनु भइयो छिनु छिनु।
प्रेम जाइ तउ डरपै तेरो जनु ।।
तुझहि चरन अरबिंद भवन मनु।
पान करत पाइओ पाइओ रामईआ धनु ।।रहाउ।।
संपति बिपति पटल माइआ धनु।
ता महि मगन होत न तेरो जनु ।।
प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन।
कहि रविदास छूटिबो कवन गुन ।।

हे परमात्मन्! तेरे चरन अरविन्द के समान हैं। मेरा मन भ्रमर है। तेरे चरणों का ध्यान करते–करते मैंने तुझ राम को ही प्राप्त कर लिया है। मन रूपी भ्रमर ने चरण रूपी मकरंद का पान करते–करते तृप्ति रूपी रामजी को प्राप्त कर लिया। संपत्ति और विपत्ति दोनों माया रूपी बादलों का विस्तार है। बादलों के बरसने से जमाना अच्छा होता है, यही सम्पत्ति है। वर्षा का न बरसना ही विपत्ति है। माया के धूप–छाँही खेल में हे रामजी! तेरा भक्त कैसे मगन हो सकता है। यदि शरीर क्षणानुक्षण समाप्त होता है, तब भी क्या? किन्तु यदि प्रेम समाप्त होता है तो मेरा मन डरता है। प्रेम रूपी राजा को मैं हृदय में रखता हूँ किन्तु इस माया से कैसे छूटा जा सकता है? ऐसा रैदास का कहना है।।42।।

(43)

बंदे जानि साहिब गनी।
समझि बेद कतेब बोलै, ख्वाब में क्या मनी ।। टेक।।
ज्वानी दुनी जमाल सूरति, देखिये थिर नाहिं वे।
दम छसै इकीस हजार हरि दिन, खजाने थैं जाहिं वे ।।1।।
मनी मारे गर्ब गाफिल, बेमिहर बेपीर वे।
दरीखानैं पड़ै चोबा, होत नहीं तकसीर वे ।।2।।
कुछ गाँठि खरची मिहरि तोसा, खैर खूबी हाथि वे।
धणी का फुरमान आया, तब किया चालै साथि बे ।।3।।
तजि बदजबाँ बेनजरि कमदिल, कुछ करि खसम की काणि बे।
रैदास की अरदासि सुणि कुछ, हक हलाल पिछाणि वे ।।4।।43।।

हे वन्दे! साहिब को गनी= धनी जान। परमात्मा को ऐश्वर्य–मय जानना ही उसको धनी जानना है। रैदास कहते हैं– परमात्मा धनी है, इसको वेद व किताब=कुरान दोनों कहते हैं। अतः हे वन्दे! तू परमात्मा की ओर मुड़। ख्वाब=स्वप्न=मिथ्या माया में मन को मत लगा। जवानी=यौवन, दुनी=जगत्, जमाल=सुन्दरता और सूरति=शक्ल–सूरत इनमें से एक भी सनातन–सत्य न होकर अस्थिर किम्वा क्षणिक हैं। एक दिन में इक्कीस हजार छः सौ श्वास आते हैं। वे प्रतिदिन आयु रूपी खज़ाने से खर्च हो जाते हैं। जो मन के मारे हैं=मनमुखी हैं, घमंडी हैं, गाफिल=भ्रमित हैं, बेमिहर=अदयालु हैं, बेपीर= विरह–जन्य पीड़ा से हीन अथवा निगुरे हैं, उन पर परमात्मा के दरबार में चोबा=मार पड़ती ही है। मार पड़ने में कोई गलती परमात्मा के दरबार में नहीं होती। जीव जैसा करता है, उसको वैसा दण्ड परमात्मा देता ही है। अपराधी को सजा न देने की तकसीर=गलती परमात्मा नहीं करता। अतः हे जीव! गाँठ में हरि–भजन, हरि–कृपा=बल, खैर=दान, खूबी=अच्छाई, परोपकार करने की भावना रूपी कुछ रकम बाँध ले, क्योंकि जब परमात्मा का संसार से कूच करने का बुलावा आएगा, तब उक्त के अलावा और कुछ भी धन–दौलतादि साथ में नहीं चलेगा। अतः हे जीव! बुरा बोलना, बुरी नजर से देखना, कमदिल=कठोर हृदय–शीलता आदि का सर्वथा त्याग कर दे तथा परमात्मा की कुछ शर्म कर। रैदास की विनती सुनकर थोड़ा बहुत हक–हलाल=परमसत्य को जानने का प्रयत्न कर ।।43।।

(44)

सु कुछ विचार्‌यौ, ताथैं मेरौ मन थिर ह्वै रह्यौ रे।
हरि रंग लागौ, ताथैं मेरौ बरण पलट भयौ ।। टेक।।
धन्य सो पंथी जिनि यहु पंथ चलावा।
अगम गवन में गमि दिखलावा ।।1।।
अबरण बरण कथै जिनि कोई ।
घटि घटि ब्यापि रह्यौ हरि सोई ।।2।।
जिहिं पद सुर नर प्रेम पियासा।
सो पद रमि रह्या जन रैदासा ।।3।।44।।

मैंने कुछ विचारा=भगवन्नाम गुरु–मुख से श्रवण करके उसका अहर्निश तैल–धारावत् स्मरण किया, जिससे मेरा मन स्थिर हो गया है=लक्ष्यारूढ़ होकर उसका इधर–उधर भटकना बंद हो गया है। मेरे ऊपर हरि का रंग लग गया=मैं हरि की भक्ति करने लग गया, जिससे मेरा वर्ण पलटकर भक्त हो गया=मैं वर्ण से अवर्ण हो गया। वे

पंथी=राहगीर=गुरु धन्यवादार्ह हैं, जिन्होंने मुझे अध्यात्ममार्ग पर कुशलतापूर्वक चलना सिखाया। अगम्य–गमन=अज्ञात–राह का मर्म बताकर उस पर चलाया। सगुण–निर्गुण, साकार–निराकार के प्रति आग्रहियों को सावधान करते हुए कहते हैं– किसी को भी परमात्मा को सवर्ण अथवा अवर्ण नहीं बताना चाहिए। वह हरि घट–घट शरीर–शरीर में व्याप्त है। जिस पद रूप परमात्मा के प्रेम के सुर नरादि प्यासे हैं, उस पद में जन रैदास पहले से ही रम रहा है ।।44।।

(45)

माधौ संगति सरन तुम्हारी, जगजीवन कृष्ण मुरारी ।। टेक।।
तुम्ह मखतूल गुलाल चत्रभुज, मैं बपरौ जस कीरा।
पीवत डाल फूल रस अंमृत, संगति भयै मुकीरा ।।1।।
तुम्ह चंदन मैं ऐरंड बुपरौ, निकटि तुम्हारी बासा।
नीच बिरख थे ऊँच भये तेरी, बास सुबास निवासा ।।2।।
जाति भी वोछी जनम भी वोछा, बोछा करम हमारा।
हम सरनागति रामराइ की, कहै रैदासा बिचारा ।।3।।45।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : रागु आसा, पृष्ठांक 486

तुम चंदन हम इरंड बापुरे, संगि तुमारे बासा।
नीच रूख ते ऊच भये है, गंध सुगंध निवासा ।।
माधउ सतसंगति सरनि तुम्हारी, हम अउगन तुम्ह उपकारी।।रहाउ।।
तुम मखतूल सुपेद सपीअल, हम बपुरे जस कीरा।
सतसंगति मिलि रहीऐ माधउ, जैसे मधुप मखीरा ।।
जाती ओछा पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा।
राजा राम की सेव न कीनी, कहि रविदास चमारा ।।

जगत् के जीवन मुरारी! माधव!! मैं तेरे भक्तों की संगति की शरण में रहता हूँ। हे चतुर्भुज! तुम लाल रेशम हो, जबकि मैं तुच्छ कीड़ा हूँ। डालों पर लगे फूलों में अमृत रूपी रस का पान करके मैं कीड़ा भी मधुमक्खी सदृश बन गया हूँ। आप चन्दन हैं। मैं बेचारा अरंड का वृक्ष हूँ। मेरे द्वारा आप रूपी चन्दन की संनिधि में रहने से मेरे में भी आपकी सुगंधि बस गई है, जिससे नीच वृक्ष रूपी मैं ऊँचा हो गया हूँ, क्योंकि मेरा निवास सुवासित चन्दन रूपी तुम्हारे निकट है। वैसे देखा जाए तो मेरी जाति भी नीची है, जन्म भी नीच–परिवार में हुआ है। ऊपर से मेरा व्यवसाय भी नीचा ही है। बस, एक

ही अच्छी बात है और वह है, मैंने रामराय की शरणागति अंगीकार कर ली है। ऐसा बेचारा रैदास कहता है ।।45।।

(46)

माधौ अविद्या हित कीन्ह। ताथैं मैं तोर नाव न लीन्ह ।।टेक।।
मृग मीन भृंग पतंग कुंजर, एक दोष बिनास।
इति पंच ब्याधि असाधि इहिं तन, कौंण ताकी आस ।।1।।
जलि थलि जीव जंत जहाँ तहाँ लौं, करम पासा जाइ।
मोह पास अबध बाधा, करिये कौण उपाइ।।2।।
त्रिजुग जोनि अचेत सम भ्रमि, पाप पुन्य न सोच।
मानिषा औतार दुर्लभ, तिहूँ संकुट पोच ।।3।।
रैदासदास उदास बन भव, जप न तप गुर ग्यान।
भगत जन भौ हरन कहियत, ऐसे परम निधान ।।4।।46।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु आसा, पृष्ठांक 486

म्रिग मीन भ्रिंग पतंग कुंचर, एक दोख बिनास।
पंच दोख असाध जा महि, ताकी केतक आस ।।
माधो अविदिआ हित कीन, बिबेक दीप मलीन ।।रहाउ।।
त्रिगद जोनि अचेत संभव, पुंन पाप असोच।
मानुषा अवतार दुलभ, तिही संगति पोच ।।
जीअ जंत जहा जहा लगु, करम के बसि जाइ।
काल फास अबध लगे, कछु न चलै उपाइ ।।
रविदास दास उदास तजु भ्रमु, तपन तपु गुर गिआन।
भगत जन भै हरन, परमानंद करहु निदान ।।

हे माधव! अविद्या ने मेरा हित (?) किया है। इसीलिए मैंने तेरे नाम का स्मरण नहीं किया है। मृग, मछली, भँवरा, पतंगा और हाथी मात्र एक–एक इन्द्रिय के भोग के कारण ही विनाश को प्राप्त हो जाते हैं, जबकि मेरे शरीर में तो असाध्य पाँच व्याधियाँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध–भोगने की क्षमता है। ऐसी स्थिति में इस शरीर में कौन–सा भला होने की आशा की जा सकती है। आखिरकार मेरा शरीर भी भोगायतन है। अतः यह भी विनाशशील ही है। जल, स्थल आदि के जितने भी जीव–जन्तु हैं, वे सभी कर्म–पाश में बँधे पड़े हैं। ऊपर से मोह की अभेध्य बाधा और

है। इन सबसे पीछा छुड़ाने के लिए हे माधव! अब कौनसा उपाय करूँ? अचेत=असावधान की तरह मैं त्रिविध=जलचर, थलचर, नभचर योनियों में भटकता रहा; पाप कर रहा हूँ अथवा पुण्य, इसका मैंने तनिक भी विचार नहीं किया। मनुष्ययोनि में जन्म पाना अति दुर्लभ है, क्योंकि स्वेदज, उभिज और जरायुज नामक तीनों योनियाँ निम्न हैं। (मनुष्य देह अण्डज है।) उदासीन दास रैदास के पास न जप, न तप और न गुरु–ज्ञान का ही बल है। बस, मेरे पास एक ही सम्बल है, परम–निधान परब्रह्म–परमात्मा, भक्तों के भयों को हरन करने वाला कहा जाता है। अतः वह मेरा भी भव–भय हरण कर देगा, ऐसी मुझे पूरी आशा है ।।46।।

(47)

देहु कलाली एक पियाला। ऐसा अवधू है मतिवाला ।। टेक।।
रे रे कलाली तैं क्या कीया। सिर के साँटै प्याला दीया ।।1।।
चंद सूर दोउ सनमुख होई। पिवै पियाला मरहिं न सोई ।।2।।
सहज सुन्य में भाटी सरवै। पिवै रैदास गुरूमुखि दरवै ।।3।।47।।

हे कलाली (शराब बनाने वाली)! पीने को मुझे शराब का एक प्याला दो। उस शराब को पीने वाला अवधूत मतवाला है। अरे–अरे कलाली! तूने क्या किया? अरे! तूने तो एक प्याले शराब के बदले में मेरा शीश ही ले लिया। अर्थात् मैं सर्वतोभावेन तेरे शरणागत हो गया। इस प्याले को पीने से चन्द्रमा और सूर्य अपनी विपरीतता छोड़कर समान हो जाते हैं, जिससे पीने वाला मरता नहीं, अमर हो जाता है। सूर्य मूलाधार में तथा चन्द्रमा सहस्रार चक्र में है। चन्द्रमा से स्रवित अमृत को सूर्य सोख लेता है। यही दोनों का विपरीत होना है। साधना के द्वारा जब कुंडलिनी जाग्रत हो जाती है, तब चन्द्र–रस को सूर्य भस्म नहीं करता। परिणामतः साधक इस अमृत–रस को पीकर अमर हो जाता है। सहजशून्य सहस्रार चक्र में उक्त अमृत रूपी शराब को पकाने की भट्टी जलती है, वहीं शराब बनती है। गुरुमुखी रैदास इसी शराब रूपी अमृत को पीता है ।।47।।

(48)

भाई रे सहज बंदौ लोई, बिन सहज सिध न होई।
ल्यौ लीन मन तब जानिये, जब क्रीट भ्रंगी होई ।। टेक।।
आपा पर चीन्हैं नहीं रे, औरन कौं उपदेस।
कहाँ तैं तुम आइये रे, भूंदू जाहूगे किस देस ।।1।।
कहिये तो कहिये काहि, कहिये कह्याँ कौन पत्याइ रे।
रैदास दास अजान ह्वै करि, रह्यौ सहज समाइ रे ।।2।।48।।

हे भाई! सहज को अंगीकार करो। बिना सहज के सिद्धि की प्राप्ति होनी मुश्किल है। मन की लौ=वृत्ति को लक्ष्य में लीन हुआ तब जानो जब उसका स्वरूप कीट—भ्रमर—न्यायानुसार तदाकार हो जाए। अधिकांश अपना आपा=स्वात्मसाक्षात्कार तो करते नहीं, सुनी—सुनाई बातों के आधार पर अन्यों को उपदेश देने लग जाते हैं। उन उपदेशकों को यह तक पता नहीं कि वे कहाँ से आए हैं और कौन से देश में उन्हें पहुँचना है। वे स्वयं अनजान हैं, किन्तु जानकार होने का दम भरते हैं तथा अन्यों को उपदेश देते हैं। ऐसी स्थिति में किससे क्या कहा जाए! कहने पर कौन विश्वास करेगा! अतः रैदास तो इन प्रपंचों से दूर रहने के लिए अनजान बन गया है और सहज रूप परमात्मा में समा गया है, समरस हो गया है ।।48।।

गुरुग्रंथीय—पाठ : रागु आसा, पृष्ठांक 486

(49)

संत ची संगति संत कथा रसु, सन्त प्रेम माझे दीजे देवादेव ।।रहाउ।।
संत तुझी तनु संगति प्रान, सतिगुर गिआन जानै संत देवादेव।
संत आचरण संत चो मारगु, संत च ओल्हग ओल्हगणी ।।
अउर इक मागउ भगति चिंतामणि, जणी लखावहु असंत पापीसणि।
रविदास भणै जो जाणै सो जाणु, संत अनंतहि अंतरु नाहि ।।49।।

हे देवों के देव! मुझे संतों की संगति, संतों द्वारा कही जाने वाली रसमयी कथा व संतों के प्रति अनन्य प्रेम प्रदान करो, क्योंकि संत आपकी देह हैं; उनकी संगति प्राण है। सद्गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान को हे देवाधिदेव! संत जानते हैं। हे प्रभो! संतों जैसा आचरण, संतों का मार्ग व संतों के ओल्हग=सेवकों के ओल्हगणी=सेवकों की सेवा मुझे प्रदान करो। इनके अतिरिक्त एक अन्य चीज आपकी भक्ति रूपी चिन्तामणि और माँगता हूँ। हे प्रभो! ऐसी कृपा करो कि मुझे पापी, असंतों का मुख न देखना पड़े। रैदास कहता है— जो कोई जो कुछ जानता है वह जानता रहे, किन्तु वस्तुतः संतों में व अनन्त रूप परब्रह्म—परमात्मा में लेशमात्र का भी अन्तर नहीं है ।।49।।

गुरुग्रंथीय—पाठ : रागु आसा, पृष्ठांक 487

(50)

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे।
हरि सिमरत जन गए निसतरि तरे ।।रहाउ।।

हरि के नाम कबीर उजागर।
जनम जनम के काटे कागर ।।
निमत नामदेउ दूधु पीआइआ।
तउ जग जनम संकट नहीं आइआ ।।
जन रविदास राम रंगि राता।
इउ गुर परसादि नरक नहीं जाता ।।50।।

संत श्रीहरदास–वाणी का पाठ

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरि।
हरि सुमिर जन गये निसतरि तरि ।। टेक।।
हरि कै नाँइ कबीर उजागर।
जनम मरन के छेके कागर ।।1।।
निमति नामदेव घरि पीव पाया।
बहुरि न जोनी संकुटि आया ।।2।।
जन रैदास राम रंगि राता।
हरि परसादि नरकि नहीं जाता ।।3।।
धू सुणि साखि अमर पद अंजे।
पखि प्रहलाद पिसन सब गंजे ।।4।।
मन परतीत प्रेम ल्यौ लागी।
रटि हरदास रसन अनरागी ।।5।।50।।

हरि, हरि, हरि, हरि, हरि, हरि, हरि, हरि स्मरण करते–करते कितने ही भक्त निस्तार=संसार–सागर को पार कर गए हैं। हरि–नाम–स्मरण के बल पर ही कबीर उजागर हुए हैं। उनके जन्म–जन्मान्तरों के पाप–पुण्यों के कागर=कागज़=लेखे–जोखे फट चुके हैं। उनका आवागमन का चक्र मिट गया है। जीते जी भी वे मुक्त ही हैं। नामदेव ने निमत=भक्ति–भाव पूर्वक मूर्ति को दूध पिलाया। परिणामस्वरूप उन्होंने संसार में योनि–संकट सहने को पुनः जन्म धारण नहीं किया। रैदास नामक मैं भगवभक्त रामजी की भक्ति के रंग में रंगा हुआ हूँ। गुरु की कृपा से मैं नरकों में नहीं जाऊँगा अर्थात् मेरा भी जन्म–मरण का चक्र समाप्त हो गया है ।।50।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु आसा, पृष्ठांक 487

(51)

माटी को पुतरा कैसे नचतु है।

देखै देखै सुनै बोलै, दउरिओ फिरतु है।।रहाउ।।
जब कछु पावै तब गरबु करतु है।
माइया गई तब रोवनु लगतु है ।।
मन बच क्रम रस कसहि लुभाना।
बिनसि गइआ जाइ कहूँ समाना ।।
कहि रविदास बाजी जगु भाई।
बाजीगर सउ मुोहि प्रीति बनि आई ।।51।।

पंचतत्त्वों से निर्मित मिट्टी के पुलते में निवास करने वाला जीव माया, धन, ऐश्वर्य के लिए इधर से उधर, देखो कैसे नाचता फिरता है। दूसरों को देखकर=देखा देखी, दूसरों से सुनकर, दूसरों के द्वारा बोलने, प्रोत्साहित करने पर माया के लिए दौड़ा फिरता है; धन प्राप्त करने के लिए कड़े प्रयत्न करता है। जब कुछ माया प्राप्त कर लेता है, तब गर्व करता है कि मैं धनवान हूँ, किन्तु जब किसी कारण से माया खत्म हो जाती है, तब रोना प्रारंभ कर देता है। मन, वचन और कर्म से माया रूपी रस को पीने की ओर ही लुभायमान रहता है। जब शरीरांत हो जाता है, तब जीव स्वयं कहाँ जाकर समाता है, पता नहीं, किन्तु माया यहीं की यहीं धरी रह जाती है। रैदास कहता है– यह जगत् नट की बाजी के समान झूठा है। मैंने बाजी को त्याग दी है। बाजीगर से प्रीति जोड़ ली है ।।51।।

राग सोरठ (5)

(52)

अैसी मेरी जाति विख्यात चमारं,
ह्रिदै राम गोब्यंद गुण सारं ।। टेक।।
सुरसुरी जल लिया कृत बारुणी रे,
जिसैं संत जन करत नहीं पानं।
सुरा अपवित्र नित और जल मानियैं,
सुरसरी मिलत नहिं होत आनं ।।1।।
ततकरा अपवित्र करि मानिये,
जैसैं कागदा करत बिचारं।
भगत भगवंत जब ऊपरै लेखियै,
तब पूजिये करि नमसकारं ।।2।।
अनेक जीव अधम नाँव गुणि ऊधरे,

पतित पावन भये परसि सारं।
भणत रैदास रंकार गुण गावताँ,
संत साधू भये सहजि पारं ।।3।।52।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : रागु मलार, पृष्ठांक 1293

नागर जनां मेरी जाति बिखियात चमारं,
रिदै राम गोबिंद गुनसारं ।।रहाउ।।
सुरसरी सलल क्रित बारुनी रे,
संतजन करत नहीं पानं।
सुरा अपवित्र नत अवर जल रे,
सुरसरी मिलत नहि होइ आनं ।।
तर तारि अपवित्र करि मानीए रे,
जैसे कागरा करत बिचारं।
भगति भागउतु लिखीऐ तिहि ऊपरे,
पूजीऐ करि नमसकारं ।।
मेरी जाति कुट बांढला ढोर ढोवंता,
नितहि बानारसी आस पासा।
अब विप्र परधान तिहि करहिं डंडउति,
तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा ।।

आत्मकथन करते हुए कहते हैं– मेरी जाति चर्मकार अवश्य है किन्तु ऐसी वैसी नहीं है। मैं चर्मकार जाति–जन्मा हूँ, किन्तु मेरे हृदय में राम, गोविन्द के सारभूत गुणों का, नाम का सदैव निवास बना हुआ है। भक्ति–हीन उच्च–वर्णा तथा भक्ति–युक्त चर्मकार का अन्तर बताते हुए कहते हैं– यदि कोई गंगा के जल से शराब का निर्माण करे, तब भी उस शराब का संत जन पान नहीं करते। गंगा जल के अतिरिक्त अन्य जल से निर्मित सुरा अपवित्र ही जानी–मानी जाती है, सुरसरी जल के मिल जाने से अन्य=पीने योग्य नहीं हो जाती। ऐसे ही उच्च वर्ण में जन्मा किन्तु भक्ति–हीन व्यक्ति कभी भी अच्छा नहीं हो सकता। ततकरा=ताड़ी अपवित्र मानी जाती है, किन्तु ताड़ के वृक्ष के पत्ते आदि कागज बनाने के काम में आते हैं और उनसे कागज बनते हैं। उन कागजों पर जब भक्त व भगवान् के नाम, गुणादि लिखते हैं, तब वे कागज उत्तम संग के कारण पूजनीय व नमनीय हो जाते हैं और सभी उनकी पूजा करते हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं। अनेक अधम जीव भगवन्नाम, गुणों का स्मरण करके भवसागर से पार हो गए

हैं। सार रूप भगवन्नाम, गुणों का आश्रय लेकर अनेक पतित पावन हो गए हैं। रैदास कहता है– ररंकार के गुणों को गाने से संत साधु जन सहज ही में भवसागर से पार हो गए हैं ।।52।।

(53)

पार गयाँ चाहै सब कोई। दुहुँ उरवार पार नहिं होई ।। टेक।।
पार कहैं उरवार सूँ पारा। बिनु पद परचै भ्रमहि गँवारा ।।1।।
पार परम पद माहिं मुरारी। तामें आप रमैं बनवारी ।।2।।
पूरण ब्रह्म बसै सब माहीं। कहै रैदास मिले सुख साँई ।।3।।53।।

सब कोई 'पार' जाना चाहते हैं, किन्तु संसार रूपी सागर के दोनों किनारों से 'पार' नहीं हुआ जाता। 'पार' को परिभाषित करते हुए कहते हैं– दोनों किनारों से पार=दूर है 'पार'। बिना पद रूप परमात्मा का साक्षात्कार किये गँवार=सांसारिक जन संसारासक्ति रूपी भ्रम में भ्रम रहे हैं। वे 'पार' नहीं जा पाते, 'पार' को प्राप्त नहीं कर पाते। मुरारी 'पार' रूपी परमपद में ही है। उसमें ही स्वयं बनवारी रमण करता है। पूर्ण ब्रह्म– परमात्मा सचराचर में बस रहा है। रैदास कहता है– मुझे सुख रूप परमात्मा की प्राप्ति हो गई है।।53।।

(54)

बापुरौ सति रैदास कहै।
ग्यान बिचार नाँइ चित राखै, हरि के सरणि रहै ।। टेक।।
पाती तोड़ै पूज रचावैं, तारण तिरण कहै रे।
मूरति माहिं बसै परमेस्वर, तो पाणी माहिं तिरै रे ।।1।।
त्रिबिध सँसार कवन बिधि तिरिबौ, जे दिढ़ नाव गहै रे।
नाव छाड़ि जे डूण्डै बैसे, तौ दूणा दुख सहै रे ।।2।।
गुर को सबद अरु सुरति कुदाली, खोदत कोइ लहै रे।
राम काहू के बाँटै न आयौ, सो नैं कूल बहै रे ।।3।।
झूठी माया जग डहकाया, तो तनि ताप दहै रे।
कहै रैदास राम जपि रसना, माया काहु के सँगि न रहै रे ।।4।।54।।

बेचारा रैदास सत्य–सत्य कहता है। रैदास अपना चित्त हरि–नाम में अनुरक्त रखता है, मन को ज्ञान=आत्मानात्म–विवेक–पूर्वक आत्मचिन्तन में संलग्न रखता है।

इसके विपरीत संसारी–जनों के अनुसार परमेश्वर मूर्ति में निवास करता है। उस जड़ की पूजा के लिए वे सजीव पत्तों, फूलों को वृक्षों से तोड़ते हैं और उनसे उस मूर्ति की पूजा करते हैं। उस मूर्ति को वे भवसागर से पार करने वाली व पानी में तिरने वाली कहते हैं, किन्तु व्यवहार में वह पानी में नहीं तैरती, डूब जाती है; बताइये! वह पानी में क्यों नहीं तैरती है? जो स्वयं नहीं तैर सकती, वह अन्यों को क्या तिरायेगी! संसार रूपी सागर त्रिविध दुःखों=आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक से परिपूर्ण है; इससे बिना सुदृढ़ नाव रूपी भगवन्नाम–जप के कैसे भी तिरा नहीं जा सकता। जो नाव को छोड़कर पतवार पर बैठकर समुद्र को पार करना चाहते हैं, वे दोगुना दुःख सहन करते हैं। गुरु द्वारा प्रदत्त राम–नाम को सुरति रूपी कुदाली से एकाकार कर लेने पर परमात्मा रूपी रत्न खोदने रूपी साधना करने से हर किसी को मिल जाता है। राम किसी एक के बँटवारे में नहीं आया है, अर्थात् वह किसी एक व्यक्ति, जाति, कुल आदि की जागीर नहीं है। वह तो सबका है। वह कूल=कुलों के अनुसार बहता=बँटता नहीं है। माया त्रिकाल–असत्य है। इसी ने सारे संसार को ठग रखा है। श्रोता से कहते हैं– तेरे शरीर को भी तीनों तापों से तप्त करती है। अतः रैदास कहता है– रसना से राम–नाम का जाप जप। माया का संग छोड़ दे, क्योंकि माया हमेशा–हमेशा किसी के साथ नहीं रहती।।54।।

(55)

इहै अंदेस सोच जिय मेरे। निसिबासुर गुन गाऊँ राम तेरे ।। टेक।।
तुम्ह च्यंतत मेरी च्यंता हो न जाई। तुम्ह च्यंतामनि होउ किनाहीं ।।1।।
भगति हेति का का नहिं कीन्हा। हमारी बेर भये बल हीना ।।2।।
कहै रैदास दास अपराधी। जिहिं तुम्ह दरवौ सो मैं भगति न साधी ।।3।।55।।

हे राम! निशिदिन मैं तेरे गुनों का गायन करता हूँ फिर भी मेरे मन में चिन्ता बनी ही रहती है, संदेह बना ही रहता है। तुम्हारा चिन्तन–मनन करने के उपरान्त भी मेरी चिंता का शमन नहीं होता। हे राम! तुम क्यों नहीं चिन्तामणि बन जाते। चिन्तामणि चिन्ताओं को निश्शेष कर देती है। भक्तों के लिए आपने क्या–क्या नहीं किया? असम्भव को सम्भव बनाया। मेरी बार बलहीन क्यों हो गए हो, अर्थात् बलशाली बनकर मेरी सहायता के लिए क्यों नहीं आते। अपराधी सेवक रैदास कहता है– जिस भक्ति से तुम द्रवित होते हो, वह भक्ति मुझे नहीं आती; उस भक्ति का सम्पादन मैं नहीं कर सका।।55।।

(56)

रामराइ का कहिये यहु ऐसी, जन की जानत हो जैसी तैसी ।। टेक।।
मीन पकरि काट्यौ अरु फाँट्यौ, बाँटि कियौ बहु बानी।
खंड खंड करि भोजन कीन्हौं, तऊ न बिसर्यौ पानी ।।1।।
तैं हम बांधे मोह पासि में, हम तूँ प्रेम जेवरिया बांध्यौ।
अपने छूटन के जतन करत हो, हम छूटे तूँ आराध्यौ ।।2।।
कहै रैदास भगति इक बाढ़ी, इब काकौ डर डरिये।
जा डर कूँ हम तुम्ह कूँ सेवै, सो दुख अजहूँ सहिये ।।3।।56।।

पफतेहपुर (1639 वि.) की पुस्तक का पाठ : राग सोरठ, पृष्ठांक 79

माधौ जानत हौ जैसी तैसी, कहा करैगौ कैसी।
जौं हम बांध्यौ मोह पासि करि, प्रेम बांध्यौ माह पासि ।।
करि पेम बंधन तुम्ह बाँधै।
आपुनै छूटन कौ जतन करौ हम, छूटै तुम आराधौ ।।
मीन पकरि काट्या अरु फांट्या, बाटि कीयौ बहु बानी।
खंड खंड भोजन कीयौ, तऊ न बिसर्यौ पानी ।।
कहै रविदास भगति एक बाढ़ी, अ कास्यौ या कहियौ।
जा कारन हम तुम्ह कौं सेवत, सो दुख अजहू सहीयौ ।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : रागु सोरठि, पृष्ठांक 658

जउ हम बांधे मोह फास हम, प्रेम बधनि तुम बाधे।
अपने छूटने को जतनु करहु, हम छूटे तुम आराधे ।।
माधवे जानत हहु जैसी तैसी, अब कहा करहुगे ऐसी ।।रहाउ।।
मीनु पकरि फाँकिओ अरु काटिओ, रांधि कीओ बहुबानी।
खंड खंड करि भोजनु कीनो, तऊ न बिसरिओ पानी ।।
आपन बापै नाहीं किसी को, भावन को हरि राजा।
मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ, भगत नहीं संतापा ।।
कहि रविदास भगति इक बाढ़ी, अब इह कासिउ कहीए।
जा कारनि हम तुम आराधे, सो दुख अजहू सहीऐ ।।

भक्त की आपके प्रति जैसी प्रीति होती है, उसको आप वैसे ही जानते हैं। हे रामराय! यह प्रीति का तत्त्व होता ही ऐसा है, इसके बारे में क्या कहा जा सकता है।

मछली को पानी में से पकड़कर बाहर निकाला, काटा, फाड़ा (चीरा), अनेक प्रकार से उसके टुकड़े–टुकड़े कर डाले, उन टुकड़ों को भी तोड़–तोड़कर भोजन के रूप में भी खा डाला, फिर भी मछली ने पानी के प्रति प्रेम करना नहीं छोड़ा। पेट में चले जाने पर भी उसे (मछली को) पचाने को बार–बार जल पीना पड़ता है। यह है मछली की अनन्य–प्रीति जल के प्रति! हे परमात्मन्! आपने संसार में मुझे उत्पन्न करके मोह की फाँसी में बाँधा जबकि मैंने (रैदास ने) आपको प्रेम रूपी रस्सी में बाँध लिया है। हमारे प्रेम–बंधन से आप छुटकारा चाहते हो, किन्तु हम आप की आराधना करके मोह–बंधन से छूट गये हैं। रैदास कहता है– अब आपकी एकमात्र भक्ति ही मेरे पास अवशेष रह गई है। जहाँ भगवभक्ति होती है, वहाँ डर नहीं होता। अतः अब मैं क्यों किसी से डरूँ? जिस डर के कारण हमने आपकी भक्ति की, अब वही डर दुःखी हो रहा है, दुःख सह रहा है।।56।।

(57)

रे मन माँछला संसार समंदे, तूँ च्यत्र ब्यचत्र बिचारि रे।
जिहिं गालै गिलिया ही मरियै, सो सँगि दूरि निवारि रे ।।टेक।।
जम छै डिगणि डोरि छै कंकण, पर त्रिय गालौ जाणि रे।
होइ रस लुबध रमै यूँ मूरिख, मन पछितावै न्याणि रे ।।1।।
पाप गुल्यौ छै धरम निंबोली, तूँ देखि देखि फल चाखि रे।
पर त्रिय संग भलौ जे होवै, तौ राणौं रावण दाखि रे ।।2।।
कहै रैदास रतन फल कारणि, गोब्यंद का गुण गाइ रे।
काचौ कुंभ भर्यौ जल जैसैं, दिन दिन घटतौ जाइ रे ।।3।।57।।

मछली रूपी हे मन! तू इस संसार रूपी समुद्र में आकर तरह–तरह की क्रिया–कलापें करता है, किन्तु भगवभजन नहीं करता है जिन गालै=फंदों= बंधनों को गिलिया=बाँधने से मरता है, उन सांसारिक–बंधनों, मोह–माया को अपने से दूर कर डाल; उन बंधनों में मत बँध। जम डिगणि है। डोर कंकण है। पराई स्त्री बंधन है। काम–रस में डूबकर मूर्ख पर–स्त्री का भोग करता है, फिर भी मन तनिक भी पश्चाताप नहीं करता। पाप गुलाब है जबकि धर्म नीम की निम्बोली है। हे मूर्ख मानव! तू देख–देखकर ही इन फलों को खा, अर्थात् गुलाब दीखने, खाने में अच्छा लगता है, किन्तु इसका परिणाम गर्मी उत्पन्न करना है। सांसारिक भोग–विलास क्षणिक आनंददायी हैं, किन्तु परिणामतः दुःखदाई हैं। नीम की निम्बोली खाने में कड़वी लगती है, किन्तु परिणामतः अनेक रोग शमनकारी है। अध्यात्म–साधना प्रारम्भ में कष्टकर होती है,

किन्तु अन्त में भगवद्प्राप्ति कराती है। यदि पराई–स्त्री का भोग अच्छा होता तो रावण के जीवन को देखो। उसकी बर्बादी ही हुई। रैदास कहता है– रत्न रूपी फल पाने के लिए गोविन्द के गुणों का गान कर, क्योंकि तेरी उम्र दिनानुदिन वैसे ही घटती जा रही है जैसे जल से भरा, बिना पका मिट्टी का घड़ा बहुत जल्दी गल जाता है ।।57।।

(58)

जिनि थोथरा पिछोरै कोई।
जो र पिछोरौ जिहिं कण होई ।। टेक।।
झूठौ रे यहु तन झूठी माया।
झूठा हरि बिन जनम गँवाया ।।1।।
झूठा रे मंदिर भोग बिलासा।
कहि समझावै जन रैदासा ।।2।।58।।

किसी को भी थोथे (खाकले) को फटकना (पिछोड़ना) नहीं चाहिए। उसी को फटकना चाहिए, जिसमें कण हो। शरीर झूठा=नाशवान है। माया झूठी=नाशवान है। बिना हरि–भजन के समय को गुजारना नुकसान का सौदा है। महल–महलात, भोग–विलास सब झूठे हैं। रैदास उक्त बातें सबको समझाकर कहता है ।।58।।

(59)

रे चित चेति चेति अचेत, काहे बालमीक कूँ देख।
जाति थैं कोइ पद न पहूँच्यौ, राम भगति बसेख ।।टेक।।
षटक्रम सहित जु विप्र होते, हरि भगति चित दिढ़ नाहिं रे।
हरी कथा सूँ हेत नाहीं, सुपच तुलै ताहि रे ।।1।।
स्वान सत्र अजाति सब थैं, अंतरि लावै हेत रे।
लोक वाकी कहा जानैं, तीनि लोक पवित्र रे ।।2।।
अजामेल गज गनिका तारी, काटी कुंजर की पास रे।
ऐसे दुरमति मुकति कीये, क्यूँ न तिरै रैदास रे ।।3।।59।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु केदारा, पृष्ठ 1124

खटु करम कुल संजुगतु है, हरि भगति हिरदै नाहि।
चरनारविन्द न कथा भावै, सुपच तुलि समानि ।।
रे चित चेति चेत अचेत, काहे न बालमीकहि देख।

किसु जाति ते किह पदहि अमरिओ, राम भगति बिसेख ।।रहाउ।।
सुआन सत्रु अजातु सभ ते, क्रिस्न लावै हेतु।
लोगु बपुरा किआ सराहै, तीनि लोक प्रवेस ।।
अजामलु पिंगुला लुभतु कुंचरु, गए हरि के पास।
ऐसे दुरमति निसतरे, तू किउ न तरहि रविदास ।।

हे अचेत=असावधान चित्त! सावधान होकर हरि का भजन कर। हरि भजन करने में जाति, कुल, कर्म, उम्र, आश्रम कुछ भी बाधक नहीं है। अरे! वाल्मीकि को देख, राम–भजन के कारण वे आज आदि–कवि कहलाते हैं। वस्तुतः जाति को आधार बनाकर आज तक कोई भी मोक्ष–पद को प्राप्त नहीं कर सका है। पहुँचा है तो मात्र भक्ति के बल पर पहुँचा है क्योंकि महत्ता भक्ति की है, जाति की नहीं। कुत्ते का शत्रु=बधिक सबसे निम्न जाति का होता या माना जाता है, किन्तु यदि वह हृदय में हरि की भक्ति धारण कर लेता है तो संसारियों की दृष्टि में तो क्या तीनों लोकों में वह पवित्र माना जाने लगता है। अजामिल, गजेन्द्र, गणिका हरि–नाम के बल से तिर गए। कुंजर=हाथी की फाँसी भी हरि–स्मरण से कट गई। परमात्मा ने उक्त जैसे महापातकियों का उद्धार कर दिया तो मैं रैदास उसके द्वारा क्यों नहीं तिरा दिया जाऊँगा ।।59।।

(60)

रथ को चतुर चलावण हारौ।
खिण हाकै खिण ऊभौ राखै, नहीं आन को सारौ ।। टेक।।
जब रथ रहै सारही थाकै, तब को रथहिं चलावै।
नाद बिनोद सबैं ही थाके, मन मंगल नहिं गावै ।।1।।
पाँच तत्त कौ यहु रथ साज्यौ, अरधै उरध निवासा।
चरन कवल ल्यौ लाइ रह्यौ है, गुण गावै रैदासा ।।2।।60।।

शरीर रूपी रथ को चलाने वाला चतुर सारथी प्राण=आत्मा है। श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया क्षणानुक्षण होती है। अतः प्राण रूपी सारथी शरीर रूपी रथ को एक क्षण चलाता है तो दूसरे क्षण में रोकता है। यह प्राण किसी अन्य का सहकार नहीं लेता। आत्मा स्वतंत्र किम्वा वेदान्तीय–भाषा में स्वयं ही स्वयं का आधार व स्वयं ही स्वयं का विषय है। जब आत्मा रूपी सारथी थक जाता है, रथ रूपी शरीर में से निकल जाता है, तब रथ को कोई नहीं चला पाता, कौन चलावे। अब सुख–ऐश्वर्य, राग–रंग भोगना बन्द हो जाता है; मन का उत्साह, आनंद समाप्त हो जाता है अथवा मन मर जाता है। यह शरीर रूपी रथ पाँच तत्त्वों–जल, पृथिवी, आकाश, अग्नि, वायु से निर्मित है, जिसके

ऊर्ध्व और अधः भाग में प्राणों का निवास है। इनके रहने से शरीर की सत्ता रहती है, नहीं रहने से उसकी संज्ञा मृत हो जाती है। इसीलिए रैदास परब्रह्म–परमात्मा के चरण–कमलों में चित्त की वृत्ति को संयोजित करके उनके गुणों का गायन करता है ।।60।।

(61)

जो तुम्ह तोरौ राम मैं नहिं तौरौं।
तुम्ह सूँ तोरि कवन सूँ जोरौं ।। टेक।।
तीरथ ब्रत का न करौं अंदेसा।
तुम्हारे चरन कमल का भरोसा ।।1।।
जहाँ जहाँ जाउँ तहाँ तुम्हारी पूजा।
तुम्ह सा देव और नहिं दूजा ।।2।।
मैं अपनूँ मन हरि सूँ जोर्‌यौ।
तुम्ह सूँ जोरि सबनि सूँ तोर्‌यौ ।।3।।
सब परकार तुम्हारी आसा।
मन क्रम बचन कहै रैदासा ।।4।।61।।

गुरुग्रन्थीय पाठ : रागु सोरठि, पृष्ठांक 658–659

जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा।
जउ तुम चंद तउ हम भए है चकोरा ।।
माधवे तुम न तोरहु तउ हम नही तोरहि।
तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि ।।रहाउ।।
जउ तुम दीवरा तउ हम बाती।
जउ तुम तीरथ तउ हम जाती ।।
साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी।
तुम सिउ जोरि अवर संगि तोरी ।।
जह जह जाउ तहा तेरी सेवा।
तुम सो ठाकुरु अउरु न देवा ।।
तुमरे भजन कटहि जम फासा।
भगति हेत गावै रविदासा ।।

हे राम! यदि आप मेरे से सम्बन्ध तोड़ना चाहते हैं तो तोड़ सकते हैं, किन्तु मैं किसी भी स्थिति में, कभी भी सम्बन्ध नहीं तोडूँगा। कदाचित् मैं तोड़ने की सोचूँ भी तो

आखिर तोड़कर जोडूँ किससे, क्योंकि आपके अतिरिक्त मेरे लिए अन्य कोई दूसरा है ही नहीं! तीर्थ, व्रतादि करने की चिन्ता मैं बिल्कुल नहीं करता! मात्र मुझे आपके चरण–कमलों का भरोसा है। मैं जहाँ–जहाँ भी जाता हूँ, वहाँ–वहाँ तुम्हारी ही पूजा करता हूँ, क्योंकि आपका जैसा अन्य कोई दूसरा देव=परब्रह्म–परमात्मा है ही नहीं। मैंने अपना मन हरि से जोड़कर अन्य सभी से तोड़ लिया है। मुझे सर्वविध आपसे ही आशा है। आपकी ही आशा है मेरा सम्बल। मन, वचन, कर्म से ऐसा रैदास कहता है ।।61।।

(62)

किहिं बिधि अणसरौं रे, अति दुलभ दीनदयाल।
मैं महा विषयी अधिक आतुर, कामना की झाल ।।टेक।।
कहा ड्यंभ बाहरि कियैं, हरि कनक कसौटीहार।
बाहिर भींतर साखि तू, मैं कियौ सु सा अँधियार ।।1।।
कहा भयौ बहुत पाखँड कियैं, हरि हिरदै सुपिनैं न जान।
ज्यूँ दारा बिभचारनी, मुखि पतिवरता जिय आन ।।2।।
मैं हिरदै हारि बैठौ हरि, मोपैं सर्यौ न ऐकौ काज।
भाव भगति रैदास दे, प्रतिपाल करि मोहि आज ।।3।।62।।

हे दीनदयाल! मैं किस–प्रकार आपका अनुसरण करूँ। वस्तुतः आपका अनुसरण करना, आपकी भक्ति करनी अतीव दुर्लभ है। मैं महा विषय–भोगी हूँ, विषय–भोग करने में धीरज नाम की चीज़ मेरे मन में नहीं है। सदैव उतावलापन बना रहता है। मन में नाना कामनाओं की ज्वाला भी जलती रहती है। दंभ=बाहर कुछ, भीतर कुछ रूपी मिथ्याचरण करने से क्या लाभ? क्योंकि परमात्मा उस सुनार के समान है जो आचरण रूपी सोने को अपनी कसौटी से तत्काल परख कर लेता है। हे परमात्मन! तू बाहर का ही नहीं, भीतर के कर्मों, भावों का भी साक्षात् करने की शक्ति–वाला है। तेरे से कुछ भी छिपा हुआ नहीं रह सकता। इसके उपरान्त भी मैंने अँधियार=अज्ञान–वश बंधनकारी कार्य किये हैं। तीर्थ, व्रत, पूजा, आचार आदि नाना पाखंड करने से क्या हासिल हो सकता है, यदि स्वप्न में भी हरि को हृदय में जानने का प्रयत्न नहीं किया। ऐसे मिथ्याचारी की भक्ति उस व्यभिचारणी स्त्री के आचरण जैसी है, जो मुख से तो अपने आपको पतिव्रता कहे, किन्तु आचरण व्यभिचारणी जैसा करे। हे हरि! मैं मेरे हृदय=मन को हार चुका हूँ। मेरे से एक भी कार्य नहीं हो सका। न मैं अपना लोक सुधार सका और न परलोक ही सुधार सका! अतः हे हरि! आज मेरी प्रतिपाल करके मुझे भाव–भक्ति प्रदान कर।।62।।

(63)

माधौ भरम कैसै न बिलाइ, जाथैं दुती भाव दरसाइ ।।टेक।।
कनक कुटक पट सुत्र दार गज, रज भुजंग भ्रम जैसा।
जल तरंग पाहण प्रतिमा ज्यूँ, ब्रह्म जीव दुति ऐसा ।।1।।
बिमल एकरस उपजै न बिनसै, उदै अस्त दोउ नाहीं।
बिगताबिगत गतागत नाहीं, खिमा बसै सब माहीं ।।2।।
निहचल निराकार अजीत अनूपम, निरभै गमि गोब्यंदा।
अगम अगोचर अखिर अंतरक, निर्गुण नित आनंदा ।।3।।
सदा अतीत ग्यान घन बर्जित, निर्विकार अबिनासी।
कहै रैदास सहज सूत्य सति, जीवनि मुकति निधि कासी ।।4।।63।।

हे माधव! द्वैत रूपी भ्रम समाप्त क्यों नहीं होता, जिसके कारण ही 'तू और मैं भिन्न–भिन्न हैं' रूपी द्वैतभाव का भान होता है। उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं– कनक और इससे निर्मित कुण्डल, धागा और धागे से निर्मित कपड़ा, लकड़ी और इससे निर्मित हाथी, रस्सी और रस्सी में आरोपित सर्प, जल और इसकी तरंग, पत्थर और पत्थर से निर्मित मूर्ति अलग–अलग न होकर एक ही तत्त्व के दो नाम हैं। भ्रम से दो दीखते हैं। ऐसे ही आत्मा और ब्रह्म दो तत्त्व न होकर एक हैं। मात्र शारीरिक–उपाधि के कारण इनके दो होने का भ्रम उत्पन्न होता है। आत्मा मल–रहित, सदैव एकरस रहने वाला, न उत्पन्न और न विनष्ट होने वाला, न उदय और न अस्त होने वाला तत्त्व है। यह तत्त्व विगत और अविगत, गत और अनागत आदि भावों से भी रहित है। सबमें सदैव निवास करता है। आत्मा निश्चल (क्रिया रहित), निराकार, अजेय, अनुपम, निर्भय, अगम्य, गोविन्द, अगम, अगोचर, अक्षर, अन्तर्गत, निर्गुण और नित्यानन्द रूप है। सदैव, सर्वातीत, ज्ञानघन, निर्विकार व अविनाशी रहने वाला है। रैदास कहता है– आत्मा–परमात्मा सहज, शून्य, सत् रूप है। काशी जीवन्मुक्ति की निधि है ।।63।।

(64)

माधवे का कहिये भ्रम ऐसा, तुम्ह कहिय हौह न जैसा ।। टेक।।
निरपत्य एक सेज सुख सूता, सुपिनैं भया भिख्यारी।
अछत ही राज बहुत दुख पायौ, सा गति भई हमारी ।।1।।
जब हम हुते तबैं तुम्ह नाहीं, अब तुम्ह हो मैं नाहीं।
सलिता गवन कियौ महोदधि, जल केवल जल माहीं ।।2।।
रज भुजंग रजनी परकासा, अब कछु मरम जनावा।

समझि परी मोहि कनक अल्यंकृत, अब कुछ कहत न आवा ।।3।।
करता एक भाइ जुगि भुगता, सब घटि सब विधि सोई।
कहै रैदास भगति एक उपजी, सहजैं होइ सु होई ।।3।।64।।

गुरुग्रन्थीय पाठ : रागु सोरठि, पृष्ठांक 657–658

जब हम होते तब तू नाहीं, अब तू ही मैं नाहीं।
अनल अगम जैसे लहरि मइ ओदधि, जल केवल जल माहीं।
माधवे किआ कहीऐ भ्रमु ऐसा, जैसा मानीऐ होइ न तैसा ।।रहाउ।।
नरपति एकु सिंघासनु सोइआ, सुपने भइआ भिखारी।
अछत राज बिछुरत दुखु पाइआ, सो गति भई हमारी ।।
राज भुइअंग प्रसंग जैसे हहि, अब कछु मरमु जनाइआ।
अनिक कटक जैसे भूलि परे अब, कहते कहनु न आइआ ।।
सरबे एकु अनेकै सुआमी, सभ घट भुोगवै सोई।
कहि रविदास हाथ पै नेरै, सहजे होइ सु होई ।।

है कुछ, किन्तु प्रतीत कुछ हो, उसको भ्रम कहा जाता है। सन्त रैदास इसको ही अनेक प्रकार से समझाते हैं; हे माधव! भ्रम का स्वरूप ही ऐसा है कि जब भ्रम उत्पन्न होता है तब दृश्य 'ऐसा' अथवा 'वैसा' ही है, कहा नहीं जा सकता। हे परमात्मन! आप वेदों, शास्त्रों, पुराणों, वृद्धों से जो कुछ भी जानने में आते हो, ठीक वैसे ही नहीं हो। आपको नेति–नेति कहकर इसीलिए पुकारा जाता है। एक राजा रात्रि में पलंग पर सुखपूर्वक सोया, किन्तु स्वप्न में वह भिखारी बन गया। यर्थाततः, यद्यपि स्वप्न के समय भी वह राजा ही है, महल में सुखपूर्वक सो रहा है तथापि स्वप्न के कारण वह भारी दुःख महसूस करता है। यही भ्रम है। रैदास कहते हैं– मेरी गति–मति भी ऐसी हो गई है, अर्थात् मैं सच्चिदानंद आत्मस्वरूप हूँ, किन्तु भ्रमवश अपने आपको बद्ध जीव मानने लगा हूँ, यही भ्रम है। जब मैं अपने आपको 'मैं' करके मानता था, तब–तक आप का साक्षात्कार मुझे नहीं हुआ था। अब मुझे आपका साक्षात्कार हो गया है, तब मेरा मैं पन समाप्त हो गया है; आपकी और मेरी सत्ता एक हो गई है। हम अद्वैत रूप हो गए हैं। उदाहरणार्थ सरिता, समुद्र की ओर गमन करके वह उसी में जा मिली। दोनों एक हो गए, क्योंकि दोनों ही जल रूप हैं। समान धर्मी=सजातीय हैं। अतः अंशी और अंश का एकाकार=अद्वैत हो गया। मैं और आप एक हो गए। रज्जु–सर्प, रात्रि–दिवस का अब कुछ मर्म मुझे समझ में आ गया है, अर्थात् भ्रमोत्पादन में अंधकार का होना भी एक शर्त है। अंधेरे में ही रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है, उजाले में नहीं। जैसे ही प्रकाश होता

है, रस्सी–रस्सी रूप में दीखने लगती है। सर्प का मिथ्या भान समाप्त हो जाता है। ऐसे ही रैदास कहते हैं– मेरी देहाध्यास रूपी रात समाप्त हो गई है और मुझे आत्माकार स्थिति रूप प्रकाश=ज्ञान हो गया है। अब मुझे कनक और अलंकरण के मर्म का पता लग गया है। दोनों में मात्र उपाधिगत भेद है। अन्यथा दोनों एक हैं; इस–कारण अब कुछ कहते नहीं बनता। हे भाई! वह परमात्मा एकतः कर्त्ता व द्वितीयतः भोक्ता अर्थात् वही कर्त्ता–भोक्ता है, वही सचराचर में सर्वविधि व्याप्त है। रैदास कहता है– मेरे हृदय में ऐसे ही परमात्मा के प्रति भक्ति उत्पन्न हो गई है। अतः सहज में ही जो कुछ होना होगा, हो जाएगा ।।64।।

(65)

मन मेरे सोई सरूप बिचारं।
आदि र अंति अनंत परम पद, संसै सकल निवारं ।।टेक।।
जस हरि कहियत तस तो नाहीं, है अस जस कछु तैसा।
जानत जानत जानि रह्यौ मन, ताको मरम कहौ निज कैसा ।।1।।
कहियत आन अनभुवत आन रस, मिल्या न बेगर होई।
बाहरि भीतरि गुपत परगट, घट घट प्रति और न कोई ।।2।।
आदि ही एक अंति सो एकै, मध्य उपाधि सु कैसें।
है सो एक भरम तैं दूजा, कनक अल्यंकृत जैसें ।।3।।
कहै रैदास प्रकास परम पद, क्यं जप तप ब्रत पूजा।
एक अनेक अनेक एक हरि, करूँ कवण बिधि दूजा ।।4।।65।।

हे मेरे मन! उसी रूप का मुहुर्मुहु विचार कर जो सबका आदि–अंत है, अनन्त है, परम–पद रूप है। मन में विद्यमान सभी संशयों=उभयकोट्यात्मक ज्ञान का उच्छेद कर डाल। हरि=परब्रह्म–परमात्मा को जैसा कहा जाता है, वह ठीक वैसा ही नहीं है। वह नेति–नेति द्वारा वर्णित किया जाता है। वह जो कुछ भी, जैसा भी है, वह वैसा ही है। उसका पूर्णरूपेण वर्णन करना अशक्य है। वह इतना अद्वितीय और अवर्णनीय है कि मेरा मन उसको जानने का, खूब प्रयत्न कर रहा है फिर भी आज तक नहीं जान सका; आज भी जानने का ही प्रयत्न कर रहा है। हे श्रोता! इसीलिए बताओ कि उसका निजी रहस्य=स्वरूप क्या है? कैसा है? वह परमात्मा जब वर्णित किया जाता है, तब कुछ कहा जाता है, जबकि उसका अनुभव कुछ और ही रूप में होता है, किन्तु रस रूप निर्गुण–निराकार परमात्मा का एक बार अपरोक्षानुभव हो जाने के पश्चात् उसका सगुण–साकार परमात्मा की तरह अलगाव नहीं होता। वह परमात्मा बाहर, भीतर, गुप्त

में, प्रकट में, सर्वत्र घट–घट में व्याप्त है। तदतिरिक्त अन्य और कोई है ही नहीं। आदि में भी वही रहता है, अंत में भी वही शेष बचता है। बताइए! मध्य में जो कुछ दीखता है वह क्या है? वह उपाधि=भ्रम=मिथ्या है। मात्र वही एक है। आदि–अंत–मध्य में मात्र उस एक की ही सत्ता सत्य है। दूसरा कुछ प्रतीत होता है तो वह भ्रम=मिथ्या है। जैसे कनक ही उपाधिवश अलंकरण कहलाता है। जैसे ही अग्नि में तपाकर उसको पिण्ड बनाया जाता है, वैसे ही उसका नाम पुनः कनक हो जाता है। रैदास कहता है– परमपद रूप परमात्मा सत्ता=सत् रूप है, प्रकाश=चित्=चेतन रूप है, आनन्द रूप है। जप, तप, व्रत, पूजा कुछ नहीं हैं। वह हरि एक ही अनेक रूप में प्रकाशित हो रहा है। अनेक रूप अंततः हरि के रूप होने से एक ही हैं। इसलिए मैं कैसे उस परमात्मा को दो या अनेक बता सकता हूँ।।65।।

(66)

पांडे कैसी पूज रची रे।
सति बोलै सोई सतवादी, झूठी बात बची रे ।। टेक।।
जो अबिनासी सब का करता, ब्यापि रह्यौ सब ठौर रे।
पाँच तत्त जिनि किया पसारा, सो योही किधौं और रे ।।1।।
तू ज कहत है योही करता, याकौं मनिष करै रे।
तारण सक्ति सही जे यामें, तो आपण क्यों न तिरै रे ।।2।।
अहीं भरोसै सब जग बूडा, सुणि पंडित की बात रे।
याके दरसि कौन गुण छूटा, सब जग आया जात रे ।।3।।
याकी सेव सूल नहिं भाजै, कटै न संसै पास रे।
सोचि बिचारि देखि या मूरति, यूँ छाडी रैदास रे ।।4।।66।।

हे पंडित! तूने पूजाचार का जो मंडान बाँध रखा है, वह किसकी पूजा है और उसका वास्तविक स्वरूप क्या है? जो सत्य बोलता है, वही सत्यवादी है। जो सत्य नहीं है, बचा हुआ वही झूठ है। जो अविनाशी, सबका कर्त्ता, सर्वत्र व्याप्त और पाँच तत्वों से निर्मित समस्त संसार का प्रकटकर्त्ता है, क्या ऐसा परमात्मा ही तेरी पूजा का विषय है अथवा अन्य और कोई है। यदि तू कहे कि तेरे द्वारा पूजित मूर्ति में विराजित परमात्मा ऊपर–लिखित लक्षणों वाला ही है तो यह सत्य नहीं है, क्योंकि मूर्ति मनुष्य द्वारा निर्मित है, जबकि ऊपर वर्णित परमात्मा किसी के भी द्वारा निर्मित न होकर समस्त सचराचर का निर्माणकर्त्ता है। यदि तेरी मूर्ति में तारने की शक्ति है तो यह स्वयं ही क्यों नहीं तिर जाती! अर्थात् जब यह स्वयं ही स्वयं को नहीं तार सकती, तब औरों को क्या तारेगी?

'मूर्ति भवसागर से तार देगी' पंडित की इस भ्रमपूर्ण बात को सुन व मान कर सारा संसार ही भवसागर में डूब रहा है। मूर्ति के दर्शन करने से कौन सा गुण छूट जाता है। न सत् छूटता है, न रज छूटता है और न तम ही छूटता है। जब–तक इन तीनों गुणों से पीछा नहीं छूटता, तब–तक सारा जगत् आवागमन के चक्र में उलझा रहता है। मूर्ति की सेवा करने से त्रिविध शूल=दुःखों से छुटकारा प्राप्त नहीं होता; और न संशय व भ्रमों की फाँसी ही कटती है। सोचकर, देखकर, विचारकर ही रैदास ने इस मूर्ति की सेवा को छोड़ा है।।66।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु सोरठि, पृष्ठांक 658

(67)

न बीचारिओ राजा राम को रसु, जिह रस अनरस बीसरि जाही ।।रहाउ।।
दुलभ जनमु पुंन फल पाइओ, बिरथा जात अबिबेके।
राजे इंद्र समसरि ग्रिह आसन, बिनु हरि भगति कहहु किह लेखे ।।
जानि अजानि भए हम बावर, सोच असोच दिवस जाही।
इंद्री सबल निबल बिबेक बुधि, परमारथ परवेस नही ।।
कहीअत आन अचरीअत अन कछु, समझ न परै अपर माइआ।
कहि रविदास उदास दास मति, परहरि कोपु करहु जीअ दइआ ।।67।।

सांसारिक–विषयानन्दों में लगे रहने के कारण मैंने कभी भी राजा राम की भक्ति के रस के बारे में सोचा तक नहीं। भक्ति–रस ऐसा रस है कि इसके सामने अन्य सभी रस, अनरस विस्मृत हो जाते हैं। देव–दुर्लभ मनुष्य–जन्म पूर्वजन्मार्जित पुण्यों के फल से पाया, किन्तु सत्य और झूठ के निर्णय रूप विवेक के अभाव में वृथा ही चला जाता है। राजा–महाराजाओं, देवराज इंद्र के समान घर में सुखैश्वर्य प्राप्त किये, किन्तु बिना हरि की भक्ति के ये सब सुखैश्वर्य किसी गिनती में नहीं हैं, अर्थात् इनका होना न होने के बराबर है। जानते हुए भी अनजान बनकर हम बावले बने हुए हैं। कुछ समय समझदारी में तो कुछ नासमझी में व्यतीत हो जाता है। पंचेन्द्रियाँ सबल हैं। विवेक निर्बल बना हुआ है। इस कारण बुद्धि के द्वारा भी पारमार्थिक राह में प्रवेश नहीं है। कहता कुछ है। बातें ज्ञानियों जैसी करता है, किन्तु आचरण दूसरे प्रकार का ही है, अज्ञानियों जैसा है। अपरा=माया के बारे में कुछ भी समझ नहीं पड़ता है। उदासीन रविदास दास–बुद्धि होकर विनती करता है– हे परमात्मन्! आप क्रोध को त्याग दो और मेरे जीव पर दया करो।।67।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु सोरठि, पृष्ठांक 658

(68)

हरि हरि हरि न जपहि रसना, अवर सभ तियागि बचन रचना ।।रहाउ।।
सुखसागर सुरतर चिन्तामनि, कामधेनु बसि जाके।
चारि पदारथ असट दसा सिधि, नवनिधि करतल ताके ।।
नाना खिआन पुरान बेद विधि, चउतीस आखर माही।
बिआस बिचारि कहिओ परमारथु, राम नाम सरि नाही ।।
सहज समाधि उपाधि रहत फुनि, बडे भाग लिव लागी।
कहि रबिदास प्रगासु रिदै धरि, जनम मरन भै भागी ।।68।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु मारु, पृष्ठांक 1106

हरि हरि हरि न जपसि रसना, अवर सभ छाडि बचन रचना ।।रहाउ।।
सुखसागर सुरितरु चिंतामनि, कामधैन बसि जाके रे।
चारि पदारथ असट महासिधि, नवनिधि करतल ताके ।।
नाना खिआन पुरान वेद विधि, चउतीस अछर माही।
बिआस बीचारि कहिओ परमारथु, राम नाम सरि नाही ।।
सहज समाधि उपाधि रहत होइ, बडे भागि लिव लागी।
कहि रविदास उदास दास मति, जनम मरन भै भागी ।।68।।

जिह्वा द्वारा कहे जाने वाले राम–नाम के अतिरिक्त अन्य समस्त वचनों को त्यागकर हे रसना! तू हरि, हरि, हरि का उच्चारण क्यों नहीं करती! जो हरि–हरि का जप करते हैं उनके सुखसागर, सुरतरु=कल्पवृक्ष, चिन्तामणि व कामधेनु बस में हो जाते हैं। चार पदार्थ=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; अष्ट सिद्धि व नव–निधि हस्तगत हो जाती हैं। नाना आख्यानों=चरित्रों=कथानकों, पुराणों, वेदों, विधियों=स्मृतियों और चौतीस अक्षरों में वेदव्यास ने दृढ़ता के साथ लिखा है कि पारमार्थिक–मार्ग में राम–नाम के समान और दूसरा कोई साधन नहीं है। बड़े भाग्य से मेरी चित्तवृत्ति उपाधि रहित सहज समाधि में समाविष्ट हो गई है, जिससे मेरे हृदय में परब्रह्म–परमात्मा का प्रकाश हो गया है। जन्म–मरण का महा–भय भाग गया है=समाप्त हो गया है, ऐसा रविदास कहता है।।100।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु सोरठि, पृष्ठांक 659

(69)

प्रानी किआ मेरा किआ तेरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा ।।रहाउ।।
जल की भीति पवन का थंभा, रकत बुंद का गारा।
हाड मास नाड़ी को पिंजरु, पंखी बसै बिचारा ।।
राखहु कंध उसारहुँ नींवा, साढे तीनि हाथ तेरी सींवा।
बंके बाल पाग सिर डेरी, इहु तनु होइगो भसम की ढेरी ।।
ऊचे मंदर सुंदर नारी, राम नाम बिनु बाजी हारी।
मेरी जाति कमीनी पाँति कमीनी, ओछा जनमु हमारा ।।
तुम सरनागति राजा रामचंद, कहि रविदास चमारा ।।69।।

हे प्राणी! क्या तो 'तेरा' और क्या 'मेरा'; यह 'तेरा' 'मेरा' का भाव जिन वस्तुओं के सम्बन्ध से हैं, वे सब क्षणिक हैं। इतना ही नहीं, यह संसार भी क्षणभंगुर है। इसमें तेरा निवास वैसे ही क्षणिक है, जैसे पक्षियों का वृक्ष पर बसेरा। इस शरीर रूपी भवन का निर्माण व इसके अवयव अग्र–प्रकार से हैं। दीवार जल की है। स्तंभ पवन (प्राण) के हैं। रज व वीर्य के गारे से पत्थरों को जोड़ा गया है। हाड़, माँस, नाड़ी से बना हुआ पिंजर=पिंजरा=खोल (शरीर) है, जिसमें जीव रूपी बेचारा पक्षी निवास करता है। तुम इस शरीर रूपी भवन के स्कंध=गरदाने बनाते हो; नींव को उठाते हो तब यह साढ़े तीन हाथ का शरीर बनता है। यही इसकी सीमा है। शिर के बालों को बाँकी अदा में सजाते हो। उन पर टेढ़ी पगड़ी बाँधते हो। इतना सजाने पर भी यह शरीर एक न एक दिन जल–भुनकर=भस्म होकर राख की ढेरी हो जाता है। तेरे विशाल महल–महलात, सुंदर नारी आदि सब बिना राम–नाम–स्मरण के व्यर्थ हैं। इनमें ही आसक्त होकर जबकि रामजी को विस्मृत करके तू बाजी=अवसर ही चूकता है। हे राजा रामचन्द्र! मैं आपकी शरण में हूँ, आपका भक्त हूँ, ऐसा रविदास कहता है ।।69।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु सोरठि, पृष्ठांक 659

(70)

चमरटा गाँठि न जनही। लोगु गठावै पनही ।।रहाउ।।
आर नहीं जिह तोपउ। नही राँबी ठाउ रोपउ ।।
लोगु गंठि गंठि खरा बिगूचा। हउ बिनु गंठि जाइ पहूचा ।।
रविदायु जपै राम नाम। मोहि जम सिउ नाही काम ।।70।।

लोग मेरे से जूती गँठवाते (मरम्मत करवाते) हैं, किन्तु चर्मकार उन्हे गाँठना नहीं

जानता। मेरे पास आर=सिलाई करने का सुआ नहीं है कि उसमें धागा डालकर जूते में उसे तोपउ=घुसाऊँ। मेरे पास राँबी=राँपी=जिससे चर्मकार चमड़े को काटता है, भी नहीं है कि जिससे मैं जूते के फटे हिस्से को काट–पीटकर सीने योग्य बना लूँ। वस्तुतः अनेक लोग जूते गाँठ–गाँठ कर भी पूर्णरूपेण बर्बाद हुए हैं, जबकि मैं बिना जूतों को गाँठें ही परमपद प्राप्त कर चुका हूँ। रविदास राम–नाम का जप करता है। मुझे यमराज से कोई काम नहीं है, अर्थात् न मैं यमराज के लोक में जाऊँगा और न वह मेरा कुछ बिगाड़ ही सकता है ।।70।।

राग धनाश्री (6)

(71)

तुझा देव कवलापति सरणि आया।
मंझा जनम संदेह भृत छेदि माया ।। टेक।।
अतिर संसार अपार भौसागरा,
तामैं जामण मरण संदेह भारी।
काम भ्रम क्रोध भ्रम लोभ भ्रम मोह भ्रम,
अनंत भ्रम छेदि मम करिस्य पारी ।।1।।
पंच संगी मिली पीड़ियौ प्राणियौ,
जाइ न सकूँ बैराग भागा।
पुत्र बर्ग कुला बंध ते भारज्या,
भखैं दसूँ दिसा सिरि काल लागा ।।2।।
भगति च्यंतौं तो मोह दुख ब्यापै,
मोह च्यंतौं तो तेरी भगति जाई।
उभै संदेह मोहि रैंणि दिन ब्यापै,
दीन दाता करौं कौंन उपाई ।।3।।
चपल चेत्यौ नहीं बहुत दुख देखियौ,
काम बसि मोहियौ करम फंधा।
सकति सनबंध कियौ ग्यान पद हरि लियौ,
ह्रिदै विष रूप तजि भयौ अंधा ।।4।।
परम परकास अविनास अघमोचना,
निरखि निज रूप विश्राम पाया।
बदत रैदास बैराग पद च्यंतता,
जयौ जगदीस गोब्यंद राया ।।5।।71।।

हे कमलापति देव! मैं तेरी शरण में आया हूँ। मेरा जन्म संदेह और भ्रमों में ही व्यतीत हो रहा है। अतः भ्रमात्मक माया के परदे को हटाकर मुझे निस्संशय बना दे। भवसागर रूपी संसार अतिर=तिर सकने योग्य नहीं है, क्योंकि वह अपार=असीम है। तिर सकने योग्य क्यों नहीं है, क्योंकि इसमें जन्म–मरण रूपी संदेह का जल भरा हुआ है। कोई मूर्ति–पूजा दृढ़ाता है, कोई अष्टांगयोग को सर्वश्रेष्ठ बताता है, कोई ज्ञान, कोई भक्ति, कोई कर्म, कोई कुछ और कोई कुछ की महिमा गाते हैं। साधक भ्रमित हो जाता है। एक रास्ता अख्तियार नहीं कर पाता। यही संशय रूपी जल है। काम भ्रम है, क्रोध भ्रम है, लोभ भ्रम है, मोह भ्रम है, ये ही नहीं और भी अनेक भ्रम हैं। अतः हे कमलापति! अनंत प्रकार के भ्रमों को दूर कर व मुझे संसार सागर से पार कर। प्राणी को पंचविषयों=शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ने दुःखी किया है। इनसे विरक्त होकर, भागकर दूर भी नहीं जा पा रहा हूँ। पुत्र, वर्ग, कुल, बंधु, पत्नी दशों–दिशाओं से नोंच–नोंचकर खाते हैं। सिर पर काल मँडराता रहता है। यदि मैं भक्ति करने में संलग्न होता हूँ तो मुझे दुःख दुःखी करते हैं। यदि सांसारिक–सुखैश्वर्य, पुत्र–कलत्रादि से मोह करता हूँ तो परमात्म–भक्ति नष्ट होती है। द्वैतमूलक संदेह दिन–रात मेरे चित्त में बना ही रहता है। हे दीनों को देने वाले दाता! बता अब कौनसा उपाय करूँ? मेरा चित्त अत्यंत चंचल है, संसारासक्त है; सावधान नहीं है जिस कारण मैंने अनेक दुःख सहन किये हैं। मैं कामासक्त होकर नाना कर्मों को करने में प्रवृत्त होता रहा। शक्ति से सम्बन्ध स्थापित कर लिया। ज्ञान पद का हरण हो गया। हृदय में विराजित हरि को छोड़कर विषयों को अंधे की तरह भोगने में ही लगा रहा। परम–प्रकाश, अविनाशी, अघ–मोचन श्रीहरि! अब स्वात्मतत्त्व का अपरोक्षानुभव करके मैंने परम विश्राम को पा लिया है। रैदास कहता है– वैराग्य भाव का चिन्तन और आचरण करते–करते जगदीश, गोविन्दराय को पा लिया है।।71।।

(72)

मेरी प्रीति गोपाल सूँ जिनि घटै हो।
मैं मोलि मौहगी लई तन सटै हो ।।टेक।।
हिरदै सुमिरण करूँ नैन आलोकना,
श्रवणा हरि कथा पूरि राखूँ।
मन मधुकर करूँ चित्त चरणाँ धरूँ,
राम रसाइन रसन चाखूँ ।।1।।
साध संगति बिना भाव क्यूँ ऊपजै,
भाव बिन भगति क्यूँ होइ तेरी।

बदत रैदास गोब्यंद सुणि बीनती,
गुर प्रसादि कृपा करौ मेरी ।।2।।72।।

पफतेहपुर (सं. 1639) की पुस्तक का पाठ : राग धनाश्री, पृष्ठांक 76

मेरी प्रीति गोपाल स्यौं जिनि घटै हौं।
चरणोदिक अरु तुल तिलक, गोपी चंदन माला माहग लैइ तन सबै हौं ।।
वचन सुसिरन करौं नैन अवलोकित, श्रवन गुन हरि कथा पूरि राखी।
कृष्ण चरननु जा मनु करौ मधुकरा, राम सुधा रसन चखौ ।।
संत बिन भगति भुवनि ना ऊपजै, भाव बिना भगति नहु होइ तेरी ।।
कहै रैदास जगदीस स्यौं वेनती, गुर कै वचन क्रिपा करौ मेरी ।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : रागु धनासरी, पृष्ठांक 694

चित सिमरनु करउ नैन अविलोकनो। स्रवन बानी सुजसु पूरि राखउ।
मनु सु मधुकरु करउ चरन हिरदै धरउ। रसन अंम्रित राम नाम भाखउ ।।
मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जिनि घटै। मै तउ मोलि महगी लई जीअ सटै ।।रहाउ।।
साधसंगति बिना भाउ नहीं ऊपजै। भाव बिनु भगति नहीं होई तेरी ।।
कहै रविदासु इक बेनती हरि सिउ। पैज राखहु राजा राम मेरी ।।

गोपाल के प्रति मेरी प्रीति किसी भी कीमत पर कम नहीं होनी चाहिए, क्योंकि मैंने इसे अपने बदले में बहुत महँगे मोल पर खरीदी है, अर्थात् मैंने अपने आपको सर्वतोभावेन समर्पित करके इसको प्राप्त की है। मैं हृदय में परमात्मा का स्मरण करता हूँ; नेत्रों से दर्शन करता हूँ और कानों को हरि–कथा से पूर्ण रखता हूँ। मैंने मेरे मन को भगवच्चरणों का मधुकर=भ्रमर बना रखा है; चित्त को चरणों में संयोजित कर रखा है; रसना से राम–रसायन का पान करता हूँ। बिना साधुओं की संगति के भाव उत्पन्न नहीं होता और हे परमात्मन्! बिना भाव के तेरी भक्ति कैसे हो सकती है? रैदास कहता है– हे गोविन्द! मेरी विनती सुनो; गुरु–प्रसाद=कृपा मेरे ऊपर पूर्णरूपेण है। अतः गुरु–कृपा को ध्यान में रखकर आप भी अपनी कृपा मेरे ऊपर करिये ।।72।।

(73)

कौंण भगति थैं रहै प्यारौ पाहूणौ रे।
घरि घरि देख्यौ रे मैं अजक अभावणौ रे ।। टेक।।
मैला मैला बस्तर किता एक धोऊँ।
आवै आवै नींदड़ी कहा लौं सोऊँ ।।1।।

ज्यूँ ज्यूँ जोडूँ त्यूँ त्यूँ फाटै।
झूठै सै बणजि ऊठि गयौ हाटै ।।2।।
कहै रैदास पर्‌यौ जब लेखौ।
जोइ जोइ कियौ रे सोइ सोइ देखौ ।।3।।73।।

गुरुग्रंथीय—पाठ : रागु मलार, पृष्ठांक 1293

मिलत पिआरो प्राननाथु कवन भगति ते।
साध संगति पाई परमगते।।रहाउ।।
मैले कपरे कहा लउ धोवउ।
आवैगी नीद कहा लगु सोवउ ।।
जोई जोई जोरिओ सोई सोई फाटिओ।
झूठै बनजि उठि ही गई हाटिओ ।।
कहु रविदास भइओ जब लेखो।
जोई जोई कीनो सोई सोई देखिओ ।।

भक्ति का ऐसा कौन—सा प्रकार है, जिसका सम्पादन करने से प्यारा पाहुना घर में हमेशा—हमेशा के लिए रह जाता है? मैंने हर—एक घर को देखा, किन्तु सभी में अभावन=अप्रीतिकर अशान्ति ही देखने को मिली। घरों में जो वस्त्र मिले, वे सभी गंदे हैं, उन्हें कहाँ तक, कब तक धोऊँ व कितनों को धोऊँ। मुझे बारम्बार निद्रा आती है, कहाँ तक सोऊँ। वस्त्रों को जैसे—जैसे जोड़ता हूँ, वैसे—वैसे ही वे फटते जाते हैं। सारे बणिज=व्यापार झूठे हैं। अब तो बाजार भी बंद हो गया है। रैदास कहता है— जब—जब लेखों को देखा किम्वा पढ़ा गया, तब—तब जो—जो किया था, वही देखने को, भोगने को मिला ।।73।।

(74)

जयौ राम गोब्यंद बीठल बासदेव,
हरि विष्णु बैंकुठ मधु कीट भारी।
कृष्ण केसौ रषीकेस कवलाकंत,
अहो भगवंत त्रिबिध संताप हारी।। टेक।।
अहो देव संसार तो गहर गंभीर,
भीतरि भ्रमत दिसि विदिसि दिसि कछू न सूझै।
बिकल ब्याकुल खेद प्रणवंत परम हेत,
ग्रसित मति मोहि मारग न सूझै ।।

देव इहिं औसरि आन कौंण संक्या स मान,
देव दीन उधरन चरन सरन तेरी।
नहीं आन गति बिपति कूँ हरन और,
श्रीपति सुनसि सीख सँभाल प्रभु करहु मेरी ।।1।।
अहो देव काम केसरि काल भुंजग भामिनि,
काल लोभ सूकर क्रोध बर बारनौं।
गरब गैंडा महा मोह टटनी,
बिकट निकट अहंकार आरनौं ।।
जल मनोरथ ऊरमी तरल त्रिष्ना,
मकर पर इंद्री जीव जंत्र माहीं।
समक ब्याकुल नाथ सत बिषादिक पंथ,
देव देव विश्राम नाहीं ।।2।।
अहो देव सबै असंगति मेर, मध्य फूटा भेर,
नाँव नवका बडैं भागि पाई।
बिन गुर करणधार, डोलै न लागै तीर,
विषै प्रवाह औगाह जाई ।।
देव किहिं करूँ पुकार, कहाँ जाऊँ कासूँ कहू?
का करूँ अनुग्रह दास की त्रास हारी।
इहिं ब्रत मानि और अबलंबन नहीं,
तो बिन त्रिबिधि नाइक मुरारी ।।3।।
अहो देव जेते कहियैं अचेत, तूँ सरबंगि मैं,
मैं न जानूँ ग्यान ध्यान तेरौ।
सत्य सत्य मृद परप न मनसा ममल,
मन क्रम बचन अवर अवलम्बन नहीं मेरे ।।
कठिन कलिकाल जंजाल जुग जमनिका,
ग्यान बैराग दिढ भगति नाहीं।
मलिन मति रैदास निखल सेवा अभ्यास,
प्रेम बिन प्रीति सकल संसै न जाहीं ।।4।।74।।

राम, गोविन्द, विट्ठल, वासुदेव, हरि, वैकुंठवासी विष्णु, मधु–कैटभारि की जय हो। कृष्ण, केशव, हृषिकेश, कमलापति, त्रिविध संतापहारी भगवंत तेरी जय हो। हे देव!

संसार—सागर गंभीर गहरा है। इसके भीतर दिशा—विदिशाओं में भ्रमण करने पर कुछ भी मालूम नहीं होता, अर्थात् घूमने वाला घूमता ही रह जाता है, उसको इसमें क्या है और इसका ओर—छोर कहाँ है, कुछ भी ज्ञात नहीं होता। मैं विकल=अशांत व दुःख पा—पाकर अशांत हो गया हूँ। हे परम—हितैषी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मेरी मति मोह से ग्रसित है। मुझे उचितानुचित कुछ भी नहीं सूझ रहा है। हे देव! इस अवसर पर तू अवश्य आ। तू किसकी शंका के कारण नहीं आ रहा है? हे देव! तू तो दीनों का उद्धारकर्त्ता है। इसीलिए मैं तेरी शरण में, चरणों के आश्रय में आया हूँ। मेरी अन्यत्र गति नहीं है। मैं तेरे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानता कि उसकी शरण में चला जाऊँ। मेरी विपत्तियों को हरने वाला अन्य और कोई दूसरा नहीं है। हे श्रीपति! मेरी विनती सुन और मेरी सार—सँभाल कर; शरण में रख ।।2।। हे देव! काम सिंह रूपी काल है। भामिनी सर्प रूपी काल है। लोभ शूकर के समान है। क्रोध मदमस्त हाथी है। गर्व गैंडा है। विकट महामोह टटनी=तटनी=नदी है। नदी के निकट ही स्थित अरण्य=जंगल=अहंकार है। मनोरथ जल है। तरल तृष्णा जल की लहरें हैं। कामेन्द्रिय मकर=मगरमच्छ है। अन्य इंद्रियाँ अन्यान्य जीव—जन्तु हैं। सैंकड़ों विषयों के कारण मोह रूपी नदी (समक=समुद्र?) में व्याकुलता भरी पड़ी है, जिस—कारण रास्ते में लेशमात्र का भी चैन नहीं मिलता। सारी जिंदगी ही अशांति से भरी पड़ी है, लेशमात्र भी शांति नहीं है। हे देव! मेरी असंगति=असदाचरणों के कारण ही मेरा भेर=जहाज बीच रास्ते में ही फूट गया है, फट गया है। मैं बेहाल हो गया था, किन्तु तेरे नाम की नौका मुझे मेरे भाग्य से प्राप्त हो गई है। इतना होने पर भी गुरु रूपी केवट की परम जरूरत है। बिना केवट के न नाव चलती है न किनारे ही लगती है, क्योंकि विषयों का प्रवाह उसे औगाह=डुबोने का प्रयत्न करता है। हे देव! किसके सामने पुकार करूँ। कहाँ जाऊँ। किससे कहूँ। क्या करूँ। हे त्रास—हारी! दास पर अनुग्रह करो। मेरे पास तेरे आश्रय के अलावा, हे त्रिविध=तीनों लोकों के नायक मुरारी! और कोई आश्रय नहीं है ।।3।। मैं तेरी शरण में हूँ। यही मेरा व्रत है। मैं दूसरे की शरण में नहीं जा सकता। हे देव! मैं जितना भी कह रहा हूँ, वह सब असावधानी का प्रलाप है, जबकि तू सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, मैं न तेरा ज्ञान जानता हूँ, न ध्यान जानता हूँ। मन, कर्म, वचन, अमल—मनसा=मल रहित बुद्धि व मृदु वचन से सत्य—सत्य कहता हूँ कि आपके अतिरिक्त मेरा और कोई अवलम्बन नहीं है। कठिन कलिकाल में जगत—जंजाल रूपी परदे के कारण ज्ञान, भक्ति, वैराग्य में दृढ़ता नहीं रहती। रैदास मलिन—मति है। निखिल सेवा के अभ्यास व प्रीति रहित प्रेम के बिना संशय व भ्रमों का नाश नहीं होता ।।74।।

(75)

अहो देव तेरी अमिति महिमा महादेव,
माया मन जोबन दहन कलिषि कलि रातं।
सकल संसै समान, नृबाण पद भुवन,
नाम विघनोघ अघ पवन पातं ।। टेक।।
अहो देव गरग गोतम बामदेव बिस्बामित्र,
ब्यास जमदिगनि सींगीरिषि द्रुवासा।
मारकंडेव वालमीक भृगि अंगिराइ,
कपलि बगदालिम सुख मति न्यासा ।।
अत्र अष्टाबक्र गुर गजाननि अगस्ति,
पुलस्ति पारास्वर सिव बिधाता।
जड़ भरत सुभरिषि चिमनि वासिष्टि,
जिहिनि जगिबलिकि ते वै ध्यानि राता ।।1।।
अहो देव ध्रुब अंबरीष प्रहिलादु नारदु,
बिद्रु द्रुवन अक्रूर पांडव सुदामा।
भीषम उधव बभीषन चन्द्राहासि बलि,
कलि भगति जुगति जैदेव नामा ।।
कबीर गरड़ हणवंत जनक आतम मजाजै,
बिजै दरोपदी गिरसुता श्री परचेता।
रुकमांगत अंगद बसदेव देवकी,
और अगणित भगत कहूँ केता ।।2।।
अहो देव सेष सनकादि श्रुति भागवत,
भारथी सतब्रत अणब्रत गुण द्रब गाहं।
तूँ अकल अप्रछन ब्यापक ब्रह्म,
मेकरसि सुधि चेतिनि पूर्ण मनीषं ।।
तूँ सरगुण निरगुण निरामै निरबिकार,
हरि अंजन निरंजन बिमल अप्रमेव।
तूँ प्रमातमा तूँ प्रकीरति अबिगति मम,
बिगति सुच्यदानंद गुण ग्यान ग्रेहं ।।3।।
अहो देव पवन पावक अवनि,
जलधि जलधरा तुरणि काल।

जंम मृति ग्रह ब्याधि बाधा गज भुजंग,
भूपाल सिसि सक्रापसि दिगपाल ।।
अग्यान अनंत न मुचते म्रजादा अभै बर,
पद प्रतंग्या द्रुष्ट तारण चरण सरण तेरै।
दास रैदास यहु काल ब्याकुल भयौ,
त्राहि त्राहि अवर आलम्बन नहीं मेरै ।।4।।75।।

हे देव! हे महादेव!! तेरी महिमा अमित है। तू माया, सविषयी मन और संसारासक्त यौवन सहित कालुष्य–युक्त कलि–रात्रि का दहन–कर्त्ता है। समस्त संशयों का शमनकर्त्ता है। तेरा नाम निर्वाण पद भुवन है। विघ्न और पापों के समूह को समाप्त करने वाला है। हे देव! गर्ग, गौतम, वामदेव, विश्वामित्र, व्यास, जमदग्नि, शृंगी ऋषि, दुर्वासा, मार्कंडेय, वाल्मीकि, भृगु, अंगिरा, कपिल, वगलादम, शुकदेव, अत्रि, अष्टावक्र, गुरु, गजानन, अगस्त, पुलस्ति, पाराशर, शिव, ब्रह्मा, जड़भरत, शुभऋषि, च्यवन, वशिष्ठ, जद्दु, जागवल्क्य, आदि आपके ध्यान में निमग्न रहते है! हे देव! ध्रुव, अम्बरीष, प्रधद, नारद, विदुर, द्रोण, अक्रूर, पाण्डव, सुदामा, भीष्म, उद्धव, विभीषण, चन्द्रहास, बलि, कलियुग में भक्ति की युक्ति जानने वाले जयदेव, नामदेव, कबीर, गरुड़, हनुमान, जनकात्मजा सीता, जय, विजय, द्रौपदी, गिरिसुता पार्वती, प्रचेता, रुक्मांगद, अंगद, वसुदेव, देवकी और अनगिनत भक्त जिनके नामों का कथन कहाँ तक करूँ? हे देव! शेष, सनकादिक, श्रुति, भागवत, भारती (भर्तृहरि), सत्यव्रत, अणुव्रत गुण और द्रव्य के ग्राहक हैं। हे देव! तू अकल=कला– विभाग–रहित, अपरिच्छिन्न, व्यापक, ब्रह्म, एकरस, शुद्व, चैतन्य, पूर्ण, मनीषी है। हे देव! तू सगुण, निर्गुण, निरामय, निर्विकार, हरि, अंजन, निरंजन, विमल, अप्रमेय है। हे देव! तू ही परमात्मा, तू ही प्रकृति, अविगत, विगत, शुचितानंद (सच्चिदानंद?), गुण–ज्ञान–भुवन है। हे देव! तू पवन, पावक, भूमि, समुद्र, बादल, सूर्य, काल, यम, मृत्यु, ग्रह, व्याधि, बाधा, भुजंग, गज, भूपाल, चन्द्रमा, इन्द्र, दिक्पाल, अज्ञान, अनन्त, मर्यादा को न त्यागने वाला, अभय वर–प्रद, दुष्टों को तारने की प्रतिज्ञा का पालन करने वाला है। मैं तेरा शरणागत हूँ। दास रैदास उस कलिकाल में व्याकुल–व्यथित हो गया हूँ। हे देव! हे देव! त्राहिमां, त्राहिमां मेरी रक्षा कर, रक्षा कर। आपके अतिरिक्त मेरे पास और दूसरा अवलम्बन नहीं है। अतः मुझे अपनी शरण में रख ।।75।।

(76)

मैं का जानौं देव मैं का जानौं। मन माया के हाथि बिकानौं ।।टेक।।
चंचल मनवा चहुँ दिसि धावै। पाँचौ इन्द्री थिर न रहावै।

तुम्ह तो आहि जगतगुर स्वामी। हम कहियत कलिजुग के कामी ।।1।।
लोक बेद मेरे सुकृत बडाई। लोक लीक मोपै तजी न जाई।
इनि मिलि मेरौ मन जु बिगार्‌यौ। दिन दिन हरिजी सूँ अंतर पार्‌यौ ।।2।।
सनक सनंदन महामुनि ग्यानी। सुख नारद ब्यास इहै जु बखानी।
गावत निगम उमापति स्वामी। सेस सहँसमुख कीरति गामी ।।3।।
जहाँ जहाँ जाऊँ तहाँ दुख की रासी। जो न पत्याहु निगम हैं साखी।
जमदूतनि बहु विधि करि मार्‌यौ। तऊ निलज अजहूँ नहिं हार्‌यौ ।।4।।
हरि पद बिमुख आस नही छूटै। ताथैं त्रिष्णा दिन दिन लूटै।
बहु विधि करम लियैं भटकावै। तुम्हहिं दोस हरि कौंण लगावै ।।5।।
केवल राम नाम नहीं लीया। संतति बिषै स्वाद चित दीया।
कहै रैदास कहाँ लग कहिये। बिन जगनाथ सदा दुख सहिये ।।6।।76।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु जैतसरी, पृष्ठांक 710

नाथ कछूअ न जानउ। मनु माइआ कै हाथि बिकानउ ।।रहाउ।।
तुम कहीअत हौ जगतगुर सुआमी। हम कहीअत कलिजुग के कामी ।।
इन पंचन मेरो मनु जु बिगारिओ। पलु पलु हरिजी ते अन्तरु पारिओ ।।
जत देखउ तत दुख की रासी। अजौं न पत्याइ निगम भए साखी ।।
गोतम नारि उमापति स्वामी। सीसु धरनि सहस भग गामी ।।
इन दूतन खुल बधु करि मारिओ। बडो निलाजु अजहू नही हारिओ ।।
कहि रविदास कहा कैसे कीजै। बिनु रघुनाथ सरनि काकी लीजै ।।

हे देव! मैं क्या जान सकता हूँ आपके बारे में, क्योंकि मेरा मन तो माया के हाथों बिक चुका है, मायाधीन हो चुका है। चंचल मन चारों दिशाओं में घूमता–फिरता है। पाँचों इन्द्रियाँ भी चंचल मन के कारण स्थिर नहीं रहती हैं। आप जगद्‌गुरु स्वामी कहलाते हैं, जबकि मैं कलियुगी कामी पुरुष हूँ। मेरे लिए लोक, वेद, सुकृत और बड़ाई=मान–प्रतिष्ठा ही सब कुछ है। लोक की रीति–भाँति मेरे से छोड़ने में नहीं आती। इन्होंने मिलकर मेरे मन को बर्बाद कर डाला है और दिनानुदिन इन्होंने परब्रह्म–परमात्मा हरि से मुझे दूर किया है। सनक, सनंदन, महामुनि ज्ञानी शुक, नारद, व्यासादि ने भी इसी की पुष्टि की है। वेद, उमापति शिव, सहस्रमुख वाले शेष आदि भी इसी का बखान करते हैं। जहाँ–जहाँ सुख ढूँढने जाता हूँ, वहाँ–वहाँ दुःख ही का भंडार मिलता है। मेरी बात का आपको विश्वास न हो तो आप वेदों में इसे देख लें। वे इसके साक्षी हैं। यमदूतों ने नाना विधि के कष्ट दिये फिर भी निर्लज्ज मन अब भी संसारासक्ति

से दूर नहीं हुआ। सांसारिक भोगविलासों में ही डूबा पड़ा है। मन हरि से विमुख है। सांसारिक भोग भोगने की आशा–तृष्णा छूटती नहीं है। इसी–करण तृष्णा दिनानुदिन जीव को बर्बाद करती है। तृष्णा अपनी पूर्ति कराने के लिए, नाना कर्म कराने के लिए जीव को इधर–उधर दौड़ाती रहती है। ऐसी परिस्थिति में आपको दोषी कैसे ठहराया जा सकता है। मन को केवल राम–नाम का स्मरण करना चाहिए था, किन्तु उसने राम–नाम–स्मरण नहीं किया। उल्टे वह तो हमेशा विषयों के क्षणिक आनन्द को ही भोगने में लगा रहा। रैदास कहता है– मन के हाल–चाल कहाँ तक कहूँ। बिना रघुनाथ–राम–नाम–स्मरण और रामजी के आश्रय के जीव बहुत दुःख पाता है ।।76।।

(77)

त्राहि त्राहि त्राहि त्राहि त्रिभुवन पावन।
अतिसै सूल सकल बलि जावन ।।टेक।।
काम क्रोध लंपट मन मोर।
कैसैं भजन करूँ मैं तोर ।।1।।
विषम बिख्याधि बिहंडन कारी।
असरन सरन सरन भौ हारी ।।2।।
देव देव दरबारि दुवारै।
राम राम रैदास पुकारै ।।3।।77।।

तीनों लोकों को पावन करने वाले प्रभु! मैं आपकी शरण में हूँ। आप मेरी रक्षा करें, रक्षा करें। दुःख अत्यधिक हैं। मैं सर्वतोभावेन आपकी शरण में आया हूँ। मेरा मन काम और क्रोध भावों से भरा होने के कारण लंपट है। ऐसी स्थिति में बताओ, मैं आपका भजन कैसे करूँ? हे प्रभो! आप विषम=भयंकर व्याधिओं=दुःखों को हरने वाले हो। हे देव! मैं आपके दरबार के द्वार पर पड़ा हूँ। मैं रैदास राम–राम का स्मरण करता हूँ ।।77।।

(78)

जन कूँ तारि तारि बाप रमइया,
कठिन फंध पर्‌यौ पंच जमइया ।। टेक।।
तुम्ह बिन सकल देव मूनि ढूंढे,
कहूँ न पायौ जम पासि छुडइया ।।1।।
हम से दीन दयाल न तुम्हसे,
चरन सरन रैदास समइया ।।2।।78।।

हे पिता! हे रमैया राम! अपने भक्त का उद्धार कर, उद्धार कर, उद्धार कर, उद्धार

कर! आपका भक्त यम स्वरूप पाँच विषय=शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के फंदे में फँस गया है। आपके अतिरिक्त मैंने समस्त देव, मुनियों को जा–जाकर टटोला, जाँचा–परखा, किन्तु उनमें से एक को भी मैंने यम–फाँसी छुड़ाने वाला नहीं पाया। हे प्रभो! आपका जैसा दयालु और कोई नहीं है, जबकि मेरा जैसा कोई दीन नहीं है। इसलिए रैदास आपकी चरण–शरण में समा गया है ।।78।।

(79)

कहि धौ रे प्रहिलाद कहा गुण,
तूँ पढ्यौ, हूँ पढ्यौ राम को नाँव।
और हूँ कछू न जानौं, राम नाम नहिं छाड़ि ।।
और दूजौ नहीं मानौं, कहा पढौ रे बावरे।
और सकल जंजाल भौ सागर,
जम लोक में, मोहि कौंण उतारै पार ।।1।।
हसत हसत प्रहिलाद तबैं चटसार पधारे।
अचरन ररंकार सकल सभा ते न्यारे ।।
नाँव लेत परचो भयौ, मन उपज्यौ बिसवास।
सकल सभा आनन्द में, राजा भयौ उदास ।।2।।
जब राजा परजल्यौ, रोस मन में अति कीन्हौं।
मेरो बैरी राम सु तो, तैं चित धरि लीन्हौं ।।
यहु पढ़िबौ तूँ छाड़ि दे, कह्यौ हमारौ मानि।
टूक टूक करि डारि हौं, जब र सुनौं हरि कानि ।।3।।
जो बरजै सौ बार, कह्यौ तेरौ नहिं मानौं।
तजौं स्यंघ को सरण, गीध के गौंहनि लागौं ।।
पूरण ब्रह्म सकल है, जाको यहु बिसतार।
जाकी राम सहाइ है, ताहि सके को मार ।।4।।
लीन्हीं सभा बुलाइ, कहो धौं कहा बिचारौ।
ले देखो परतीति, जाइ गिरवर तैं डारौ ।।
सकल सभा मिलि ले चले, ले गये सैलि चढ़ाइ।
पंखी हूँ की गमि नहीं, तहाँ तैं दियौ ढरकाइ ।।5।।
तब प्रिथमी आधीन, दीन ह्वै दरसनि आई।
मसतकि चरन छिवाइ, लियौ हिरदा सौं लाई ।।

कहा भगत कौं त्रासि ए, आदि अंति नहिं और।
अबकै सेवा चूकि हूँ मोहि, तीन लोक नहिं ठौर ।।6।।
अस्वर भयौ मति अंध, जाइ ले पावक दीन्हौं।
अँगि ज्वाला परजली, तहाँ दिढ़ आसण कीन्हौं ।।
सकल देव रछ्या करै, तहाँ पावक नहिं जाइ।
पठयौ सीत सहाइ को, मानौं मीन मकर में न्हाइ ।।7।।
जाति में छाँटौ डारि, कछू नट नाटिक कीन्हौं।
असुर भयौ मति मूँढ, जाइ लै कूपै दीन्हौं ।।
सकल साध रख्या करै, धू नारद से साखि।
जाकी राम सहाइ है, ताहि कहौं ले नाखि ।।8।।
निस बासुरि नहीं मरौं, खड़ग बाणा नहिं बेधै।
जल ज्वाला थैं रहत, जंग जोधा नहिं जीतै ।।
छाया माया म्रिति नहीं, नहीं धरनि आकास।
मति ब्रह्मा की का कहूँ, सोचत हैं त्रिय नाथ ।।9।।
इतौ गरब मति करै, राम है गरब प्रहारी।
तो सौं बल हरनाछि, आदि बारा संघारी ।।
पूरण ब्रह्म सकल है, सब ईसनि को ईस।
मोमैं तोमैं खड़क खंभ में, पूरि रह्यौ जगदीस ।।10।।
कर गहि लीयौ खड़ग, कोपि सनमुख भयौ ठाढौ।
दुसमन करत चटपटी, कहौ धौं राम कहा थौ ।।
बार बार तोसौं कहौं, येह अंदेसौ मोहि।
जे यहु खंभा राम है तो, क्यूँ न छुड़ावै तोहि ।।11।।
असत भयौ जब भाण, उदौ रजनी जब कीन्हौं।
अधर खंभ की छाँह, उठाइ जंघ स्थल परि लीन्हौं ।।
नख करि उदर बिदारियो, तिलक दियौ प्रहिलाद।
सपतदीप नौ खंड में, तीनि लोक भयौ साद ।।12।।
जहाँ जहाँ भीड़ पड़ी भगतन की, तहाँ तहाँ कारिज सारे।
हमसे अधम उधारि किये, नरकन तैं न्यारे ।।
सुर नर गण गंध्रप रढे, साहिब चरण निवास।
मनसा वाचा करमना, गुण गावै रैदास ।।13।।79।।

हिरण्यकश्यपु प्रहलाद से पूछता है– 'प्रहलाद! मुझे बता कि तूने कौन सा गुण

पढ़ा है, कौन सी शिक्षा प्राप्त की है?' तब प्रहलाद ने उत्तर दिया– 'मैंने राम का नाम पढ़ा है। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं जानता। मैं राम–नाम को नहीं छोड़ूँगा। मैं राम–नाम के अतिरिक्त अन्य किसी को मानता ही नहीं। हे बावले! राम–नाम को छोड़कर अन्य शिक्षा क्यों पढ़ूँ। राम–नाम के अतिरिक्त अन्य सब जंजाल है। अतः राम–नाम के अतिरिक्त यमलोक रूप संसार से मुझे कौन पार उतारेगा, अर्थात् कोई नहीं उतार सकता।' इतने वार्तालापानन्तर प्रहलाद हँसते–हँसते पाठशाला पहुँचे। वे उस समय राम–राम उच्चारण कर रहे थे और सारी सभा से विलक्षण लग रहे थे। जैसे ही प्रहलाद ने राम–नाम का उच्चारण किया, वहाँ एक चमत्कार हुआ। सारी सभा के मन में, राम–नाम के प्रति विश्वास उत्पन्न हो गया, सभी आनन्दमय हो गए, किन्तु राजा उदास हो गया। सारी सभा को ही राम–राम उच्चारण करते हुए देखकर राजा जल–भुन उठा और उसने अपने मन में भारी रोष किया। राजा ने कहा– 'राम मेरा शत्रु है। तू उस ही को अपने चित्त में चढ़ा बैठा है। तू मेरा कहना मान और 'राम'–'राम' पढ़ना बन्द कर दे। यदि अब से आगे तुझे कभी 'राम'–'राम' कहते सुन लिया तो मैं तेरे टुकड़े–टुकड़े कर डालूँगा।' प्रहलाद ने कहा– 'यदि आप राम–नाम न लेने को सौ बार कहेंगे, तब भी मैं आपकी बात नहीं मानूँगा। राम–नाम को छोड़कर आपकी बात को मानना तो ऐसा है, जैसे सिंह की शरण को छोड़कर गधे का साथ पकड़ लिया जाये! रामजी पूर्णब्रह्म–परमात्मा है। सारा संसार उसी का बनाया हुआ है। ऐसा राम जिसका सहायक हो, उसको कौन मार सकता है।' राजा ने प्रहलाद को सभा में बुलाया और उससे पूछा– 'एक बार पुनर्विचार करके मुझे बता कि तेरा अंतिम निर्णय क्या है! मैं राम के प्रति तेरे विश्वास की परीक्षा ऊँचे पर्वत से लुढ़काकर करूँगा।' प्रहलाद टस से मस नहीं हुआ। हार कर राजा ने सभासदों से कहा– 'इसको पर्वत से गिराकर इसके रामजी के प्रति अटल विश्वास की परीक्षा करो, इसे पर्वत से गिरा दो।' सारे सभा–जन मिलकर प्रहलाद को पर्वत की ओर ले गए और प्रहलाद सहित ऐसे ऊँचे पर्वत पर चढ़ गए, जिस पर पक्षी भी नहीं चढ़ पाते थे। वहाँ से प्रहलाद को ढरका दिया, लुढ़का दिया। पृथिवी को जैसे ही ज्ञात हुआ, भगवभक्त पर्वत से पृथिवी पर आ रहे हैं, वह दीन–हीन बनकर भक्तराज प्रहलाद के दर्शन करने को उपस्थित हुई। उसने प्रहलाद के चरणों से अपने मस्तक को लगाया और प्रहलाद को ह्रदय से चिपका लिया। पृथिवी ने मन में विचारा, भक्त को दुःख क्यों देना चाहिए। भक्त के लिए भगवान् के अतिरिक्त आदि–अंत में और कोई होता ही नहीं और मैं भगवान की दासी हूँ। अतः मुझे हर हालत में प्रहलाद की सेवा करनी चाहिए। यदि मैं इस–बार सेवा करने से चूक गई तो मुझे तीनों लोकों में कहीं भी ठौर नहीं मिलेगी। असुर राजा ने इस घटना का बिल्कुल विचार नहीं किया। उस मति–अंध ने प्रथम प्रयास में असफल होने पर दूसरे प्रयत्न के रूप में प्रहलाद को

प्रज्ज्वलित अग्नि में डलवा दिया। जैसे ही शरीरांगों में अग्नि भभकने लगी, प्रहलाद ने दृढ़ आसन लगाकर राम–नाम–स्मरण करना प्रारम्भ कर दिया। समस्त देवता प्रहलाद की रक्षा करने लगे। अग्निदेवता ने उस अग्निपुंज से अपना प्रभाव समाप्त कर दिया। देवताओं ने वायुदेव को प्रहलाद की रक्षा करने को भेज दिया। परिणामतः वह अग्नि प्रहलाद को ऐसी ठंडी लगने लगी जैसे अथाह जल में मछली, मकर=अपनी मौज में नहाती है। प्रचण्ड अग्नि में जब प्रहलाद नहीं जला, तब राजा ने नट की भाँति दुनिया को दिखाने के लिए नाटक करते हुए अग्नि में पानी डलवाकर उसे शांत किया, किन्तु असुर राजा तो मूढ़–मति हो चुका था। अतः उसने प्रहलाद को गहरे कुएँ में डलवा दिया। प्रहलाद का यहाँ भी कुछ नहीं बिगड़ा। जो समस्त सज्जनों की रक्षा करता है, जिसकी रक्षा करने की साक्षी ध्रुव, नारद आदि भरते हैं, ऐसे रक्षक के भक्त को कहीं भी ले जाकर डाल दो, उसका सहायक रामजी बन ही जाता है। रामजी उसकी सहायता करते ही हैं। हिरण्यकश्यपु ने ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर रखा था, मैं न दिन में मरूँ, न रात्रि में मरूँः न तलवार से मरूँ, न बाणों से बिंधकर मरूँः न जल में मरूँ, न अग्नि में जलकर मरूँ, युद्ध में किसी योद्धा के द्वारा भी न मरूँ, न उसके द्वारा जीता जाऊँः न छाया में मरूँ, न माया=इन्द्रजाल से मरूँः यमराज के द्वारा भी न मारा जाऊँः न धरती पर मरूँ और न आकाश में मरूँ। तीनों लोकों का नाथ विष्णु सोचने लगा कि ब्रह्मा की बुद्धि के क्या कहने कि उसने अपने भक्त को अमर करने के लिए क्या–क्या वरदान दे डाले! प्रहलाद ने कहा– 'इतना भारी गर्व मत कर कि मैं कैसे भी नहीं मर सकता, क्योंकि मेरे पास अनेक वरदान हैं। रामजी गर्वापहारी है। वह कोई ऐसा उपाय निकाल लेगा कि तेरे सारे वरदान धरे ही रह जाएंगे। तेरे भ्राता हिरण्याक्ष में तेरा जैसा ही बल था, फिर भी उसको विष्णु ने वाराह का अवतार धारण करके मार ही डाला। वह विष्णु पूर्णब्रह्म है। सर्वत्र व्याप्त है। सब ईशों का भी ईश्वर है। वह जगदीश्वर तेरे में, मेरे में, खड्ग में, खम्भ में सर्वत्र व्याप रहा है।' प्रहलाद की बातें सुनकर हिरण्यकश्यपु क्रोधित हो हाथ में खड्ग लेकर खड़ा हो गया। दुसमन=असुर क्रोध के मारे थरथराता हुआ कहने लगा– 'बता! तेरा राम कहाँ है। मैं बार–बार तेरे से पूछ रहा हूँ। मुझे संदेह है कि तेरा राम मेरे कथनानुसार सर्वत्र है। यदि यह खम्भा=स्तंभ ही राम अथवा राममय है तो वह तुझे खम्भे से छुड़ा क्यों नहीं देता? जब सूर्य अस्ताचल को चले गए। रजनी का उदय होने लगा था, तब खम्भे की छाया में विष्णु रूप नृसिंह ने हिरण्यकश्यपु को अधर उठा लिया और अपनी जंघस्थलों पर लिटा लिया। अपने नाखुनों से उसका पेट चीर डाला और प्रहलाद को सिंहासन पर बैठाकर उसका राज–तिलक कर दिया। सातों–दीपों, नवों–खंडों व तीनों–लोकों में भक्त प्रहलाद व भगवान् नृसिंह की जय–जयकार होने लगी। जब–जब, जहाँ–जहाँ भक्तों के सामने विपित्तियाँ आई हैं,

तब–तब व तहाँ–तहाँ परमात्मा ने विपत्तियों का हरण कर उनके कठिन कामों को पूरा किया है। मेरे जैसे अनेक अधमों का उद्धार कर उन्हें नरकों में जाने से रोक लिया। ऐसे साहिब=परमात्मा के चरणाश्रय को प्राप्त करने के लिए सुर, नर, गण, गंधर्व सभी उसका स्मरण करते हैं। रैदास भी मनसा, वाचा, कर्मणा ऐसे परमात्मा के गुणों का गायन करता है ।।79।।

(80)

आरती क्या ले करि जोवै। सेवग दास अचंभै होवै ।।टेक।।
बावन कंचन दीप घड़ावै। जड़ि बैरागर द्रिष्टि न आवै ।।1।।
कोटि भान जाकी सोभा रौंमैं। कहा आरती अगिनि र धूमैं ।।2।।
पंच तत्त यहु त्रिगुणी माया। जो दीसै सो सकल उपाया ।।3।।
कह रैदास मैं देख्या माहीं। सकल जोति रोम समि नाहीं ।।4।।80।।

ऐसी क्या वस्तु अथवा ऐसा कौन सा उपकरण है, जिसके द्वारा परमात्मा की आरती की जा सके, आरती के दर्शन किये जा सकें; सेवक व दास इसी को लेकर चिन्तित होता है। कंचन=सोने के बावन दीपक बनवाता है। उनको वैगागर=हीरों से जटित करवाता है, जिनकी चमक के सामने आँखों की दृष्टि रुकती नहीं, चौंधिया जाती है, किन्तु परमात्मा स्वयं ही इतना महत् प्रकाशमान है कि उसको प्रकाश दिखाने की जरूरत नहीं है। करोड़ों सूर्यों की ज्योति उसकी एक–एक रोम में समाहित है। ऐसे परमात्मा की आरती अग्नि अथवा धूम से कैसे की जा सकती है? संसार के जितने भी साधन, उपकरण–तत्व हैं वे सब के सब त्रिगुणात्मक माया के हैं। माया दृश्य है। जो दृश्य है, वह उत्पन्न होता है और जो उत्पन्न होता है, वह विनष्ट भी होता है। रैदास कहता है– मैंने उक्त वर्णित प्रकाशमान परमात्मा को हृदय में ही देख लिया है। उसकी एक रोम की ज्योति के बराबर सारे ब्रह्माण्ड की ज्योति भी नगण्य अथवा कुछ भी नहीं है।।80।।

(81)

संत उतारैं आरती, देव सिरोमणिये।
उर अंतर तहाँ पैसि, बिन रसना भणिये ।। टेक।।
मनसा मंदिर माहिं, धूप धूपापाइये।
प्रेम प्रीति की माल, राम चढ़ाइये ।।1।।
चहुँ दिसि दिवला मालि, जिगिमिगि होइ रह्यौ ए।

जोति जोति सम जोति, जोति ही मिलि रह्यौ ए ।।2।।
तन मन आतम वारि, सदा हरि गाइये ए।
भणत जन रैदास, तुम्ह सरणाइये ए ।।3।।81।।

शिरोमणि देव! आपकी सन्त आरती उतारते हैं। संत, पंडे–पुजारियों की भाँति बाहरी आरती न करके आन्तरिक आरती करते हैं। आन्तरिक हृदय में प्रवेश करके बिना जिह्वा से कुछ भी बोले, संत परमात्मा की आरती करते हैं। मनसा रूपी मंदिर में धूप खाते हैं। प्रेम–प्रीति की माला रामजी को चढ़ाते=पहनाते हैं। अन्तर में आत्मा रूपी दीपकों की अवली का चिन्मय प्रकाश जग–मग हो रहा है। परमात्म–ज्योति के समान ही आत्म–ज्योति भी ज्योति=परम–प्रकाश रूप होकर परम–प्रकाश रूप परमात्मा ही हो गई है। तन, मन व आपा सभी को न्यौछावर करके सदा हरि का स्मरण करना चाहिए। तुम्हारी शरण में आया हुआ भक्त रैदास ऐसा कहता है ।।81।।

(82)

जे तू गोपालै नहिं गैहै।
तो तूँ कूँ दुख में दुख ह्वैहै, सुख कहाँ तैं पैहै ।।टेक।।
बानौं पहरि सबै जग डहक्यौ, झूठे ही भेष बनै है।
झूठे तैं साचौ ह्वै जैहै, हरि के सरनि जब अैहै ।।1।।
कनरस सबद सुनत निस बासुर, झूठे ही मूँड दुरै है रे।
जैसे हीन तेल बिन बाती, दीपक ज्यूँ बुझि जैहै रे ।।2।।
जे जन राम नाम रंगि राते, और न रंग रंगै है रे।
कहि रैदास समझि रे मुगध नर, प्राण गये पुछतैहै रे ।।3।।82।।

जीव मात्र को उद्बोधन देते हुए कहते हैं– यदि तू गोपाल का आश्रय ग्रहण नहीं करेगा तो तुझे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? यदि तू पहले से ही दुःखी होगा तो तेरा दुःख और बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं। तूने साधु–सन्यासी का वेष पहनकर सारे जग को ठगकर खाया है। इतना ही नहीं, कलियुगी ये भेष–सम्प्रदाय भी झूठे हैं। ये भेष–सम्प्रदाय तथा तू वेशधारी यदि हरि की शरण का आश्रय ले लो तो ये तथा तू=दोनों झूठे से सच्चे हो जाओगे। परमात्मा सत्यस्वरूप है। अतः सत्यस्वरूप परमात्मा के संसर्ग से तू तथा भेष सत्य हो जाएंगे। कानों को सुखद लगने वाले शब्द सुनने में ही तेरा सारा समय रात और दिन निकल जाते हैं। सुखद शब्दों को सुन–सुनकर तू झूठे ही माथा हिलाता है, किन्तु इन कथा–वार्ताओं को सुनने व इनके अच्छे होने के

प्रमाण में माथा हिलाना ठीक वैसे ही व्यर्थ है जैसे बिना तेल व बत्ती का दीपक बुझ जाता है। जो जीव राम–नाम के रंग में रंगते है, अन्य रंगों में नहीं रंगते हैं, वे धन्य हैं। रैदास कहता है– हे मुग्ध जीव! संसारासक्त जीव! कुछ समझ–बूझ, हरि की शरण का आश्रय ले अन्यथा प्राणान्त हो जाने पर पछताने के अलावा तेरे पास और कोई विकल्प नहीं बचेगा।।82।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु धनासरी, पृष्ठांक 694

(83)

नामु तेरो आरती मजनु मुरारे।
हरि के नाम बिनु झूठे सगल पासारे ।।रहाउ।।
नामु तेरो आसनो नामु तेरो उरसा,
नामु तेरा केसरो ले छिटकारे।
नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो,
घसि जपे नामु ले तुझहि कउ चारे ।।
नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती,
नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे।
नाम तेरे की जोति लगाई,
भइयो उजिआरो भवन सगला रे ।।
नामु तेरो तागा नामु फूल माला,
भार अठारह सगल जूठा रे।
तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ,
नामु तेरा तुही चवर ढोला रे ।।
दस अठा अठसठे चारे खाणी इहै,
वरतणि है सगल संसारे।
कहै रविदासु नामु तेरो आरती,
सति नामु है हरि भोग तुहारे।।83।।

यह पद सब कुछ भगवन्नाम ही है, इसका प्रतिपादन करता है। रैदास कहते हैं– हे मुरारी! तेरा नाम–स्मरण ही तेरी आरती है तो तेरा नाम ही मजन=मज्जन=स्नान करना है। राम–नामातिरिक्त और जितने भी भगवत्प्राप्ति के साधन हैं अथवा बताये जाते हैं, वे सब झूठे हैं, अनुपयुक्त हैं। हे प्रभो! तेरा नाम ही आसन है। तेरा नाम ही चन्दन घिसने का उरसा=चकला=पत्थर है। तेरा नाम ही केशर है, जिसके छींटे तेरे ऊपर

छिड़के जाते हैं। तेरा नाम ही अंभुला=जल है तो तेरा नाम ही चंदन है। चंदन को घिसना ही राम–नाम का जप है, जिसको तेरे ऊपर चरचा जाता है। तेरा नाम ही दीपक व तेरा नाम ही बत्ती है। तेरा नाम ही तेल है, जिसको दीपक में भरा जाता है। तेरे नाम की ज्योति जलाने पर सारे भवन में प्रकाश हो गया, अर्थात् राम–नाम की साधना करने से सारा शरीर ज्योतिर्मय हो गया। तेरा नाम ही धागा है तो तेरा नाम ही फूलमाला है। अन्य अठारह भार (प्रत्येक वनस्पति के एक–एक पत्ते को एकत्रित करके तौला जाये तो उनका वज़न 45 मण होता है; यही अठारह भार का प्रमाण है। अढ़ाई मण=एक भार) सारी सृष्टि तेरी ही कृति है फिर कैसे तेरी ही चीज़ को तुझे अर्पण कर सकता हूँ। तेरा नाम ही तेरे ऊपर चँवर का डुलाना है। दसअठा=अठारह पुराण; अठसठे=अड़सठ तीर्थ; चारे खाणी=चारों योनियाँ; इन ही का सारे संसार में बोल–बाला है। रविदास कहता है– तेरा नाम ही तेरी आरती है। हरि का सत् नाम ही तुम्हारे आगे धरा जाने वाला भोग है।।83।।

रागु सूही (7)
गुरुग्रंथीय–पाठ : पृष्ठांक 794

(84)

इहु तनु ऐसा जैसै घास की टाटी।
जलि गइओ घासु रलि गइओ माटी ।।रहाउ।।
ऊचे मंदर साल रसोई।
एक घरी फुनि रहनु न होई।
भाई बंध कुटंब सहेरा।
ओइ भी लागे काढु सवेरा ।।
घर की नारि उरहि तन लागी।
उह तउ भूतु भूतु करि भागी ।।
कहि रविदास सभै जगु लूटिआ।
हम तउ एक राम कहि छूटिआ ।।84।।

यह तन ऐसा है, जैसी घास की बनी टाटी होती है। जब घास जल जाती है, तब उसकी राख मिट्टी में मिल जाती है। जिन ऊँचे–ऊँचे मंदिरों, साल=कमरों, रसोई=भोजनशाला आदि में तू रहता है, उनमें प्राणांत होते ही एक घड़ी भी तू रह नहीं सकेगा। भाई, बन्धु (सुहृदय), कुटुम्ब, सहेरा=साहचर्य=मित्रमंडली भी कहेगी, सवेरा हो गया है; अब इसे श्मशान ले जाने के लिए घर में से निकालो। स्वयं की पत्नी जो छाती

से लगती थी, वह भी तुझे भूत–भूत कहकर तेरे से दूर–दूर भागेगी। रविदास कहता है– सारा जगत् ही लुटता है किन्तु हम तो एक राम–नाम का स्मरण करके लुटने से बच गये हैं ।।84।।

राग बिलावल (8)

(85)

क्या तू सोवै जागि दिवाना। झूठा सा जीवना साच करि जाना ।। टेक।।
जिनि जीव दिया सु रिजक अमड़ावै। घट घट भीतरि रहट चलावै ।।
करि बंदगी छाडि मैं मेरा। ह्रिदै करीम संभालि सवेरा ।।1।।
जो दिन आवै सो दुख में जाई। कीजै कूच रह्या सचु नाहीं ।।
संग चल्या है हम भी चलणा। दूरि गवण सिर ऊपरि मरणा ।।2।।
जो बोइये लुनियैगा सोई। तामें फेर फार कछू न होई ।।
तजि अंकूर भजहुँ हरि चरणा। ताका मिटै जनम अरु मरणा ।।3।।
आगै पंथ खरा है झीना। खँाडा धार जिसा है पैना ।।
तिस ऊपरि है मारग तेरा। पंथी पंथ सँवारि सवेरा ।।4।।
क्या तैं खरच्या क्या तैं खाया। चल दरहाल दिवानि बुलाया ।।
साहिब तो पैं लेखा लेसी। भीड़ पड़ै बंदे भरि भरि देसी ।।5।।
जनम सिराना कछु पँथ न सवारा। साँझ परी चहुँ दिसि अँधियारा ।।
कहै रैदास नादान दिवाना। अजहुँ न चेतै दुनिया फँध खाना ।।6।।85।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : रागु सूही, पृष्ठांक 793–794

जो दिन आवहि सो दिन जाही। करना कूचु रहनु थिरु नाही ।।
संगु चलत है हम भी चलना। दूरी गवनु सिर ऊपरि मरना ।।
किआ तू सोइआ जागु इआना। तैं जीवनु जगि सचु करि जाना ।।रहाउ।।
जिनि जीउ दीआ सु रिजकु अंबरावै। सभ घट भीतरि हाटु चलावै ।।
करि बंदगी छाड़ि मै मेरा। हिरदै नामु सम्हारि सवेरा ।।
जनमु सिरानो पंथु न सवारा। साँझ परी दह दिसि अंधियारा ।।
कहि रविदास निदानि दिवाने। चेतसि नाही दुनीआ फन खाने ।।

हे दीवाने! सो क्यों रहा है, जागता क्यों नहीं है, जो जीवन तुझे मिला है, वह सर्वथा झूठा है, किन्तु तूने इसे सत्य करके मान रखा है। जिसने तुझे जन्म दिया है, वही तुझे रोजगार भी देगा। तेरे योग–क्षेम की व्यवस्था भी वही करता है। वह शरीर,

प्रति शरीर रहट चलाता है, वह प्रत्येक जीवधारी की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। 'मैं' 'मेरा' भाव छोड़ दे और उक्त समर्थ परमात्मा की वंदगी कर। हृदय में दयालु–कृपालु परमात्मा का साँझ–सवेरे स्मरण कर। जो समय आता–मिलता है, वह दुःख में ही व्यतीत होता है। संसार से एक न एक दिन कूच करना है, संसार में सदा–सदा के लिए रहना है, यह सच नहीं है। हमारे संगी–साथी चले गए हैं, हमें भी एक न एक दिन जाना है। गन्तव्य–दूर है। ऊपर से, मरना ध्रुव सत्य है। जो बोओगे, वही प्राप्त करोगे; जैसा करोगे, वैसा ही भरोगे। इसमें लेश–मात्र का भी फेरफार होने वाला नहीं। हेतु अंकूर=जन्म–मरण के अंकुर=शुभाशुभ कर्मों को करना छोड़कर हरि–चरणों का भजन कर। जो हरि–भजन करता है उसके जन्म और मरण मिट जाते हैं। आगे का रास्ता निश्चिततः बहुत बारीक=सँकरा है। खांड़े की धार जैसा पतला और पैना है। ऐसे ही रास्ते के ऊपर से तुझे जाना है। जीव रूपी राहगीर! तू अपना आगे का रास्ता साफ–सुथरा कर ले, उसे सँवार ले। यमराज ने तुझे अपने दरबार में बुलाया है। चल, वहाँ तेरा हिसाब होगा कि तूने यहाँ रहकर क्या तो कमाया और क्या खाया। यमराज तेरे से सारा लेखा–जोखा माँगेगा। वहाँ, तेरे ऊपर भीड़=मार पड़ेगी और तुझे उस मार को सहन करनी पड़ेगी। तूने सारी जिन्दगी व्यतीत कर डाली, फिर भी तूने आगे का रास्ता तैयार नहीं किया। संध्या हो गई है। चारों दिशाओं में अंधकार छा गया है। रैदास कहता है– नादान दीवाने! तू दुनिया में ही फँसा पड़ा है। तू अब भी सावधान नहीं हो रहा है ।।85।।

(86)

खालिक सिकस्ता मैं तेरा।
दे दीदार उमेदगार, बेकरार जीव मेरा।।टेक।।
अवलि आखिर इलम आदम, मौज फरेस्ता बंदा।
जिसकी पनह परि पैकंबर, मैं गरीब क्या गंदा ।।1।।
तूँ हाजिराँ हजूर जोग एक, अवर नहीं दूजा।
जिसके इसक आसिरा नाहीं, क्या निमाज क्या पूजा ।।2।।
नालीदोज हनोज बेबखत, हम खिजमतिगार तुम्हारा।
दरमादा दरि ज्बाव न पावै, कहै रैदास विचारा ।।3।।86।।

सिकस्ता=दर्दबंद, विरही। खालिक जगदीश्वर। **दीदार**=दर्शन। **उमेदगार**= आशा से युक्त। **बेकरार**=व्याकुल। **अवलि**=आदि। **आखिर**=अंत। **इलम**=इल्म=ज्ञान रूप हैं। ज्ञान का तात्पर्य **चित्**=चेतनत्व से है। **आदम**= सृष्टिकर्ता है, सबका आदि=मूल है। **मौज**=आनन्द। **फरेस्ता**=देव, जिसने वंदों पर कृपा की। **पनह**=शरण। **हनोज**=अभी भी। **दरमादा**=दर्दबंद, विरही।

हे जगदीश्वर! मैं तेरा दुःखी=विरही दास हूँ। मेरा जीव आपके दर्शन के लिए बेकरार=व्याकुल है। अतः मैं आपका दर्शनाभिलाषी (उमेदगार) हूँ। आप समस्त सचराचर के आदि और अंत हैं; इलम=ज्ञान रूप हैं; आदम=सृष्टिकर्ता प्रथम पुरुष हैं; मौज=आनन्द रूप हैं; वंदों के लिए फरिस्ता हैं। जिसकी शरण में पीर–पैगम्बर रहते हैं, ऐसे परमात्मा के यहाँ मुझ गरीब गंदे वंदे की क्या औकात! मैं किस गिनती में हूँ!! हे हजूर=स्वामी! आप सर्वत्र हाजिरां=हाजिर=मौजूद हैं; सर्वत्र उपलब्ध हैं। सर्व कालों में सर्वत्र मात्र तेरे अकेले की ही सत्ता है; दूसरा कोई है ही नहीं। जिसके इश्क का आलम्बन परब्रह्म–परमात्मा के अलावा है ही नहीं, अर्थात् जब अद्वैतावस्था हो जाती है तब आधार और आलम्बन दोनों दो न रहकर एक हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में न नमाज़ पढ़ने की जरूरत रहती है और न पूजा करने की आवश्यकता रहती है। नमाज़ व पूजा तब ही तक सम्भव है, जब दूसरे की सत्ता हो। जब द्वैतभाव समाप्त हो जाता है तब ये वैधी–भक्ति के प्रकार थक जाते हैं। अद्वैतभाव में मात्र स्वात्म–चिन्तन शेष रह जाता है। मैं हनोज=अभी भी प्रत्यक्ष में नालीदोज=नाली के कीड़े–मकोड़े जैसा अति तुच्छ, समय की मार से मरा हुआ और तेरी खिजमतिगार=सेवा–वंदगी करने वाला सेवक हूँ। मैं तेरा विरही हूँ। तेरे दर पर पड़ा हूँ, किन्तु तेरे से कोई भी उत्तर प्राप्त नहीं कर पा रहा हूँ कि तूने क्या मुझे अपनी शरण में स्वीकार कर लिया है अथवा नहीं किया है? रैदास अपनी भावनाएँ उक्त प्रकार व्यक्त करता है। '....जिसके पूजा' पंक्ति का दूसरा अर्थ इस–प्रकार होगा–जिसके हृदय में इश्क=परमात्म–विरह व प्रेम का आश्रय नहीं है, उसका क्या तो नमाज़ और क्या पूजा भला कर सकेगी? अर्थात् नमाज़ व पूजा वाह्याचार मात्र हैं; ये भला नहीं कर सकतीं। भला तो इश्क की आग सारे पाप आदि को खाक करके वंदे को निष्पाप करके करती है ।।86।।

(87)

जो मोहि बेदन का सनि आखूँ।
हरि बिन जीव न रहै, कैसैं करि राखूँ ।। टेक।।
जीव तरसै इकदंग बसेरा। करहु सँभालन सुरिजन मेरा।
बिरह तपै तन अधिक जरावै। नींदड़ी न आवै भोजन नहिं भावै ।।1।।
सखी सहेली गरब गहेली। पीव की बात न सुनहुँ सहेली।
मैं रु दुहागनि अधिक रजानी। गया सु जोवन साध न मानी ।।2।।
तूँ दाना साँई साहिब मेरा। खिजमतिगार बंदा मैं तेरा।
कहै रैदास अँदेसा एही। बिन दरसन क्यूँ जीवै हो सनेही ।।3।।87।।

फतेहपुरीय–प्रति–पाठ : राग सारंग, पृष्ठ 146

जो मुझु बेदन कहि कैसै आखौ। हरि बिनु जीउ न रहै क्यौं राखौ ।।
मनु तरसै चित दंग बसेरा। करहि सभारन सिरजन मेरा ।।
बिरह तपै तन बुझावै। नीद गई भोजनु नहि भावै ।।
संग सहेली गरब गहेली। पाय कै संग म खरी सुहेली ।।
मैं जु दुहागिनी खरी रजानी। गयौ जु जोबनु साध न मानी ।।
तू दानीसुर साहिब मेरा। क खेजमती बन्दा तेरा ।।
कहै रविदास बिचार्‌या यौही। बिनु दरिसन क्यौ जीवहि सनेही ।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : राग मारू, पृष्ठ 990

सखी सहेली गरबि गहेली। सुणि सह की इक बात सुहेली ।।
जो मैं वेदन सा किसु आखा माई। हरि बिनु जीउ न रहै कैसे राखा माई ।।रहाउ।।
हउ दोहागणि खरी रंजाणी। गइआ सु जोबनु धन पछुताणी ।।
तू दाना साहिबु सिरि मेरा। खिजमति करी जनु बंदा तेरा ।।
भणति नानकु अंदेसा ऐही। बिनु दरसन कैसे रवउ सनेही ।।

जो वेदना मुझे है, उसके बारे में मैं किससे कहूँ? बिना हरि–मिलन के मेरा मन शांत, सुखी नहीं रहता, इसको कैसे रखूँ? मेरा जीव हरि–दर्शन के लिए तरस रहा है, किन्तु मेरा निवास एकदम, निस्तब्ध=हलचल रहित=आवागमन की सुविधा से रहित जगह पर है। हे मेरे सुरिजन! मुझे आकर सँभाल। मेरा तन–मन विरह की तीव्रतम गति से जल रहा है। विरह इनको खूब जला रहा है, जिस कारण न मुझे नींद आती है और न मुझे भोजन ही अच्छा लगता है। मेरी सखी सहेलियाँ सुखी हैं। इस कारण वे अपने सुख के गर्व में पगला रही हैं। मेरे प्रियतम की बातें वे सहेलियाँ सुनती ही नहीं हैं। इस कारण मैं सर्वथा अकेली पड़ गई हूँ। मैं दुर्भाग्यशाली हूँ। मैं अत्यधिक रजानी=कठिनाई, दुःख से दुखित हूँ। मेरा यौवन समाप्त हो गया है। मैं मेरी साध=मनोऽभिलाषा भी पूरी नहीं कर सकी हूँ। हे स्वामी! तू मेरा बुद्धिमान प्रियतम है, जबकि मैं सेवा करने वाला तेरा वंदा–सेवक हूँ। मैं बिना दर्शन पाये भी क्यों जी रहा हूँ। हे स्नेही! मेरे मन में यही आशंका है? मुझ रैदास का ऐसा कहना और मानना है ।।87।।

(88)

ताथैं पतित नहीं को पावन, हरि तजि आनहिं ध्यावै रे।
हम अपूजि पूजि भये हरि थैं, नाम अनूपम पावै रे ।। टेक।।

अष्टादस ब्याकरण बखानै, तीनि काल षट जीता रे।
प्रेम भगति अंतरगति नाहीं, ताथैं धानक नींका रे ।।1।।
ताथैं भलौ स्वान कौ सत्र, हरि चरणा चित लावै रे।
मुवाँ मुकति बैकुठाँ बासौ, जीवत इहाँ जस गावै रे ।।2।।
हम अपराधी नीच घरि जनमें, कुटंब लोग करै हासी रे।
कहै रैदास राम जपि रसना, काटै जम की पासी रे ।।3।।88।।

बहुदेवोपासकों, अर्थार्थी भक्तों को उद्‌बोधन देते हुए कहते हैं– याद रखो! इस ब्रह्मांड में परात्पर–परमेश्वर हरि को छोड़कर अन्यों की उपासना मत करो, क्योंकि अन्यों की उपासना करने का कोई लाभ नहीं है। कारण, हरि के अलावा सम्पूर्ण ब्रह्मांड में और कोई पतितों को पावन करने वाला नहीं है। उदाहरण देकर कहते हैं– मैं अपूज्य था किन्तु हरि के कारण चतुर्वर्ण द्वारा पूज्य हो गया। यह अनुपम पूज्यता हरि–नाम–स्मरण से प्राप्त होती है। जो अठारह पुराणों और नौ व्याकरणों का बखान करते हैं; तीनों कालों की संध्या करते हैं। षड्‌रिपुओं=काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य को जीतने वाले हैं, किन्तु यदि उनके हृदय में प्रेमाभक्ति नहीं है तो ऐसे पठित, आचारी, चरित्रवानों किन्तु हरि–भक्ति–हीनों से धाणका=चाण्डाल भी अच्छा है। स्वान कौ सत्र=कुत्ते का शत्रु=चाण्डाल अच्छा है, यदि वह हरि–चरणों में चित्त को लगाता है। ऐसा हरि–भक्त मरने पर बैकुण्ठ में निवास प्राप्त करता है। साथ ही, जीवित रहते हुए वह संसार में यश–भाजन बनता है। जनता उसकी महिमा का गायन करती है। मैं अपराधी छोटे कुल में जन्मा हूँ। जब मैंने भक्ति करनी प्रारंभ की, तब मेरे ही कुटुम्ब के लोग मेरी हँसी करने लगे। किन्तु मैं रैदास कहता हूँ– मैंने रसना से राम–नाम का रटन करके यम की फाँसी को काट डाला है।।88।।

(89)

नहीं विश्राम लहूँ धरणीधर। जाके सुर नर संत सरन अभिअंतर ।। टेक।।
जहाँ जहाँ गयौ तहाँ जम काछै। त्रिबिघ ताप त्रिभुवनपति पाछै ।।1।।
भये अति छीन खेद माया बस। जस तिन तात पर नगरि हतै तस ।।2।।
द्वारैं न दसा विकट विष कारन। भूलि पर्‌यौ मन या विषया बन ।।3।।
कहै रैदास सुमिरौं बड राजा। काढ़ि दियै जन साहिब लाजा ।।4।।89।।

जिस माया के सुर, नर, संत आदि सभी अभिअंतरि=मन से शरण=अधीन हैं, उस माया के कारण हे धरणीधर परमात्मा! मुझे भी जरा–सी भी शांति नहीं मिलती। कुछ न कुछ खटपट चलती ही रहती है। इस माया से बचने के लिए मैं जहाँ–जहाँ भी गया,

वहाँ–वहाँ यह मुझे यम के वेश में मिलती ही रही है। इतना ही नहीं, हे त्रिभुवनपति! इसके पीछे–पीछे आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक नामक तीनों ताप भी आ जाते हैं। माया के अधीन मन के कारण व्यक्ति क्षीण=कमजोर व दुःखी ठीक उसी–प्रकार हो जाता है, जैसे जिसका पिता परदेश में रहता हो और वह मारा गया हो। विकट विष के कारण द्वारैं न (जलाने योग्य लकड़ी का गठ्ठर) जैसी दशा हो गई है। यह मन विषय रूपी वन में भटक गया है। रैदास कहता है– माया से बचने को मैं बड़े राजा रामजी का स्मरण करता हूँ। स्मरण करने, शरण में रहने पर भी यदि परमात्मा रूपी साहिब ने मुझे अपने दर से भगा दिया तो इससे साहिब ही लज्जित होगा, मैं नहीं होऊँगा।।89।।

(90)

गोब्यंदे तुम्हारे चरणारब्यंद स्यौं, समाधि लागी।
उर भुजंग भसम अंग, सति ते बैरागी ।।टेक।।
जाके तीनि नयन अंम्रत बैन, सीस जटा धारी।
अकल ब्रह्म नील चिह्न, कंठि रुण्डमाला ।।1।।
कोटि कलप ध्यान अलप, मदना अँतकारी।
रहित भगति प्रेम मगन, संगि सखा बाला ।।2।।
अैसे महेस बिकट भेस, अजहूँ दरस आसा।
कैसे राम मिलौं तुमहि, गावै रैदासा ।।3।।90।।

हे गोविन्द! तुम्हारे चरणारविन्दों का ध्यान करते–करते शिवजी की समाधि लग गई। शिवजी के उर पर उरग=सर्प विराजते हैं। सारे अंगों पर विभूति रमी हुई होती है। सत्य रूप में वे वैरागी हैं। उनके तीन नेत्र हैं। उनके बोल अमृत जैसे हैं। सीस पर जटाएँ धारण करते हैं। वे कला–विभाग रहित=अकल ब्रह्म हैं। गले में नीला चिन्ह है। कंठ में मुण्डमाला पहने हुए हैं। करोड़ों कल्पों से ध्यान में निमग्न हैं। अल्पसमय में ही कामदेव का अंत करने वाले हैं। प्रेमाभक्ति में निमग्न रहते हैं। संग में सखा रहते हैं। ऐसे विकट वेश वाले महेश के दर्शन प्राप्त होने की मुझे आशा है। हे राम! मैं तुमसे कैसे मिलूँ, मुझे बताओ, यह रैदास का निवेदन है ।।90।।

(91)

को का जानै पीर पराई। जाकी दिल में दरद न भाई ।। टेक।।
दुखी दुहागनि दोइ पख हीणी। नेह निरति स्यौं सेव न कीन्हीं।

प्रेम प्रीति का पंथ दुहेला। संग न साथी गवन अकेला ।।1।।
सुख का सार सुहागनि जानैं। तजि अभिमान पीव रलि आनैं।
तन मन दे अंतर नहीं राखै। दीन सुनाइ और नहीं भाखै ।।2।।
खालिक द्वारि बँदा चलि आया। बहुत उमेद जबाब न पाया।
कहै रैदास पनह में तेरी। ज्यौं जाणौं त्यौं करौ मति मेरी ।।3।।91।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : रागु सूही, पृष्ठांक 793

सह की सार सुहागनि जानै। तजि अभिमानु सुख रलीआ मानै ।।
तनु मनु देइ न अंतरु राखै। अवरा देखि न सुनै अभाखै ।।
सो कत जानै पीर पराई। जाकै अंतरि दरदु न पाई ।।रहाउ।।
दुखी दुहागनि दुइ पख हीनी। जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी ।।
पुरसलात का पंथु दुहेला। संगि न साथी गवनु अकेला ।।
दुखीया दरदवन्दु दरि आइआ। बहुतु पिआस जबाबु न पाइआ ।।
कहि रविदास सरनि प्रभ तेरी। जिउ जानहु तिउ करु गति मेरी ।।

हे भाई! जिसके दिल में दर्द न हो, वह कैसे दूसरों की पीड़ा को जान सकता है, अनुभव कर सकता है। दोनों पक्ष–पति व पीहर से तिरस्कृत दुर्भाग्यशाली पत्नी (स्त्री) दुःखी ही होती देखी जाती है, क्योंकि ऐसी स्त्री प्रीतिपूर्वक अपने पति की सेवा नहीं करती है। पुरसलात=धर्मराज के दरबार में पहुँचने का पंथ कठिन (सुई की नोंक के बराबर बारीक, पतला और तीक्ष्ण) है। इसमें न कोई संगी होता है और न कोई साथी होता हैं, क्योंकि इस पर अकेले ही चलना पड़ता है। पति–सुख का रहस्य सौभाग्यशाली स्त्री जानती है, क्योंकि वह अभिमान–शून्य होकर प्रियतम से रस–विलास करती है। वह प्रियतम को तन–मन समर्पित कर देती है। लेशमात्र भी दुराव–छिपाव नहीं करती। प्रियतम के समक्ष दीन–भाव से बोलती है। गर्व–गुमान, मान–अभिमान–युक्त वचन बिल्कुल नहीं बोलती। परमात्मा के दरबार में वंदा बहुत उम्मीद=आशा लेकर आया कि परमात्मा उसकी मनोकामनाएँ पूरी कर देगा, किन्तु परमात्मा ने इच्छाएँ पूरी करनी तो दूर, कोई उत्तर हाँ या ना का भी नहीं दिया। रैदास कहता है– हे परमात्मन्! मैं आपकी शरण में हूँ। आपको जैसा उचित लगे, वैसी ही मेरी मति को कर दो ।।91।।

(92)

पांडे हरि बिचि अंतर ठाढा।
मूँड मूँडावै सेवा पूजा, भ्रम का बंधन गाढ़ा ।।टेक।।

माला तिलक मनोहर वाणी, तागौ जम की पासी।
जे हरि सेती जोड़्यौ चाहौ, तो जग स्यूँ रहौ उदासी ।।1।।
भूख न भाजै त्रिष्णा न जाई, कहौ कवन गुण होई।
जो दधि में काँजी को जावण, तो घ्रित न काढ़ै कोई ।।2।।
कथणी कथणी ग्यान अच्यरा, भगति इनहु सौं न्यारी।
दोइ घोड़ा चढ़ि कौन पहूँतौ, सतगुर कहै पुकारी ।।3।।
जे दासातन कीयौ चाहे रे, आस भगति की होई।
निर्मल स्वांग मगन ह्वै नाचौ, लाज सरम सब खोई ।।4।।
कोई दाधौ कोई सीधौ, साचि झूठ निति मार्‌या।
कहै रैदास हूँ न कहत हूँ, एकादस पूकार्‌या ।।5।।92।।

हे पांड़े! मूँड–मुँडाना, प्रतिमादि की सेवा–पूजा करना भ्रम हैं, गाढ़े बंधन के कारण हैं, क्योंकि ये परब्रह्म–परमात्मा रूप रामजी और भक्त रूप आत्मा के बीच, ठाढ़ा= मजबूत अंतर=भेद उत्पन्न कर देते हैं। माला, तिलक, मीठे बोल और यज्ञोपवीत यम की फाँसी हैं। यदि तू हरि से सम्बन्ध जोड़ना चाहता है तो जगत् से उदासीन रह। संसारासक्त रहने से, न भोग भोगने की भूख भागती है और न अधिक धनादि प्राप्त करने की लालसा शान्त होती है। हे पाण्डे! बताओ, फिर तुम्हारी जैसी सेवा–पूजा आदि करने से कौन सा लाभ मिलता है। यदि दही में काँजी का जामन डाला जाए तो कोई भी दही मे से घी नहीं निकाल सकता। हे पाण्डे! तेरे कथन, प्रति–कथन में या तो रूखे शास्त्रीय–ज्ञान की चर्चा होती है अथवा आचार=विधि–निषेध की चर्चा होती है, किन्तु याद रख, ये भक्ति नहीं हैं। भक्ति इनसे पृथक् है। सद्‌गुरु पुकार कर कहते हैं– दो घोड़ों पर सवारी करके कोई भी गन्तव्य तक नहीं पहुँचता। यदि तू दास–भाव धारण करना चाहता है तो एकमात्र भक्ति की आशा रख, भक्ति की साधना कर। लाज, शर्म सबको खोकर निर्मल वेश धारण कर व भगवच्चिन्तन में मगन होकर नाच। यदि कोई दग्ध होता है तो होने दो; कोई सुखी होता है तो होने दो; झूठ क्या है, सत्य क्या है, इस पर बहसबाजी मत कर। कहने का आशय इतना ही है कि इन द्वंद्वों से सर्वथा उपराम रह। ये बातें मैं रैदास ही नहीं कह रहा हूँ, इनको श्रीमद्भावत्‌पुराण का एकादशस्कंध भी कहता है ।।92।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु बिलावलु, पृष्ठांक 858

(93)

तू जानत मै किछु नही, भवखंडन राम।
सगल जीअ सरनागती, प्रभ पूरन काम ।।रहाउ।।

दारिदु देखि सभ को हसै, ऐसी दसा हमारी।
असट दसा सिधि कर तलै, सभ क्रिपा तुमारी ।।
जो तेरी सरनागता, तिन नाही भारू।
ऊच नीच तुम ते तरे, आलजु संसारू ।।
कहि रविदास अकथ कथा, बहु काइ करीजै।
जैसा तू तैसा तुही, किआ उपमा दीजै ।।93।।

हे पूर्णकाम प्रभो! समस्त जीव तेरे शरणागत हैं। मैं भी तेरा ही शरणागत जीव हूँ। हे भव–भय–हारी राम! तू अच्छी तरह जानता है कि मैं कुछ नहीं हूँ। मेरे दारिद्र्य को देखकर सभी लोग हँसा करते थे, मेरी ऐसी दीन–हीन दशा थी, किन्तु आपकी कृपा से अब अष्टादस सिद्धियाँ मेरे कर–गत हो गई हैं। जो तेरे शरणागत हैं, उन्हें कोई भी भार=परेशानियाँ परेशान नहीं करतीं। इस संसार के अनेक ऊँच–नीच आलजु=संसारी जीव तेरी शरण में आकर भवसागर से पार हुए हैं। तेरी शरणागतवत्सलता की कथाएँ अकथनीय हैं। उन्हें कहाँ तक कहा जाय! तू जैसा है, वैसा तू ही है। तेरे जैसा और कोई दूसरा नहीं है। ऐसी स्थिति में तुझे किससे उपमित किया जाय?।।93।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु बिलावलु, पृष्ठांक 858

(94)

जिह कुल साधू बैसनौ होइ।
बरन अबरन रंकु नही ईसरु, बिमल बासु जानीए जगि सोइ ।।रहाउ।।
ब्रहमन बैस सूद अरु ख्यत्री, डोम चँडार मलेछ मन सोइ।
होइ पुनीत भगवंत भजन ते, आपु तारि तारे कुल दोइ ।।
धंनि सु गाउ धंनि सो ठाउ, धंनि पुनीत कुटंब सभ लोइ।
जिनि पीआ सार रसु तजे आन रस, होइ रस मगन डारे बिखु खोइ ।।
पंडित सूर छत्रपति राजा, भगत बराबरि अउरु न कोइ।
जैसे पुरै न पात रहै जल समीप, भनि रविदास जनमे जगि ओइ ।।94।।

जिस कुल में वैष्णव साधु होता है, वह कुल चाहे उच्च–वर्ण वाला हो, चाहे निम्न–वर्ण वाला हो, चाहे रंक हो, चाहे राजा–धनवान हो, जगत् में उस कुल को ही विमल बासु=सुगंधियुक्त=सुयशयुक्त कहा जाता है। चाहे ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, क्षत्रिय, डोम, चांडाल अथवा म्लेच्छ ही क्यों न हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि भगवभजन से ये सभी पवित्र हो जाते हैं। भगवभक्त स्वयं का तो उद्धार करता ही है, वह अपने

पितृकुल और मातृकुल दोनों का भी उद्धार कर देता है। वह गाँव, स्थान धन्य है, उस कुटुम्ब के सभी सदस्य धन्य व पुनीत हैं, जिसमें वैष्णव साधु का जन्म हुआ हो। जिन्होंने सार–रस=भक्ति–रस का आस्वादन करके अन्य रसों को त्याग दिया है। भक्ति–रस में निमग्न होकर विषय–भोगों को भोगना छोड़ दिया है। भक्त की बराबरी पंडित, शूरवीर, छत्रधारी राजा आदि कोई नहीं कर सकते। रविदास कहता है– ये भक्त जग में इस–प्रकार जन्मते हैं जैसे कमल की पत्तियाँ जल में रहकर भी जल से पुरै न=लिप्त नहीं होती हैं ।।94।।

राग भैरौ (9)

(95)

ऐसा ध्यान धरूँ बनवारी। मंन पवन डिढ़ सुषमन नारी ।।टेक।।
जो जप जपूँ जु बहुरि न जपना। सो तप तपूँ जु बहुरि न तपना ।।1।।
सो गुरु करूँ जु बहुरि न करना। ऐसैं मरूँ जैसै बहुरि न मरना ।।2।।
उलटी गंग जमुन मैं ल्याऊँ। बिन ही जल संजम द्वै आऊँ ।।3।।
लोचन भरि भरि बिम्ब निहारूँ। जो विबिचारनि और बिचारूँ ।।4।।
प्यंड परे जिव जिस घरि जाता। सबद अतीत अनाहद राता ।।5।।
जा परि कृपा सोइ भल जानैं। गूंगौ साकर कहा बखानैं ।।6।।
सुन्य मँडल में मेरा बासा। ताथैं जिय में रहूँ उदासा ।।7।।
कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ। जिस घरि जाऊँ जु बरनि न आऊँ ।।8।।95।।

हे बनवारी! मैं ऐसा ध्यान धरता हूँ जिसमें तन, पवन=प्राण और सुषुम्ना नामक नाड़ी सुदृढ़=नियंत्रण में रहते हैं। सुरति=चित्त की वृत्ति सुषुम्ना–मार्ग से त्रिकुटि तक जाती है। अतः इन तीनों का वशीकृत रहना साधक के लिए परमावश्यक है। मैं ऐसा जाप जपता हूँ कि मुझे पुनः जपना ही न पड़े, अर्थात् मेरा जाप अजपा है, जो अपने आप होता है। मैं ऐसा तप करता हूँ कि पुनः तप करना ही न पड़े। गुरु भी ऐसा करता हूँ कि मुझे फिर कभी गुरु न करना पड़े। मैं मरता भी इस तरह से हूँ कि मुझे पुनः न मरना पड़े, अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाने पर जीता हुआ भी, शरीर व सांसारिक–सम्बन्धों से राग–शून्य हो जाने के कारण सांसारिक दृष्टि से मरा हुआ ही होता है। गंगा को उलटाकर यमुना में लाता हूँ। चंद्र नाड़ी से स्रवित रस गंगा कहलाती है। जब साधना के द्वारा कुण्डलिनी जागृत हो जाती है, तब सूर्य नाड़ी अमृत को सोखती नहीं, अपितु चंद्रामृत से शरीर को पोषित करने में सहयोग करती है। बिना जल के ही संजम=त्रिकुटि के संगम में हो आता हूँ। वस्तुतः चन्द्र–नाड़ी से स्रवित जल जब सूर्य–नाड़ी द्वारा सोखा

नहीं जाता, तब चन्द्रामृत से सम्पूर्ण शरीर स्नान कर लेता है, पोषित होता है, यही बिना ही जल के स्नान करना है। हे बनवारी! मैं आँखें भर–भरकर तेरे बिम्ब का दर्शन करता हूँ। तेरे अतिरिक्त यदि मैं किसी और का चिन्तन–मनन करूँ तो मैं व्यभिचारिणी स्त्री के समान माने जाने योग्य हूँ। शरीर पात हो जाने पर आत्मा जहाँ जाती है, उस शब्दातीत अनहद नाद से मैं समरस हो गया हूँ। इस तत्व को वही जान सकता है, जिस पर आत्म–रूप परमात्मा की कृपा होती है। यह अनुभव का विषय है, कहने का नहीं। अनुभवी की स्थिति ठीक वैसी ही होती है जैसी गूंगे की शक्कर खाने के बाद होती है। मेरा निवास–स्थान शून्य–मंडल में है। इसीलिए मैं अन्दर से, संसार से सर्वथा उदास रहता हूँ। रैदास कहता है– मैं निरंजन की भक्ति करता हूँ। मैं जिस घर में जा चुका हूँ, उसका वर्णन करने में आ नहीं सकता ।।95।।

(96)

अबिगत नाथ निरंजन देवा। मैं का जानुँ तुम्हारी सेवा ।। टेक।।
बाँधू न बंधन छाऊँ न छाया। तुम्ह हीं सेउँ निरंजन राया ।।1।।
चरन पयाल सीस असमाना। सो ठाकुर क्यूँ सँपुट समाना ।।2।।
सिव सनकादिक अंत न पाया। खोजत ब्रह्मा जनम गँवाया ।।3।।
तोरुँ व पाती पूजुँ न देवा। सहज समाधि करूँ हरि सेवा ।।4।।
नख प्रसेद जाके सुरसरि धारा। रोमावली अठारह भारा ।।5।।
चारि बेद जाके सुमृत्य सासा। भगति हेत गावै रैदासा ।।6।।96।।

हे अविगत=जिसके बारे में इदमित्थं रूप से कुछ न कहा जा सके; नाथ; निरंजन=माया से रहित देव! मैं तेरी सेवा–भक्ति के बारे में क्या जान सकता हूँ। न मैं बंधन=मंदिरादि बना सकता हूँ और न मैं छाया आदि ही करने में सक्षम हूँ। बस, मैं तो तेरी ही भक्ति करता हूँ। हे निरंजनराय! तेरे चरण पाताल में हैं, जबकि तेरा शीश आकाश में है। ऐसा ठाकुर=परमात्मा कैसे डिबिया में, (छप्पर में, मंदिर में अथवा छोटी डिबिया या थैली में) समा सकता है। ऐसे परब्रह्म–परमात्मा का शिव–सनकादिक तक ने आज–तक अंत नहीं पाया। ब्रह्मा ने खोजते–खोजते ही सारी उम्र गँवा दी। न मैं पत्र–पुष्पादि तोड़ता हूँ और न पूजा करता हूँ। सहज–समाधि रूप सेवा ही करता हूँ मैं, श्रीहरि की। नख के समान पसीना ही जिसके यहाँ गंगा की धारा है। जिसकी रोमावली अठारह भार वनस्पति के समान है। जिसके श्वास ही चारों वेद व अठारह स्मृतियाँ हैं। भक्ति के लिए रैदास आपका स्मरण करता है ।।96।।

राग टोडी (10)

(97)

पावन जस माधौ तोरा, तुम्ह दारन अघमोचन मोरा ।। टेक।।
कीरति तेरी पाप बिनासै, लोक बेद यूँ गावै।
जो हम पाप करत नहि भूधर, तौ तूँ कहा नसावै ।।1।।
जब लग अंग पंक नहिं परसै, तौ जल कहा पखालै।
मन मलीन बिषिया रस लंपट, तौ हरि नाम सँभालै ।।2।।
जो हम बिमल ह्दिै चित अंतरि, दोस कवन परि धरिहौ।
कहै रैदास प्रभु तुम्ह दयाल हो, अबध मुकति का करिहौ ।।3।।97।।

हे माधव! तुम्हारा सुयश परम–पावन है। तुम मेरे दारुण पापों को समाप्त करने में समर्थ हो। लोक और वेद कहते हैं कि तेरी कीर्ति पापों का नाश करती है। हे भूधर! यदि हम पाप करें ही नहीं, तो बता तू किसको नष्ट करेगा! अर्थात् जब पाप ही नहीं होंगे, तब तेरा अघमोचन का काम कैसे सम्पन्न होगा और तुझे कौन अघमोचक कहेगा। जब शरीर पर कीचड़ लगता ही नहीं, बता तब जल किसका प्रक्षालन करेगा। जब मन मलीन=मल युक्त होता है, विषय–रस–लम्पट होता है, तब ही तो हरि–नाम ऐसे समल विषय–रस–लंपट मन को सुधारता है, निष्पाप व निर्विषय करता है। यदि हम अन्तःकरण में विमल हृदय हों तो बता तू किसको दोषी ठहराएगा। रैदास कहता है– हे प्रभु! तुम दयालु हो। बताओ, जब तुम किसी को विमल हृदय होने के कारण दोषी ही नहीं ठहरा सकते, तब ऐसों को मुक्त कैसे करोगे?।।97।।

राग गुंड (11)

(98)

आजि ना द्यौस ना ल्यूँ बलिहारा।
मेरे ग्रिह आये राजा रामजी का प्यारा ।। टेक।।
आँगण बगड़ भुवन भयौ पावन। हरिजन बैठे हरि जस गावन ।।1।।
करुँ डंडौत र चरन पखालूँ। तन मन धन उन ऊपरि वारूँ ।।2।।
कथा कहैं अरु अरथ बिचारैं। आपन तिरैं औरन कूँ तारैं ।।3।।
कहै रैदास मिले निज दास। जनम जनम के काटे पास ।।4।।98।।

आज के दिन के प्रति मैं बलिहारी जाता हूँ, क्योंकि आज मेरे घर पर राजा रामजी

के प्रिय भक्त पधारे हैं। भक्तों के पधारने से आँगन, घर के बाहर का खुला मैदान, भवन आदि सभी पावन हो गए हैं। हरि–जन=हरि–भक्त हरि–यश गाने बैठ जाते हैं जिससे घर, आँगन, वातावरण सभी भगवन्मय हो जाता है। संतों–भक्तों को मैं दंडवत प्रणाम करता हूँ; उनके चरणों का प्रक्षालन करता हूँ: तन, मन, धन उनके ऊपर न्यौछावर करता हूँ। संत–भक्त भगवद्–कथा कहते हैं; तरह–तरह के अर्थों पर विचार करते हैं। वे स्वयं तो भवसागर से तिरते ही हैं, औरों को भी तारते हैं। रैदास कहता है– भगवान् के जब निजी भक्त मिल जाते हैं, तब जन्म–मरण की फाँसी कट जाती है ।।98।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु गोंड, पृष्ठांक 875

(99)

जीवत मुकंदे मरत मुकंदे। ताके सेवक कउ सदा अनंदे ।।रहाउ।।
मुकंद मुकंद जपहु संसार। बिनु मुकंद तनु होइ अउहार ।।
सोई मुकंदु मुकति का दाता। सोई मुकंदु हमरा पित माता ।।
मुकंद मुकंद हमारे प्रान। जपि मुकंद मसतकि नीसान ।।
सेव मुकंद करै बैरागी। सोई मुकंदु दुरबल धनु लाधी ।।
एकु मुकंदु करै उपकारू। हमरा कहा करै संसारू ।।
मेटी जाति हूए दरबारि। तूही मुकंद जोग जुग तारि ।।
उपजिओ गिआनु हूआ परगास। करि किरपा लीने कीट दास ।।
कहु रविदास अब त्रिसना चूकी। जपि मुकंद सेवा ताहू की ।।99।।

मुकुंद के वे सेवक सदा आनन्द निमग्न रहते हैं जो जीते जी भी मुकुन्द–नाम रटते हैं तो मरने पर भी मुकुन्द से सम्बन्ध बनाये रखते हैं। हे सांसारिक लोगों! मुकुन्द, मुकुन्द का जप करो। बिना मुकुन्द के नाम–जप के शरीर अउहार=अवहेलनीय हो जाता है। मुकुन्द ही मुक्ति का दाता है तो मुकुन्द ही हमारा माता व पिता है। मुकुन्द ही हमारा प्राण है। मुकुन्द का नाम जपने से मस्तक पर निशान फहराने लगता है, अर्थात् सारे संसार में महिमा का गायन होने लगता है। वैरागी–वैष्णव मुकुन्द की सेवा करते हैं अथवा मुकुन्द की सेवा सेवक को राग–रहित बना देती है। वही मुकुन्द दुर्बल को, निर्धन को धन मिलने के समान है। जब मुकुन्द मेरे ऊपर कृपा की वर्षा कर रहा है, तब संसार मेरा क्या कर सकता है। मैंने भगवभक्ति के द्वारा अपनी जाति को नष्ट कर डाला है और मैं मुकुन्द के दरबार में उपस्थित=शरणागत हो गया हूँ। जगत् को तारने योग्य हे मुकुन्द! मात्र तू ही है। ज्ञान के उत्पन्न होने पर प्रकाश प्रकाशित हो गया है। तूने कृपा करके मुझे दास के रूप में कीट=क्रीत=खरीद लिया है! शरण में

स्वीकार कर लिया है। रैदास कहता है– अब मेरी समस्त तृष्णाएँ समाप्त हो गई हैं। अब मैं उसी का जप व उस ही की सेवा करता हूँ ।।99।।

गुरुग्रंथीय–पाठ : रागु गोंड, पृष्ठांक 875

(100)

साध का निंदकु कैसे तरै। सर पर जानहु नरक ही परै ।।रहाउ।।
जे ओहु अठिसठि तीरथ नावै। जे ओहु दुआदस सिला पूजावै ।।
जे ओहु कूप तटा देवावै। करै निंद सभ बिरथा जावै ।।
जे ओहु ग्रहन करै कुलखेति। अरपै नारि सीगार समेति ।।
सगली सिंम्रिति स्रवनी सुनै। करै निंद कवनै नही गुनै ।।
जे ओहु अनिक प्रसाद करावै। भूमि दान सोभा मंडपि पावै ।।
अपना बिगारि बिराना साँढै। करै निंद बहु जोनी हाँढै ।।
निंदा कहा करहु संसारा। निंदक का परगटि पाहारा ।।
निंदकु सोधि साधि बीचारिआ। कहु रविदास पापी नरकि सिधारिआ ।।100।।

साधु का निंदक भवसागर से कैसे पार हो सकता है। सरपर=सरपट= साफ–साफ जानिये, ऐसे साधु–निंदक नरकों में ही पड़ते हैं। यदि साधु–निंदक अड़सठ तीर्थों में जाकर स्नान करता है; द्वादश ज्योतिर्लिंगों की पूजा करता है; कूप और तटा= तटनी=तालाबादि खुदवाता है; साथ ही साधुओं की निंदा भी करता है तो उसके द्वारा उक्त सब कुछ करना व्यर्थ हो जाते हैं। यदि ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में स्नानार्थ जाता है, ब्राह्मणों को श्रृंगार सहित स्त्री भेंट करता है; सारी स्मृतियों को श्रवण–द्वार के द्वारा सुनता है; साथ ही साधु–निंदा भी करता है तो ऐसा निंदक किसी भी गिनती में नहीं आता। यदि ऐसा निंदक अनेक स्थानों पर अनेक लोगों को प्रसाद–भोजन करवाता है; भूमि दान में देता है, मंडप में शोभा प्राप्त करता है; अपने हित की चिन्ता छोड़कर नुकसान होने पर भी अन्यों का हित–साधन करता है, किन्तु साधुओं की निंदा करता है तो ऐसा निंदक अनेक योनियों में भटकता फिरता है। हे संसार के लोगों! साधुओं की निंदा करके कौन सा अच्छा काम कर रहे हो। अरे! निंदक के ऊपर प्रत्यक्ष में कष्टों के पहाड़ टूट पड़ते हैं। निंदक ने शोध कर खूब विचारा=सोचा किन्तु निंदा करने के फलस्वरूप वह नरकों में जाकर पड़ा ।।100।।

(101)

भक्त बिछल बिड़द तेरो सुन्यौ मैं,
भक्त बिछल बिड़द तेरो सुन्यौ मैं।

जन की घट्याँ तुमारी घटत है, मानि सबद सत मेरौ ।। टेक।।
जब गजराज गहरे जल भीतर, हरी हृदै मुख टेर्यौ।
गरुड़ छाडि पयादहि ध्याये, निपट भगत के नेरौ ।।
जन प्रहलाद खंभ कूँ बांध्यौ, चहुँ दिसि मंदर घेर्यौ।
खंभ फाड़ नरसिंह होय प्रगटे, नख सूँ उदर झँझोर्यौ ।।
जन द्रोपदि की भरी सभा में, खाँच्यो चीर घणेरौ।
खाँचत चीर पार नहिं पायौ, असुर पच्यौ बहुतेरौ ।।
खाँचत चीर पार नहिं पायौ, असुर पच्यौ बहुतेरौ ।।
करि करुणा हरिजन यूँ भाखै, ऊपर करि हरि मेरौ।
जन रैदास आस रघुवर की, जनम जनम को चेरौ ।।101।।

रैदास भक्तार्तिहारी, भक्तवत्सल श्रीहरि से प्रार्थना करते हुए कहते हैं, हे परमात्मन्! मैंने तेरा सुयश सुना है कि तू भक्तवत्सल है। हे प्रभो! यदि तेरे भक्त की इज्जत घटती है तो स्वतः ही तेरी इज्जत भी घट जाती है; यह बात पूर्णतः सत्य है। मेरी बात को तू पूर्णरूपेण सत्य जान ले। जब गजराज गहरे जल में धँस चुका था, तब उसने 'हरि' शब्द हृदय में व मुख से उच्चारण किया; तब तू वायु के समान वेग वाले गरुड़ की सवारी को भी छोड़ कर पदाति=पैदल ही दौड़कर आया और तत्काल भक्त के निकट पहुँच गया। उसकी ग्राह से रक्षा करके उसका जीवन बचाया। भक्त पहलाद को स्तम्भ से बाँध दिया गया। वह बंधन तोड़कर भाग न जाये; अतः दुष्टों ने उस भवन को चारों ओर से घेर लिया। भक्तार्ति हरने को तू स्तम्भ को फाड़कर उसमें से नृसिंह रूप में प्रकट हुआ और तूने अपने नख से हिरण्यकश्यपु का उदर विदीर्ण कर भक्त प्रहलाद की रक्षा की। भक्ता द्रोपदी की साड़ी भरी सभा में खूब समय तक खींची जाती रही, किन्तु उस साड़ी का अंत हुआ ही नहीं, खींचते–खींचते खींचने वाले दुष्ट ही हार गये। करुणा विगलित हृदय से तेरा भक्त रैदास तेरे से प्रार्थना करता है कि उक्त भक्तों की भाँति मुझ डूबते हुए को उबार ले, मेरी रक्षा कर। हे रघुवर! मुझे तेरे से ही आशा है कि इस विपत्तिपूर्ण घड़ी में तू ही मुझे उबार सकता है। तेरा जन्म–जन्म का दास तेरे से प्रार्थना कर रहा है ।।101।।

राग जैतश्री (12)

(102)

सब कुछ करत न कहु कछु कैसैं। गुन बिधि बहुत रहत ससि जैसैं ।। टेक।।
दरपन गगन अनिल अलेप जस। गंध जलध प्रतिब्यंब देखि तस ।।1।।

सब आरंभ अकाम अनेहा। बिधी निषेद कियौ अनकेहा ।।2।।
इहिं पद कहत सुनत नहिं आवै। कहै रैदास सुकृत को पावै ।।3।।102।।

परमात्मा सब कुछ करता है, फिर भी उसको किसी भी प्रकार से कर्ता कहते बनता नहीं है। उसमें अनेक गुण हैं, फिर भी वह चंद्रमा की तरह सर्वथा अलिप्त रहता है। चन्द्रमा की छाया सर्वत्र पड़ती है, किन्तु चन्द्रमा कहीं भी लिपायमान नहीं होता; सबसे अलिप्त रहता है। ऐसे ही, परब्रह्म–परमात्मा सृष्टि का अभिन्न– निमित्तोपादान–कारण है। फिर भी वह निर्लिप्त कहा जाता है, अक्रिय कहा जाता है। दर्पण में आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ता है फिर भी आकाश निर्लिप्त रहता है। दर्पण उसकी उपाधि मात्र बन जाता है। जैसे ही दर्पण टूटता है, आकाश की दर्पणाकार उपाधि भी समाप्त हो जाती है। अनिल=पवन का गुण गंध होता है। यद्यपि गुण गुणी के आश्रित रहता है, किन्तु गुणी में अनुस्यूत होने से पृथकतः दीखता नहीं है। जलधि में आकाश का प्रतिबिम्ब दीखता है। जैसे ही जलाकाश रूपी उपाधि समाप्त हुई कि आकाश, आकाश रूप हो जाता है। वस्तुतः आकाश आदि, मध्य, अन्त तीनों दशाओं में आकाश रूप ही रहता है, किन्तु जलधि रूपी उपाधि के कारण जलधि के आकार जैसा लगता है, किन्तु होता नहीं है। ऐसे ही परबह्म–परमात्मा सब कुछ करते हुए भी अकर्ता, सर्वत्र रहते हुए भी सबसे अलिप्त रहता है। यही उसका ब्रह्मत्त्व है। वह परमात्मा समस्त आरम्भों का आरम्भ=आदि है। निष्काम है। अनेह=राग–शून्य है। विधि और निषेधों से सर्वथा दूर है। उक्त वर्णित पद=परमात्मा न तो कहने में आता है और न पूर्णतः सुनकर समझ में आता है। ऐसे परमात्मा का साक्षात्कार किसी सुकृति पुण्यवान को मिलता है ।।102।।

(103)

कारनि कौंन अबोलो हो नाथ, मन में कूड़ लगंउबी ।।टेक।।
हम से दीन दयाल प्रभु तुम से, योंहि प्रहरि क्यों जीजे।
मैं जन तोर मोर तुम साहिब, बोलि र पोरो दीजे ।।1।।
सरनाई अभिअंतरि केसौ, प्रान पयान चहूँटै।
गुन सब तोर मोर सब औगन, करिहौं साच क झूठै ।।2।।
बहौतक दिन बिछुरे भये माधौ, यौं हरि जन्म गवायो जोलैं।
कहि रैदास आस लागौ जीव, अब न रहौ बिन बोलैं मेरे राजा ।।3।।103।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : रागु धनासरी, पृष्ठांक 694

हम सरि दीनु दइआलु न तुम सरि, सब पतीआरु किआ कीजै ।।
बचनी तोर मोर मनु मानै, जन कउ पूरनु दीजै ।।

हउ बलि बलि जाउ रमईआ कारने, कारन कवन अबोल ।।रहाउ।।
बहुत जनम बिछुरे थे माधउ, इहु जनमु तुम्हारे लेखे ।।
कहि रविदास आस लगि जीवउ, चिर भइओ दरसनु देखे ।।

हे नाथ! ऐसा कौन सा कारण है, जिसके कारण से आप मुझसे बोलते नहीं हैं। आपके न बोलने से मेरे मन में नाना बुरे विचार आ रहे हैं। हे प्रभो! मेरा जैसा कोई दीन नहीं तथा आप जैसा कोई प्रभु=स्वामी नहीं। हे प्रभो! आप जैसे दीनदयालु प्रभु को त्यागकर कैसे जिया जा सकता है। मैं आपका भक्त जबकि आप मेरे स्वामी हैं। मुझे बुलाकर=शरण में रखकर, पोरो=अपनी छोटी–मोटी सभी प्रकार की सेवा करने का मौका दो। हे केशव! मन से, वचन से, कर्म से, मैं आपकी शरण में हूँ। मेरा यह प्रण प्राणपर्यन्त है। हे स्वामी! जितने भी गुण=अच्छाइयाँ, भलाई, उपकार हैं, वे सब आपके हैं, जबकि जितने भी अवगुण हैं, वे सब मेरे हैं। बताओ, यह कथन सच है अथवा झूठ है। हे माधव! आपसे बिछुड़े हुए मुझे काफी दिन हो गए हैं। हे हरि! मैंने बहुमूल्य जीवन को बर्बाद भी किया है। रैदास कहता है– मैं आपके दर्शन की आशा मन में संजोकर जी रहा हूँ; अतः हे राजा! अब बिना बोले मत रहो ।।103।।

राग सारंग (13)

(104)

जग में बैद बेद मानीजै।
इनमें और अगद कुछ औरै, कहौ कवन परि कीजै ।।टेक।।
भौ जल ब्याधि असाधि प्रबल अति, परम पँथ न गहीजै।
पढ़ैं गुनैं कछु समझि न पाई, अनभै पद न लहीजै ।।1।।
चखि बिहून कतार चलत है, तिनहुँ अंस भुज दीजै।
कहै रैदास बमेक तत्त बिन, सब मिलि गरक परीजै ।।2।।104।।

जगत् में वेदों को ही वैद्य माना जाता है। सांसारिक–बंधनों से छुटकारा पाने के उपाय वेदों में वर्णित हैं। जागतिक लोग उन्हें ही अन्तिम उपाय मानते हैं, किन्तु सत्य यह नहीं है। वेदों में बीमारियों के उपाय कुछ और हैं, जबकि अगद=बीमारी कुछ और है। ऐसी स्थिति में बताओ कौन–सा उपाय किया जाए? भव–जल रूपी व्याधि अतीव प्रबल होने से असाध्य जैसी है। इससे छुटकारा पाने के लिए सांसारिक लोग परमपंथ=संत, सद्गुरु द्वारा अनुभूतमार्ग का अवलम्बन नहीं लेते। वे पढ़ चुकने, गुन चुकने के उपरान्त भी कुछ भी समझ नहीं पाते, जिस कारण आत्मानुभव रूप पद की

प्राप्ति नहीं कर पाते हैं। सांसारिक लोग अंधों की भाँति कतार में, एक–दूसरा एक–दूसरे का अंधानुकरण करते हैं। हे परमात्मन्! मेरा आपसे करबद्ध निवेदन है कि इन अज्ञानियों, कर्मकाण्डियों, वेदमार्गियों को अपनी वरद–भुजा=आश्रय प्रदान करिये। रैदास कहता है– तत्व रूप परमात्मा के विवेक–ज्ञान के बिना सभी लोग गर्त में पड़ते रहते हैं ।।104।।

राग कनड़ौ (14)

(105)

माया मोहिला कान्ह, मैं जन सेवग तेरा ।।टेक।।
संसार प्रपंच में ब्याकुल परमानंदा।
त्राहि त्राहि अनाथ नाथ गोब्यंदा ।।1।।
रैदास दास दास बिनवैं कर जोरी।
अबिगत नाथ कवन गति मोरी ।।2।।105।।

हे कान्हा! माया–मोहित मैं आपका भक्त सेवक हूँ। हे परमानन्द! मैं सांसारिक–प्रपंच में डूबा रहने से व्याकुल हूँ, व्यथित हूँ। हे अनाथों के नाथ गोविन्द! मेरी रक्षा कर, रक्षा कर, मैं तेरी शरण में हूँ। दासानुदास रैदास दोनों हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि हे अविगतनाथ! मेरी कौन–सी गति होने वाली है ।।105।।

(106)

चलि चलि मन हरि चटसाल पढाऊँ।
गुर की साटि ग्यान का अख्यर,
बिसरै तो सहज समाधि लगाऊँ ।।टेक।।
प्रेम पटी श्रुति लेखनि करिहूँ,
ररौ ममौ लिखि अंक दिखाऊँ।
इहिं बिधि मुकति भये सनकादिक,
रिदौ बिदारि प्रकास बताऊँ ।।1।।
कागद कँवल मति मसि करि निरमल,
बिन रसना निस दिन गुन गाऊँ।
कहै रैदास राम जपि भाई,
संत साखि दे बहुरि न आऊँ ।।2।।106।।

हे मन! इधर–उधर घूमना बन्द करके हरि रूपी पाठशाला की ओर उन्मुख हो। वहाँ तुझे हरि–नाम रूपी शिक्षा पढ़ाऊँगा! वहाँ श्रोत्रिय व ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु का साटि=सान्निध्य मिलेगा। ज्ञान रूपी अक्षर की पढ़ाई, पढ़ाई जायेगी। गुरु, शिष्य को राम–नाम का उपदेश देता है। यही पढ़ाई पढ़ाया जाना है। शास्त्राध्ययन द्वारा जो ज्ञानार्जन होता है, वह परोक्ष–ज्ञान कहलाता है। आत्मानुभव अपरोक्ष–ज्ञान कहलाता है। जब अपरोक्षानुभव हो जाता है, तब परमार्थतः शास्त्र, शास्त्रज्ञान, गुरु आदि सभी की सत्ता असत्य हो जाती है, क्योंकि इस अवस्था में स्वात्मातिरिक्त अन्य की कोई सत्ता शेष रहती ही नहीं है। हाँ, व्यवहार में इनकी सत्ता सत्य ही मानी जाती है, माननी चाहिए यही रैदास की भाषा में अक्षर–ज्ञान की विस्मृति–पूर्वक सहज–समाधिस्थ होना है। प्रेम की तख्ती पर सुरति की लेखनी से 'ररा' और 'ममा' नामक वर्णों का संयुक्त रूप 'राम' लिखूँगा। राम का साक्षात्कार करूँगा। उक्त पढ़ाई पढ़कर ही सनकादिक चारों भाई जीवन्मुक्त हुए हैं। मैं भी उक्त पढ़ाई पढ़कर ही उस स्थिति में पहुँच गया हूँ, जिसमें हृदय चीरकर परमप्रकाश रूप परमात्मा का दर्शन किया और कराया जा सकता है। निर्गुणी संतों की साधना चार सोपानों में पूरी होती है। (1) जिह्वा एवं कंठ (2) हृदय (3) नाभि (4) त्रिकुटि और सहस्रार। त्रिकुटि तक रहने वाला शब्द अनहद नाद के रूप में रहता है। सहस्रार में 'राम' में से केवल 'र'कार रह जाता है और वह परमप्रकाश रूप हो जाता है। रैदास यहाँ इसी प्रकाश की चर्चा कर रहे हैं। हृदय रूपी कागज़ पर बुद्धि रूपी स्याही से निर्मलता रूपी हाथों से राम–नाम लिखा जाता है। मैं निशि–दिन बिना जिह्वा के ही हरि–गुणों, हरि–नाम का स्मरण करता हूँ। रैदास कहता है– हे भाई! राम–नाम का तत्परता के साथ जप कर। राम–नाम जप करने से संसार में पुनः जन्म नहीं होगा। इसकी साक्षी सभी संत देते हैं ।।106।।

राग केदारौ (15)

(107)

प्रीति सधारन आव।
तेज सरूपी सकल सिरोमनि, अकल निरंजन राव ।।टेक।।
पीव सँगि प्रेम कबहुँ नहीं पायौ, कारणि कौंण बिसारी।
चक कौ ध्यान दध्यसुत सुँ हेत है, त्यौ तुझ थैं मैं न्यारी ।।1।।
भोर भयौ मोहि इकटग जोवत, तलपत रजनी जाई।
पिव बिन सेज क्यूँ सुख सेऊँ, बिरह बिथा तनि माई ।।2।।
दुहागनि सुहागनी कीजे, अपने अंगि लगाई।
कहै रैदास प्रभु तुम्हारैं बिछोहैं, एक पल जुग भर जाई ।।3।।107।।

हे तेज=परम–प्रकाश स्वरूप! सकल शिरोमणि, अकल, निरंजन राजा, प्रीति को संधारन=धारण करने वाले मेरे पास आ। प्रियतम के सान्निध्य का प्रेम मैंने कभी भी प्राप्त नहीं किया। पता नहीं, किस कारण से प्रियतम ने मुझे विस्मृत कर रखा है। चकोर का प्रेम चन्द्रमा से होता है, किन्तु चकोर व चकोरी का बिछोह रात्रि भर के लिए ही होता है। इसी–प्रकार मैं तुझसे एकान्तिकी–प्रीति करता हूँ, तथापि तुझसे बिछुड़ी हुई हूँ। रात्रि भर तेरे आने की राह टगटगी लगाकर देखती रही। तू नहीं आया। रात्रि तड़फन में व्यतीत हो गई। भोर हो गया। तू नहीं आया। बिना प्रियतम के पलंग पर कैसे सुखपूर्वक सो सकती हूँ। मेरे शरीर में तो विरह रूपी व्यथा समाई हुई है। मैं दुर्भाग्यवती हूँ। मुझे आकर व सहवास प्रदान सौभाग्यवती बना दे। रैदास कहता है– हे प्रभु! आपके बिछोह में मेरा एक पल, एक युग के बराबर व्यतीत होता है ।।107।।

(108)

दरसन दीजे राम दरसन दीजे।
दरसन दीजे हो बिलँब न कीजे।।टेक।।
दरसन तोरा जीवनि मोरा।
बिन दरसन क्यूँ जीवैं हो चकोरा ।।1।।
माधौ सतगुरु सब जग चेला।
इबकै बिछुरे मिलन दुहेला ।।2।।
तन धन जोबन की झूठी आसा।
सति सति भाखै जन रैदासा ।।3।।108।।

हे राम! मुझे दर्शन दो, दर्शन दो। दर्शन देने में तनिक भी विलम्ब मत करो। मेरे जीवन की सीमा तेरे दर्शन हैं। चकोर रूपी मैं तुझ रूपी चन्द्र के बिना कैसे जीवित रह सकता हूँ। माधव! आप सद्गुरु हैं। सारा संसार तुम्हारा चेला है। अबकी बार बिछुड़ने पर फिर तुझसे मिलना कठिन हो जाएगा। तन, धन, यौवन आदि की आशा करना झूठ है। रैदास यह बात सत्य–सत्य कहता है ।।108।।

(109)

रे मन राम नाम संभारि।
माया कैं भ्रमि कहा भूलौ, चलैगौ कर झारि ।। टेक।।
देखि धूँ इहाँ कौंन तेरौ, सगौ सुत नहीं नारि।
तोरि तंग सब दूरि करिहै, दैहिंगे तन जारि ।।1।।

प्रान गयैं कहु कौंन तेरौ, देखि सोचि बिचारि।
बहुरि इहिं कलि काल माहीं, जीति भावै हारि ।।2।।
यहु माया सब थोथरी, हरि भगति को प्रतिपाल।
कहै रैदास सति बचन गुर को, सो न जिय थैं टाल ।।3।।109।।

अरे मन! राम–नाम का स्मरण कर। राम–नाम का आश्रय ग्रहण कर। माया का सहारा मत ले। माया के भ्रम में क्यों भ्रमित हो रहा है। एक दिन माया को छोड़कर खाली हाथ संसार से चला जाएगा। अरे! तू देख तो सही, इस संसार में तेरा कौन है! वस्तुतः जिन पुत्र, पत्नी आदि को अपना मानता है वे तेरे एक भी सगे=अपने नहीं हैं। जैसे ही तेरे शरीर से तेरा वियोग होगा, वैसे ही ये सभी सम्बधी तेरे से सम्बन्ध की डोरी तोड़ लेंगे और तेरे शरीर को जला डालेंगे। बता, प्राण जाने पर तेरा कौन अपना है। तू स्वयं ही सोच, विचार व निर्णय कर। पुनः मार्के की एक बात और। वर्तमान युग कलिकाल कहलाता है, जिसमें भगवद्प्राप्ति अन्य युगों की तुलना में बहुत आसान है। चाहे तो तू भी जीति=भगवद्–प्राप्ति कर ले और चाहे तो सांसारिक–विषय–भोगों में लगा रहकर मानव–जन्म को हार कर परलोक में जा। जो कुछ देखने, सुनने, स्पर्श करने, सूंघने व खाने–पीने में आता है, वह सब कुछ झूठी माया का पसारा है, नश्वर है जबकि अविनाशी हरि, भक्तों का, भक्ति का प्रतिपालक है। रैदास कहता है– उक्त कथन, सद्गुरु महाराज के सत्य वचन हैं। इन्हें हृदय=मन में से मत निकाल। इन्हें मन में धारण करके राम–नाम का स्मरण कर ।।109।।

(110)

हरि कौ टांडौ लादै जाई रे, मैं बणिजारा राम का।
राम नाम धन पाइया, ताथैं सहजि करौं ब्यौपार रे ।।टेक।।
औघट घाट घणें घणा रे, निरगुण बैल हमार।
राम नाम हम लादियौ ताथैं, विष लाद्यौ संसार रे ।।1।।
अनतहिं धरती धन धर्‌यौ रे, अनतहिं ढूँढण जाइ।
अनत को धर्‌यौ नहिं पाइये ताथैं, चाल्यौ मूल गँवाइ रे ।।2।।
रैंनि गवाई सोइ करि रे, द्यौस गँवायौ खाइ।
हीरा यहु तन पाइ करि, कौड़ी के बदलै जाइ रे ।।3।।
साध सँगति पूँजी भई रे, वस्त लई निरमोल।
सहज बलदिया लादि करि, चहुँ दिसि टांडौ मेल रे ।।4।।
जैसा रंग पतंग का रे, तैसा यहु संसार।
रमइयौ रंग मजीठ को, ताथैं भणि रैदास बिचार रे ।।5।।110।।

गुरुग्रन्थीय–पाठ : रागु गउड़ी वैरागणि, पृष्ठांक 346

घट अवघट डूगर घणा, इकु निरगुणु बैल हमार।
रमईए सिउ इक बेनती, मेरी पूंजी राखु मुरारि ।।
को बनजारो राम को, मेरा टांडा लादिआ जाइ रे ।।रहाउ।।
हउ बनजारो राम को, सहज करउ ब्यापारु।
मैं राम नाम धनु लादिआ, बिखु लादी संसारि ।।
उरवार पार के दानीआ, लिखि लेहु आल पतालु।
मोहि जब डंडु न लागई, तजीले सरब जंजाल ।।
जैसा रंगु कसुंभ का, तैसा इहु संसारु।
मेरे रमईए रंगु मजीठ का, कहु रविदास चमारु ।।

मैं राम एवं राम–नाम का बंजारा=व्यापारी, हरि–नाम रूपी माल निर्गुण रूपी टांड़ौ=बैल पर लादकर व्यापारार्थ यत्र–तत्र भ्रमण करता हूँ। मैंने राम–नाम रूपी धन=माल प्राप्त किया है, जिससे मैं सहज=स्वाभाविक रूप से व्यापार=राम–नाम–स्मरण करता व कराता हूँ। व्यापार में लाभ–हानि, तस्कर–लुटेरे आदि बिघ्न–बाधा रूपी ऊँचे–नीचे, सकरे–चौड़े, कँकरीले–पथरीले आदि अनेक–अनेक रास्ते हैं, जिन पर चलने वाला हमारा साध्य रूपी निर्गुण–निराकार–परमात्मा बैल है। व्यापार का आधार माल व माल को ढोने वाला बैल है। साधना में साधन रूप राम–नाम व साध्य रूप निर्गुण–निराकार परमात्मा अवलम्बन रूप हैं। रैदास कहते हैं– मैंने राम–नाम रूपी माल का लदान किया है बैल पर, जबकि संसारी लोगों ने विषय–भोगों को लादा है। धरती में धन तो कहीं पड़ा है, जबकि उसको ढूँढने को संसारी जीव अन्यत्र ही जाता है। इसीलिए वह अन्यत्र रखे हुए धन को प्राप्त नहीं कर पाता। परिणामतः वह मूल–धन को खो देता है। मनुष्य–जन्म को बिना भगवद्प्राप्ति के गँवा बैठता है। रात्रि सोने में व्यतीत कर डाली जबकि दिवस खाने–पीने, भोग–विलास में खर्च कर डाला। हीरा सदृश मानव–जन्म को पाकर भी मूर्ख जीव कौड़ी रूपी विषयभोग भोगने में व्यतीत कर डालते हैं। रैदास कहते हैं– मैंने साधु–संगति रूपी पूंजी के द्वारा राम–नाम रूपी अमूल्य वस्तु प्राप्त की है, खरीदी है। उसको सहज रूपी बैल पर लाद कर मैं चारों दिशाओं में अपने टांड़ौ=काफिले को स्थापित करता हूँ। जैसा रंग=जीवन पतंगे का होता है, वैसा ही इस संसार का है। पतंगे का जीवन निहायत क्षणिक होता है। ऐसे ही शांकर–वेदान्तानुसार संसार भी क्षणभंगुर ठहरता है। रमैया=जो सचराचर में रम रहा है अथवा सचराचर जिसमें रम रहा है, उसका रंग=जीवन मजीठ जैसा पक्का है, शाश्वत् है, त्रिकालावाधित है, ऐसा रैदास विचार कर कहता है ।।110।।

रागु मारू (16)
गुरुग्रंथीय–पाठ : पृष्ठांक 1106

(111)

ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै।
गरीबनिवाजु गुसईआ मेरा, माथै छत्रु धरै ।।टेक।।
जाकी छोति जगत कउ लागै, ता पर तुहीं ढरै।
नीचह ऊच करै मेरा गोबिन्दु, काहू ते न डरै ।।1।।
नामदेव कबीरु तिलोचनु, साधना सेनु तरै।
कहि रविदासु सुनहु रे संतहु, हरि जीउ ते सभै तरै ।।2।।111।।
दादूवाणीय–पाठ : राग नटनारायण, पदांक 295
तुम्ह बिन ऐसै कौन करै।
गरीबनिवाज गुसाँई मेरौ, माथै मुकट धरै ।।टेक।।
नीच ऊँच ले करै गुसाँई, टार्‌यौ हूँ न टरै।
हस्तकँवल की छाया राखै, काहू थैं न डरै ।।
जाकी छोति जगत कौं लागै, ता परि तू ही ढरै।
अमर आप ले करै गुसाँई, मार्‌यौ हूँ न मरै ।।
नामदेव कबीर जुलाहौ, जन रैदास तिरै।
दादू बेगि बार नहिं लागौ, हरि स्यूँ सबै सरै ।।111।।

हे लाल! हे परमात्मन्!! ऐसी महती कृपा तेरे अलावा और कौन कर सकता है। हे मेरे गुसाँई! हे गरीबों को नवाज़ ने वाले!! तू ही है जिसने मेरे माथे पर छत्र धारण करवाया, अर्थात् ब्राह्मणों से विवाद होने पर तूने ही मुझे विजयी बनवाकर यश–भागी बनाया। जिस नीच–जाति–जन्मा की छोत=छूत जगत् के उच्च वर्ण वालों को लगती है, उस पर तू ही द्रवित होता है, कृपा करता है। हे गोविन्द! तू नीचों को ऊँचा कर देता है। ऐसा करते समय किसी से भी तू डरता नहीं है। तेरी कृपा पाकर ही नामदेव छीपा, कबीर जुलाहा, त्रिलोचन बनिया, सधना कसाई और सैन नाई संसार–सागर से तिर गए। हे संतों! सुनो, रविदास कहता है– हरिजी की कृपा से ही उक्त सभी संसार–सागर से तिरे हैं ।।111।।

रागु बसन्तु (17)

गुरुग्रंथीय–पाठ : पृष्ठांक 1196

(112)

तू काँइ गरबहि बावली।
जैसे भादउ खूँब राजु तू, तिस ते खरी उतावली ।।रहाउ।।
तुझहि सुझंता कछू नाहि। पहिरावा देखै ऊभि जाहि ।।
गरबवती का नाही ठाउ। तेरी गरदनि ऊपरि लवै काउ ।।
जैसे कुरंक नहीं पाइओ भेदु। तनि सुगंध ढूढे प्रदेसु ।।
अप तन का जो करे बीचारु। तिस नही जमकंकर करे खुआरु ।।
पुत्र कलत्र का करहि अहंकारु। ठाकुरु लेखा मगनहारु ।।
फेड़े का दुखु सहै जीउ। पाछे किसहि पुकारिहि पीउ पीउ ।।
साधू की जउ लेहि ओट। तेरे मिटिहि पाप सभ कोटि कोटि ।।
कहि रविदासु जो जपै नामु। तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु ।।112।।

हे बावले! तू इतना क्यों गरबा रहा है? आखिरकार तेरे पास ऐसा क्या है, जिसके कारण तू इतना गरबा रहा है। अरे! तेरी जिंदगानी तो भाद्रपद मास में अपने आप उग आने वाले कुकरमुत्ते से भी जल्दी विनष्ट होने वाली है। तेरे को कुछ भी आगे–पीछे की नहीं सूझती। तू ऊपरी पहनावे को देखता है, किन्तु वह भी चले जाने वाला है। गर्व करने वाले का कोई ठौर–ठिकाना नहीं होता/रहता। अरे! तेरी गर्दन पर तो कौआ बोल रहा है, फिर भी तू किसका गर्व कर रहा है? जैसे कुरंग=हिरण अपनी ही नाभि की सुंगधि को नहीं जानता। उसको ढूँढने को देश–विदेश में घूमता–फिरता है। जो अपने शरीर की विनाशशीलता का विचार करके हरि–भजन करता है; उसको यमराज के दूत कष्ट नहीं देते। पुत्र, पत्नी होने का अहंकार करता है, किन्तु परमात्मा रूपी यमराज अच्छे–बुरे सबका हिसाब–किताब देखता है। अच्छे–बुरे कर्मों का फल जीव भुगतता है। यमराज के यहाँ दुःख भुगतते समय किसको सहायता करने को पुकारेगा? यदि तू साधु सज्जनों का सहारा लेता है तो तेरे सभी कोटि–कोटि पाप कट जाएंगे। रविदास कहते हैं– यदि तू रामजी के नाम का जप करता है तो तेरी न जाति शेष रहेगी, न तेरा पुनर्जन्म होगा और न तू मातृ–योनि मे ही आयेगा।।112।।

रागु मलार (18)
गुरुग्रंथीय–पाठ : पृष्ठ 1293

(113)

हरि जपत तेऊ जनाँ।
पदम कवलास पति, तास सम तुलि नही आन कोऊ।
एक ही एक अनेक होइ बिसथरियो, आन रे आन भरपूरि सोऊ ।।रहाउ।।
जाकै भागवतु लेखीऐ, अवरु नहीं पेखीए, तास की जाति आछोप छीपा।
बिआस महि लेखीऐ, सनक महि पेखीऐ, नाम की नामना सपत दीपा ।।
जाकै ईदि बकरीदि कुल, गऊ रे बधु करहि, मानीअहि सेख सहीद पीरा।
जाकै बाप वैसी करी, पूत ऐसी सरी, तिहू रे लोक परसिध कबीरा ।।
जाकै कुटंब के ढेढ सभ ढोर ढोवत फिरहि, अजहु बानारसी आस पासा ।।
आचार सहित बिप्र करहि डंडउति, तिन तनै रविदास दासानदासा ।।113।।

राजर्षि पीपा गागरौनी–वाणी–पाठ : राग रामगिरी, पदांक 1

मनाँ भजिसि रे हरि चरण।
परम पुनीत आरति हरण,
और जँजाल सब तजिसि लोई ।।
वेद पुराण जे कोटि सास्तर पढ़ै,
बिना भगवंत नहिं मुक्ति होई ।।टेक।।
जिनि भजे हरि चरण जीते च्यारौं वरण,
जास की जाति अछोप छीपा।
व्यास में लेखिये सनक में पेखिये,
नामा की नामना सपत दीपा ।।1।।
जाकै ईदि बकरीदि गऊ रह बध करैं,
मानियै सेख सहीद पीरा।
बापि वैसी करी पूति ऐसी धरी,
नाँव नवखंड परसिधि कबीरा ।।2।।
जाके कुटुंब के ढेढ ढोर ढोवत फिरैं,
अजहूँ वाणारसी आस पासा।
षट क्रम सहित विप्र दंडव्रत करैं,

प्रगट नीसाण रैदास दासा ।।3।।
जपत जे नरा चरण कँवलापति,
तास सम तुल्य नहिं आन कोई।
आप है एक अनेक ह्वै विसतर्यौ,
अंति एक को एक सोई ।।4।।
दसूँ दिसि छाइ जस रह्यौ भरपूरि करि,
कौण मारग गये खोजो न पाऊँ।
दास पीपौ कहै कठिण कलि काल में,
भगत भगवंत भजि पार पाऊ ।।5।।113।।

जो भक्त कमला के पति श्रीहरि के पादपद्मों का स्मरण करता है, चिन्तन–मनन करता है, उसके समान संपूर्ण ब्रह्मांड में अन्य और कोई नहीं है। वह श्रीहरि एक है फिर भी ब्रह्मांड में वही अनेक होकर विस्तारित हो रहा है, अर्थात् सचराचर में वही परिव्याप्त है। जो भी तदतिरिक्त अन्यान्य हैं, उनमें भी वही परमात्मा भरपूर है। जो केवल भागवत्=भक्तों और भगवान् का ही भजन–ध्यान–स्मरण करता है; अन्य की ओर देखता तक नहीं है; उसकी जाति अछूत छीपा=दर्जी है; उसके बारे में व्यास के ग्रंथों में पढ़िये, सनकसंहिता में देखिए, उस नामदेव दर्जी की महिमा का बखान सातों द्वीपों में हो रहा है। जिसके कुल में ईद, बकरीद मनाई जाती है; जिसके कुलजन गाय का बध करते हैं, जो शेख़, सैयद और पीरों को मानते हैं; जिस कबीर के पिता की करनी उपर्युक्त प्रकार की रही, उसी कबीर की करनी ठीक इसके विपरीत रही है, जिसके कारण वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। आज भी जिसके कुटुम्ब के चर्मकार लोग बनारस के आस–पास मरे हुए पशुओं को उठा–उठाकर ढोते फिरते हैं, दासों के दास उसी रैदास को आचारी ब्राह्मण श्रद्धा–भक्ति सहित दंडवत प्रणाम करते हैं ।।113।।

रैदासजी की साखी

हरि सा हीरा छाडि करि, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाइसे, सति भाखै रैदास ।।1।।
अंतरगति राचैं नहीं, बाहरि कथैं उजास।
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सति भाखै रैदास ।।2।।
जा देखें घिणि ऊपजै, नरक कुंड है बास।
प्रेम भगति तैं ऊधरे, परगट जन रैदास ।।3।।
रैदास तूँ काँवछि फली, तुझैं न छीवै कोइ।

तैं निज नाँव न जाणियाँ क्यूँ र भलेरा होइ ।।4।।
हरि हरि कह हारै नहीं, बिसरै न साँस उसाँस।
पापाँ सौ प्रत्यच्छ ही, निबरत जन रैदास ।।5।।
रैदास कहै जाके हृदय, रहै रैंनि दिन राम।
सो भगता भगवान सम, क्रोध न ब्यापै काम ।।6।।
रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजी सुमरिये, छाडि सकल प्रतिवाद ।।7।।

रैदास सत्य–सत्य कहता है, जो नर हरि जैसे हीरे को छोड़कर अन्यों की आशा करते हैं, वे यमपुर=नरकों में जाते हैं ।।1।। रैदास सत्य–सत्य कहता है, जो अंतर में तो ज्ञान–भक्ति के रंग में रंगते नहीं हैं, जबकि बाह्य वेश धारण करके ज्ञानियों जैसे प्रकाश=ज्ञान का कथन करते हैं, वे नर निश्चय ही नरकों में जाते हैं ।।2।। जिनको देखते ही घृणा उत्पन्न हो जाती है, जिनका नरक समान जगहों पर निवास–स्थान है, वे भी प्रेमाभक्ति के बल पर प्रकट में उद्धार को प्राप्त हुए हैं ।।3।। संसारी जीवों को उनकी असलियत बताते हुए कहते हैं– हे जीवो! तुम कैंवच की फली को समान हो, जिसको छूते ही खुजली चलना प्रारम्भ हो जाती है। इसीलिए कोई भी कैंवच की फली के हाथ तक नहीं लगाता। तुमने परमात्मा के निज–नाम=राम को नहीं पहचाना। बताओ! तुम्हारा भला=कल्याण कैसे होगा?।।4।। जो हरि–हरि कहते–कहते थकता नहीं, हरि–नाम को श्वास–प्रश्वास में विस्मृत नहीं करता, छोड़ता नहीं, वह पापों से प्रकट ही निवृत्त हो जाता है ।।5।। रैदास कहता है– जिसके हृदय में रात–दिन राम–नाम–स्मरण रहता है, व भक्त को भगवान के समान मानता है, उसको काम व क्रोध नहीं व्यापते ।।6।। रैदास कहता है– समस्त प्रतिवाद=राम–नाम–स्मरण के अतिरिक्त अन्य कथनादि छोड़कर अहर्निशि राम–नाम का स्मरण करिये। रात्रि में सोना बन्द कर दो और दिन में स्वाद करना बंद कर दो ।। 7।।

रैदास–पदावली

राग रामगिरी (1)

क्र॰ पद–प्रथम–पंक्ति	हस्तलेखों के क्रमांक, लिपिकाल अथवा नाम																	
	भक्तमाल	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु॰ग्रं॰	र॰सं॰	गो॰सं॰	1880	9693	3322	1853
1. परचै राम रमै जे कोइ	–	1	2	2	2	1	1	1	1	1	–	1167	–	–	1	1	10	10
2. अब मैं हार्यौ रे भाई	–	2	3	3	3	2	2	2	2	2	–	–			2	2	11	11
3. गाइ गाइ अब का कहि गाँऊँ	–	3	4	4	4	3	3	3	3	3	–	–	–	–	3	3	12	12
4. राम कहूँ न भगत कहाऊँ	–	4	5	5	5	4	4	4	4	4	–	–	–		4	4	13	13
5. इब मोरी बूडी रे भाई	–	5	6	6	6	5	5	5	5	5	–	–			5	5	14	14
6. भाई रे भरम भगति सु जानि	–	6	7	7	7	6	7	6	6	7	–	–	–		6	6	15	15
7. त्यौं तुम्ह कारनि केसवे	–	7	8	8	8	7	8	7	7	8	–	–	–	–	7	7	16	16
8. आयौ हो आयौ देव तुम्ह सरणा		–	8	9	9	9	8	9	8	8	9	–	–		8	8	17	17
9. भाई रे राम कहाँ है मोहि बतावो		–	9	10	10	10	9	10	9	9	10	–	–	–	9	9	18	18
10. ऐसो कछु अनभै कहत न आवै		–	10	11	11	11	10	11	10	10	11	–	–	–	10	10	19	19
11. अखिल खिलै नहिं का कहि पंडित		–	11	12	12	12	11	12	11	11	12	–	–		11	11	20	20
12. नरहरि चंचल मति मोरी	–	12	13	13	13	12	13	12	12	13	–	–	–		12	12	21	21

क्र॰	भक्तमाल	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु॰ग्रं॰	र॰सं॰	गो॰सं॰	1880	9693	3322	1853
13. राम बिन संसै गाँठि न छूटै	—	13	14	14	14	13	14	13	13	14	—		—		13	13	22	22
14. तब राम नाम कहि गावैगा	—	14	15	15	15	14	15	14	14	15	—	—	—		14	14	23	23
15. संतौ अन्यन भगति यहु नाहीं	—	15	16	16	16	15	16	15	15	16	—	—	—		15	15	24	24
16. भगति न होइ रे न होइ जब लग	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	23	25	25	
17. भगति अैसी है सुनहुँ रे भाई	—	16	—	—	—	16	18	—	16	18	—	—			17	16	27	27
18. अैसी भगति न होइ रे भाई	—	—	1	1	1	—	17	16	—	17	—	—	—	—	16	—	26	26
19. अब कछु मरम बिचारा हो हरि	—	17	17	17	18	17	19	17	17	19	—	—			18	17	28	28
20. नरहरि प्रगटिसिना हो प्रगटिसिना	—	18	18	18	19	18	20	18	18	20	—	—	—		19	18	29	29
21. त्यूँ तुम्ह कारनि केसवे	—	19	19	19	20	19	21	19	19	21	—	—	—		20	19	30	30
22. गोब्यंदे भौ जलधि अपारा	—	20	20	20	21	20	22	20	21	22	—	—	—		21	20	5	5
23. कहा सूते मुगध नर	—	21	21	21	22	21	23	21	22	23	—	—		—	22	—	31	31
24. है सब आतम सोयं प्रकास	—	22	22	22	23	—	—	—	23	—	—	—	7		23	—	33	33
25. कान्हा हो जगजीवन मोरा	—	23	23	23	24	22	24	22	24	24	—	345	—	—	24	22	32	32
26. तेरो जन काहे कूँ बोलै	—	24	24	24	25	—	6	—	25	6	—	—	—		25	—	—	—

क्र॰	भक्तमाल	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु॰ग्रं॰	र॰सं॰	गो॰सं॰	1880	9693	3322	1853
27. का गाँउँ कछू गाँइ न होई	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	24	—	—
28. अब का कहि कौन बताऊँ	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	25	—	—
29. आगै मंदा ह्वै रह्या	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	26	—	—
30. संतौ कुल पखि भगति ह्वैसी	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	27	—	—
31. भगति दुर्लभ सुनहु रे भाई	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—		—	—	—	—
								राग गौड़ी (2)										
32. मरम केसै पाइबौ रे	—	25	25	25	26	—	—	—	26	—	—	346	—		26	—	1	1
33. कोई सुमार न देखूँ	—	26	26	26	27	23	25	23	27	25	—	—	—		27	28	2	2
34. देवा हम न पाप करंता	—	28	28	28	29	25	27	25	31	27	91	93	—	—	29	30	4	4
35. यार मां एक तूँ दाना	—	29	29	29	30	26	28	26	28	28	—	—	—		30	31	—	—
36. अब हम खूब बतन घर पाया	—	30	30	30	31	27	29	27	30	29	—		—		31	32	—	—
37. कूपु भरिओ जैसे दादिरा	—	—	—	—	—	—	—	7	—	—	—	346	—	—	—	—	—	—
								राग जंगली गौड़ी (3)										
38. पहले पहरे रैंणि दै बणिजारिया		—	27	27	27	28	24	26	24	29	26	152	—	—	28	29	3	3
								राग आसावरी (4)										
39. केसवे विकट माया तोर	—	31	31	31	32	28	30	28	32	30	—	—	—		32	33	34	34

क्र.	भक्तमाल	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु.ग्रं.	र.सं.	गो.सं.	1880	9693	3322	1853
40. बरजि हो बरजि बीठले	—	32	32	32	33	29	31	29	40	31	—	—	—		33	34	35	35
41. राम हिं पूजा कहा चढाऊँ	—	33	33	33	34	30	32	30	33	32	—	525	—	—	34	35	38	38
42. तुझा चरन अरब्यंद भवर मन	—	34	34	34	35	31	33	31	34	33	—				35	36	39	39
43. बंदे जानि साहिब गनी	—	35	35	35	36	32	34	32	35	34	—	—	—		36	37	37	37
44. सु कुछ बिचार्‌यौ ताथैं	—	36	36	36	37	33	35	33	36	36	—	—	—		37	38	40	40
45. माधौ संगति सरन तुम्हारी	—	37	37	37	38	34	36	—	37	36	—	486	—		38	—	41	41
46. माधौ अविद्या हित कीन्ह	—	38	38	38	39	35	37	34	38	37	—	486	—		39	39	42	42
47. देहु कलाली एक पियाला	—	39	39	39	40	36	38	35	39	38	—	—	—		40	40	44	44
48. भाई रे सहज बंदौ लोई	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	43	43
49. संत ची संगति संत कथा रसु	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	486	—	—	—	—	—	—
50. हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे		—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	487	—	—	—	—	— —
51. माटी को पुतरा कैसे नचतु है	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	487	—	—	—	—	—	—

राग सोरठ (5)

क्र.	भक्तमाल	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु.ग्रं.	र.सं.	गो.सं.	1880	9693	3322	1853
52. ऐसी मेरी जाति बिख्यात चमारं		—	40	40	40	41	37	39	36	41	39	—	1292			41	41	— —
53. पार गयाँ चाहै सब कोई	—	41	41	41	42	38	40	37	42	40	—	—		—	42	42	—	—

क्र.	भक्तमाल	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु.ग्रं.	र.सं.	गो.सं.	1880	9693	3322	1853
54. बापुरौ सति रैदास कहै	—	42	43	43	43	39	41	38	43	41	—	—			44	43	—	—
55. इहै अंदेस सोच जीय मेरे	—	43	44	44	44	40	42	39	44	42	—	—	—		45	44	46	46
56. रामराइ का कहिये यहु ऐसी	—	44	45	45	45	41	43	40	45	43	108	658			46	45	—	—
57. रे मन माँछला संसार समंदे	—	45	46	46	46	42	44	41	—	44	—	—	—		47	46	53	53
58. जिनि थोथरा पिछोरै कोई	—	46	47	47	47	—	—	—	—	—	—	—	—		48	—	—	—
59. रे चित चेति चेति अचेत	—	47	48	48	48	43	45	42	46	45	—	1124			49	47	47	47
60. रथ को चतुर चलावणहारौ	—	48	49	49	49	44	46	43	47	46	—	—	—		50	48	48	48
61. जो तुम्ह तोरौ राम मैं नहीं तौरौं	—	49	50	50	50	45	47	44	48	47	—		—		51	49	49	49
62. किहिं विधि अणसरौं रे	—	50	51	51	51	46	48	45	49	48	—	—	—		52	50	50	50
63. माधौ भरम कैसै न बिलाइ	—	51	52	52	52	—	49	—	63	—	—	—			53	51	51	51
64. माधवे का कहिये भ्रम ऐसा	—	52	53	53	53	47	—	46	—	49	—		—		54	52	52	52
65. मन मेरे सोई सरूप विचारं	—	53	54	54	54	—	—	—	—	—	—	—	—		55	—	—	—
66. पांडे कैसी पूज रची रे	—	—	42	42	17	—	—	—	—	—	—	—		—	43	—	—	—

क्र.	भक्तमाल	4962	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु.ग्रं.	र.सं.	गो.सं.	1880	9693	3322	1853
67. न बीचारिओ राजा राम को रसु	–	–		–	–	–	–	–	–	–	–	658	–	–	–	–	–	–
68. हरि हरि हरि न जपहि रसना	–	–		–	–	–	–	–	–	–	–	658	–	–	–	–	–	–
69. प्रानी किआ मेरा किआ तेरा	–	–		–	–	–	–	–	–	–	–	659	–	–	–	–	–	–
70. चमरटा गाँठि न जनही	–	–		–	–	–	–	–	–	–	–	659	–	–	–	–	–	–
राग ध्नाश्री (6)																		
71. तुझा देव कवलापति सरणि आया	–	54	55	55	55	48	50	60	52	50	–	–			56	72	65	59
72. मेरी प्रीति गोपाल सूँ जिनि घटै हो	–	55	56	56	56	49	51	61	57	51	100	694	–		57	73	59	60
73. कौंण भगति थैं रहै प्यारौ पाहुणौं रे	–	56	57	57	57	50	52	62	53	52	–	1293	–		58	74	62	63
74. जयौ राम गोब्यंद बीठल बासदेव	–	57	58	58	58	51	53	–	54	53	–	–	–		59	–	60	61
75. अहो देव तेरी अमिति महिमा	–	58	–	–	59	–	–	–	55	–	–	–	–	–	60	71	–	–
76. मैं का जानौं देव मैं का जानौं	–	59	59	59	60	52	54	63	56	54	–	710	–		61	75	61	62
77. त्राहि त्राहि त्राहि त्राहि त्रिभवन		–	60	60	60	61	53	55	64	50	55	–	–	–	62	76	36	36
78. जन कूँ तारि तारि बाप रमइया	–	61	61	61	62	54	56	65	51	56	–	–	–		63	77	63	64
79. कहि धौ रे प्रहिलाद	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	78	–	–
80. आरति क्या ले करि जोवै	–	62	62	62	63	68	70	–	–	70	–	–	–		64	69	64	65

क्र॰	भक्तमाल	1853	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु॰ग्रं॰	र॰सं॰	गो॰सं॰	1880	9693	3322
81. संत उतारैं आरती	—	63	63	63	64	69	—	—	—	—	—	—	—		65	80	—	—
82. जे तू गोपालै नहिं गैहै	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	21	—	—
83. नामु तेरो आरती मजनु मुरारे	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	694	—	—	—	—	—	—
राग सूही (7)																		
84. इहु तनु ऐसो जैसे	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	794	—	—	—	—	—	—
राग बिलावल (8)																		
85. क्या तू सोवै जागि दिवाना	—	64	64	64	65	55	57	47	58	57	—		—		66	53	55	55
86. खालिक सिकस्ता मैं तेरा	—	65	65	65	66	56	58	48	59	58	—	—	—		67	54	—	—
87. जो मोहि बेदन का सनि आखूँ	—	66	66	66	67	57	59	49	60	59	90	—	—		68	55	—	—
88. ताथैं पतित नहीं को पावन	—	67	67	67	68	58	60	50	61	60	—	—			69	56	—	56
89. नहीं विश्राम लहूँ धरणीधर	—	68	68	68	69	—	—	—	62	—	—	—	—	—	70	60	—	—
90. गोब्यंदे तुम्हारे चरणाब्यंद	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	57	—	—
91. को का जानै पीर पराई	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	793	—	—	—	58	—	—
92. पांडे हरि बिचि अंतर ठाढा	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	59	—	—
93. तू जानत मै कछु नहीं	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	858	—	—	—	—	—	—
94. जिह कुल साधू बेसनौ होइ	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	858	—	—	—	—	—	—

क्र.	भक्तमाल	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु.ग्रं.	र.सं.	गो.सं.	1880	9693	3322	1853
राग भैरौ (9)																		
95. ऐसा ध्यान धरूँ बनवारी	—	69	69	69	70	59	61	51	20	61	—	—			71	61	56	57
96. अबिगत नाथ निरंजन देवा	—	70	70	70	71	60	62	52	66	62	—	—	—		72	63	57	58
राग टोडी (10)																		
97. पावन जस माधौ तोरा	—	71	71	71	72	61	63	53	65	63	—	—	—		73	62	45	45
राग गुंड (11)																		
98. आजि ना द्यौस ना ल्यूँ बलिहारा	—	72	72	72	73	62	64	54	—	64	—	—			74	64	54	54
99. जीवत मुकंदे मरत मुकंदे	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	875	—	—	—	—	—	—
100. साध का निंदकु कैसे तिरै	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	875	—	—	—	—	—	—
101. भक्त बिछल बिड़द तेरो	101	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	875	—	—	—	—	—	—
राग जैतश्री (12)																		
102. सब कुछ करत न कछु कछु कैसैं		—	73	73	73	74	63	65	55	64	65	—	—		75	70	—	—
103. कारनि कौंन अबोलो हो	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	694	—	—	—	—	58	—
राग सारंग (13)																		
104. जग में बैद बेद मानीजै	—	74	74	74	75	64	66	56	67	66	—	—			76	65	—	—

क्र०	भक्तमाल	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु०ग्रं०	र०सं०	गो०सं०	1880	9693	3322	1853
राग कनड़ौ (14)																		
105. माया मोहिला कान्ह	–	75	75	75	76	65	67	57	68	67	–	–	–		77	66	–	–
106. चलि चलि मन हरि चटसाल	–	76	76	76	77	–	–	–	–	–	–	–	–		78	–	6	6
राग केदारौ (15)																		
107. प्रीति सधारन आव	–	77	77	77	78	–	–	–	–	–	–	–	–	–	79	69	9	9
108. दरसन दीजे राम दरसन	–	–	79	79	80	–	–	–	–	–	–	–	–	–	81	–	–	–
109. रे मन राम नाम संभारि	–	78	78	78	79	66	68	58	69	68	–	–			80	67	7	7
110. हरि को टाडौ लादें जाई	–	79	80	80	81	67	69	59	70	69	–	346	–		82	68	8	8
राग मारू (16)																		
111. ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	1106	–	–	–	–	–	–
राग बसन्तु (17)																		
112. तू काँइ गरबहि बावली	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	1196	–	–	–	–	–	–
राग मलार (18)																		
113. हरि जपत तेऊ जनाँ	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	1293	–	–	–	–	–	–

क्र॰	496	2	4	561	497	529	501	34	1817	1639	गु॰ग्रं॰	र॰सं॰	गो॰सं॰	गुणगंजनामा		3322
1853																
साखी																
1. हरि सा हीरा छाड़ि करि	1	1	1	–	1	1	–	1	1	–	–		–	–	–	–
2. अंतरगति राचैं नहीं	2	2	2	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–		–	–
3. जा देखें घिणि ऊपजै	3	3	3	–	2	2	–	–	2	–	–	–	–	–	–	–
4. रैदास तूँ काँवछि फली	4	4	4	–	–	–	–	2	–	–	–	–	–	–	–	–
5. हरि हरि कह हारै नहीं	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–		–	–
6. रैदास कहै जाके हृदय	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–			√
7. रैदास राति न सोइये	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	√	√